

निरयावलिका सूत्र



भगवान महावीर

अनुवादक व टीकाकार

जैन धर्म दिवाकर, श्रमण संघ के प्रथम पदधर श्री श्री 1008 पुज्यवर

श्री आत्मा राम जी महाराज

मुख्य सम्पादिका

जिन शाषण प्रभाविका, साध्वी रत्न, जैन ज्योति उपप्रवर्तनी

श्री स्वर्ण कान्ता जी महाराज

साध्वी श्री स्मृति जी म. M.A. * श्री तिलकधर शास्त्री जी * श्री पुरूषोत्तम जैन, * श्री रवीन्द्र जैन

प्रकाशक

पच्चीसवीं महावीर निर्वाण शताब्दी संयोजिका समिति पंजाब-विमल कोल डिप्टु, पुराना बस सटैण्ड,
महावीर स्ट्रीट मालेरकोटला - 148023 जिला संगरूर

आचार्य श्री आत्मा राम जी

महाराज

आप जैन श्वेताम्बर स्थानावासी श्रमण संघ के प्रथम पट्टाधीश थे । आप का जन्म पंजाब के एक छोटे से कस्बे राहो जिला जालंधर में हुआ । छोटी सी आयु में ही आपने स्थानवासी दीक्षा अंगीकार की । संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, धार्मिक साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया । अपने जीवन काल में आप ने 80 के करीब ग्रंथ जैन हिन्दी साहित्य को प्रदान किये । आप ने 20 आगमों पर टीका हिन्दी भाषा में लिखी । आप काफी आगम प्रकाशित हो चुके हैं । प्रस्तुत आगम उनका अप्रकाशित आगम था । उपप्रवर्तनी साध्वी श्री स्वर्ण कांता जी भी इस की मुख्य सम्पादिका हैं । सम्पादक मण्डल में हैं, धर्म भ्राता श्री पुरूषोत्तम जैन, श्री रवीन्द्र जैन (मलेरकोटला) साध्वी श्री सुधा जी की शिष्या साध्वी श्री स्मृति जी म. M.A., श्री तिलकधर शास्त्री जी सम्पादक आत्म रश्मि लुधियाना



नमोऽस्तुते समणस्स भगवओ महावीरस्स

निरयावलिका सूत्रम्

[कप्पिया, कप्पवाडिसिया, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वह्निहदसा]

(NERYAVALIKA SUTRA)

[Kappia, Kappavadinsia, Pupphia, Pupphachulia, Vahnidasa]

टीकाकार :

जैन-धर्म-विवाकर जेनागम-रत्नाकर आचार्य-सन्नाट

पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज

मुख्य सम्पादक :

जिन-शासन-प्रभाविका जैन-ज्योति उपप्रवर्तिनी

महाश्रमणी श्री स्वर्ण कान्ता जी महाराज

सम्पादक-मण्डल :

साध्वी-रत्न ओ स्मृति जी म. एम. ए. श्री पुरुषोत्तम जैन

श्री तिलकधर शास्त्री, (सम्पादक आत्म-रत्न) श्री रवीन्द्र जैन

साहित्य-रत्न, साहित्यालंकार, विद्या-वाचस्पति (मालेर कोटला)

प्रबन्ध सम्पादक :

श्री पुरुषोत्तम जैन, श्री रवीन्द्र जैन

प्रकाशक :

पञ्चोसवीं महावीर निर्वाण शताब्दी संयोजिका समिति

(पञ्चाब्द)

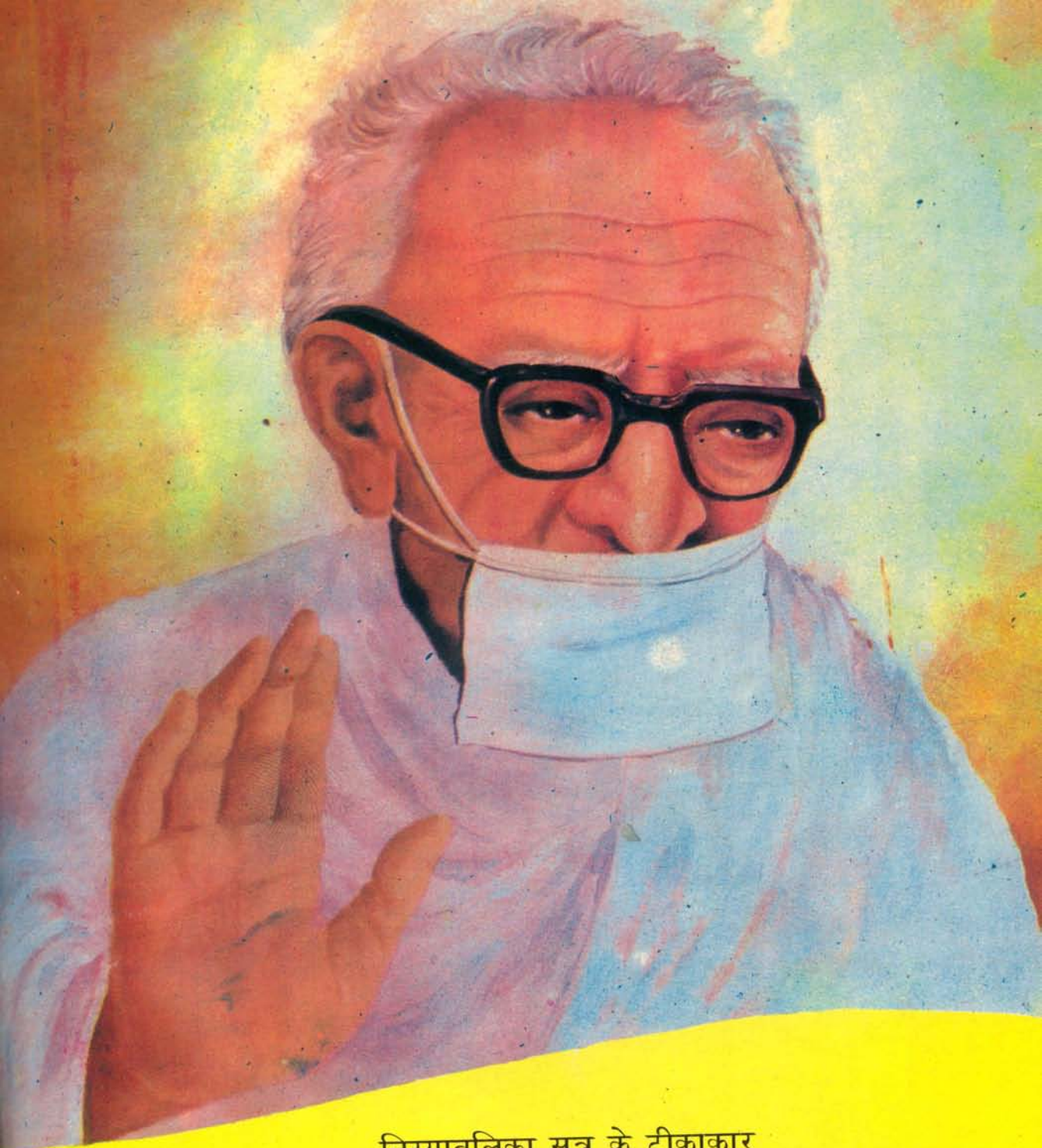
बिमल कोल डिपो, पुराना बस स्टैण्ड, महावीर स्टीट,

मालेर कोटला (संगरूर) 148023



-
- पुस्तक— निर्यावलिका-सूत्र
 - टीकाकार— आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज
 - मुख्य सम्पादक— उपप्रवर्तिनी महाश्रमणी श्री स्वर्णकान्ता जी महाराज
 - सम्पादक मण्डल—साध्वी-रत्न श्री स्मृति जी महाराज एम. ए.,
श्री तिलकचर शास्त्री, लुधियाना
श्री पुरुषोत्तम जैन, श्री रवीन्द्र जैन (मालेर कोटला)
 - प्रबन्ध-सम्पादक—श्री पुरुषोत्तम जैन, श्री रवीन्द्र जैन (मालेर कोटला)
 - प्रकाशक पञ्चीसवीं महावीर निर्वाण-शताब्दी संयोजिका समिति (पंजाब)
बिमल कोल डिपो, पुराना बस स्टैंड, महावीर स्ट्रीट,
मालेर कोटला (संगरूर)
 - प्रकाशन-काल— आत्म-दीक्षा-शताब्दी वर्ष (१९६४)
वीर सम्बत् २५२०, विक्रम सम्बत् २०५०
 - मुद्रक— आत्म जैन प्रिंटिंग प्रेस, ३५०-इण्डस्ट्रियल एरिया 'ए',
लुधियाना - १४१००३
-

मूल्य : दो सौ इक्कावन (२५१) रुपये केवल



निरयावलिका सूत्र के टीकाकार
जैन-घर्म दिवाकर जैनगम-रत्नाकर
आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज
पच्चीसवीं महावीर निर्वाण संयोजिका समिति (पंजाब)
मलिरकोटला



जिन्होंने आगमों की हिन्दी टीकायें लिखने का
मार्ग प्रशस्त किया

जिन्होंने प्राकृत के साथ संस्कृत को भी
इसलिये विशेष महत्त्व दिया

जिससे अज्ञान विद्वान् भी जैनागमों की
गहन ज्ञान-राशि को प्राप्त कर सकें

जिनकी लेखनी ने आगमों के गहन गम्भीर
रहस्यों को उद्घाटित किया

और

जैनागमों को सर्वजन-मुल्लभ बनाया

जिनका समस्त जीवन भूत-सेवा के लिये
समर्पित रहा

उन्हीं अद्वेय भ्रमण-भ्रष्ट

आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के
कर-कमलों में

“तुभ्यं वस्तु हे देव ! तुभ्यमेव समर्पये”

की भावना के साथ

सादर समर्पित



अर्हत् जैन संघ आचार्य श्री सुशील मुनि जी महाराज के आशीर्वचन

जैनागमों के चारों अनुयोगों में निरयावलिका सूत्र "धर्म कथानुयोग" के अन्तर्गत आता है। यह अन्तर्कृत का उपांग शास्त्र है। उस समय जैन धर्म, जैन समाज में धर्म-पालन कैसे होता था और उस समय लोगों में मोक्ष जाने की कितनी उत्कृष्ट आकांक्षा थी और किस प्रकार राजकुमारों-रानियों ने वैभव त्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण कर अपने आत्म-लक्ष्य को प्राप्त किया इसके विस्तृत ऐतिहासिक विवरण इस सूत्र द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं।

श्रमण-संघ के प्रथम पट्टधर आचार्य-प्रवर श्री आत्मा राम जी महाराज जैन आगमों के प्रसिद्ध टीकाकार थे। उनका नाम समस्त साहित्यिक, विशेषतः प्राकृत जगत में विख्यात है। उन की अप्रकाशित कृति श्री निरयावलिका सूत्र पच्चीसवीं महावीर निर्वाण शताब्दी संयोजिका समिति पंजाब मालेरकोटला प्रकाशित कर रही है। आज के समय में ऐसे धर्म-शास्त्र का सम्पादन व प्रकाशन बहुत ही सराहनीय एवं उपयोगी है।

हमारे यह पंच सम्पादक—विदुषी महासाध्वी श्री स्वर्ण कान्ता जी और उनकी मेधावी शिष्या साध्वी स्मृति जी एवं जैन जगत के प्रसिद्ध विद्वान् महामान्य श्री तिलकधर जी शास्त्री, समाज-सेवी श्री पुरुषोत्तम जैन जी, श्री रवीन्द्र जैन जी के मार्गदर्शन में इस ग्रन्थ का सम्पादन हुआ है जिसके लिये ये सभी सम्पादक धन्यवाद के पात्र हैं।

हमारा ऐसा दृढ़ विश्वास है—कि हमारे यह पंच सम्पादक भविष्य में भी इसी प्रकार भगवान महावीर की विलुप्त वाणी का अनुसंधान कर उसे सम्पादित व प्रकाशित कर जिन-शासन की सेवा करते रहेंगे।

अनन्त मंगल कामनाओं के साथ

आचार्य सुशील कुमार



जैन-धर्म-दिवाकर जैनागम-रत्नाकर
परम श्रद्धेय आचार्य-सम्राट पूज्य
श्री आत्मा राम जी महाराज

के

जीवन-सागर की कुछ लहरियां

जैन-धर्म-दिवाकर जैनागम-रत्नाकर आचार्य-सम्राट पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज चतुर्विध संघ के अग्रगण्य यशस्वी अनुशास्ता थे। जिन महापुरुषों का जीवन संयम और संघ-सेवा की दृष्टि से आदर्श हो, ऐसे महापुरुष ही समाज के लिये अनुशासन के अधिकारी होते हैं। आचार्य श्री का संयममय जीवन कितना उच्च था—महान था? उन्होंने कितने शान्ति-प्रिय रह कर समाज पर अनुशासन किया, इसे वे श्रद्धालु श्रावक ही जान सकते हैं जिन्हें उनके पावन सांनिध्य का सीमाय प्राप्त हुआ हो।

यद्यपि विद्वत्ता उनका जन्म-सिद्ध स्वाभाविक गुण था, तथापि उनके उस गुण को उनके संयम और उनकी स्वाध्याय-निष्ठा रूप गुण ही प्रकाशित कर पाये हैं। साधु के जीवन में अन्य समस्त गुणों की अपेक्षा संयम का ही प्राधान्य रहता है। संयम का अर्थ है सम्यक् प्रकार से आत्मा को नियन्त्रित कर विकृतियों की ओर जाने से रोकना। आचार्य श्री जी स्वाध्याय तपस्वी होने के साथ-साथ महान संयमी श्रमण-श्रेष्ठ थे।

आचार्य के आठ गुणों में एक गुण है शरीर-सम्पदा। आचार्य देव का शरीर रूपी पुष्प वहाँ द्रष्टव्य एवं सुन्दर था, वहाँ वह संयम की सुगन्ध से भी इतना परिपूर्ण था कि उनके पावन सांनिध्य में आने वाला हर व्यक्ति संयम की सुगन्ध से परिपूर्ण हो जाता था।

उनके दर्शन करते ही महान निर्ग्रन्थ अनाथी मुनि की स्मृतियां मस्तिष्क के पटल पर उभर आती थीं। उनका शरीर-वैभव और संयम-वैभव दोनों मिलकर उन्हें पूर्ण-पुरुष के रूप में प्रत्यक्ष कर देते थे।

आचार्य देव बाह्य तप की अपेक्षा अन्तरंग तप को अधिक महत्व देते थे। अनुशास्ता होते हुए भी वे संघ-सेवा को महत्त्वपूर्ण मानते थे, अतः वे समाज के लिये हरमन-ध्यारे हो गये थे। उनकी वाणी में साधु का ऐसा गहन सागर था जिसमें सभी को प्रिय लगने वाले रत्न ही प्राप्त होते थे। आप जैन एकता के प्रतीक थे, जो भी उनके चरणों में बैठता, वह आगम-ज्ञान सबको बहर्ष प्रदान करते थे।

आप जिस समय शास्त्रों का मनन करते थे, उस समय ज्ञान-धारा में गहरी डुबकी लगाकर अनुप्रेक्षा के माध्यम से आगमधरों के गहन आशय को तुरन्त पकड़ लेते थे। आपका प्रत्येक विचार स्वतन्त्र नहीं आगम-सम्मत ही होता था।

नम्रता एवं सहिष्णुता के आप मूर्त रूप थे, क्योंकि अभिमान और ममत्व आपसे पर्वदा दूर ही रहते थे। आचार्यत्व और विद्वत्ता का न अभिमान और न ही शरीर का कोई ममत्व ही। आपकी नम्रता नव-दीक्षित साधु को भी सम्बोधित करते हुए उसके नाम के साथ आदरार्थ 'जी' का प्रयोग अवश्य किया करते थे। भयंकर से भयंकर वेदना में भी उनकी दिन-चर्या और रात्रि-चर्या का क्रम मुनित्व की सीमा का अतिक्रमण कभी नहीं कर पाता था। आप स्वयं प्रसन्न रहते थे और निकट में रहने वालों को भी प्रसन्न ही रखते थे। कटुता, कुटिलता और कठोरता न उनके मन में थी, न वाणी में और न ही व्यवहार में।

स्वाध्याय-निष्ठा

स्वाध्याय उनके जीवन का विशेष अंग था, अध्ययन और अध्यापन ही उनके जीवन के उद्देश्य थे, इसीलिये आप आडम्बरों तथा जन-सम्पर्क से दूर ही रहने का प्रयास करते थे। स्वाध्याय के साथ समाधि, ध्यान और योगाभ्यास उनकी जीवनचर्या के अभिन्न अंग बन गये थे। उनकी लेखनी ने बीस आगमों की ऐसी हिन्दी टीकायें लिखीं जो सर्वजनोपयोगी हैं। आगमों पर तो उनका इतना दृढ़ पकड़ हो चुका था कि अन्तिम अवस्था में नेत्र-उद्योति के मन्द पड़ जाने पर भी ग्रन्थ का वही पृष्ठ निकाल देते थे जिस पर वह विषय अंकित होता था।

सम्बत् १९८९ के वर्ष में आपने दस ही दिनों में दिगम्बर सम्प्रदाय के मान्य ग्रन्थ "तत्त्वार्थ-सूत्र" के मूल पाठों के उद्धरण देकर यह सिद्ध कर दिया था कि तत्त्वार्थ-सूत्र उमा स्वाती जी ने आगमों से ही उद्धृत किया है। उसका मूलाधार आगम-साहित्य ही है। यह रहस्य सदियों से अज्ञात ही रहा था सर्व प्रथम आचार्य श्री जी की लेखनी ने ही उसे उद्घाटित किया। इस ग्रन्थ की महत्ता को ऐसा कोई जैन विद्वान नहीं है जिसने उसे स्वीकार न किया हो, वैसे तो उनकी लेखनी ने लगभग ६० ग्रन्थों का निर्माण किया था।

ऐसे महापुरुष को जालन्धर प्रांत की राहों नामक नगरी की भूमि ने जन्म दिया था, सम्बत् १९३९ के भाद्रपद मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन। पिता श्री मनसा राम जी चोपड़ा एवं माता स्वनाम-धन्या परमेश्वरी देवी ने इस नवजात कुल-दीपक का नाम "आत्माराम" रखा था, क्योंकि उनकी आत्मा ने अन्तर्जगत में ही रमण करना था।

सन्तों की ज्ञानाराधना के ये अनुभूत स्वर भी कभी-कभी सुनने में आ जाते हैं कि आचार्य देव की आत्मा अनेक भवों से सन्तत्व की समाराधना करती आ रही थी। अतः इस जन्म में भी

आपने केवल ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही सन्तत्व के पावन मन्दिर में प्रवेश पा लिया था। सम्बत् १९५१ आषाढ़ शुक्ला पंचमी को श्री-संघ ने बड़े समारोह के साथ पटियाला से तीस पैंतीस किलोमीटर उत्तर दिशा में अवस्थित 'छत बनूड़' में आपने सन्तत्व ग्रहण किया। श्री शालिग्राम जी महाराज आप के दीक्षा-गुरु बने और महामुनीश्वर पूज्य श्री मोती राम जी महाराज आपके विद्या-गुरु बन कर आगम-सागर के मोती प्रदान करते रहे।

अलंकरण-माला से अलंकृत

भगवती सरस्वती की आप पर अपार कृपा थी, वह सदैव आपके स्मृति-सागर में ही निवास करती थी, आपको आगमज्ञता को सन्मानित करने के लिये पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज एवं पंजाब प्रांतीय श्री संघ ने सम्बत् १९६८ में अमृतसर नगर में आपको उपाध्याय-पद से विभूषित किया, क्योंकि तत्कालीन उत्तरी भारत में आप जैसा कोई आगमज्ञ मुनिराज था ही नहीं।

सम्बत् १९६१ में दिल्ली के श्री-संघ ने आपको जैन-धर्म-दिवाकर अलंकरण से सन्मानित किया और तपस्वीराज श्री लालचन्द जी महाराज के सान्निध्य में स्यालकोट के श्री-संघ ने सम्बत् १९६३ में आपको "साहित्य-रत्न" के अलंकरण से अलंकृत कर आपके प्रति अपनी श्रद्धान्वित कृतज्ञता प्रकट की।

पंजाब प्रांत के आचार्य

सं० २००३ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को महावीर जयन्ती के शुभ अवसर पर उत्तरीभारत के प्रतिष्ठित मुनिवरों ने बड़े समारोह के साथ आपको पंजाब श्री-संघ के आचार्य-पद की श्वेत चादर बड़ी श्रद्धा से ओढ़ाई।

प्रधानाचार्य पद का सम्मान

सम्बत् २००६ में अक्षय-तृतीया के दिन राजस्थान के सांदड़ी नगर में सम्पन्न हुए बृहत् साधु-सम्मेलन ने एक मन और एक मत से आपको श्रमण-संघीय आचार्य-पद प्रदान किया, जब कि आप स्वयं वहां उपस्थित नहीं थे।

देवलोकवासी

लगभग दस वर्षों तक इस पद पर रह कर आपने समस्त श्री संघ को संगठित किया, एक सूत्र में बांधा और समस्त श्री-संघ को गौरवान्वित किया। माघ कृष्ण नवमी सम्बत् २०१८ (३० जनवरी १९६२) के दिन इस महान विभूति को देवों ने हमसे छीन लिया और आप देवलोक में जा विराजे।

उनकी अप्रकाशित रचना निरयावलिका को सम्पादित कर प्रकाशित करने का जो महान् सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है उससे मेरी आत्मा अनन्त आनन्द की अनुभूति कर रही है और करती रहेगी। मेरा वही आनन्द "तुभ्यं वस्तु हे देव ! तुभ्यमेव समर्पये" के शब्दों में उनकी यह पावन कृति उन्हें ही समर्पित कर रहा है।

साध्वी रुक्मिणी कान्ता (उपप्रवर्तनी)

टीकाकार की लेखनी से



आत्मा के विकास के लिये श्रुत-ज्ञान अत्यन्त उपयोगी है। श्रुत-ज्ञान के द्वारा ही आत्मा स्व-कल्याण करने में समर्थ हो सकता है, यदि श्रुत-ज्ञान का अभाव हो तो आत्मा अपने कर्तव्य से पतित हो जाता है।

श्रुत-ज्ञान के दो रूप हैं—द्रव्य-श्रुत और भाव-श्रुत। आज दोनों ही श्रुत विद्यमान हैं। अनुयोग द्वार सूत्र में पत्र और पुस्तकों के अक्षर-विन्यास को द्रव्य-श्रुत कहा गया है और आत्म-ज्ञान के रूप में श्रुत को भाव-श्रुत कहा जाता है। ये दोनों श्रुत लौकिक और लोकोत्तर धर्म-मार्ग के साधन हैं।

प्रस्तुत प्रकरण में भाव-श्रुत ही अभीष्ट है। भाव-श्रुत के भी दो रूप हैं—अंग-प्रविष्ट और अनंग-प्रविष्ट (अंग बाह्य) गणधर देवों द्वारा रचित श्रुत अंग-प्रविष्ट कहलाता है और शेष श्रुत अंग-बाह्य के रूप में प्रसिद्ध हैं। अंग शास्त्रों के आधार पर निर्मित श्रुत को उपांग भी कहते हैं। जो संख्या में बारह हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं—१. उववाइय (श्रीपदातिक) २. रायपसेणियं (राजप्रश्नीयम्) ३. जीवाभिगम ४. पणवणा (प्रज्ञापना) ५. सूरपण्णत्ति (सूर्य-प्रज्ञप्ति) ६. जम्बू द्वीपपण्णत्ति (जम्बू द्वीप-प्रज्ञप्ति) ७. चंद पण्णत्ति (चन्द्र-प्रज्ञप्ति) ८. निरयावलियाओ (निरया-वलिका) ९. कप्पवडिसियाओ (कल्पावतंसिका) १०. पुक्फियाओ (पुष्पिका) ११. पुक्फ चूलाओ (पुष्प चूलिका) और १२. वण्हदसाओ (वृष्णिदशा)।

तन्दी सूत्र में अंग प्रविष्ट और अनंग-प्रविष्ट श्रुत का वर्णन करते हुए वृत्तिकार ने समस्त आगमों का श्रुत-पुरुष के रूप में वर्णन प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि—

यत्पुनरेतस्यैव द्वादशाङ्गात्मकस्य श्रुतपुरुषस्य व्यतिरेकेण स्थितमङ्गबाह्यत्वेन व्यवस्थितं तदनङ्ग-प्रविष्टम्। अथवा यद्गणधरदेव कृतं तदनङ्ग प्रविष्टम्, मूलभूतमित्यर्थः।

गणधरदेवा हि मूलभूतमाचारादिकं श्रुतमुपचयन्ति तेषामेव सर्गात्कृष्टं श्रुतम्-गिघ-सम्पन्नतया तत्रचपितुमीशत्वात्। यत्पुनः श्रुतस्थगिरैस्तदेकदेशमुपजीव्य विरचितं तदनङ्ग-प्रविष्टम्।

उपर्युक्त समस्त विवरण का भाव यही है कि गणधर देवों द्वारा सूत्रबद्ध किया गया आगम साहित्य अङ्ग प्रविष्ट है और अन्य श्रुत-स्थविरों द्वारा आगमों के आधार पर विरचित-समस्त शास्त्रीय साहित्य अङ्ग-बाह्य अथवा अनङ्ग-प्रविष्ट साहित्य कहलाता है।

(आचार्य श्री जी की आगमों की शोध करते हुए संवत् १८८० के माघ मास के कृष्णपक्ष की द्वितीया तिथि को रायकोट (पंजाब) में किसी विद्वान् मुनीश्वर द्वारा निर्मित श्रुत-पुरुष का चित्र भी प्राप्त हुआ था जो इस विषय को बहुत ही सहजरीति से स्पष्ट कर देता है) इनके अतिरिक्त कालिक और उत्कालिक श्रुत के रूप में भी आगम साहित्य का वर्गीकरण किया जाता है ।

निरयावलिका सूत्र एक उपांग है यह जानने के अनन्तर यह परिज्ञान भी आवश्यक है कि इस सूत्र के पाँचों वर्ग भी उपांग नाम से अलग-अलग प्रसिद्ध हैं जैसे कि स्वयं सूत्रकार लिखते हैं—
“उबंगणं पंच वागा पणत्ता”—इस उपांग के पाँच वर्ग भी उपांगों के नाम से प्रसिद्ध हैं । अतः इस सूत्र में पाँच उपांग संकलित किए गए हैं ।

इस स्थान पर यह शका भी उत्पन्न हो सकती है कि कौन-कौन सा आगम उपांग है ? इस प्रश्न का समाधान सूत्र में न होने के कारण पूर्वाचार्यों ने जो कल्पना की है उसे ही विचारार्थ ग्रहण किया जा सकता है, क्योंकि औपपातिक आदि सूत्रों में किसी भी उपांग का उल्लेख नहीं है ।

कुछ विद्वानों की यह मान्यता भी गम्भीरता से विचारणीय है कि निरयावलिका सूत्र का विषय दृष्टिवाद नामक पूर्व से उद्धृत किया गया है, किन्तु सभी आगम-वेत्ता इस विषय से सहमत हों यह नहीं कहा जा सकता ।

निरयावलिका सूत्र को पाँच वर्गों में गठित किया गया है, किन्तु यदि निरयावलिका को पृथक् उपांग माना जाये तब ये छः शास्त्र सिद्ध होते हैं । नन्दी-सूत्र में कालिक सूत्रों के नामों के प्रकरण में निम्न लिखित पाठ है—

निरय वलियाओ, कल्पियाओ, कल्पवडिसियाओ, पुष्फियाओ, पुष्फ चूलियाओ, बह्विबसाओ ।
किन्तु यह विषय विद्वद्-वर्ग के लिये सर्वथा विचारणीय है, क्योंकि यदि षट् शास्त्र माने जायें तब ‘निरयावलिका के पाँच वर्ग हैं’ यह कथन व्यर्थ सिद्ध हो जाता है ।

पाँच वर्गों के विषय

निरयावलिका में राजा श्रेणिक के दस पुत्रों का अधिकार दिया गया है “कल्प वडिसिया” में महाराज श्रेणिक के दस कुमारों के पद्म आदि पुत्रों का अधिकार है जो दीक्षित होकर देव-विमानों में उत्पन्न हुए थे । तृतीय वर्ग पुष्फिया में चन्द्र, सूर्य, शुक्र, बहुपुत्रिका आदि दस अध्ययनों का विस्तृत वर्णन किया गया है । चतुर्थ वर्ग पुष्फचूला में श्री, ह्री, वृति, कीर्ति आदि दस देवियों का वर्णन है । पंचम वर्ग वन्हि-दशा में निषिघ कुमार आदि बारह कुमारों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है ।

इस प्रकार पाँच वर्गों में विभिन्न विषयों का वर्णन है । जैन-धर्म-प्रसारक सभा” भाव नगर से जो निरयावलिका सूत्र प्रकाशित हुआ है उसकी प्रस्तावना में उपर्युक्त वर्णन के ही संकेत प्राप्त होते हैं जो विषयानुकूल हैं ।

इस सूत्र के अध्ययन अति प्राचीन और शिक्षाप्रद है, प्रत्येक धर्म-प्रिय व्यक्ति को इनका विधि-पूर्वक अध्ययन करना चाहिये, क्योंकि इस सूत्र का विषय विरचित-प्रधान आध्यात्मिक ज्ञान करते हुए भी गृहस्थोपयोगी ज्ञान भी प्रदान करता है।

मैंने इस सूत्र के हिन्दी अनुवाद में निम्न लिखित कृतियों की सहायता ली है—हस्तलिखित तीन प्रतियाँ जो टब्बे के रूप में मेरे पास ही थीं, इनके अतिरिक्त जैन-धर्म-प्रसारक सभा, भाव नगर की ओर से इंग्लिश में मुद्रित एक प्रति भी मेरे लेखन का आधार रही है। अहमदाबाद से श्री आगमोदय समिति द्वारा मुद्रित श्री चन्द्र सूरि विरचित वृत्तियुक्त निरयावलिका सूत्र की प्रति भी मूल-सूत्र लिखने में सहायक रही है।

उपर्युक्त विवरण तो केवल नाम मात्र ही है। संस्कृत - छाया अन्य सूत्रों की टीकाओं तथा व्याकरण के आधार पर की गई है, यदि इसमें कोई अशुद्धि रह गई हो तो विद्वद्-वर्ग इसको सुधार कर पढ़ें। इस सूत्र के मूल पाठ का आधार श्री आगमोदय समिति की प्रति ही रही है। श्री अमोलक ऋषि जी महाराज द्वारा लिखित प्रति से सूत्रों के अंक लगाते हुए भी कहीं-कहीं पर आवश्यकता के अनुसार सूत्रांकों में परिवर्तन भी किया गया है। मकसूदाबाद से प्रकाशित प्रति भी मूल पाठ मिलाने के लिये प्रयोग में लाई गई है। इन समस्त प्रतियों के लेखकों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए आशा करता हूँ कि पाठक वर्ग इस सूत्र के स्वाध्याय से अपनी आत्मा को अलंकृत कर निर्वाण के अधिकारी बनेंगे।

भवदीय

आत्माराम —

सम्बत् २००३, ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी,
लुधियाना,

* प्रकाशकीय *

भारतीय धर्म दर्शन में जैन आगम साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। जैन आगमों में आचारंग आदि द्वादश अंग और १२ उपांग हैं। उपांगों में निरयावलिका सूत्र का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। निरयावलिका सूत्र में निरयावलिका सूत्र के अतिरिक्त कल्पावतंसिका, पुष्पिता, पुष्पचूलिका और वृष्णिदशा नाम के अन्य उपांगों का भी समावेश है।

उपांगों का भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इन उपांगों में भगवान महावीर, भगवान पार्श्वनाथ व भगवान अरिष्टनेमि के समय की घटनाओं का यथार्थ वर्णन उपलब्ध है। जैसे निरयावलिका सूत्र में कोणिक-जन्म, राजा श्रेणिक का पदच्युत होना, चेटक-कोणिक संग्राम का विस्तृत वर्णन है। कोणिक के १० भ्राताओं की युद्ध में मृत्यु होना, श्रेणिक की रानियों द्वारा भगवान महावीर के कर-कमलों द्वारा साध्वी-जीवन ग्रहण करने का वर्णन है। वैशाली गणतन्त्र के विनाश का यह एक ऐतिहासिक प्रमाण है। दूसरे उपांग के १० अध्ययनों में राजा श्रेणिक के पौत्रों द्वारा भिक्षु-जीवन ग्रहण करने का वर्णन है। तीसरे उपांग में भी १० अध्ययन हैं, जिसमें क्रमशः चन्द्र, सूर्य, शुक्र के भगवान महावीर के समोसरण में आने का वर्णन है साथ में इनके पूर्व भव का भी वर्णन उपलब्ध होता है। बहुपत्रिका नामक अध्ययन में साध्वियों को सांसारिक कार्यों से दूर रहने का निर्देश दिया गया है। इसी प्रकार पूर्ण, मणिभद्र, दत्त, शिव, बल और अनिरुद्ध आदि के जीवन का संक्षिप्त वर्णन भी इसमें मिलता है। चतुर्थ उपांग पुष्पचूला के भी १० अध्ययन हैं। इनके नाम क्रमशः श्री देवी, ह्री, धी, कृति, बुद्धि, लक्ष्मी, इलादेवी, सुरादेवी, रसदेवी, गंधर्व देवी हैं। मुख्य रूप से श्री देवी का वर्णन करके अन्य देवियों के माता-पिता एवं जन्म-स्थान आदि का संकेत मात्र कर दिया गया है।

इस अध्ययन में भूता साध्वी द्वारा साधना छोड़कर श्रृंगार की तरफ ध्यान देने का वर्णन है जो साधवाचार के विपरीत है। पाँचवें वर्ग वृष्णि दशा के १२ अध्ययनों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—(१) निषध कुमार, (२) मातली कुमार, (३) वह कुमार, (४) बहे कुमार, (५) प्रगति कुमार, (६) ज्योति कुमार, (७) दशरथ कुमार, (८) दूढरथ कुमार, (९) महाधनु कुमार, (१०) सप्त धनु कुमार, (११) दश धनु कुमार और (१२) शतधनु कुमार। इन सभी अध्ययनों का समय की दृष्टि से २२वें तीर्थंकर श्री अरिष्टनेमि जी से सम्बन्ध है। इस उपांग में प्रमुख वर्णन निषध कुमार के पूर्व भव का है। इस प्रकार समस्त निरयावलिका सूत्र के पाँचों उपांगों में ५२ अध्ययन हैं।

पच्चीसवीं महावीर निर्वाण शताब्दी संयोजिका समिति पंजाब तीन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हमेशा प्रयत्नशील रही है। (१) पंजाबी जैन साहित्य का निर्माण, (२) जैन विद्वानों का सम्मान (३) जैन चेत्य की स्थापना। जहाँ तक पंजाबी जैन साहित्य का सम्बन्ध है, हमारे

प्रवर्तिनी जैन-ज्योति, जिन-शासन प्रभाविका साध्वी श्री स्वर्ण कान्ता जी महाराज की प्रेरणा व दिशा-निर्देश में कार्यरत है। आज तक पंजाबी साहित्य के रूप में समिति द्वारा ४० पुस्तकें छप चुकी हैं। जिनमें अनुवाद, कथा-साहित्य व मौलिक रचनाएँ सम्मिलित हैं।

इसी समिति के प्रयत्नों से जैन चेत्य की स्थापना १९७६ में पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला में हो चुकी है। इसी चेत्य की देख-रेख में जैन लायब्रेरी एवं आचार्य श्री आत्माराम जैन भाषण माला आदि कार्य काफी समय से चल रहे हैं। समिति द्वारा प्रकाशित भगवान महावीर का जीवन चरित्र पञ्जाबी विश्व विद्यालय पटियाला के बी. ए. (प्रथम वर्ष) में सिलेबस के रूप में मान्यता प्राप्त कर चुका है। इसके अतिरिक्त इण्टरनेशनल पार्वती जैन एवार्ड संस्था हर वर्ष एक विद्वान का सम्मान करती है।

श्री साध्वी जी महाराज सरस्वती उपासना में निरन्तर लगी रहती हैं। काफी समय से उनकी यह भावना थी कि उस अप्रकाशित शास्त्र निरयावलिका का प्रकाशन होना चाहिये, जिसका अनुवाद श्रमण-संघ के प्रथम पट्टधर आचार्य-सम्राट पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज ने किया है।

जैन जगत में आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज का नाम देश-विदेश में जाना-पहचाना नाम है, इस शताब्दी में जैन आगमों के प्रथम हिन्दी टीकाकार के रूप में उनका नाम प्रथम पंक्ति में आता है। उन्होंने अपना समस्त जीवन जैन साहित्य के निर्माण स्वाध्याय, प्रसार व प्रचार को समर्पित कर जैन संस्कृति को गौरवान्वित किया है। हमारे आचार्य भगवान ने २० आगमों का अनुवाद किया है, जिनमें अधिकांश आगम लुधियाना में आचार्य श्री आत्माराम जैन प्रकाशन समिति द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं। आचार्य श्री ने इस उपांग का अनुवाद ४६ वर्ष पहले किया था। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ आत्म-कुल-कमल-दिवाकर विद्वद्-रत्न श्री रत्न मुनि जी महाराज के पास सुरक्षित थीं। जब हमारी समिति ने पूज्य श्री रत्न मुनि जी महाराज से साध्वी-रत्न श्री स्वर्ण कान्ता जी महाराज की भावना प्रकट की तो गुरुदेव ने सहर्ष यह अमूल्य निधि समिति को छपवाने की आज्ञा प्रदान कर दी। इस आगम को प्रकाश में लाने का मुख्य श्रेय पूज्य श्री रत्न मुनि जी महाराज को प्राप्त होता है। जिसके लिए हम उनके सदैव ऋणी रहेंगे।

फिर यह कार्य उपप्रवर्तिनी साध्वी श्री स्वर्ण कान्ता जी महाराज के नेतृत्व में आरम्भ हुआ, काफी परिश्रम के बाद सम्पादक यह कार्य सम्पन्न कर सके हैं।

मैं समिति की ओर से श्रद्धेय श्री रत्न मुनि जी महाराज का विशेष आभारी हूँ जिन्होंने अपने गुरुदेव की पवित्र निधि हमारी समिति को सहर्ष अर्पित की। उनका आशीर्वाद ही हमारी समिति का इतिहास है। दूसरा धन्यवाद सम्पादक मण्डल का है, जिनके श्रम से यह रचना प्रकाशित हो सकी। समस्त आचार्यों एवं साधु-साध्वियों को उनके आशीर्वादों के लिए कैसे आभार प्रकट करूँ। आशीर्वाद का क्या उत्तर हो सकता है? साथ ही साध्वी श्री राजकुमारी जी म., साध्वी श्री सुधा जी म., साध्वी श्री वीरकान्ता जी म. का विशेष आभार प्रकट करता हूँ।

साध्वी श्री स्वर्ण कान्ता जी महाराज इस ग्रन्थ की मुख्य सम्पादिका ही नहीं, दिशा-

निर्देशिका व प्रेरिका भी हैं। समिति के समस्त सदस्य उनके चरणों में सादर कृतज्ञता प्रकट करते हैं। इस ग्रन्थ के प्रकाशन में सहयोग देने वाले श्रावक-श्राविकाओं ने सहयोग देकर समिति के कार्यों में योगदान ही नहीं किया पुण्योपाजन भी किया है। वे सब धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन-कार्य में आरम्भ से ही पूर्ण सहयोगी बने रहने वाले श्री राजकुमार शर्मा (प्रबन्धक), श्री प्रीतमचन्द शर्मा (कम्पोजिंग विभाग) एवं श्री हरिचन्द राणा (मशीन इन्चार्ज) एवं आत्म जैन प्रिंटिंग प्रेस के समस्त कर्मचारियों का मैं हृदय से आभारी हूँ, क्योंकि इन सबका सहयोग ही प्रकाशन की पूर्णता में सहायक रहा है।

अतः मैं पुनः सम्पादक मण्डल, दानी सज्जनों का धन्यवाद करते हुए इस शास्त्र के अनुवादक व्याख्याकार श्रमण-संघ के प्रथम शास्ता आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज की पुण्य-स्मृति में प्रस्तुत शास्त्र उन्हीं के कर-कमलों में समर्पित करता हूँ। इस प्रकाशन कार्य में यदि कोई त्रुटि जाने-अनजाने में रह गई हो तो उसके लिये मैं कर-बद्ध क्षमा चाहता हूँ।

—पुरुषोत्तम जैन

जैन भवन
20-1-1994

संयोजक—पच्चीसवीं महावीर निर्वाण शताब्दी संयोजिका समिति पंजाब
बिमल कोल डिपो, पुराना बस स्टैण्ड, महावीर स्ट्रीट,
मालेर कोटला (पंजाब)

आशीर्वचन



श्री निर्यावलिका सूत्र का जैन धर्म में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इस सूत्र में वर्णित तीन तीर्थंकरों के शासन-काल के साधु-साध्वियों, राजा-रानियों के ऐतिहासिक वर्णन भारतीय संस्कृति व सभ्यता की धरोहर हैं। जैसे निर्यावलिका सूत्र के नायक कोणिक राजा के जन्म, वंशाली विनाश का वर्णन, गणतन्त्र व राजतन्त्र की व्यवस्थाओं का वर्णन उस समय को सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था पर सुन्दर प्रकाश डालता है। द्वितीय उपाङ्ग में सोमिल ब्राह्मण का उपाख्यान प्राचीन तापसों व श्रमण-परम्परा का अच्छा परिचय प्रदान कर रहा है। इसी उपाङ्ग का बहुपुत्रिका नामक अध्ययन प्राचीन काल की भिक्षुणी-परम्परा का सुन्दर निदर्शन है। इसी प्रकार चतुर्थ उपाङ्ग में भूता साध्वी का वर्णन करते हुए श्रमण भगवान महावीर ने साधु-साध्वियों को शरीरिक विभूषा का त्याग कर भूता के माध्यम से संयम में स्थिर रहने का वर्णन किया है। पंचम उपाङ्ग में निपथ कुमार का वर्णन है जो हमें २२वें तीर्थंकर भगवान श्री अरिष्टनेमि जी के समवसरण में ले जाता है। इस सूत्र ने तीन तीर्थंकरों को संघ-व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश डाला है।

श्री नन्दी सूत्र में इस उपाङ्ग का भी वर्णन आया है। इस सूत्र पर प्राचीन काल से कम ही व्याख्याएँ उपलब्ध होती हैं। संस्कृत को एक मात्र टीका श्रीचन्द्र विजय की है। मध्य काल में इस पर टब्बा भी उपलब्ध है।

इस शास्त्र का मूल पाठ आगमोदय समिति द्वारा छपा, फिर आचार्य श्री अमोलक ऋषि जी ने इसका हिन्दी अनुवाद किया। विदेशी विद्वानों ने भी इस ग्रंथ के अनुवाद जर्मन व अंग्रेजी आदि भाषाओं में किये हैं। गुजराती भाषा में भी इस का अनुवाद हो चुका है।

हिन्दी में इस शास्त्र का अनुवाद डा० देवकुमार जी ने किया है जो कि स्वर्गीय युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी के निर्देशन में छपा है। हिन्दी के प्रथम आगम - टीकाकार पूज्य आचार्य

श्री आत्माराम जी महाराज थे, जिन्होंने २० आगमों पर टीकायें लिखी हैं।

इस शास्त्र की भी विस्तृत संस्कृत टीका पदार्थान्वय, मूलार्थ, हिन्दी टीका मेरे पितामह श्रमण-संघ के प्रथम पट्टधर आचार्य भगवान श्री श्री १००८ पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज ने आज से ४५ वर्ष पहले लिखा था। कुछ विशिष्ट एवं अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण यह शास्त्र तब प्रकाशित न हो सका।

मुझे प्रसन्नता है कि श्रमण संघ की उपप्रवर्तिनी जिनशासन-प्रभाविका, आगम-वेत्ता, जैन-ज्योति, पंजाबी जैन साहित्य की प्रेरिका साध्वी श्री स्वर्ण कान्ता जी महाराज ने इस शास्त्र के सम्पादन का गुरुतर भार अपने ऊपर लिया है। उन्होंने परम श्रद्धेय आचार्य श्री के शिष्य गुरुतुल्य पूज्य श्री रत्न मुनि जी महाराज जी से यह अमूल्य निधि प्राप्त की। फिर अपने निर्देशन में एक सम्पादक-मण्डल का निर्माण किया।

इस सम्पादक मण्डल के सभी नाम मेरे लिये नये नहीं। धर्म-भ्राता पुरुषोत्तम जैन, रविन्द्र जैन को पंजाबी जैन साहित्य के लेखक के रूप में कौन नहीं जानता? पञ्चोसवीं महावीर निर्वाण शताब्दी समिति पंजाब के वे संस्थापक हैं। जैन चेयर, आचार्य आत्माराम भाषण माला के संस्थापक हैं। मैं इन दोनों धर्म के प्रति समर्पित आत्माओं को अपने साधु-जीवन के आरम्भ से ही जानता हूँ। पंजाबी विश्वविद्यालय में मेरी पी. एच.-डी. की हर समस्या इन्होंने स्वयं हल की थी। यह दोनों प्रिय श्रावक हैं जो देवगुरु धर्म के प्रति समर्पित हैं।

तीसरा नाम श्री तिलकधर शास्त्री जी का है। इनका सारा जीवन जैन एकता, जैन धर्म एवं जैन साहित्य के लिये समर्पित है। पिछले २५ वर्षों से आत्म-रश्मि पत्रिका के सम्पादक के रूप में इन्हें हर जैन विद्वान जानता है, पहचानता है। मेरे पितामह आचार्य श्री आत्माराम जी के स्थानांग सूत्र के बृहत् सम्पादन का श्रेय पञ्जाब-प्रवर्तक उपाध्याय श्रमण श्री फूलचन्द्र जी महाराज के निर्देशन में इन्हें ही प्राप्त हुआ है। आप कवि, श्रेष्ठ अनुवादक, संस्कृत प्राकृत, हिन्दी भाषा के ज्ञाता विद्वान हैं। अनेकों पुस्तकों का सम्पादन आपके द्वारा सम्पन्न हो चुका है।

चतुर्थ नाम है—साध्वी श्री स्मृति जी (एम. ए.) का है जो मुख्य सम्पादिका श्री स्वर्ण कान्ता जी महाराज की पौत्री शिष्या हैं। इसी वर्ष आप कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से एम. ए. की परीक्षा में सारे हरियाणा में प्रथम रही हैं। नव-दीक्षता यह श्रमणी आगे भी जिनशासन की इसी तरह प्रभावना करती रहे, मैं ऐसी अपनी मंगल कामनायें व साधुवाद इनको प्रेषित करता हूँ। सम्पादक मण्डल हमारे आशीर्वाद का पात्र है।

अतः मैं अपनी ओर से इस महत्त्वपूर्ण कार्य के सम्पन्न होने के शुभ अवसर पर मुख्य सम्पादिका महाश्रमणी श्री स्वर्ण कान्ता जी महाराज व उनके समस्त सम्पादक-मण्डल को उनको इस कार्य के लिए साधुवाद देता हुआ मंगलमय शुभ कामनाएं प्रेषित करता हूँ। इस प्रकाशन के लिये प्रकाशन संस्था के प्रमुख श्री पुरुषोत्तम जैन, श्री रवीन्द्र जैन व उनका सहयोगी वर्ग भी साधु-वाद के पात्र हैं।

२० दिसम्बर १९६३

—युवाचार्य डा० शिव मुनि, मद्रास

[ग्यारह]



जैन धर्म में आचार्य का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। आज जब तीर्थङ्कर भगवान भरत क्षेत्र में विचरण नहीं कर रहे हैं उस स्थिति में आचार्य भगवान ही उनका प्रतिनिधित्व करते हुए समस्त श्री-संघ को सम्भाल रहे हैं। उस युग के सर्वप्रथम आचार्य सुधर्मा स्वामी थे, जिनके नाम से समस्त जैन सम्प्रदायों की पट्टावलियां प्रारम्भ होती हैं। आचार्य श्री सुधर्मा स्वामी जी के शिष्य अन्तिम केवली श्री जम्बू स्वामी थे। श्वेताम्बर जैन आगम साहित्य इन दो महापुरुषों द्वारा ही संकलित हो पाया है। आचार्य श्री सुधर्मा भगवान महावीर के ११ गणधरों में से एक थे। उनकी आयु भी पर्याप्त थी। उन्होंने जो अपने शास्ता अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर के श्री-मुख से सुना वह उसी प्रकार अपने अन्तेवासी आचार्य जम्बू स्वामी को सुनाया।

प्राचीन काल से ही जैन धर्म में आगमों की श्रुत-परम्परा रही है। आगमों के सम्पादन के लिये जैन श्रमणों ने अनेक प्रयत्न भी किये, पर आगमों को अन्तिम बार लिखने का कार्य बी. नि. संवत् ६६८ में ही आचार्य क्षमा-श्रमण देवर्षि गणि के नेतृत्व में गुजरात के वल्लभी नगर में सम्पन्न हुआ। उस समय समस्त श्री-संघ की उपस्थिति में समस्त श्रमणों ने आगमों को पुस्तकों का रूप दिया। श्री संघ ने अनुभव किया कि दुर्भिक्ष एवं राजनैतिक उथल-पुथल के कारण श्रुत-ज्ञान का अधिकतर भाग विच्छिन्न हो चुका है। इसलिए शास्त्रों की रक्षा के लिए इन्हें ताड़पत्रों पर लिपिबद्ध किया जाय। वर्तमान उपलब्ध आगम साहित्य उसी वाचना का परिणाम है। हमारे दिगम्बर भाई इस साहित्य को प्रामाणिक नहीं मानते। वे अपने आचार्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा रचित साहित्य को आगम की तरह स्वीकारते हैं। पर मूल रूप से जैन सिद्धान्तों में कोई मुख्य अन्तर दोनों परम्पराओं में नहीं है।

श्वेताम्बर जैन संघ के तीन रूप हैं—(१) स्थानकवासी (२) तेरहपंथी (३) मूर्ति-पूजक। पहले दो सम्प्रदाय ३२ आगमों को प्रामाणिक मानते हैं। उस टीका, भाष्य टट्टा को भी प्रामाणिक स्वीकार करते हैं, जो मूल आगमों के अनुसार हो। मूर्ति-पूजक भाई ४५ आगमों को मानते हैं, पर ११ अङ्ग और उपाङ्ग तीनों सम्प्रदायों को ही मान्य हैं। दिगम्बर भाई भी इनके नामों को स्वीकार करते हैं, किन्तु उनकी दृष्टि में इन शास्त्रों का पूर्ण विच्छेद हो चुका है।

अनुवाद-परम्परा

वर्तमान में इस उपाङ्ग के अन्तर्गत पांच उपाङ्गों का समावेश है। इनके कुल अध्ययन ५२ हैं। भाषा उस समय की अर्ध मागधी है। तीन तीर्थङ्करों के साधु-साध्वियों, राजा,

मुख्य सम्पादिका



जिन शाषण प्रभाविका, जैन ज्योति, उपप्रवत्तनीं साध्वी रल
श्री स्वर्ण कांता जी महाराज

प्रजा का इसमें वर्णन है। (ज्यादा वर्णन प्रस्तावना में देखना चाहिए)।

जैन शास्त्रकार प्राचीन काल से ही ने टीका टब्बा, भाष्य, निर्युक्ति ग्रन्थों की रचना करते आ रहे हैं। निर्युक्ति के रूप में आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी जी का नाम विशेष प्रसिद्ध है। भाष्य के रूप में ग्रन्थ की संस्कृत व प्राकृत में मिली-जुली भाषा में व्याख्या होती है।

टीकाकार के रूप में प्रमुख नाम हैं—श्री अभयदेव सूरि, श्री शीलांकाचार्य, श्री मलय-गिरि और श्री हेमचन्द्राचार्य। टब्बाकार के रूप में पूज्य आचार्य श्री पार्श्व चन्द्र जी सूरि का नाम प्रसिद्ध है।

इसी प्रकार जैन आगमों के अनुवाद विभिन्न देशी-विदेशी भाषाओं में होते रहे हैं, जिनमें हिन्दी, पंजाबी, बंगाली, गुजराती, राजस्थानी, मराठी, तमिल, कन्नड़ भाषाएँ प्रमुख हैं। इन भाषाओं में कविता-अनुवाद भी हुए हैं जो प्रमुख कवियों ने किये हैं। विदेशी भाषाओं में अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश आदि भाषाएँ प्रमुख हैं जिनमें जैन आगमों के अनुवाद उपलब्ध हैं। भारतीय अनुवादकों में प्रमुख नाम आचार्य श्री अमोलक ऋषि जी म०, आचार्य श्री आत्माराम जी म०, आचार्य श्री घासी लाल जी म०, आचार्य श्री हस्तीमल जी म०, आचार्य श्री तुलसी जी महाराज, युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ जी म०, पण्डित सुखलाल जी संघवी, पूज्य श्री पुष्प भिक्षू जी म०, उपाध्याय श्री अमर मुनि जी म०, स्व० उपाध्याय श्रमण श्री फूलचन्द्र जी महाराज, साध्वी श्री चन्दना जी महाराज, श्रमण संघीय सलाहकार श्री ज्ञान मुनि जी म०, पण्डित श्री हेमचन्द्र जी महाराज, श्री अमर मुनि जी म०, साध्वी डा० श्री मुक्ति प्रभा जी म०, साध्वी डा० श्री दिव्य प्रभा जी म०, श्री कन्हैया लाल जी म० 'कमल' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

अंग्रेजी भाषा में डा० हर्मन जेकोबी का नाम विश्व-प्रसिद्ध है। डा० गणेश ललवाणी आदि ने अंग्रेजी भाषा में भगवती सूत्र के अनुवाद में सहयोग दिया है। आगम प्रकाशन समिति व्यावर ने विभिन्न मुनियों, विद्वानों के सहयोग से ३२ आगमों का सुन्दर प्रकाशन कराया है। सभी एक दूसरे से बढ़ कर हैं। मैं क्षमा चाहती हूँ कि बहुत सी भाषाओं के अनुवादकों के नाम इस समय मेरी स्मृति में नहीं हैं। पर हर ज्ञात व अज्ञात लेखक हमारे लिये साधुवाद के पात्र हैं। उनका यह कार्य अभिनन्दनीय है।

प्रस्तुत अनुवाद व उसका इतिहास

प्रत्येक रचना के पीछे कोई न कोई कारण तो होता ही है। ऐसे ही इस रचना के पीछे मेरी एक पुरानी मन की अभिलाषा थी, वह यह कि एक आगम का स्वयं संपादन करके प्रकाश में लाऊँ, मेरा जन्म लाहौर में हुआ था। उस समय लाहौर में आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज का प्रसिद्ध प्रचार-क्षेत्र था। मुझे बचपन में ही आचार्य श्री के सान्निध्य में बैठने सुनने का अवसर मिलता रहता था। आचार्य श्री के तीन आगम—१. उत्तराख्ययन सूत्र (३-भाग), दशवैकालिक (३), अनुत्तरीपपातिक और (४) दशाधृत-स्कन्ध। लाहौर में ही छपे थे।

[तेरह]

मेरे सांसारिक पिता श्री खजान चन्द्र जी जैन का इन कार्यों में सहयोग बना रहता था। मैं तब से आचार्य श्री के चरणों में समर्पित थी। मेरा भी आगम-सम्पादन का संकल्प, संयम लेने पर दृढ़तर होता गया। आगम-स्वाध्याय तो साधु-जीवन का प्रथम कर्तव्य है। साधु की रात्रिवर्षा को भगवान ने चार भागों में बांटा है—१. स्वाध्याय २. ध्यान ३. निद्रा एवं ४. स्वाध्याय। प्रकट है कि जैन धर्म में स्वाध्याय का विशेष महत्व है। भगवान महावीर ने स्पष्ट कहा है—“स्वाध्याय अन्तरंग तप है। भूत, वर्तमान व भविष्य में इसके समान न कोई तप था, न है, न होगा।” स्वाध्याय तप की पूर्ति के लिये साहित्य का निर्माण होता है।

हां! तो मेरी इस भावना को साकार रूप दिया आचार्य भगवान के शिष्य पूज्य गुरुदेव श्री रत्न मुनि जी महाराज ने। रवीन्द्र जैन और पुरुषोत्तम जैन मेरी भावना लेकर जब पूज्यगुरुदेव के पास गये तो उन्होंने मुस्कराहट से अपने गुरुदेव की हाथों की लिखी पांच कापियां इन्हें सम्भाल दीं। साथ में यह भी कहा—“आगम में मेरा कोई उल्लेख न हो।” धन्य है ऐसी महान् आत्मा सम्पादक-मण्डल का कण-कण श्री रत्न मुनि जी महाराज का ऋणी है और ऋणी रहेगा। उन्होंने अपने गुरुदेव की अमूल्य निधि हम अनजानों के हाथों में संपुर्ण कर दी। हम सभी अनुभव-हीन थे पर गुरुदेव के आशीर्वाद एवं साधना का बल था कि आज वह रचना प्रकाशित हो सकी है।

श्री रत्न मुनि जी महाराज ने हमारी लेखनी की भावनाओं को रोक दिया है। उनका नामोल्लेख न करना रूप आज्ञा भी हमारे लिये आशीर्वाद से कम नहीं है। श्री रत्न मुनि जी महाराज ऐसे सन्त हैं जो निस्पृह सन्त वीतरागता के अनुपम उदाहरण हैं। हमारे कार्य ने हमें मजबूर किया कि हम अपने उपकारी महापुरुष का वर्णन मात्र इस सम्पत्कीय में अवश्य कर दें। भगवान कब कहते हैं हमारा नाम लिया जाय, पर नाम लेना ही भक्त के जीवन का आधार रहा है। वतुनः वे आरम-कुल-कमल-दिवाकर हैं, मैं उनके चरणों में स्वयं सविधि चरण वन्दना करती हुई क्षमा चाहती हूं।

किसी भी कार्य की सिद्धि के लिए कोई न कोई निमित्त तो होता ही है, अगर निमित्त अपने शिष्य हों तो इससे बड़ा अहोभाग्य क्या हो सकता है? कार्य संरल हो जाता है। इस भागीरथ कार्य में मुझे जिन लोगों ने साथ दिया उनमें से एक मेरी पौत्री शिष्या साध्वी स्मृति जी हैं। जो नव-दीक्षित एवं डबल एम. ए. हैं। शासनदेव की कृपा से इसी वर्ष वे कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की संस्कृत एम. ए. में सर्व प्रथम रही हैं। मैं इस बालिका की प्रतिभा को स्वीकार करती हूं, क्योंकि उसने मुझे परीक्षा के साथ-साथ आगम-सम्पादन के कार्य में भी सहयोग दिया है। स्मृति जी मेरे आशीर्वादों की पात्र हैं।

मेरी सहयोगिनी मेरी शिष्या साध्वी सुधा जी, साध्वी किरण जी एवं साध्वी वीर कान्ता जी, एवं साध्वी राजकुमारी जी आदि अनेक साध्वियां ने इस कार्य में मुझे सहयोग दिया है। अन्य शिष्याओं ने भी मेरा हर प्रकार से ध्यान रखा है, अतः वे सब मेरे आशीर्वादों की पात्र हैं।

मैं अपना आभार जैन समाज के प्रसिद्ध विद्वान् पंडित श्री तिलकधर जी शास्त्री जो कि स्वयं आचार्य श्री के अनन्य भक्त हैं उनका आभार प्रकट करती हूं, जिन्होंने अपने स्वास्थ्य की

चिन्ता न करते हुए सम्पादक-मण्डल में सम्मिलित होकर इस कार्य को सरल कर दिया। आप आत्म रश्मि मासिक पत्रिका के सम्पादक हैं कवि हैं, संस्कृत, प्राकृत के विद्वान् हैं। स्व० उपाध्याय श्रमण पंजाब प्रवर्तक श्रमण श्री फूलचन्द्र जी महाराज के सम्पादन में छपे स्थानांग सूत्र के प्रकाशन सहयोगी रह चुके हैं। श्री श्रमण जी द्वारा लिखित अन्य अनेक ग्रन्थों के भी आप सम्पादक हैं। इस समय आगमों का केवल हिन्दी सार आपके ही सम्पादत्व में छप रहा है। इसके अतिरिक्त आप अच्छे कवि हैं, चिन्तक हैं, समाज-सेवक हैं। मैं इन्हें साधुवाद देती हुई मंगल-कामना करती हूँ कि वे इसी प्रकार जिन-शासन की सेवा करते रहें।

अब दो नाम और हैं रवीन्द्र जैन व पुरुषोत्तम जैन। ये मेरे लघु शिष्य हैं। जैन-धर्म, साहित्य, एकता को समर्पित इनका जीवन मेरे दिशा-निर्देशन में चलता है। काम पच्चीसवीं महावीर निर्वाण शताब्दी का हो, इण्टरनेशनल पार्वती जैन अवार्ड का हो या भाषण-माला का। हमारे ये दोनों प्रतिनिधि हमारी हूर आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं। पिछले २५ वर्षों से ये पंजाबी में जैन साहित्य का निर्माण मेरी प्रेरणा से कर रहे हैं। संसार में बहुत कम लोग हैं जो इन जैसा स्वार्थ रहित जीवन जी सकें।

दोनों बन्धु एक दूसरे के पूरक हैं, धर्म-भ्राता हैं, श्रावक-शिरोमणि हैं, आगमों के ज्ञाता हैं। इन्होंने अपने हाथों से श्री उत्तराध्ययन सूत्र, श्री उपासक दशांग सूत्र, श्री सूत्र कृतांग सूत्र का पंजाबी अनुवाद करके समिति द्वारा छपवा चुके हैं। श्रमण सूत्र और निरयावलिका का पंजाबी अनुवाद भी कर चुके हैं। इस सूत्र के अधिकांश भाग का सम्पादन, प्रस्तावना कार्य इन दोनों ने मिल कर किया है। यह वर्ष इन दोनों के साहित्यिक जीवन का २५वां वर्ष है। आज तक ये प्रकाशित व अप्रकाशित लगभग चालीस रचनायें लिख चुके हैं। इनकी अनेक पुस्तकों के द्वितीय edition भी छप चुके हैं। एक पुस्तक भगवान महावीर का तो इतना अभिनन्दन हुआ कि यह पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला के B.A. प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम में लगी हुई है।

प्रस्तुत आगम के यह सम्पादक ही नहीं प्रबन्ध सम्पादक भी हैं। भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह जी ने २७ फरवरी १९८७ को इन दोनों के शोध ग्रंथ पुरातन पंजाब में जैन-धर्म का विमोचन राष्ट्रपति भवन में किया था और दोनों को राष्ट्रपति ने “श्रमणोपासक” पद से विभूषित किया था। उनका सम्मान केवल उनका ही नहीं, समस्त जैन समाज का सम्मान है।

इस आगम में सभी का सहयोग एक सा है। पर मुख्य सम्पादिका होने के नाते मेरा कर्तव्य है कि मैं सम्पादक-मण्डल का साध्वी मर्यादा में रहकर उनके कार्य के लिए आशीर्वाद दूँ।

मैं उन द्रव्य सहायकों के लिये भी मंगलकामनायें करती हूँ, जिन्होंने द्रव्य-दान द्वारा प्रकाशन कार्य एवं श्री-संघ की प्रभावना की है।

मैं उन समस्त आचार्यों, उपाध्यायों, साधुओं, साध्वियों, श्रावक-श्राविकाओं का आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने हमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी भी प्रकार का सहयोग दिया है।

[पन्द्रह]

एक अन्तिम प्रार्थना पाठक वर्ग से है कि हम कोई सर्वज्ञ नहीं कि हमसे कोई त्रुटि न रहे त्रुटि रहना स्वाभाविक है, पर कोई त्रुटि हम से किसी भी तरह की प्रकाशन, सम्पादन में रह गई हो तो समस्त श्री-संघ से सम्पादक-मण्डल की ओर से मैं क्षमा चाहती हूँ। श्री-संघ महान है, हमें एवं हमारी त्रुटियों को भुलाकर इस रचना की उपयोगिता पर ध्यान देना चाहिये।

प्रस्तुत संस्करण

आज तक निरयावलिका के जितने अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं उनकी अपेक्षा यह अनुवाद सब से विस्तृत है, क्योंकि श्रमण-संघ के प्रथम पट्टधर आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज हिन्दी भाषा के प्रथम टीकाकार माने जाते हैं। उनकी भाषा सरल है जिसे मुनि वर्ग तो क्या हिन्दी जानने वाला सामान्य साधक भी समझ सकता है। इस अनुवाद में हम ने अनेक आगम प्रतियों से शुद्ध पाठ देख कर उद्धृत किये हैं। दो हस्तलिखित प्रतियों की सहायता भी ली गई है, क्योंकि आगमों में अनेक स्थानों पर जाव-पूर्ति हस्तलिखित प्रतियों से देखी जाती है। मूल प्रति संशोधन में आचार्य श्री तुलसी, श्री पुष्प भिक्षू, श्री रत्नलाल डोशी, पूज्य श्री घासोराम जी और एक अंग्रेजी अनुवाद पुस्तक की सहायता से शुद्ध किया है। इस प्रति की विशेषता यह है कि इस में मूल पाठ के साथ संस्कृत छाया, पदार्थान्वय, मूलार्थ, हिन्दी टीका सम्मिलित हैं। सम्पादन के समय अनेक स्थानों पर सरलता के लिये हमें कभी कहीं शब्द परिवर्तन के लिए भी बाध्य होना पड़ा है, तदर्थ हमें देवलोक-वासी आचार्यदेव क्षमा करेंगे ऐसी पूर्ण आशा है।

आचार्य श्री ने कई स्थानों में अच्छा स्पष्टीकरण किया है जैसे 'कोटि' शब्द की व्याख्या उन्होंने करोड़ न करके संख्या विशेष कह दिया है और शास्त्र में चलना के मांसाहार की प्रवृत्तियों का भी स्पष्टीकरण किया है। कई जगह उन्होंने उत्थानिका के माध्यम से वह बात भी कह दी है जिससे शास्त्र में हर सूत्र का अर्थ स्पष्ट हो सके।

विशिष्ट धन्यवाद :

इस सूत्र में प्रस्तावना हमारे शिष्य रवीन्द्र जैन व पुरुषोत्तम जैन ने लिखी है। इस पुस्तक पर अपना सन्तव्य भेजने के लिये फ्रांस की डा० नलिनी बलवीर एवं साध्वी डा० श्री मुक्ति प्रभा जी महाराज (एम. ए. पी-एच-डी.) को साधुवाद भेजती हूँ। इस लेखिका ने सुन्दर शब्दों में इस रचना का अभिनन्दन किया है।

समर्पण :

अन्त में मैं साध्वी स्वर्ण अपने सम्पादक-मण्डल सहित यह रचना श्रमण भगवान महावीर के पाट पर विराजित इस सूत्र के अनुवादक, व्याख्याकार प्रथम पट्टधर श्री आत्माराम जी महाराज के कर कमलों में सादर समर्पित कर रही हूँ।

जैन स्थानक, अम्बाला शहर

उपप्रवर्तिनी साध्वी स्वर्णकान्ता

३१ दिसम्बर १९९३

प्राक्कथन

परमात्मा महावीर ने अर्थागमों के रूप में और गणधरों ने सुत्तागमों के रूप में शास्त्रों की प्ररूपणा को सूत्र-बद्ध, लघु-बद्ध और पद्य-बद्ध रूप में निरूपित किया है। इस प्रकार ग्यारह अंग और बारह उपांगों में निरयावलिका अष्टम अंग अन्तकृद्दशा का उपांग है। निरयावलिका श्रुत-स्कन्ध में पांच उपांग समाविष्ट हैं जो इस प्रकार हैं—[१] निरयावलिका या कल्पिका, [२] कल्पावन्त-सिका, [३] पुष्पिका, [४] पुष्प-चूलिका, और [५] वृष्णि-दशा।

१. निरयावलिका—यह शब्द निरय और आवलिका दो शब्दों से बना है। निरय अर्थात् नरक, और आवलिका अर्थात् आवृत। इस आगम में बार-बार नरक में जाने वाले जीवों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होने से इस आगम का नाम निरयावलिका प्रसिद्ध हुआ है। इसके साथ ही परमात्मा महावीर के परम भक्त, भावी तीर्थंकर समत्वयोगी मगध-मन्नाट श्रेणिक की आत्मा को भी कारागृह में बन्दी होना पड़ा, सौ-सौ कोड़ों की मार खानी पड़ी और अन्त में कूणिक के हाथों में परशु को देखकर अपनी मृत्यु क्रूर-घातकी पुत्र के हाथ से न हो। इसलिए काल-कूट विष मुद्रा चूसकर प्राणों का अन्न करके नरक में उत्पन्न होना पड़ा। पंचेन्द्रिय प्राणियों की हत्या, पदार्थों का और अपनी राणी का अत्यधिक ममत्व एवं राज्य के प्रति अतृप्त वासना होने से कूणिक भी नरक में गया। इसके साथ-साथ इस निरयावलिका उपांग में सम्राट श्रेणिक के २६ पुत्रों में से ११ राजकुमार भौतिकता की आग में महायुद्ध की बलिवेदी पर पहुँच कर विनाश के विकराल गाल में समा गये और नरक में उत्पन्न हुए।

इस उपांग में भौतिकवाद को अध्यात्मवाद के निकट लाने की चेष्टा की गई है। भौतिक-वाद की पीड़ा ही अध्यात्मवाद की परिणति है, किन्तु भौतिकवाद ने मर्क शरीर को चुना और आत्मा को भुला दिया। भौतिकवाद को संस्कृति बाह्य संस्कृति के रूप में पनपती रही और अध्यात्म-संस्कृति आन्तरिक प्रकृति को बल देती रही। अध्यात्मवाद का अस्तित्व आत्मा के रूप में और भौतिकवाद का अस्तित्व शरीर के रूप में होने पर भी परमात्मा महावीर ने आत्मा और शरीर दोनों का मूल्यांकन किया है। उन्होंने जीने के लिए माध्यम शरीर को बताया है, किन्तु हम "शरीर ही आत्मा है," ऐसा भ्रम लिये बैठे हैं। फलतः आत्मा एक विशेष तत्व है ऐसा हमें पता न रहा। शरीर को हजारों बार संवारो फिर भी यह एक दिन छोड़ा ही देने वाला है, क्योंकि शरीर को खाना है, शरीर को पीना है, शरीर को आराम लेना है हम सब शरीर की रक्षा हेतु ही लड़ते हैं, युद्ध करते हैं। हमें ममत्व है शरीर का, हमें ममत्व है पदार्थों का और इसलिए कहीं प्रियता है तो कहीं

अप्रियता। कूणिक को प्रियता थी अपनी रानी पद्मावती के प्रति और अप्रियता थी अपने भाई वेहल्ल के प्रति। वेहल्ल को अपने पिता श्रेणिक द्वारा हार और हाथी भेंट में मिले थे। राजा कूणिक हार व हाथी छीन लेगा इसी भय से वेहल्ल कुमार हार और हाथों को लेकर अपने नाना चेटक के पास वैशाली चला गया।

पदार्थों के ममत्व में पला हुआ मानव भाई को भाई नहीं समझता। वह तो भाई को ही नहीं सारी वैशाली को ही मरघट बनाने को तैयार था। अमल में वह वैशाली का नाश नहीं चाहता था, न ही उसका मन वैशाली का नाश स्वीकार करता था, किन्तु नदी जब समुद्र की ओर दौड़ती है तो न जाने कितने पत्थरों का नाश कर देती है। जब दावाग्नि प्रज्वलित हो जाती है तो न जाने कितने जंगल भस्म कर देती है, मानव की चेतना को रोकने वाली लाखों दीवारें खड़ी होती हैं और बर्बाद हो जाती हैं। मानव में सृजनात्मक शक्ति है उससे भी अधिक उसमें विध्वंस की सामर्थ्य है। काल कुमार कूणिक का सेनापति होकर अपनी विनाश की शक्ति का प्रतीक बना हुआ था, किन्तु उसी विनाश-शक्ति में कालकुमार का काल समाहित था। केवल काल ही नहीं, सुकाल कुमार आदि ग्यारह कुमार भी युद्ध-भूमि में सो गये। राजा चेटक ने अमोघ शक्ति का प्रयोग किया और विनाशात्मक शक्ति को विध्वंस की शक्ति में रूपान्तरित कर दिया। उसी क्षण मानो कूणिक के अहं की ग्यारह दीवारें सदा के लिए ध्वस्त हो गईं।

अहं की खूंटो से बंधी हुई कूणिक की जीवन नौका कहां तक पहुंच पायेगी? वह यही देखना चाहता था, अतः वह वहीं खड़ा था जहां से उसने यात्रा प्रारम्भ की थी। विजय-श्री को पाने के लिए उसने बहुत श्रम किया, शस्त्रों के प्रहार पर प्रहार किये। समय भी बहुत लगा, किन्तु नाव जहाँ थी वहीं रही एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पाई, क्योंकि अहं की खूंटो से बन्धा हुआ मानव कोल्हू के बेल की तरह घूमता ही रहता है। एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पाता, अहं की मंजिल पर चसने वालों के जीवन का सूर्योदय कभी नहीं हो पाता। उन्हें जीने का आनन्द कभी नहीं मिलता।

उसी मंजिल पर खड़ा कूणिक स्वच्छ परिधानों के पीछे छिपे दोषों का भार वहन करने पर भी अपनी दुर्बलता का अनुमान कभी लगा नहीं सका। सारी सृष्टि पर विजय पाने पर भी अहं का क्षुद्र बिन्दु उसे परास्त करने में सफल होगा, उससे वह अनभिज्ञ था। पराक्रम अद्भुत और असाधारण होने पर भी प्रत्येक रहस्य का उद्घाटन ही अहं के प्रयोजन से होता था। अहं के प्रचण्ड विकराल रूप ने उसे चैन नहीं लेने दिया। ऐसे मानव का जन्म हुआ तो भी क्या? मर गया तो भी क्या? दोनों के बीच केवल कुछ कदमों का ही तो फासला है। यात्रा में निकले हुए कूणिक को राज्य का आनन्द नहीं, घन-संपत्ति और सुन्दरो का आनन्द नहीं, उसका आनन्द तो हार और हाथी में था, इसलिए उसका अहं जाग उठा था। इसीलिए युद्ध प्रारम्भ हो गया था। इसीलिए खून की नदियाँ बह रही थीं। लाखों ललनाओं का सिन्दूर पंछ गया था। हजारों माताओं की गोदियाँ सूनी हो गई थीं। कहीं खून था, कहीं हड्डियाँ थीं, कहीं सिर पड़े थे, कहीं हाथ और पैर कटे पड़े थे। कहीं कटे

हुए आधे शरीर पड़े थे। कहीं चीत्कार थी, तो कहीं आहें थीं और कहीं आंसू थे। चारों ओर युद्ध के नगाड़े बज रहे थे। पदार्थों के ममत्व में और व्यक्ति के प्यार में न जाने कौणिक युद्ध की आग में कितने मानवों की आहुतियां दे चुका था और दे रहा था।

जिसके भीतर कोई मानवता, प्राणों की कोई ऊर्जा, प्राणियों के प्रति कोई करुणा नहीं है, प्यार की कोई वास्तविकता नहीं है, वह कम्प्यूटर मशीन हो सकता है मानव नहीं। कौणिक का अहं चोट खाए क्रोधो विषेले सांव की भान्ति रह-रह कर फुंकार उठता था। वह जोर-जोर से चिल्लाता था कि मुझे कौन नहीं जानता? मुझे देखकर कौन नहीं कांपता? मेरे सम्मुख आने की किसकी ताकत है? राजा चेटक के साथ नौ मल्लवी और नौ लिच्छवी—अठारह देशों के राजा, सेना, हाथी, अश्व, रथ और पैदल होने पर भी वह युद्ध के मैदान में मेरा मुकाबला कैसे कर सकता है?

२. कल्पावतंसिका—कल्पावतंसिका उपांग में श्रेणिक के दस पोत्रों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। उसके पूर्वजों को दुष्कृत्यों के कारण नरक की यातनायें भोगनी पड़ी थीं, वैसे ही पोत्रों को सत्कृत्यों द्वारा स्वर्ग का सुख प्राप्त हुआ। पिता का जीवन पतन की ओर होने से नरक की यातना और पोत्रों का जीवन उत्थान की ओर होने से भौतिक और आध्यात्मिक सुख प्राप्त होता है। इस उपांग की कथा द्वारा इसी का अनुभव करवाया गया है।

३. पुष्पिका—इस तृतीय उपांग पुष्पिका में सूर्य, चन्द्र, शुक्र आदि दस अध्ययन हैं। जिनमें सूर्य, चन्द्र, शुक्र आदि के नाटक, प्रश्न-उत्तर और मोतम की जिज्ञासाओं का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है तथा उन रोचक कथाओं में कौतूहल की प्रचलना होने से सांसारिक आकर्षण का भोग-विलास, वासना का दर्शन कराने में यह तृतीय उपांग बहुत ही सफल रहा है। इसके साथ-साथ इस उपांग में भगवान् पार्श्वनाथ को सोमिल द्वारा किये गये प्रश्नों के उत्तर भी अत्यधिक मार्मिक एवं हृदय-स्पर्शी प्राप्त होते हैं। प्रस्तुत कथानक में चालीस प्रकार के तापसों का विवरण एवं भगवान् श्री पार्श्वनाथ द्वारा हठयोग-साधना का खण्डन किस प्रकार किया गया था? उसका निरूपण भी प्राप्त होता है। स्थानाङ्ग सूत्र में भी इन सूर्य, चन्द्र, शुक्र, बहुपुत्रिका आदि के उल्लेख प्राप्त होते हैं। आचार्य अभय देव सूरि ने स्थानाङ्ग में मिरयावलिका के नाम साम्य वाले अध्यायों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है।

४. पुष्पचूला—इस पुष्पचूला नामक उपांग में भी देवलोक की देवियों का वर्णन दस अध्ययनों में प्राप्त होता है। वह युग भगवान् श्री पार्श्वनाथ के समय का युग था। उस युग की साध्वियों ने ऐसा कौन सा कार्य किया, जिससे उनको देवी बनना पड़ा, इसका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। वहां दे दे कहाँ जायेंगे, इसका भी उल्लेख किया गया है। इस प्रकार सौवर्ग कल्प की श्रीदेवी के पूर्वभव का सांगोपांग वर्णन किया गया है। शरीर के प्रति ममत्व होने से श्रमणाचार की विराधना होती है और विराधना से आराधना करने पर भी भवभवान्तर बढ़ जाते हैं। जैन दर्शन आत्म-शुद्धि

का दर्शन है शरीर शुद्धि का नहीं। जो साधक साधना-काल में आत्म-शुद्धि में समय व्यतीत करता है वही मोक्ष-तत्त्व को प्राप्त करता है। अन्यथा संयम की आराधना करने पर भी पुण्य कर्मों का उपार्जन होने से देव-जन्म तो लेना ही पड़ता है और पुण्य का उपभोग करना पड़ता है। इस विषय का बोध प्रस्तुत उपांग से प्राप्त होता है। इस प्रकार इस उपांग में पूर्वजन्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है।

५. वृष्णिदश—सप्त वृष्णिदश उपांग में वृष्णिवंशीय बारह राजकुमारों का वर्णन बारह अध्यायनों में किया गया है। इस आगम में भगवान् श्री अरिष्टनेमि के काल की घटनाओं में यदुवंशी राजाओं के इतिवृत्त का अंकन है तथा निषध कुमार आदि के तप-त्याग और समाधि से निर्वाण की प्राप्ति का विस्तृत विवेचन है।

भारतीय दर्शनों में सुर, असुर, इन्द्र, राक्षस, देवी, देवता, नरक आदि की मान्यतायें विशेष रूप में प्रचलित हैं, अतः निरयावलिका आदि पाँचों ही उपांगों में स्वर्ग और नरक, सुख और दुःख के स्पष्ट चित्र अंकित होने से जैन, बौद्ध और वैदिक परम्परा का इतिहास हमारे सम्मुख उभरता है। भगवान् महावीर और भगवान् बद्ध दोनों श्रमण-परम्पराओं से सम्बद्ध हैं, दोनों में असमानता के तत्त्व होने पर भी समानता के तत्त्व भी स्थान-स्थान पर उपस्थित होते हैं, किन्तु स्वर्ग-नरक आदि के विषयों में तो तीनों परम्पराओं की मान्यता भिन्न-भिन्न रूपों में प्रचलित है। इसी प्रकार सभी दर्शनों की परम्पराओं में स्वर्ग - नरकों की संख्या, स्थान, नाम और प्रवृत्तियों का भी निरूपण है, सभी दर्शनों की मान्यताओं में नरक दारुण कष्टों को भोगने का क्षेत्र है, उसी प्रकार स्वर्ग अपार वैभव, सुख-भोगों का उपभोग करने का क्षेत्र है। इस प्रकार निरयावलिका सूत्र में नारकीय वेदनाओं और स्वर्गीय सुखों, पुण्य और पाप, उत्थान और पतन तथा सुख और दुःख का दायित्व स्वयं के कर्मों पर आधारित है ऐसा स्पष्ट किया गया है। क्योंकि अपने ही राज्य में अपने ही पुत्र द्वारा कैदी होना कर्मों का ही फल हो सकता है। राजसिंहासन की लालसा ने पिता के प्यार और माता की ममता को भी निगल लिया। अपने ही पिता के उदर का मांस खाने का दोहद पैदा होने पर भी उस पिता ने क्रूर और घातकी दोहद को पूर्ण किया। जो जीव गर्भ में ही पिता का मांस खाने की इच्छा करता हो वह जन्म लेने के पश्चात् क्या नहीं कर सकता है? कूड़े - कचरे में मांस द्वारा पुत्र को फेंक देने का ज्ञान होते ही जिस बाप ने तरक्षण उसको उठा लिया। कुक्कुट द्वारा अंगुली में चोंच मारने से अंगुली पक गई थी और बच्चा चिल्ला-चिल्ला कर रो रहा था, उसकी वेदना को सहन न कर सकने के कारण महाराजा ने मवाद निकलने पर भी अपने मुँह में अंगुली चूस कर जिस बेटे को शान्त किया था वही बेटा कैद में पिता को कोड़ों से पीट रहा था।

जो सबके जीवन में घटित होता है वह सहज ही बुद्धिगम्य हो जाता है। जो कुछेक व्यक्तियों के जीवन में घटित होता है वह अहं-बुद्धि से होता है, किन्तु जो व्यक्तिगत जीवन में घटित होता है,

वह बुद्धि से परे होता है, अतः प्यार देने पर भी पीड़ा मिलती है, वहां कर्म-सिद्धान्त स्पष्ट हो जाता है। कर्मोदय की वेला में पुण्य का फल पाप का परिणाम बन जाता है। प्रकाश अंधकार में, सत असत में और जीवन मृत्यु में घसीटा जाता है।

इस प्रकार निरयावलिका सूत्र राग और द्वेष के मायाजाल से उत्पन्न सुख और दुःख के भ्रम-जाल का स्पष्ट चित्रण प्रस्तुत करता है। सुख और दुःख द्वंद और दुविधा किमी के द्वारा धोये नहीं जाते, किन्तु मानवीय हाथों से अपने ही लिए ये अपनी परिणति के विविध रूपांतरण है। देवी-देवता आदि के पूर्व जन्मों की व्यथाओं का जिज्ञासाओं और समाधानों के रूप में जो वर्णन इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है वह मनोरंजन के साथ-साथ रोचकता और भावुकता के परिणामों का परिबोध कराता है। पुत्र-जन्म की विरह-वेदना से व्याकुल एवं व्यथित मातृ-हृदय की मानसिक परिस्थिति का चित्रण करने में जितनी सफलता इस ग्रन्थ ने पाई है उससे भी अधिक विशिष्टता परमात्मा महावीर द्वारा विश्व-वात्सल्य के उपदेश और भक्तजनों के हृदय परिवर्तन के स्वरूप की अभिव्यक्ति इसमें प्राप्त होता है।

इस निरयावलिका सूत्र के व्याख्याकार संस्कृत-छाया, पदार्थन्वय, मूलार्थ हिन्दी टीकाकार करने वाले श्रमण-संघ के प्रथम आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज जन-जन के तारक युगद्रष्टा क्रान्तिकारी विचारक तथा लाखों श्रद्धालुओं के जीवन-सर्जक थे।

महापुरुषों का जीवन अपनी साधना के साथ-साथ समाज के उत्थान के लिए अर्पित होता है। वे अपने सुख को विसर्जित करके दूसरों की पीड़ा को स्वयं की पीड़ा समझते हैं। वे दूसरों को सहयोग देने के लिए स्वयं की कुर्बानी करते हैं। वैसे ही सन्त-शिरोमणि आगम-साहित्य के सर्जक, साहित्य-कला के कुशल कलाकार राजनैतिक दार्शनिक और सामाजिक रहस्यों के उद्घाटक आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज थे। उनकी देह के लिवास में छिपा हुआ परमात्मा सबसे अनोखा, ग्रीसीम और तिराला था। उनके भीतर से निकलने वाली हर किरण में एक चुम्बकीय विशिष्ट आकर्षण था। जो भी साधक उनके सान्निध्य में आता था वह उन किरणों का स्पर्श करके नयी चेतना पाता था। उनकी मूक भाषा में जिनको भी जो मिलता था उसे आत्मा द्वारा आत्मा ही अनुभव करती थी। भीतर की शान्ति, भीतर की समता और भीतर का आनन्द अशान्त मानव को शान्ति देता है और जन्म-जन्मान्तरों के पाप, ताप और संताप को मिटाता है।

इस प्रकार आचार्य श्री ने आगमों के माध्यम से गूढ़ और मार्मिक रहस्य सरल और सहज भाषा में सुलझाये हैं। आचार्य श्री ने अनेक आगमों की टीकाएँ अर्थ, भावार्थ और अनुवाद किये हैं—वैसे ही निरयावलिका उपांग भी आचार्य भगवन्त की महती कृपा से अर्थ, भावार्थ और हिन्दी टीका का स्वरूप प्रस्तुत कर रहा है।

इस उपांग की मुख्य सम्पादिका जिन-शासन-प्रभाविका, जैन - ज्योति, उपप्रवर्तनी साध्वी

रत्न श्री स्वर्णकान्ता जी महाराज ने अपनी लेखनी द्वारा एक महान् दायित्व उठाया और उसे पूर्ण किया है। पदयात्री विचरण शीला होने पर भी इस गुरुतर भार को उठाने का जो साहस उन्होंने किया है वह सर्वथा प्रशंसनीय है।

जिनकी लेखनी में आकर्षण है, जो अपने दायित्व के निर्वाह में सफल हैं, “आगमों का कार्य पूर्ण करूंगी”, ऐसे आत्म-विश्वास के साथ यह कार्य उन्होंने प्रारम्भ किया था। उनकी सफलता के अधिकारी सम्पादक-मण्डल के सदस्य पुरुषोत्तम जैन एवं रवीन्द्र जैन जो स्वाध्याय में सर्वदा संलग्न रहते हैं और आराधना में आसीन रहते हैं, उनका प्रयास भी सराहनीय है। इनके साथ-साथ क्लिष्ट अर्थों के सरलतम भाव, भाषा की प्राञ्जलता, अन्य आगमों एवं ग्रन्थों के साथ तुलना, टीका, भाष्य, चूर्ण इत्यादि का गहनतम अध्ययन करके इस आगम का सरल भाषा में अनुवाद करने का श्रेय भी इन दोनों धर्म-बन्धुओं को प्राप्त होता है।

साध्वी स्मृति जी ने भी इस आगम के सम्पादन में समय-समय पर सहयोग दिया है, अतः साध्वी जी का कार्य भी प्रशंसनीय है। सम्पादक-मण्डल को महान् परामर्श, विवेचन तथा सम्पादन आदि सम्बन्धी कार्यों की पूर्ति में अत्यधिक समय देकर इस आगम की अनेक समस्याओं को सुलझाने का कार्य श्री तिलकधर शास्त्री (सम्पादक आत्म-रश्मि) ने किया है। अतः उनका श्रम भी सर्वथा अभिनन्दनीय है।

इस प्रकार सम्पादक मण्डल ने आगमों का कार्य करने में उसके मुम्किन और विकास में जो भी श्रम उठाया है, एतदर्थ में मंगल-कामना करती हूँ कि ऐसा ही कार्य करने का बिम्ब अवसर इन सबको विशेष रूप से प्राप्त होता रहे और इस संयोजिका समिति का विकास होता रहे, यही है मेरी शुभ-कामना।

—साध्वी मुक्ति प्रभा (एम. ए. पी-एच. डी.)

दो शब्द

जैन शास्त्रों का वर्गीकरण ग्रंथों और उपांगों के रूप में किया गया है। आजकल बारह उपांग माने जाते हैं, पर निरयावलिका सूत्र के एक वाक्य के आधार पर ऐसा लगता है कि पुरानी जैन परम्परा के अनुसार उपांग पांच ही थे। इस सूत्र के अतिरिक्त कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका और वृष्णिदशा को भी उपांग की संज्ञा दी जाती थी। कारण यह है कि विषय-वस्तु और पात्रों की दृष्टि से यह ग्रन्थ अन्तकृद्शांग (८वां अंग), अनुत्तरोपपातिकदशा (९वां अंग) तथा विपाकश्रुत (११वां अंग) से काफी सम्बन्धित है और इन अंगों की सामग्री ये पांचों उपांग पूरी करते हैं। उनका संगठन भी मिलता-जुलता है। वृष्णिदशा-उपांग के अतिरिक्त इन सब उपांगों के दस-दस अध्ययन हैं। नियम यह है कि प्रथम अध्याय की कथा सम्पूर्ण रूप से दी गयी है। दूसरे अध्ययनों की कथाएं अलग-अलग नहीं हैं। पात्रों और स्थानों के नाम ही बदले गये हैं और इन कथाओं के केवल संकेत मात्र दे दिये गये हैं।

उपरोक्त उपांग की कथाओं में महावीर स्वामी, पार्श्व स्वामी या अरिष्टनेमि स्वामी के द्वारा विविध पात्रों के पूर्वभव या भविष्य जन्म बताए गए हैं। अपने-अपने कर्मों के कारण निरयावलिका सूत्र के दस राजकुमार नरक गति में और कल्पावतंसिका के दस कुमार कल्प (स्वर्ग) में पैदा होते हैं। पुष्पिका में और पुष्पचूलिका में देवों और देवियों की ऋद्धि की उत्पत्ति स्पष्ट करने के लिए उनके पूर्वभवों की चर्चा की गई है।

निरयावलिका सूत्र की कथा-वस्तु जैन साहित्य में विख्यात है। कूणिक कुमार का अपने पिता श्रेणिक राजा से द्वेष, वैशाली राजा के साथ कूणिक का युद्ध और उसकी विजय इत्यादि घटनाओं का जो उल्लेख किया गया है, वह आवश्यकचूर्णि, हेमचन्द्र के त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र आदि ग्रन्थों में भी आता है। बौद्ध ग्रन्थों में भी इन कथानकों से मिलती-जुलती कथाएँ हैं।

ऐतिहासिक कथाओं के अतिरिक्त इन उपांगों में पात्रों की हृदय-स्पर्शी जीवन-कथाएं भी प्राप्त होती हैं जैसे निरयावलिका सूत्र में युद्ध में लगे हुए पुत्र की माता की चिन्ता और देहान्त के बाद उनके गम्भीर शोक को हम अनुभव कर सकते हैं। बहुपुत्तिय देव होने से पहले सुभद्रा का जीवन दुःख पूर्ण है [दिलिये पुष्पिका ३ में]।

वास्तव में इन पांच उपांगों की कथाएँ श्रावक-श्राविकाओं के लिए विशेष रूप से रोचक तथा वैराग्य-वर्धक धर्म-कथाएँ हैं।

जैन संघ को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि पश्चिम योक्ष के विद्वान शुरू से ही निरयावलिका

सूत्र की ओर आकर्षित हुए थे। एक ही हस्तलिखित ग्रन्थ के आधार पर डा. वारेन ने इस शास्त्र के मूल का सर्वप्रथम सम्पादन १८७६ में किया था। लगभग सौ साल बाद बेल्जियम के प्रोफेसर दलो ने भारत में विविध उपलब्ध सम्पादनों के आधार पर मूल सूत्र का पुनः प्रकाशन किया था ? उनके महत्वपूर्ण शोध लेख में अनुवाद नहीं है, पर विस्तृत भूमिका तथा सूत्र का सार और अध्ययन प्रभावशाली भाषा में लिखे गए हैं। अन्त में संक्षिप्त विवरण अंग्रेजी में दिया गया है।

प्रस्तुत आगम का हिन्दी अनुवाद लगभग ४५ साल पहले पूज्य आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज ने तैयार किया था। पर वह अप्रकाशित रहा। वे आचार्य स्थानकवासी जैन संघ के प्रथम पट्टाधीश तथा संस्कृत व प्राकृत ग्रन्थों के प्रथम हिन्दी टीकाकार थे। महाराज जी को यह पता था कि हिन्दी भाषा के प्रयोग के बिना जैन आगमों का ठीक प्रचार नहीं हो सकेगा। अनुवाद के अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रन्थ में सरल हिन्दी भाषा में लिखी हुई विस्तृत टीका भी मिलती है, जिसमें पाठकों के लिये मूल सूत्र के सब सन्दर्भों की पूरी व्याख्या प्राप्त हो जाती है। कठिन शब्दों के अर्थों को स्पष्ट करने के लिए चन्द्र सूरि की संस्कृत व्याख्याएँ भी स्थान-स्थान पर उद्धृत की गई हैं और आगमोदय समिति के द्वारा प्रकाशित हुए सम्पादन के पाठ-भेद भी दिये गए हैं।

अतः हमें विशेष प्रसन्नता है कि आचार्य महाराज जी को यह महत्वपूर्ण कृति आज प्रकाशित हो रही है। इस प्रशंसनीय कार्य की प्रेरिका साध्वी श्री स्वर्ण कान्ता जी महाराज हैं, जो प्रस्तुत ग्रन्थ की मुख्य सम्पादिका हैं। साध्वी श्री स्मृति जी महाराज M. A. और श्री पुरुषोत्तम जैन जी तथा श्री रविन्द्र जैन जी तथा श्री तिलकधर शास्त्री जी सम्पादक मण्डल में उनके सहयोगी हैं। पंजाबी जैन संघ इन महानुभावों से भली-भान्ति परिचित है। बड़े उत्साह से वे जैन धर्म का प्रसार करने के शुभ कार्य में तत्पर हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए अपना समय देने वाले और परिश्रम करने वाले सब व्यक्तियों के हम अत्यधिक कृतज्ञ हैं। इस पुस्तक को नित्य पढ़ने से जैन-धर्म प्रेमी भाइयों और बहिनों को लाभ हो तथा निरयावलिका सूत्र के पात्रों की तरह उनको अन्त में मोक्ष भी प्राप्त हो, यही है मेरी मंगल-कामना।

—Nalini Balbir (नालिनी बलधीर)

University of Paris-3 (FRANCE)

1. Dr. S. WARREN, Nirayavaliyasuttam, een Upanga der Jaina's. Met Inleiding, Aanteckeningen en Glossar. Amsterdam, 1879.

2. J. DELEU, Nirayavaliyasuyukkandha. Uvanga's 8-12 van de jaina Canon. Orientalia Gandensia IV. 2967 (Brill, 1969), pp. 77-150.

सम्पादक मण्डल परिचय



निरयावलिका—

जैन वाङ्मय के उपांग साहित्य में निरयावलिका का आठवां महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका दूसरा “नाम कप्पिया व कल्पिका” भी है। पूर्व में उपांग पांच उपांगों का संग्रह था जो कि ‘निरयावलियाओ’ कहलाता है। वे पाँच उपांग हैं—

१. निरयावलिया या कप्पिया
२. कप्पवडिसिया (कल्पावर्तसिका)
३. पुप्फिया (पुष्पिका)
४. पुप्फचूलिया (पुष्पचूलिका) तथा
५. वण्हदहा (वृष्णिदशा)

कालान्तर में उपांग संख्या को द्वादश अंग ग्रन्थों (आगमों) के तुल्य बनाने के लिये उपर्युक्त श्रुतग्रन्थों को पृथक्-पृथक् उपांग ग्रन्थों के रूप में मान्यता दे दी गई।

आज निरयावलिका का अपना पूर्ण स्वतन्त्र अस्तित्व है। “निरयावलिका” पद का संस्कृत प्रतिरूप नरकावलिका बनता है जिसका अर्थ है—नरकों की पंक्तियाँ। ग्रन्थ के प्रारम्भ में जैसा कि वर्णन प्राप्त होता है कि गणधर आर्य सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य आर्य जम्बू के प्रश्नों के समाधान स्वरूप प्राकृत “निरयावलिया” का उपदेश देते हुए लमझाते हैं कि अच्छे कर्मों का परिणाम अच्छा बर्षात् स्वर्ग-प्राप्ति और बुरे कर्मों का फल बुरा—अमुरगति व नरक-गति की उपलब्धि है।

अर्द्धमागधी प्राकृत भाषा में निबद्ध प्राकृत निरयावलिका कथा-ग्रन्थ में दस अध्ययन हैं जिनमें भगवान महावीर स्वामी के समकालीन मगध-सम्राट श्रेणिक—बिम्बसार के पुत्र, जिन्हें इतिहास अशोकचन्द्र, विदेहपुत्र, वज्जिविदेह तथा अजातशत्रु भी बतलाता है, ऐसे चम्पानरेश कृष्णक के काल, सुकाल, महाकाल, कण्ह, सुकण्ह, महाकण्ह, वीरकण्ह; रामकण्ह, पिउसेणकण्ह और महासेणकण्ह, ये दस भाई वैशाली नरेश चेटक के द्वारा युद्ध में मार डाले गए थे। इन दशों राजपुत्रों ने युद्ध में लड़ते हुए अशुभ भावों के कारण नरकगति पाई थी। यह निरयावलिका का कथावृत्त निःसन्देह अर्थानुकूल परिलक्षित होता है। इस तरह निरयावलिका ज्ञाताधर्मकथा, स्थावकदशा, अन्तकृद्दशा और विपाकसूत्र आदि आगमकालीन कथा-साहित्य का मनोज्ञ शिक्षाप्रद

अनूठा ग्रन्थ है। शेष उपांगों का सारांश प्रस्तावना में सम्पादक दे चुके हैं इन पाँचों उपांगों में तीर्थंकर महावीर भगवान श्री पार्श्वनाथ, भगवान श्री अरिष्टनेमी के समय के आराधकों का पुण्यमय वर्णन है—

आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज

मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि उक्त निरयावलिका सूत्र अपने संशोधित मूल स्वरूप के साथ संस्कृत-छाया, टीका, हिन्दी अनुवाद, खोजपूर्ण विस्तृत भूमिका तथा पाद-टिप्पण सहित २५वीं महावीर निर्वाण शताब्दी संयोजिका समिति, मालेरकोटला (पंजाब) द्वारा प्रकाशित हो रहा है।

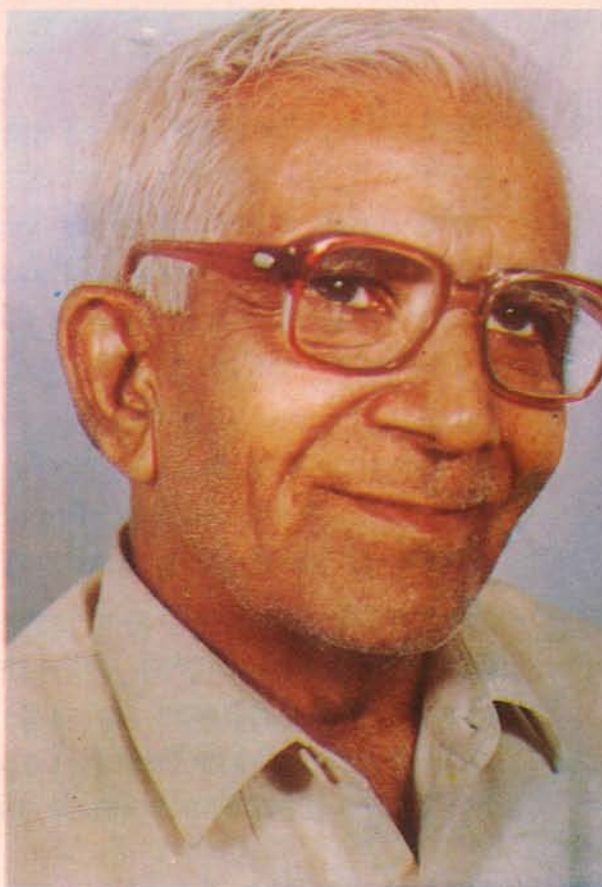
प्रस्तुत सूत्र पर भारत में बहुत ही कम कार्य हुआ है। श्वेताम्बर स्थानक वासी जैन श्रमण संघ के आद्य आचार्य पूज्य श्री आत्मा राम जी महाराज ने इस काम को आज से ४७ वर्ष पूर्व हो पहचान लिया था। उन्होंने २० आगमों पर हिन्दी टीकाएँ लिखीं। जिनमें से आचारंग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, स्थानांग, अन्तर्कृद्दशांग के अनुवाद बहुत प्रसिद्ध हैं। समस्त जैन जगत द्वारा मान्य तत्त्वार्थ सूत्र पर उनके शोध-कार्य की प्रशंसा विश्व स्तर पर हुई। आचार्य श्री का अप्रकाशित आगमों में से यही उपांग अप्रकाशित था जिसे पच्चीसवीं महावीर निर्वाण शताब्दी संयोजिका समिति पंजाब ने साध्वी श्री स्वर्णकान्ता जी महाराज की प्रेरणा से प्रकाशित करने का निर्णय किया है। इस उपांग पर आचार्य श्री ने संस्कृत-छाया, पदार्थान्वय, मूलार्थ ओ हिन्दी टीका लिखी है। इस उपांग की हस्तलिखित प्रति आचार्य श्री के शिष्य पूज्य श्री रत्न मुनि जी महाराज के पास सुरक्षित थी। श्री रत्न मुनि जी महाराज स्वयं प्राकृत, संस्कृत, पाली, उर्दू, फारसी, पंजाबी, गुजराती, राजस्थानी के विद्वान संत हैं। आप हर समय स्वाध्याय मोन एवं तप में लीन रहते हैं। साध्वी जी की प्रार्थना पर आपने यह इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि समिति को प्रदान कर अनुग्रहीत किया है।

साध्वी श्री स्वर्णकान्ता जी महाराज

उक्त ग्रन्थ को प्रमुख सम्पादिका हैं—महाश्रमणी जिनशासन - प्रभाविका, जैन - ज्योति, समाज-सुधारिका, बहुभाषाविज्ञ, उपप्रवर्तिनी साधवा-रत्ना श्री स्वर्णकान्ता जी महाराज। आप प्रतिभा-सम्पन्न, विदुषोरत्ना होने के साथ ही साथ उग्रतपस्विनी एवं ध्यान-साधिका भी हैं।

गुरुणी जी महाराज की ओजस्वी वाणी माधुर्यपूर्ण सशक्त एवं महान् प्रेरणास्पद है। इसका प्रमाण है—हरियाणा, पंजाब, हिमाचल, जम्मू-कश्मीर और उत्तर प्रदेश के गांवों में परिभ्रमण कर भगवान महावीर स्वामी के अनेकान्तमय अहिंसा और अपरिग्रह जैसे गम्भीर सिद्धान्तों पर तथ्यपूर्ण मार्मिक व्याख्यानों, प्रवचनों से लाभान्वित जैन जैनेतर हजारों लोगों का अहिंसा-पथ पर चलने का प्रणिधान करना, निश्चय ही यह सब गुरुणी जी महाराज के बहु-आयामी व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करता है।

उत्तरी भारत में विशेषकर पंजाब के लिये आपने जो सबसे महत्वपूर्ण कार्य किया है, वह है जैन साहित्य को पंजाबी भाषा में रूपान्तरित और अनुवादित करवाना। गुरुणी जी की प्रेरणा से जैन तत्त्वावधान एवं इतिहास से सम्बद्ध लगभग ४० ग्रंथ पंजाबी भाषा में मूल एवं पंजाबी



साध्वी श्री स्मृति जी म. M.A.
सम्पादक दूय

श्री तिलकधर शास्त्री जी लुधियाना
श्री रवीन्द्र जैन, श्री पुरुषोत्तम जैन (मलेरकोटला)



27 फरवरी 1987 को भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह राष्ट्रपति भवन में पुस्तक पुरातन पंजाब में
जैन धर्म का विमोचन करते हुए ।

अनुवाद सहित साथ ही अनेक मौलिक रचनाएं भी प्रकाशित कर देश-विदेश के विश्वविद्यालयीय पुस्तकालयों तथा विद्वानों तक पहुंचाई जा चुकी हैं।

श्री गुरुणी जी महाराज की सद्प्रेरणा का दूसरा दृष्टांत है—पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला (पंजाब) में संस्थापित भगवान् महावीर जैन चैयर। इस चैयर के संस्थापन में श्री गुरुणी जी महाराज का समस्त श्रमणी-जीवन समर्पित है, जो सदैव स्मरणीय रहेगा। आपने जैन चैयर के पुस्तकालय के लिये स्वकीय हस्तलिखित ग्रंथों का अक्षय विपुल कोष शोधार्थ अर्पित कर दिया है।

आप स्वयं विदुषी हैं, विद्वानों का सम्मान करती हैं। विद्वानों के सम्मानार्थ ही आपकी प्रेरणा से पंजाब-हरियाणा के जैन समाज ने आपकी दादा गुरुणी महाश्रमणी प्रवर्तिनी साध्वी श्री पार्वती जी महाराज की स्मृति में इण्टरनेशनल पार्वती जैन एवार्ड और स्व० श्रावक श्री नाथूराम जो जैन की स्मृति में इण्टर नेशनल महावीर जैन वेजिटेरियन अवार्ड की स्थापना की है।

ऐसी हैं हमारी पंजाबी में जैन साहित्य की प्रेरिका उदारमना गुरुणी साध्वी श्री स्वर्णकान्ता जी महाराज। गुरुणी महाराज की गूणगरिमा पर जितना अधिक लिखा जाय, वह सब सूर्य को दीपक दिखलाने जैसा है। मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूं कि आप सद्गुरु गुरुणी जी के मुझे दर्शन एवं प्रवचन सुनने का अवसर मिला तथा आशीष प्राप्त हुए। मैं अपनी ओर से तथा जैन समाज की ओर से आप महानुभवों गुरुणी जी महाराज की दीर्घायु की हार्दिक मंगलकामना करता हूं।

साध्वी श्री स्मृति जी एम. ए.

निरयावलिका सूत्र के सम्पादक मण्डल में चार महान् व्यक्तियों के नाम आते हैं। इनमें प्रथम हैं गुरुणी जी महाराज की द्वितीय शिष्या साध्वी श्री सुधा जी महाराज की शिष्या अर्थात् श्री स्वर्णकान्ता जी महाराज की प्रशिष्या नवदीक्षित साध्वी श्री स्मृति जी महाराज।

साध्वी श्री स्मृति जी महाराज स्थानकवासी जैन श्रमणसंघ की विशेषरूप से उत्तरभारतीय श्रमणी संघ की उदीयमान विदुषी साध्वी-रत्न हैं। साध्वी जी बचपन से ही धार्मिक विचारवाली, विनयशील एवं प्रत्युत्पन्नमति रही हैं जिसका परिणाम है कि आप श्री ने अपनी समस्त उच्च-परीक्षार्थ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की हैं। सन् १९६० में पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ से एम०ए० (हिन्दी) तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से सन् १९६३ में एम० ए० (संस्कृत) में सर्वाधिक अंक लेकर स्वर्णपदक प्राप्त किए हैं। सम्प्रति आपकी अभिरुचि कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र से जैनदर्शन में शोधकार्य करने की है।

साध्वी श्री स्मृति जी का निरयावलिका श्रुतस्कन्ध के सम्पादन में सहज योगदान है। इसके लिए मैं इन नवोदित विदुषी साध्वी श्री का हार्दिक सम्मान करता हुआ उनके प्रति मैं अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूं।

श्री तिलकधर जी शास्त्री

अग्रज विद्वद्वर पण्डित श्री तिलकधर जी शास्त्री को उक्त महान् कार्य में स्मरण किए बिना मैं कैसे रह सकता हूं। शास्त्री जी वेद, व्याकरण एवं साहित्य के अधिकारी विद्वान् हैं। आप पालि-

प्राकृत, गुजराती हिन्दी एवं पंजाबी भाषाओं के पूर्ण ज्ञाता हैं। मुझे स्थानांग सूत्र पर आपके द्वारा लिखी गई शोधपूर्ण प्रस्तावना पढ़ने का अवसर मिला जिसमें आपकी विद्वत्ता स्पष्ट झलकती है। आपने अनेकों ग्रन्थों की स्वतन्त्र रचना भी की है। आपने भक्तामर स्तोत्र व कल्याण-मन्दिर स्तोत्र के पद्यानुवाद भी किये हैं जिनके कैसट भी बन चुके हैं।

आपका अधिकांश आगम ग्रन्थों के सम्पादन में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है जिसमें निर्यावलिका उपांग सूत्र भी एक है। वर्तमान में आपका निवास लुधियाना में है। लगभग २५ वर्षों से आपके सम्पादकत्व में "आत्परश्मि" शोधपत्रिका का निरन्तर प्रकाशन हो रहा है। ऐसे सेवानिष्ठ, दृढ़ आस्थावान बहुज भाषाविद् विद्वान् पण्डितवर श्री तिलकधर जो शास्त्री का मैं बहुत आभारी हूँ और सम्पादन में प्राप्त सहयोग के लिए आपका हार्दिक धन्यवाद करता हूँ तथा भविष्य में भी ऐसे ही सहयोग की अपेक्षा भी करता हूँ।

धर्मभ्राता श्री पुरुषोत्तम जैन व श्री रवीन्द्र जैन मालेरकोटला

इसके बाद आते हैं हमारे अनुजद्वय-भ्राता श्री पुरुषोत्तम जी जैन एवं श्री रवीन्द्र जी जैन। मध्यम जैन परिवारों में जन्मे, एक साथ पढ़े लिखे और जीवन में आगे बढ़े, ये दोनों भ्राता इन दिनों मालेरकोटला में निवास करते हुए जैन धर्म-दर्शन की महती सेवा कर रहे हैं। आप दोनों देवगुरु व धर्म के प्रति सहज समर्पित हैं।

समाज आपके गुणों एवं कार्यों से भलिभांति परिचित है। आप दोनों ने देश-विदेशों में विशेष ख्याति अर्जित की है। सचमुच ही साध्वी-रत्ना, उपप्रवर्तिनी गुरुणी श्री स्वर्णकाम्ता जी महाराज की मूर्तिमान प्रेरणा ही हैं ये पंजाबी विद्वान् बन्धुद्वय। मैंने तो जब भी पाया आप दोनों को एक साथ पाया है—ये द्विवदन एक प्राण हैं। श्री रवीन्द्र जैन उच्च राजकीय सेवारत हैं। अपने से बड़ों एवं पूज्यजनों, विद्वानों के प्रति आप दोनों का आदरभाव ही आपकी विनयशीलता और सदाचरण को दर्शाता है।

दोनों बन्धु भारतीय प्राचीन संस्कृति, इतिहास और पुरातत्व विज्ञान के विशेषज्ञ हैं। जैन कला, साहित्य एवं इतिहास पर आपने बहुत कार्य किया है। पंजाबी, ग्रंथेजी एवं देवनागरी पर आप दोनों का असाधारण अधिकार है। आप दोनों प्राचीन लिपियों के तो मुज्ञाता हैं ही, साथ ही संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और गुजराती भाषाओं के ज्ञाता विद्वान् भी हैं। अब तक आप दोनों के द्वारा लगभग ४० ग्रन्थों की रचना की जा चुकी है जिनमें कुछ एक स्वतन्त्र रूप से लिखी हुई रचनाएँ भी मिलती हैं जो अधिकांश सम्मिलित रूप से सम्पादित ग्रंथ विशेष हैं। आप दोनों ने जो एक बड़ा उपयोगी कार्य अपने हाथ में लिया है वह है जैन साहित्य को पंजाबी में रूपान्तरित कर प्रकाशित करना और उनका पंजाबी भाषा में अनुवाद कर वितरित करना। अनेकों छात्र-छात्राएँ और विद्वान् इन रचनाओं से अधिक से अधिक लाभ उठा रहे हैं।

- आप बन्धुद्वय अनेक जैन आचार्यों, साधु-पन्तों, गुरु-गुरुजियों के सम्पर्क में रहते हैं, सभी का आपको साधुवाद व आशीर्वाद प्राप्त है। आप दोनों अनेक जैन समितियों एवं संस्थाओं से सम्बद्ध हैं। कुछ एक समितियों के तो आप दोनों ही संचालक हैं। ऐसे धर्मनिष्ठ जैन इतिहासज्ञ विद्वानों के द्वारा निर्यातलिका सत्र का प्रकाशन किया जा रहा है। मैं आप दोनों का हृदय से धन्यवाद करता हूँ और चिरायु होमे को मंगल कामना करता हूँ। साथ ही यह भी अपेक्षा करता हूँ कि आप दोनों बन्धुओं के द्वारा उत्तमोत्तम उपादेय सत्साहित्य का निरन्तर प्रकाशन होता रहेगा जिससे जैन-धर्मदर्शन एवं संस्कृति को विश्व व्यापी प्रचार-प्रसार हो सकेगा।

मैं आप सभी का पुनः एक बार आभार व्यक्त करता हुआ विराम लेता हूँ। ओ३म् शान्तिः

शुभचिन्तक

डा० धर्मचन्द्र जैन, (प्रोफेसर)
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय,
कुरुक्षेत्र-१३२ ११६ (हरियाणा)

डी-115 विश्वविद्यालय परिसर
कुरुक्षेत्र

❀❀ द्रव्य-सहायक ❀❀

१. श्री सुरेश जैन जालन्धर २. श्री विवेक जैन होशियारपुर ३. श्री अभय कुमार होशियारपुर ४. श्री वरिन्द्र कुमार दिल्ली ५. श्रीमती कमला जैन होशियारपुर ६. श्री लक्ष्मण दास जैन ७. मास्टर तेजपाल जैन मानसा ८. श्री दुर्गा दास जैन आलुपुर ९. श्री प्रदीप कुमार जैन होशियारपुर १०. श्री मदन लाल जैन जालन्धर ११. श्रीमती त्रिशला देवी जैन नियोडा १२. श्रीमती तरसेम जैन लुधियाना १३. श्री मदन लाल जैन लुधियाना १४. श्रीमती निर्मला जैन पटियाला १५. श्री भूषण जैन अम्बाला १६. श्री सुशील जैन होशियारपुर १७. श्री अशाक जैन होशियारपुर १८. श्री मुकेश जैन दिल्ली १९. श्री एस. एस. कटारिया करीदाबाद २०. श्री रामकृष्ण किंगर मालेरकोटला सुपुत्र स्व० श्री गुरायाराम किंगर २१. सरदार रविन्द्र सिंह गोबिन्दपुरा सुपुत्र स० झरमल सिंह २२. श्री वेदप्रकाश जैन रामपुरिया सुपुत्र स्व. श्री भगतराम जैन मालेर कोटला २३. मै. आत्म ह्वील (इण्डिया) ४४-ई फोकल प्वाइण्ट, लुधियाना २४. श्रीमती लक्ष्मी देवी जैन धूरी धर्मपत्नी श्री स्वरूपचन्द जैन	२५. श्रीमती विमला देवी जैन मालेरकोटला धर्मपत्नी श्री मोहनलाल जैन २६. साध्वी श्री स्वर्ण कांता जैन सांसारिक माता श्रीमती दुर्गी देवी जैन लाहौर की पुण्य-स्मृति में २७. श्रीमती विमला देवी जैन ने अपने पति स्व० श्री जगदीशराय जैन लाहौर वालों की पुण्य-स्मृति में २८. श्री अशोक जैन ने सुपुत्र श्री सतपाल जैन स्मृति में मालेरकोटला २९. श्री विनोद कुमार कालियावाली ३०. श्री पवन कुमार हंसपुर ३१. श्री मास्टर तेजपाल जैन मानसा ३२. श्री मथुरा दास जैन संगरिया मण्डी ३३. बाबू राम संदीप कुमार संगरिया मण्डी ३४. श्री सुरेश जैन जालन्धर ३५. रमेश कुमार विवेक जैन जालन्धर ३६. श्रीमती विजय जैन सोनीपत ३७. श्री रामकरण गोयल कुरुक्षेत्र ३८. श्री जय भगवान सतीश कुमार कुरुक्षेत्र ३९. श्री सतपाल जी पहेवा ४०. श्री रोशन लाल भठिण्डा ४१. श्री मदन लाल जैन मानसा ४२. श्री कश्मीरी लाल जैन मलोटा ४३. श्री रविन्द्र कुमार जैन भठिण्डा ४४. श्री त्रिशला जैन दिल्ली ४५. श्री अभय कुमार जैन मालेर कोटला

मैं पच्चीसवीं महावीर निर्वाण शताब्दी संयोजिका समिति पंजाब की ओर से द्रव्य-सहायकों का आभारी हूँ। जिन्होंने अपना सहयोग देकर देव-गुरु व धर्म के प्रति भक्ति का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया है।

शुभ-चिन्तक—पुरुषोत्तम जैन (संयोजक)



महान तपस्वी सर्वगीय श्राविका
विद्या देवी जैन धर्मपत्नी श्री
बाबु राम जैन की समृति में श्री
वेद प्रकाश जैन रामपुरीया
(मलेरकोटला)



सुश्रावक श्री जगदीश राम जैन
सपुत्र श्री खजानचन्द जैन की
समृति में श्री बिमला जैन
वीर नगर (दिल्ली)



साध्वी श्री सर्वण कान्ता जी
महाराज की माता श्री मति दुर्गा
देवी जी जैन धर्म पत्नी ला०
खजानचन्द जैन (लाहौर वालों)
की समृति में



श्री मति रत्न देवी जैन
पत्नी श्री तिलक राज जैन
की समृति में माता
सुश्रावक श्री विवेक जैन
(जालन्धर वाले)

शहीदों की चिताओं पर
लगेंगे हर बरस मेले



स्व० उदय चन्द जैन



स्व० जोगिन्दर पाल जैन

वतन पै मरने वालों का
यही बाकी निशां होगा



स्व० सुमति प्रकाश जैन

प्रिय पुत्रो / प्रिय भ्राताओं !

१० फरवरी १९९२ का दिन भूल जाने की कोशिश करने पर भी हम भूल नहीं पाते।
नर-संहारकारी आतंकवादियों की गोलियों ने हालत यह कर दी कि-

न हाथ थाम सके, न पकड़ सके दामन ।
बड़े करीब से ही उठ कर, तुम दूर चले गए ॥

चले नहीं गए-तुम्हें दूर भेज दिया गया। उन हत्यारों द्वारा जिनका तुमने या हमने कभी
कुछ बिगाड़ा न था। हमारा जोगिन्दर फिर जाग न पाया, हमारा उदय अस्त हो गया, सुमति
कुमतियों द्वारा छीन लिया गया।

आप तीनों प्यारे भाई पंजाब के लिये निछावर हो गए। आपकी पुण्य स्मृतियां बनी रहें,
इसीलिये प्रस्तुत शास्त्र में आपकी स्मृतियों के सुमन सुरक्षित कर हमें सन्तोष करना पड़ रहा
है। शासनेश प्रभु आपकी आत्माओं को चिर शान्ति प्रदान करें।

शान्ति-प्रार्थी

नगीन चन्द जैन (पिता) महेन्द्र पाल जैन (भाई)

आत्म व्हील, लुधियाना



श्री मति बिमला देवी जैन
धर्म पत्नी श्री मोहन
लाल जैन माता श्री रविन्द्र
कुमार जैन
(मलेरकोटला)



श्री अभय कुमार जैन
(होशियारपुर)



श्री लक्ष्मी देवी जैन धर्मपत्नी
श्री स्वरूप चन्द जैन माता श्री
धर्म भ्राता पुरुषोत्तम जैन
(धुरी वाले)



श्री मति कमला देवी जैन
के सपुत्रों श्री अशोक जैन,
श्री रविन्द्र जैन, श्री
प्रदीप जैन
(होशियारपुर)



एस. एस. जैन महिला संघ अम्बाला शहर
साध्वी श्री सर्वण कान्ता जी महाराज के साथ

प्रस्तावना

हमारा भारत एक धर्म प्रधान देश है। इस देश की दो संस्कृतियां बहुत प्राचीन हैं—वैदिक संस्कृति और श्रमण-संस्कृति। वैदिक संस्कृति वर्ण-व्यवस्था, याज्ञिक क्रिया-कांड प्रधान है। इस संस्कृति को ब्राह्मण-संस्कृति भी कहा जाता है, इस संस्कृति के आधार भूत ग्रंथ वेद, उपनिषद्, ब्राह्मणग्रंथ, पुराण, स्मृति, महाभारत व रामायण हैं।

इसके विपरीत श्रमण संस्कृति आत्मवादी संस्कृति है। श्रमणों के कुछ प्राचीन सम्प्रदाय हैं—(१) निर्ग्रन्थ, (२) शाक्य, (३) नेरुक, (४) आजीवक, (५) तापस आदि। आज कल श्रमणों के दो रूप ही उपलब्ध होते हैं—जैन 'निर्ग्रन्थ' और बौद्ध 'शाक्य'। इन दोनों संस्कृतियों में एक बात निर्विवाद सिद्ध है कि दोनों संस्कृतियों में जैन संस्कृति—प्राचीनतम है, इस बात का समर्थन वैदिक बाङ्मय एवं बौद्ध साहित्य में आसानी से उपलब्ध होता है।

जैन-धर्म

जैन धर्म की मान्यता है कि जैनधर्म सृष्टि का आदि धर्म है। आत्मा, परमात्मा, सृष्टि, स्वर्ग, नरक और मोक्ष के विषय में जैनधर्म का अपना मौलिक चिंतन है। ऐसी मान्यता है कि जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में तीसरे आरे की समाप्ति व चौथे आरे के आरम्भ में २४ तीर्थङ्कर जन्म लेते हैं, तीर्थङ्कर कोई नया धर्म स्थापित नहीं करते, बल्कि अपने से पहले चली आ रही तीर्थङ्कर-परम्परा की पुनः स्थापना करते हैं।

तीर्थङ्कर जैन धर्म का अपना पारिभाषिक शब्द है, धर्म रूपी जंगम तीर्थ की स्थापना करने वाला तीर्थङ्कर है। तीर्थङ्कर केवल ज्ञान के अनन्तर साधु-साध्वी, श्रावक (श्रमणोपासक) व श्राविका (श्रमणोपासिका) रूपी तीर्थ की स्थापना करते हैं। इस तीर्थ के कल्याण के लिये धर्म का उपदेश देते हैं जिसे उनके प्रमुख शिष्य अंग-आगमों का रूप प्रदान करते हैं। द्वादशांगी एवं १४ पूर्वों की परंपरा बहुत प्राचीन है। प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव से लेकर अंतिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर ने इसी परम्परा का ही निर्वाह किया है।

वर्तमान काल में जैन संस्कृति का जो — आगम साहित्य उपलब्ध है वह भगवान् महावीर के प्रमुख शिष्य गणधर इन्द्रभूति गौतम एवं भगवान् महावीर का सम्वाद रूप है। इस साहित्य का वर्तमान स्वरूप का प्रकट करने से पहले हम इस साहित्य के इतिहास का वर्णन करना आवश्यक समझते।

जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है कि तीर्थङ्कर की वाणी को गणधर ग्रंथों का रूप देते हैं। तीर्थङ्कर परमात्मा तो आत्म-कल्याण एवं स्वकल्याण के लिये धर्म का उपदेश करते हैं। वीतराग की वाणी भगवान महावीर की प्रथम देशना से ११ वेद विद्वान् व उनका शिष्य - परिवार प्रभावित हुआ। भगवान महावीर ने उन विद्वानों को ११ गणधरों का नाम दिया। इनमें इन्द्र-भूति गौतम तथा सुधर्मा को छोड़कर सभी गणधर भगवान महावीर के जीवन-काल में ही मोक्ष गति को प्राप्त हो गए थे।

५६६ ई. पू. दीपावली की रात्रि को जब श्रमण भगवान महावीर का निर्वाण हुआ तो उसी रात्रि के मध्यकाल में गणधर गौतम इन्द्रभूति को केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ। गणधर इन्द्रभूति गौतम भगवान महावीर के निर्वाण के बाद श्री-सघ के शास्ता बने।^१

जैन मान्यता है कि ११ गणधरों ने वाचना में बारह अंगों की रचना की थी। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक गणधर ने द्वादशांगी की अलग-अलग रचनायें की होंगी। आठ वाचनाएं तो गणधर गौतम के जीवन-काल में ही समाप्त हो गईं। पांचवें गणधर सुधर्मा स्वामी की वाचना ही बच पाई जो वर्तमान काल तक बड़े लम्बे संघर्षों के बाद आंशिक रूप से उपलब्ध है। जैन आचार्यों ने आगमों की प्राचीन श्रुत परम्परा को स्थिर रखते हुए श्रुत-साहित्य के सम्पादन के लिये अनेक प्रयत्न किये जिन्हें जैन इतिहास में वाचना का नाम दिया गया है। वाचना का महत्त्व जैन इतिहास में वही है जो बौद्ध साहित्य में संगीति का है।

वर्तमान में उपलब्ध जैन आगम श्रुत की केवल श्वेताम्बर-परम्परा ही मानती है जबकि दिगम्बर-परम्परा इन अंगों को विलुप्त मानकर आचार्य श्री कुन्दकुन्द आदि आचार्यों द्वारा रचित ग्रन्थों को आगमों के समान स्वीकार करती है। प्रस्तुत इतिहास श्वेताम्बर आगम-परम्परा से सम्बन्धित है। दिगम्बर-परम्परा तो पूर्व ग्रन्थों और अंगों के नाम को ही मानती है।

प्रथम वाचना

इस वाचना का समय मौर्य वंश के राजा सम्प्रति का समय है (वी. नि १६१)। उस समय मगध में भयंकर अकाल पड़ा अतः साधुओं को अनुकूल भिक्षा मिलनी कठिन हो गई। यह अकाल बड़ा भयंकर था। बारह वर्षों तक इसका प्रभाव रहा। इस समय श्रमण-संघ के पट्टाधीश आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी थे। समस्त साधुओं को कंठस्थ किए हुए अंग व पूर्व भूल चुके थे।

ऐसे भयंकर समय में पाटलीपुत्र में वीर-निर्वाण संवत् १७६ को जैन श्रमणों की प्रथम वाचना पाटलीपुत्र में हुई। उसमें सब साधु इकट्ठे हुए। उनमें से जितना जिसकी स्मृति में था उस

१. कई पट्टावलियों में प्रथम पट्ट पर गणधर सुधर्मा को लिखा जाता है।

सबका सम्पादन कर ग्यारह अंग सम्पूर्ण कर दिये गये। परन्तु बारहवां दृष्टिवाद नामक विशाल अंग किसी को याद न था। उस समय आर्य आचार्य भद्रबाहु ही १४ पूर्वों के ज्ञाता थे जो नेपाल में महा-प्राण नामक साधना कर रहे थे। श्री-संघ ने श्रुत-रक्षा के लिये ५०० मुनियों का एक संघ आचार्य स्थूलिभद्र के नेतृत्व में नेपाल भेजा। भद्रबाहु जी के ध्यान-साधना में लीन रहने के कारण बहुत से साधु स्थूलिभद्र को छोड़कर वहाँ से वापिस आ गये। किन्तु स्थूलिभद्र अपनी धुन के पक्के थे, अतः उन्होंने अपने विनय भाव एवं लगन से १० पूर्वों का ज्ञान उनसे प्राप्त कर लिया। ४ पूर्वों का ज्ञान उन्हें मूल रूप में ही मिला अर्थ रूप में नहीं।

पाटलीपुत्र वाचना का विस्तृत वर्णन (तिस्थगली, पट्टणय), आवश्यक चूर्णी, परिशिष्ट पत्र आदि में मिलता है।

सूत्रार्थ के सम्बन्ध में कहा जाता है कि पहले तो भद्रबाहु जी ने वाचना देना अस्वीकार कर दिया। तब स्थूलिभद्र जी ने कहा—“हे स्वामी! यह श्री-संघ की आज्ञा है।

श्री संघ की आज्ञा सम्मान करते हुए उन्होंने वाचना देनी प्रारम्भ कर दी। जब पूर्वों का ज्ञान पूरा हो गया तो स्थूलिभद्र ने पूछा—“भते! एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ कि अब तक मैंने कितना ज्ञान प्राप्त कर सिया है और कितना शेष है?

भद्रबाहु ने कहा—“अभी तक तुम सरसों के दाने जितना सीख पाए हो मेरु जितना शेष है।”

तब स्थूलिभद्र ने कहा “भगवन्! मैं अध्ययन से थका नहीं हूँ, पर आयुष्य कर्म के कारण सोचता हूँ कि इस जन्म में यह ज्ञान मैं पूर्ण रूप से कैसे सीख पाऊँगा।

स्थूलिभद्र की बात सुन कर भद्रबाहु ने कहा है—“वत्स! चिन्ता की कोई बात नहीं। मेरा ध्यान पूरा हो गया है, तुम बुद्धिमान हो, मैं दिन रात तुम्हें दृष्टिवाद की वाचना दूँगा।

इस प्रकार जब १० पूर्व सम्पूर्ण हो गये। तब एक दिन स्थूलिभद्र ११वाँ पूर्व एकान्त में याद कर रहे थे। उसी समय स्थूलिभद्र की सात सांसारिक बहिनें साध्वी रूप में उनके दर्शनार्थ व वन्दन करने वहीं आ गईं।

सर्व प्रथम उन्होंने भद्रबाहु को प्रणाम किया फिर अपने भ्राता स्थूलिभद्र के बारे में पूछा। भद्रबाहु ने स्थूलिभद्र को गुफा बता दी। उस समय स्थूलिभद्र इस पूर्व में वर्णित यंत्र-विद्या का परीक्षण कर रहे थे। जब वे अंदर गईं तो उन्होंने स्थूलिभद्र की जगह एक शेर को बंठे देखा। सातों बहिनें भयभीत हुईं और वापिस आकर भद्रबाहु जी को बताया—“हे गुरुदेव! वहाँ हमारा भाई स्थूलिभद्र नहीं है, वहाँ तो शेर बैठा है।”

भद्रबाहु ने जब यह सुना, तो उनके मन को ठेस लगी। उन्होंने साध्वियों से कहा ‘सह शेर ही तुम्हारा भाई स्थूलिभद्र है जो यंत्र-विद्या का परीक्षण कर रहा है। साध्वियाँ फिर उसी स्थान पर पहुँचीं जहाँ उनका भाई बैठा था।

साध्वियों के चले जाने के बाद श्री भद्रबाहु ने कहा—“आर्य ! जो तुमने अब तक पढ़ा है बस वही काफी है, अब आगे पढ़ने की तुम्हें आवश्यकता नहीं है।”

स्थूलिभद्र को अपनी गलती का अहसाम हुआ। उन्होंने भद्रबाहु के चरणों में गिर कर क्षमा मांगी और आगे वाचना देने की प्रार्थना की। स्थूलिभद्र की बात सुन कर भद्रबाहु बोले—“वत्स ! मुझे श्री संघ का पूरा सम्मान है, पर वाचना न देने का मेरा एक कारण है वह यह कि जब स्थूलिभद्र जैसा आचार्य अपने वचन को भंग कर सकता है और विद्या का दुरुपयोग कर सकता है, तो दूसरों की बात क्या है ? श्रमण-श्रेष्ठ ! यह पंचम काल है, अब आध्यात्मिक व मानसिक शक्तियों का हास हो रहा है। ऐसे में विद्या का दुरुपयोग अनर्थ को जन्म देकर श्री-संघ को कष्ट में डाल सकता है।

स्थूलिभद्र के विनीत स्वभाव से प्रभावित होकर भद्रबाहु ने कहा—“आर्य ! १० पूर्वों का ज्ञान तुम्हें प्राप्त हो चुका है। मैं तुम्हें ४ पूर्वों का ज्ञान अवश्य दूंगा, पर यह ज्ञान तुम्हें आगे न देने का प्रण करना होगा।

इस प्रकार यह वाचना का कार्यक्रम सम्पूर्ण हुआ। वीर निर्वाण सम्वत् १६१ में आर्य सुहस्ति के समय पुनः अकाल पड़ा और श्रुत-ज्ञान विस्मृत होने लगा।

मथुरी वाचना

जैन आगमों की दूसरी वाचना वीर निर्वाण संवत् ८२७ और ८४० मथुरा में हुई। उस समय मथुरा जनपद में जैन धर्म जन-धर्म बन चुका था। मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त पुरातत्व सम्बन्धी अवशेष इस बात की साक्षी देते हैं।

इस वाचना के संयोजक आचार्य स्कन्दिल थे। वे पादलिप्त सूरि के कुल में विद्याधर गच्छ के आचार्य थे। इनकी परम्परा का वर्णन युग-प्रधान पट्टावली में इस प्रकार मिलता है।

वज्र आर्य रक्षित, पुष्पमित्र, वज्रसेन, नागहस्ती, रेवती मित्र, ब्रह्मदीपक सिंह और स्कन्दिल। जैसे कि पहले बताया गया है कि भद्रबाहु स्वामी के बाद अकाल के कारण श्रुत-ज्ञान विच्छिन्न हो गया था। बहुत से श्रुत-ज्ञानी समाधि-मरण को प्राप्त हो गये थे। अतः उस समय मथुरा में श्रमण-संघ एकत्रित हुआ।

आगमों के संकलन का कार्य पुनः शुरू हुआ जिसको जितना पाठ याद था उतना लिखा गया। फिर आचार्य स्कन्दिल ने उसकी वाचना दी। यह वह समय था जब जैन धर्म मगध की धरती को छोड़ कर मध्य देश में फैल चुका था। मथुरा ईस्वी पूर्व २०० शताब्दी से ग्यारवीं शताब्दी तक जैन संस्कृति का केन्द्र ही है। उस समय जैनो को उस ब्राह्मण राजा पुष्य मित्र के अत्याचारों का सामना करना पड़ रहा था जिसने अन्तिम मौर्य-सम्राट से सिंहासन छीन लिया था। उस समय जैन व बौद्ध धर्म के लिये काला युग था, उस समय इन दोनों धर्मों को अपने मूल स्थान से हाथ धोना पड़ा।

माथुरी वाचना का वर्णन आचार्य मलयगिरि द्वारा लिखित नन्दी सूत्र टीका, ज्योतिष करण्ड-टीका, भद्रेश्वर कथावली, हेमचन्द्र के योग-शास्त्र में उपलब्ध होता है। मान्यता है कि उस समय कालिक श्रुत और अवशिष्ट पूर्व श्रुत को संगठित किया गया।

वल्लभी वाचना—

इस वाचना का समय वीर निर्वाण सं० ८३० के लगभग है। जिस समय मथुरा में आचार्य स्कन्दिल के सान्निध्य में वाचना हो रही थी, उसी समय सौराष्ट्र (गुजरात) के वल्लभी नगर में आचार्य नागार्जुन के सान्निध्य में श्रमण-संघ एकत्रित हुआ।

यद्यपि लिखने की परिपाटी आर्य स्कन्दिल के समय से आरम्भ हो गई थी, परन्तु उस परम्परा को सर्वाधिक प्रोत्साहन देवद्विगणि क्षमा-श्रमण के समय मिला। इस प्रकार आगमों को स्थिर-रूप आचार्य देवद्विगणि के समय मिल सका। जैन श्रमण-संघ ऐसे युग-प्रधान आचार्य का युग-युगान्तरों तक ऋणी रहेगा। इसी वाचना का महत्वपूर्ण अङ्ग था नन्दी सूत्र में आगमों का वर्गीकरण।

इस आगम-वाचना का एक प्रयत्न कलिग नरेश खारवेल ३ ई. पू. के समय खण्डगिरि गुफा में किया गया, जिसका उल्लेख राजा खारवेल के विस्तृत शिला लेख में उपलब्ध होता है। परन्तु इस वाचना का प्रारूप क्या था? इसमें वहाँ विराजित श्रमणों को जो जो पाठ याद थे वह सुनाये। उनका संकलन किया गया। इस वाचना के वाचक आचार्य नागार्जुन थे।

माथुरी व वल्लभी वाचना प्रायः एक ही समय में हुई पर दोनों आचार्यों के परस्पर मिलन का वर्णन नहीं मिलता। वैसे दोनों वाचनाओं का बहुत महत्व है क्योंकि ग्राह्य भी अनेक पाठ-भेद आगमों में मिलते हैं तो वहाँ टीकाकार नागार्जुनीय वाचना का उल्लेख अवश्य करते हैं वल्लभी वाचना में प्रकरण ग्रन्थों की श्रुत ज्ञान का स्थान मिल गया।

देवद्विगणी वाचना (बी. नि. ६८०)

श्वेताम्बर जैन परम्परा में इस वाचना का अपना महत्वपूर्ण स्थान है वीर वि. सं. ६८० या में वल्लभी में ही आचार्य देवद्विगणि के सान्निध्य में विराट् श्रमण-संघ का सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में उपलब्ध सभी वाचनाओं का अध्ययन किया गया। आचार्य देवद्विगणि के नेतृत्व में सर्वप्रथम जैन ग्रन्थों को भोज - पत्रों पर लिखने का निर्णय किया गया। क्योंकि उस समय अधिकतर धार्मिक ग्रन्थ श्रुत-परम्परा द्वारा ही सुरक्षित होते थे। इस सम्मेलन में कुछ महत्वपूर्ण निर्णय हुए। जहाँ-जहाँ "पाठान्तर" भेद थे, उन्हें चूणि साहित्य में संग्रहीत किया गया कुछ प्रकीर्ण ग्रन्थों को ज्यों की त्यों मान्यता प्रदान की गई।

माथुरी एवं नागार्जुनी वाचनाओं का समन्वय किया गया था, किन्तु उसका विशेष वर्णन उपलब्ध नहीं होता।

दिगम्बर मान्यता—

यहाँ हम दिगम्बर मान्यता की वह बात भी कहना चाहते हैं जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

दिगम्बर मान्यता के अनुसार दशपूर्व के ज्ञाता धर सेन आचार्य थे जो कि निर्वाण सं. २४५ में स्वर्ग सिधारे। दोनों परम्पराओं में अंतिम श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी थे। इनमें कुछ ही वर्षों का अन्तर है। दिगम्बर परम्परा के अनुसार भद्रबाहु के बाद दस पूर्वधरों की परम्परा १४३ वर्षों तक रही। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार यह परम्परा ४१४ वर्षों तक चलती रही।

आर्य वज्र के पश्चात् आर्य रक्षिन हुए वे साढ़े ६ पूर्वों के ज्ञाता थे। इनके शिष्य दुर्वलिका पुष्य मित्र थे जो पूर्वों के ज्ञाता थे। पर वे अपने जीवन-काल में ही ६वें पूर्व का ज्ञान भूल गये। वीर निर्वाण के अनन्तर १० वर्षों तक सभी पूर्व लुप्त हो गये। दिगम्बर परम्परा के अनुसार पूर्वों के लुप्त होने का समय बी. नि. ६८३ है।

दिगम्बर परम्परा षट खण्ड आगम और कषाय प्राभूत ग्रन्थों का आधार पूर्वों को मानती है। दिगम्बर परम्परा के अनुसार पूर्वों के ज्ञाता गणधर सुधर्मा थे, उनसे २२० वर्ष पश्चात् ११ अंग शास्त्रों का ज्ञान भी लुप्त हो गया। अंतिम अङ्ग शास्त्रों के ज्ञाता के कंसाचार्य माने जाते हैं। मात्र आचारांग के ज्ञाता लोहिताचार्य थे जो ११८ वर्ष बाद हुए। इस प्रकार ६२+१००+१८३+२२०+११८=६८३ अर्थात् वीर निर्वाण की सातवीं शताब्दी तक सारा आगम साहित्य लुप्त हो गया। उस समय मात्र दृष्टवाद नामक बारहवें अंग के कुछ अंग आचार्य धरसेन को स्मरण थे। उन्होंने प्रथम शताब्दी में गिरनार पर्वत को चन्द्रगिरि गुफा में इन्हें लिपि बद्ध किया। उन्होंने इस काम में अपने दो विद्वान् शिष्यों पुण्यदेव और भूतवलि की सहायता ली। उन्होंने जिस विशाल ग्रंथ का सम्पादन किया उसका नाम महाबन्ध है जिसे षट खण्डागम भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त दिगम्बर परम्परा तत्त्वार्थ सूत्र, कषाय पाहुड़, गोम्मटसार, प्रवचनसार, नियमसार, वासुन्दी श्रावकाचार, तिलोपपण्णत्ति आदि ग्रंथों का आधार प्राचीन आगमों को मानती है। दिगम्बर सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्यों में उमास्वाती, अकलंक, विद्यानंदी कुन्द-कुन्द सुमन्तभद्र, और वसुन्दी के नाम उल्लेखनीय हैं।

चौदह पूर्वों का परिचय

भगवान् महावीर के समय में अङ्ग और उपाङ्ग साहित्य के अतिरिक्त पूर्व साहित्य भी विद्यमान था जिसका विस्तृत वर्णन नंदी सूत्र में उपलब्ध है। वर्तमान में इस अनुपलब्ध साहित्य का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

क्रमांक	नाम पूर्व	पद संख्या	विषय
१.	उत्पाद	एक करोड़ पद	द्रव्य और पर्यायों की उत्पत्ति
२.	अग्रायणीय	छियानवे लाख पद	सब द्रव्यों और जीवों की पर्यायों का परिमाण।
३.	वीर्य प्रवाद	सत्तर लाख पद	सुकर्म और अकर्म जीव तथा पुद्गलों की शक्ति।

४.	अस्तिनास्ति प्रवाद	साठ लाख पद	धर्मास्तिकाय आदि वस्तुएं स्वरूप से हैं पर-रूप से नहीं। इसमें स्यादवाद के सिद्धांत कार्भी विस्तृत विवेचन था।
५.	ज्ञान प्रवाद	एक करोड़ पद	मति आदि पांच ज्ञानों का स्वरूप भेद प्रभेद
६.	सत्य-प्रवाद	एक करोड़ ६ पद	सत्य, संयम और प्रतिपक्ष में असत्य का निरूपण।
७.	आत्म प्रवाद	छब्बीस करोड़	विविध नयों की अपेक्षा से जीवन का स्वरूप
८.	कर्म प्रवाद या समय प्रवाद	एक करोड़ अस्सी लाख	कर्मों का स्वरूप, भेद प्रभेद आदि
९.	प्रत्याख्यानपद	चौरासी लाख	व्रत नियम आदि का स्वरूप
१०.	विद्यानु प्रवाद	एक करोड़ दस लाख	विविध प्रकार की आध्यात्मिक सिद्धियां और उनके साधन की प्रक्रिया
११.	अवन्ध्य या कल्याण	छब्बीस करोड़	ज्ञान, तप संयम आदि और शुभ कर्मों एवं अशुभ कर्मों का फल
१२.	प्राणायु	एक करोड़ छप्पन लाख	इन्द्रियों, स्वासोच्छ्वास, मन प्राणों और आयुष्य आदि का वर्णन
१३.	क्रिया विशाल	नौ करोड़	कायिक, वाचिक आदि शुभ अशुभ क्रियाएं
१४.	लोक बिन्दुसार	बारह करोड़ पचास लाख	इस में लब्धियों का स्वरूप आदि का विवेचन।

श्वेताम्बर व दिगम्बर ग्रंथों में पद संख्या लगभग एक समान है।

पूर्वाश्रित साहित्य

पूर्व साहित्य लुप्त होने के बावजूद ऐसी मान्यता है कि पूर्वों के कुछ ग्रंथों से कुछ ग्रंथों का निर्माण हुआ। ऐसे साहित्य को नियूहित (णिज्जुहिय) कहा जाता है। डा० इन्द्र चन्द्र शास्त्री ने श्री सपासक दशाङ्ग सूत्र के पृष्ठ १० पर इस साहित्य की कुछ सूची प्रस्तुत की है।

पाठकों की जानकारी के लिये इसका वर्णन करना जरूरी है—

ग्रन्थ का नाम	—	पूर्व का नाम
१. उपसर्गहर स्तोत्र	—	अज्ञात
२. ओह णिज्जुत्ति (ओष निर्युक्ति)	—	प्रत्याख्यान प्रवाद
३. कम्म पयडी	—	कर्म-प्रवाद (कर्म-प्रकृति)
४. प्रतिष्ठा-कल्प	—	विद्यानुप्रवाद
५. स्थापना-कल्प	—	अज्ञात

६.	सिद्ध प्राकृत	—	अग्रायणीय
७.	पञ्जोयकप्प	—	अज्ञात
८.	धम्म पणत्ति	—	आत्म-प्रवाद
९.	वक्क सुद्धि	—	सत्य-प्रवाद
१०.	दशवैकालिक का द्वितीय अध्ययन	—	प्रत्याख्यान प्रवाद
११.	परीसह अज्झयण	—	कर्म-प्रवाद
१२.	पंच कप्प	—	अज्ञात
१३.	दशाश्रुत, कल्प, व्यवहार	—	प्रत्याख्यान प्रवाद
१४.	महाकप्प	—	अज्ञात
१५.	निशीथ	—	प्रत्याख्यान प्रवाद
१६.	नयचक्र	—	ज्ञान-प्रवाद
१७.	सयग	—	अज्ञात
१८.	पंचसंग्रह	—	अज्ञात
१९.	सत्तरिया (कर्मग्रन्थ)	—	कर्म प्रवाद
२०.	महाकर्म प्रकृति प्राकृत	—	कर्म प्रवाद
२१.	कषाय प्राभृत	—	अग्रायणीय
२२.	जीव समास	—	अज्ञात

यह माना जाता है कि चौदहवां पूर्व दृष्टिवाद १२ अंग का भाग था ।

आगम-साहित्य

वर्तमान में जो आगम साहित्य उपलब्ध है, कुछ नन्दी सूत्र में वर्णित समस्त आगम साहित्य उस रूप में उपलब्ध नहीं होता जैसा कि नन्दी सूत्र व अन्य ग्रन्थों में वर्णित है । जैन ग्रन्थों का वर्तमान संस्करण गणधरों द्वारा व उनके शिष्यों द्वारा संकलित है । जिसे गणि-पिटक भी कहते हैं । जैन परिभाषा में तीर्थङ्कर, गणधर तथाश्रुत केवली प्रणीत शास्त्रों को आगम कहते हैं । जिस ज्ञान का मूल स्रोत तीर्थङ्कर भगवान हैं, आचार्य-परम्परा के अनुसार जो श्रुत-ज्ञान आया है अथवा आ रहा है वह आगम अथवा आप्त वचन कहलाता है ।

श्री नन्दी सूत्र में सम्यक् श्रुत के अन्तर्गत आगमों की गणना इस प्रकार की गई है—

१२ गणिपिटक—(१) आचारांग, (२) सूत्र कृतांग, (३) स्थानांग (४) समवायाङ्ग (५) व्याख्या - प्रज्ञप्ति, (६) ज्ञाता-धर्म कथांग, (७) उपासकदशांग, (८) अन्तकृद्दशांग, (९) अनुत्तरीपपातिक दशांग, (१०) प्रश्न व्याकरण, (११) विपाक सूत्र, (१२) दृष्टिवाद ।

आवश्यक व्यतिरिक्त श्रुत दो प्रकार का है—१. कालिक और २. उत्कालिक ।

उत्कालिक श्रुत—१. दशवैकालिक, २. कल्पाकल्प, ३. चूल् कल्पश्रुत, ४. महाकल्प श्रुत, ५. औपपातिक, ६. राजप्रदनीय, ७. जीवाभिगम, ८. प्रज्ञापना, ९. महाप्रज्ञापना, १०. प्रमादाप्रमाद, ११. नन्दी, १२. अनुयोग द्वार, १३. देवेन्द्र स्तव, १४. तन्दुल वैचारिक, १५. चन्द्र विद्या, १६. सूर्य प्रज्ञप्ति, १७. पोरुषी मण्डल, १८. मण्डल प्रवेश, १९. विद्याचरण निश्चय, २०. गणि-विद्या, २१. ध्यान-विभक्ति, २२. मरण-विभक्ति, २३. आत्म-विशुद्धि, २४. वीतराग-श्रुत, २५. संलेखना - श्रुत, २६. विहार-कल्प, २७. चरण-विधि, २८. आतुरप्रत्याख्यान, २९. महाप्रत्याख्यान ।

२. जिस श्रुत का रात्रि व दिन के प्रथम व अन्तिम प्रहर में स्वाध्याय किया जाता है वह कालिक श्रुत है जो कालिक से भिन्न काल में पढ़ा जाए वह उत्कालिक श्रुत है ।

कालिक श्रुत—१. उत्तराध्ययन, २. दशाश्रुत-स्कन्ध, ३. कल्पबृहत्कल्प, ४. व्यवहार, ५. निशीथ, ६. महानिशीथ, ७. अभिभाषित, ८. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, ९. दीप सागर प्रज्ञप्ति, १०. चन्द्र प्रज्ञप्ति, ११. क्षुद्रिका विमान प्रविभक्ति, १२. महल्लिका विमान प्रविभक्ति, १३. श्रंग चूलिका १४. वर्ग चूलिका, १५. विवाह चूलिका, १६. अरुणोपपात, १७. वरुणोपपात, १८. गरुडो-पपात, १९. धरुणोपपात, २०. वैश्रमणोपपात, २१. वेलन्धरोपपात, २२. देवेन्द्रोपपात, २३. जयान-श्रुत, २४. समुत्थान श्रुत, २५. नाग परिज्ञापनिका, २६. निरयावलिका, २७. कल्पिका, २८. कल्पावतंसिका, २९. पुष्पिता, ३०. पुष्पचूलिका, ३१. वृष्णिदशा ।

इस विस्तृत सूची में उल्लिखित काफी आगम, कालिक, उत्कालिक ग्रन्थ अनुपलब्ध है । दृष्टिवाद तो पूरी तरह अनुपलब्ध है । नन्दी सूत्र में द्वादशांगी के विषय एवं आकार की विस्तृत बर्णना है । प्राचीन काल में द्वादश अङ्गों का श्वेताम्बर व दिगम्बर परम्परा में इस प्रकार का पद आकार माना जाता था—

	श्वेताम्बर पद	दिगम्बर पद
१. आचारंग	१८०००	१८०००
२. सूत्र कृतांग	३६०००	३६०००
३. स्थानांग	७२०००	४२०००
४. समयावयंक	१४४०००	१६४०००
५. भगवती सूत्र	२२२०००	२२२०००
६. ज्ञाता धर्म कथांग	५७६०००	५५६०००
७. उपासक दशांग	११५२०००	११७००००
८. अन्तकृद्दशांग	२३०४०००	२३२२०००
९. अनुत्तरोपपातिक	४६०२०००	६२४४०००

१०. प्रश्न-व्याकरण	६२१६०००	६३१६०००
११. विपाक	१८४३२०००	१२४०००००
१२. दृष्टिवाद	२४ पूर्वों की पद संख्या	

आगमों का वर्गीकरण

जैसे कि पहले बताया गया है कि उपलब्ध आगमों को श्वेताम्बर - परम्परा ही मानती है दिग्गम्बर नहीं। श्वेताम्बर परम्परा में तीन सम्प्रदाय हैं—१. श्वेताम्बर मूर्तिपूजक, २. श्वेताम्बर स्थानकवासी, ३. श्वेताम्बर तेरापन्थी।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजकों में आगमों की दो परम्परायें मिलती हैं, ८४ आगमों की परम्परा और ४५ आगमों की परम्परा। अधिकतर मुनिराज ४५ आगमों की परम्परा के पक्षधर हैं, शेष दोनों सम्प्रदायों को ३२ आगमों की परम्परा ही मान्य है।

श्वेताम्बर परम्परा द्वारा मान्य आगम

मान्य ११ अंग—१. आचारांग, २. सूत्र-कृतांग, ३. स्थानांग, ४. समवायाङ्ग, ५. व्याख्या-प्रज्ञप्ति, ६. ज्ञाता - धर्म - कथांग, ७. उपासक दशांग, ८. अन्तकृद्दशांग, ९. अनुत्तरीपपातिक दशा, १०. प्रश्न व्याकरण, ११. विपाक सूत्र, १२. दृष्टिवाद जो विलुप्त हो चुका है।

१२ उपांग

१. औपपातिक, २. राजप्रश्नीय, ५. जीवाभिगम, ४. प्रज्ञापना, ५. सूर्य-प्रज्ञप्ति, ६. जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति, ७. चन्द्र-प्रज्ञप्ति ४-१२ निरयावलिका, ९. कल्पावतंसिका, १०. पुष्पिका, ११. पुष्पचूला, १२. वृष्णिदशा।

१०. प्रकीर्णक

१. चतुःशरण, २. आतुर-प्रत्याख्यान, ३. भक्त-परिज्ञा, ४. संस्तार, ५. तंडुल वैचारिक, ६. चन्द्र वेधक, ७. देवेन्द्र स्तव, ८. गणिविद्या, ९. महाप्रत्याख्यान, १०. वीरस्तव।^१

६. छेव

१. आचार दशा, २. कल्प या बृहत्कल्प, ३. व्यवहार, ४. निशीथ, ५. महानिशीथ, ६. जीतकल्प।

दो चूलिका सूत्र—१. तन्दी, २. अनुयोग द्वार।

चार मूल सूत्र—१. उत्तराध्ययन, २. दशवैकालिक, ३. आवश्यक^२, ४. पिण्ड निर्युक्त।^३

१-२-३ इन्हें स्थानकवासी परम्परा स्वीकार नहीं करती।

छेद सूत्रों के नामों में भी भेद उपलब्ध होता है कई स्थानों पर पिण्ड-नियुक्ति की जगह ओषनियुक्ति मिलता है इसी तरह छेद सूत्रों में पंच कल्प को इस वर्ग में रखा गया है।

स्थानकवासी व तेरहपंथी परम्परा प्रकीर्णक महानिशीथ व जीतकल्प को नहीं मानती। श्वेताम्बर जैन आगमों की भाषा अर्धमागधी है जो उस समय जन सामान्य की भाषा रही है और भारत की अनेकों भाषाओं की जननी भी यही अर्ध मागधी प्राकृत है। दिगम्बर ग्रंथों की भाषा महाराष्ट्री प्राकृत है जो दक्षिण भारतीय भाषाओं की जननी है। अपभ्रंश साहित्य के जनक तो जैन आचार्य ही रहे हैं। प्राचीन जैन साहित्य कन्नड़ और तमिल, भाषाओं में भी उपलब्ध है। उत्तर व पश्चिम भारत में श्वेताम्बर जैन परम्परा फली फूली है, तो दक्षिण व मध्य भारत में दिगम्बर परम्परा का प्रमुख स्थान रहा है।

निरयावलिका सूत्र

आगमों के लेखन-काल से ही आगमों पर आचार्यों ने टीका, नियुक्ति, भाष्य, व टब्बा ग्रन्थों की रचना की है, अकेले उत्तराध्ययन सूत्र पर अनेकों संस्कृत टीकायें टब्बा एवं गीत, उपलब्ध होते हैं। भद्रबाहु स्वामी रचित कल्प सूत्र पर सर्वाधिक टीकायें, भाष्य, टब्बे प्राप्त होते हैं।

संस्कृत टीकाकारों में प्रमुख नाम हैं शीलाकाचार्य, अभयदेव सूरि, मलयगिरि, हेमचन्द्राचार्य, आदि। भाष्यकारों में आचार्य जिनभद्र का नाम प्रमुख है। नियुक्ति कार के रूप में आचार्य भद्रबाहु स्वामी का नाम प्रसिद्ध है।

निरयावलिका के प्रथम वर्ग का नाम निरयावलिका है। यहां इसे स्वतन्त्र उपाङ्ग नहीं बताया गया। इसके विपरीत नन्दीसूत्र में उपाङ्गों को चर्चा में इन पाँचों को स्वतन्त्र उपाङ्ग माना गया है। नन्दीसूत्र की सूचना काफी प्राचीन है। कोई कारण नहीं लगता कि नन्दीसूत्र की बात को न माना जाए।

निरयावलिका का दूसरा नाम “कल्पिता” आया है। यह बात भी ध्यान देने योग्य है।

निरयावलिका समेत सभी उपाङ्गों के ५२ अध्ययन हैं। डा० नलिनी बलवीर पैरिस विश्व-विद्यालय लिखती हैं—नियम यह है कि प्रथम अध्याय की कथा सम्पूर्ण रूप से दी गई है। दूसरे प्रध्यायों की कथाएं अलग अलग नहीं हैं। पात्र और स्थान के नाम ही बदले गये हैं और इन कथाओं के केवल संकेत दिये गये हैं।

सभी उपाङ्गों का पहला अध्ययन ही तो विस्तृत है, शेष संक्षिप्त (सिवाय तृतीय वर्ग के जहाँ दो अध्ययन विस्तृत हैं) ये उपाङ्ग कथा-प्रधान श्रुत स्कन्ध हैं। हम इन उपाङ्गों का संक्षिप्त विवेचन करने का प्रयास करते हैं।

प्रथम उपाङ्ग निरयावलिका सूत्र है। यह सभी उपाङ्गों से बड़ा है। पर इसमें एक ही अध्ययन है। कुल १० अध्ययन है।

प्रस्तुत आगम का नाम निरयावलिका है। निरय का अर्थ नरक और आवलिका का अर्थ है पंक्तियाँ, अर्थात् नरक-पंक्तियों में गये प्राणियों का विवरण। परन्तु निरयावलिका अपने आप में स्वतन्त्र उपाङ्ग नहीं है, न ही इसमें वर्णित उपाङ्गों के सभी प्राणों नरक में गये हैं। यह बात शोध का विषय है कि पाँचों उपाङ्गों को निरयावलिका के अन्तर्गत क्यों रखा गया? हो सकता है कि यह उपाङ्ग आकार में छोटे हों। किन्तु ये सभी स्वतंत्र ग्रन्थ हैं, पर प्राचीन काल से इन्हें इकट्ठा लिखा जाता रहा है। निरयावलिका सूत्र के आरम्भ में जिन पाँच वर्गों के नाम आये हैं वह चिन्तनीय है।

आचार्य सुधर्मा के शिष्य जंबू स्वामी जब निरयावलिका सूत्र का अर्थ पूछते हैं तो उन्हें उत्तर मिलता है कि निरयावलिका सूत्र में पाँच वर्ग हैं, प्रथम १० अध्ययनों में कोणिक और उसके भाइयों का वर्णन है।

मगध-सम्राट श्रेणिक बिम्बसार का पुत्र अजात शत्रु कोणिक था जो, बहुत लालची वृत्ति का था। उसकी माता चेलना भगवान महावीर की श्राविका थी। प्रस्तुत सूत्र में कोणिक व उसके नाना राजा चेटक के मध्य वैशाली में हुए युद्ध का वर्णन है। भगवान महावीर चम्पा पधारते हैं तो श्रेणिक की रानी काली अपने पुत्र काल कुमार के विषय में पूछती है—“भगवन! रथ मूसल संग्राम में मेरा पुत्र विजयी होगा या नहीं? वह जीवित लौटेगा या मर जाएगा?”

सर्वज्ञ प्रभु महावीर ने उत्तर दिया “महारानी! तैरा पुत्र अपने नाना चेटक से लड़ता हुआ उन्हीं के वाण से वीर-गति को प्राप्त हो चुका है।”

प्रभु के मुखारविंद से पुत्र की मृत्यु का वर्णन सुनकर रानी काली को घोर आघात पहुँचा। वह मूर्छित हुई और कुछ देर बाद वापिस लौट गई।

गौतम स्वामी ने काल कुमार आदि सभी राज कुमारों का भविष्य पूछा। भगवान महावीर ने उत्तर दिया कि वे काल कुमार आदि सभी राजकुमार मर कर चतुर्थ पंकप्रभा नरक में पैदा हुए हैं।

प्रभु ने कोणिक के जन्म के बारे में और युद्ध का कारण बताते हुए कहा—“हे गौतम! इसी राजगृही नगरी में राजा श्रेणिक राज्य करते थे। उनकी रानी नन्दा के यहां एक अभय कुमार नाम का राज कुमार था जो बुद्धिमान और राजा का प्रधान मन्त्री भी था।

श्रेणिक की दूसरी रानी चेलना ने एक रात्रि गर्भ अवस्था में सिंह का स्वप्न देखा। स्वप्न पाठकों ने उसका फल पुत्र की प्राप्ति बताया। गर्भ के तीन मास व्यतीत होते ही रानी चेलना को दोहला (गर्भस्थ काल की इच्छा) उत्पन्न हुआ कि वे मातायें धन्य हैं और भाग्यशाली हैं जो अपने पति के कलेजे का मांस खाती हैं और साथ में मदिरा पान करती हैं। दोहला जैन साहित्य का परिभाषिक शब्द है जिसे ‘दोहद’ भी कहते हैं जिसका अर्थ है कि गर्भवती स्त्री को तीसरे मास में जो इच्छा उत्पन्न

होती है वह उसकी नहीं होती, उसके गर्भस्थ जीव की होती है। उसी दोहद से गर्भस्थ जीव के गूण व अवगुणों का आकलन होता है। जैन ग्रन्थों में हजारों कथाओं में अनेक बिचित्र दोहदों का वर्णन है। मान्यता है कि अगर इस दोहद को पति पूर्ण न करे तो स्त्री अस्वस्थ रहनी शुरू हो जाती है। रानी चेलना का दोहला बिचित्र और कभी पूरा न होने वाला था। कैसे राजा श्रेणिक ने अपने पुत्र मन्त्री अभय कुमार की सहायता से इसे पूर्ण किया? इसका वर्णन इस अध्ययन में है। चेलना विशुद्ध शाकाहारी और दयालु स्वभाव की स्त्री थी। चेलना ने गर्भस्थ जीव की इच्छा को तो जैसे तैसे पूरा किया गया। पर साथ में जो उसका प्रायश्चित्त किया गया, वह भी अभूत पूर्व था। उसने पहले तो गर्भ को नष्ट करने के अनेक प्रयत्न किये, पर वह असफल रही। चेलना के मन में अपने गर्भस्थ जीव के प्रति बहुत खानि भरी हुई थी। वह हर समय सोचती रहती थी कि यह कैसा जीव मेरे गर्भ में है जो पैदा होने से पहले ही पिता के कलेजे का मांस व शराब चाहता है।

अतः कोणिक का जब जन्म हुआ तो रानी चेलना ने उसे गुप्त रूप से एक दासी के हाथों कूड़े के ढेर पर फिकवा दिया। यहां उसकी कर्षणा का पता चलता है। अगर चेलना हिसक होती है तो इस बालक को पैदा होते ही मार सकती थी। गंदगी में पड़े बालक को राजा श्रेणिक ने देखा। उस बालक की अंगुली मुर्ग ने काट खाई थी। श्रेणिक ने बालक को उठाया, अपने कलेजे से लगाया। फिर राजा श्रेणिक ने अपनी पत्नी का उपालम्भ भरे शब्दों प्रताड़ित किया। अंगुलि कटी होने के कारण बालक की अंगुली से मवाद बहने लगा। इस गंदगी को श्रेणिक अपने मुख से चूसता और थूक देता ताकि बालक को पीड़ा से मुक्ति मिले। कोणिक के सभी संस्कार किये गये।

कोणिक युवा हुआ तो पिता ने आठ राज-कन्याओं के साथ उसका विवाह कर दिया। समय बीतता गया। एक रात्रि कोणिक के मन में अशुभ विचार उत्पन्न होते हैं कि मैं पिता के होते हुए राजश्री का सुख नहीं भोग सकता। मुझे राजा कोणिक को कारागार में डाल कर स्वयं गद्दी पर बैठ जाना चाहिये। इस साजिश में उसने अपने काल कुमार आदि भाइयों को भी सम्मिलित कर लिया। राजा श्रेणिक को कारागार में डाल दिया गया। राज्य को कोणिक ने ११ भागों में बांटने का निश्चय किया।

एक दिन कोणिक वस्त्रालंकारों से विभूषित हो अपनी माता चेलना को वन्दन करने के लिये आया। उसकी माता अपने पुत्र की उपर्युक्त हरकत से दुखी थी। माता को दुखी देख कर कोणिक बोला—“माता! क्या आपको मेरा राजा बन जाना अच्छा नहीं लगता।”

माता ने उत्तर दिया—“पुत्र! मुझे तुम्हारा राज्य-सुख कैसे अच्छा लग सकता है। जब कि तूने अपने उस पिता को कारागार में डाल रखा है, जो तुझे बहुत प्यार करता है। तुम्हें पता नहीं, जब तू गर्भ में था तो मुझे तेरे पिता के उदर का मांस व मदिरा पीने की इच्छा हुई थी। मैं तेरे गर्भ में आने से अप्रसन्न थी, अतः मैंने गर्भ को नष्ट करने के प्रयत्न किये, पर सब व्यर्थ रहे। जब तुम्हारा जन्म हुआ तो मैंने तुझे कूड़े के ढेर पर फिकवा दिया जहां तेरी अंगुली को मुर्ग ने काट

लिया था। तुम्हारे पिता ने तुम्हें कुरड़ी से उठा कर राज महलों में रखा। तुम्हारी अंगुली की पीड़ा को कम करने के लिये तुम्हारे पिता तुम्हारी अंगुली के खून एवं मवाद को चूस कर थक देते थे तुम्हारे पालन-पोषण में उन्होंने कोई कमी नहीं रखी। उस देवगुरु तुल्य पिता को तुमने कारागार में डाल दिया है, बताओ फिर तुम्हारी राजश्री का मुझे क्या सुख हो सकता है?"

माता की बात का कोणिक पर बहुत प्रभाव पड़ा, वह उसी समय एक परसा लेकर पिता के बन्धन तोड़ने दीड़ा। राजा श्रेणिक ने समझा की यह दुष्ट मुझे कारागार में रख कर मन नहीं भरा। अब यह मुझे परसे से मारना चाहता है। मेरे लिये अब यही श्रेस्कार है कि मैं ताल-कूट विष को खा लूं। कम से कम अपमान की मृत्यु से तो बचा रहूंगा।" श्रेणिक ने ताल-पुट विष चाट कर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी। कोणिक ने सम्मान सहित पिता का अग्नि संस्कार किया। पिता की मृत्यु का कोणिक को बहुत दुःख हुआ। वह पिता की मृत्यु का स्वयं को जिम्मेवार मान कर दुखी रहने लगा। राजगृही उसे काटने को दौड़ती थी। अतः उसने अपनी राजधानी चम्पा को बनाने का निश्चय किया।

श्रेणिक की मृत्यु के बाद राज्य को ११ भागों में बांटा गया। सभी भ्राता सुख-पूर्वक रहने लगे। इसी नगरी में रानी चेलना का पुत्र बेहल कुमार भी रहता था। राजा श्रेणिक ने अपने जीवन-काल में उसे अठारह लड़ियों वाला एक बहुमूल्य हार और एक गन्धहस्ती प्रदान किया था। बेहल कुमार इस हार को पहन कर इस गन्धहस्ती पर विभिन्न मनोरंजन करता। यह हाथी गंगा नदी में उतर जाता। बेहल कुमार की रानियों को सूंड से पकड़ कर पीठ पर बिठलाता, स्नान करवाता। इस तरह यह गन्धहस्ती अनेकों प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हुए बेहल कुमार एवं उसके परिजनों से क्रीड़ाये करता था।

कोणिक की पत्नी पद्मावती को बेहल कुमार का सुख अच्छा न लगा। वह सोचने लगी कि— "बेहल कुमार साधारण राजकुमार होते हुए भी विपुल सुख भोग रहा है। मेरा पटरानी होना बेकार है, अगर मेरे पास यह दोनों वस्तुएँ न हों। पद्मावती ने यह बात अपने पति कोणिक से कही। पहले तो कोणिक ने पत्नी की बात पर विशेष ध्यान न दिया। पर पत्नी के विशेष आग्रह के सामने वह झुक गया। उसने बेहल कुमार से हाथो व अठारह लड़ियों वाले हार की माँग की। बेहल कुमार ने कहा— "अगर आप मुझे आधा राज्य दें तो मैं आपको दोनों वस्तुएँ दे सकता हूँ।" कोणिक ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया। बेहल कुमार ने चम्पा नगरी छोड़ने का निर्णय किया। वह अपने परिवार समेत अपने नाना वैशाली गणराज्य प्रमुख चेटक की शरण में चला गया।

कोणिक की जिद्द बढ़ती गई, राजा चेटक श्रावक था। कोणिक ने अपने नाना चेटक के यहाँ दूत भेजा। उसने अपने नाना चेटक से बेहल कुमार, गन्ध-हस्ती व अठारह लड़ियों वाले हार की वापसी की बात कही।

राजा चेटक ने शरणागत बेहल कुमार का पक्ष लिया। चेटक का संदेश दूत लेकर चम्पा

नगरी में आया । कोणिक क्रोध से भर गया । उसने दूसरा दूत भेजा । दूत ने कहा—“चेटक राजा ! मेरे स्वामी का आदेश है कि या तो आप दोनों वस्तुयें उन्हें लौटा दें, नहीं तो युद्ध के लिए तैयार हो जायें ।” शरणागत की रक्षा करने वाले राजा चेटक ने कोणिक के द्वारा दी गई युद्ध की चुनौती को स्वीकार कर लिया । उसने अठारह मल्ल, काशो, कौशल गणराज्यों से विचार-विमर्श किया । सभी ने शरणागत की रक्षा करने का समर्थन किया । वैशाली के मैदान में घमासान युद्ध हुआ । कोणिक के १० भाई व राजा चेटक समेत अनेक योद्धा इस युद्ध में मारे गये ।

इस प्रथम वर्ग के १० अध्ययनों में इन राजकुमारों के युद्ध में मर कर नरक में जाने का वर्णन है । इस युद्ध का वर्णन भगवती सूत्र में भी मिलता है । अनुत्तरोपपालिक सूत्र में बेहल्ल कुमार और वेहायस कुमार को चेलना का पुत्र बताया गया है । हल्ल को धारिणी का पुत्र निरयावलिका वृत्ति और भगवती वृत्ति में हल्ल और बेहल्ल को चेलना का पुत्र कहा गया है । लगता है कोणिक ने हल्ल-बेहल्ल को राज्य में से कोई हिस्सा नहीं दिया था, क्योंकि जैन आगमों में राजा श्रेणिक के ३६ पुत्रों का वर्णन उपलब्ध होता है, जिनमें से २३ ने दीक्षा ग्रहण की थी । निरयावलिका में श्रेणिक के १० पुत्रों के नरक में जाने का वर्णन है । आगमों में राजा श्रेणिक की २३ रानियों का वर्णन है जो श्रेणिक की मृत्यु के पश्चात् साध्वी बन गई थीं ।

वर्तमान श्रमण संघीय आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी शास्त्री ने वैशाली के विनाश का कारण बौद्ध साहित्य से भी उद्धृत किया है, परन्तु घटना - क्रम में काफी अन्तर है । बौद्ध साहित्य में कोणिक के दोहद की बात व पुत्र-प्रेम का तो वर्णन मिलता है । पर अज्ञात शत्रु कोणिक द्वारा अपने पिता को विभिन्न यातनायें देने का वर्णन नहीं है । बौद्ध साहित्य में अज्ञात शत्रु का ऐसा बहुत कम वर्णन है । बौद्ध साहित्य में युद्ध का कारण रत्नराशि है । युद्ध कितने समय तक चला, इसके बारे में कुछ स्पष्ट नहीं है ।

कल्पावतंसिका

कल्प शब्द का प्रयोग सीधर्म से अच्युत तक बारह स्वर्ग लोकों के लिये किया जात है । देवों में उत्पन्न होने वाले जीवों का जिस ग्रन्थ में वर्णन है वही कल्पावतंसिका है । निरयावलिका सूत्र में जिन १० काल कुमार आदि का वर्णन है उन्हीं के सूत्रों (श्रेणिक के पोत्रों) का इस उपाङ्ग में वर्णन है । सभी उग्र तप द्वारा पण्डित-मरण—समाधि-मरण को प्राप्त होते हैं । महाव्रत धारण करने का फल इस उपाङ्ग का सार है । इन राज कुमारों के नाम हैं ।

(१) पद्म, (२) महापद्म, (३) भद्र, (४) सुभद्र, (५) पद्मभद्र, (६) पद्मसेन, (७) पद्म-गुल्म, (८) नलिनी गुल्म, (९) आनन्द, (१०) नन्दन ।

पहले अध्ययन में बतलाया गया है कि भगवान् महावीर के समय चम्पा नगरी में कोणिक नाम का राजा राज्य करता था । उसकी विमाता काली का पुत्र काल था । काल की पत्नी

पद्मावती थी। वह रानी सुन्दर व सुकोमल थी। एक बार अर्ध रात्रि में उम्मे सिंह का स्वप्न देखा। स्वप्न-पाठकों से स्वप्न का फल जान कर वह बहुत प्रसन्न हुई। उसके यहां एक पुत्र-रत्न का जन्म हुआ जिसका नाम पद्म कुमार रखा गया। यौवन अवस्था में उसका आठ कन्याओं के साथ पाणि ग्रहण हुआ। एक बार श्रमण भगवान महावीर चम्पा नगरी में पधारे। प्रभु का उपदेश सुन कर वह मुनि बन गया। उत्कृष्टतम साधना के कारण उसका शरीर सूख गया। उसने विपुलगिरि पर समाधि-मरण प्राप्त किया। वह पद्म कुमार मुधर्म कल्प देवलोक में उत्पन्न हुआ।

इस तरह का वर्णन शेष ६ राजकुमारों का भी है। इनके नाम इनकी माताओं से मिलते थे। सभी विभिन्न देवलोकों की आयु पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गये।

तृतीय वर्ग पुष्पिका

इस वर्ग के दस अध्ययन हैं जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—

(१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) शुक्र, (४) बहुपुत्रिका, (५) पूर्णभद्र, (६) मानभद्र, (७) शिव, (८) दत्त, (९) बल, (१०) अनादृत।

प्रथम अध्ययन में चन्द्र देव के प्रभु महावीर के समवसरण में दर्शनार्थ आने का वर्णन है। यह चन्द्र अपनी देवश्रद्धा प्रदर्शित करता है—नाटक करता है। गणधर गीतम चन्द्र के पूर्व भव का वर्णन पूछते हैं तो इस अध्ययन में चन्द्रदेव के पूर्व जन्म का वर्णन है। कैसे वह अंगति श्रावक के रूप में प्रभु पार्श्व के पास प्रव्रज्या ग्रहण करता है।

दूसरे अध्ययन में सूर्य देव के दर्शन करने और नाट्य विधि दिखाने का वर्णन है। साथ में उसके पूर्वभव के रूप में बताया गया है कि वह श्रावस्ती नगरी का सुप्रतिष्ठ श्रावक था। उसने भी संयम ग्रहण किया। चन्द्र व सूर्य दोनों संयम की विराधना करते हैं।

तीसरे अध्ययन में महाशुक्र ग्रह का वर्णन है। वह पूर्व जन्म में वाराणसी नगरी का सोमिल नाम का ब्राह्मण था। वह वेद-शास्त्रों में निष्णात था। एक बार भगवान श्री पार्श्वनाथ वहां पधारते हैं। वह भगवान श्री पार्श्वनाथ से उसी प्रकार के प्रश्न पूछता है जैसे भगवान महावीर के समय में सोमिल नाम के ब्राह्मण ने भगवती सूत्र १८ शतक के १० उद्देश्य में पूछे थे। शंकाओं का समाधान हो जाने पर वह श्रावक-धर्म ग्रहण कर लेता है।

कुछ समय बीत जाने पर और महाव्रती साधुओं के दर्शन न होने कारण सोमिल फिर मिथ्यात्वी हो जाता है। उस रात्रि में उसके मन में एक संकल्प उत्पन्न होता है कि—“मैं वाराणसी का ब्राह्मण हूं। मैंने अनेकों यज्ञ, हवन किये, विवाह किया। गृहस्थ के योग्य सभी कार्य किये। अब मुझे वाराणसी में आम, बिजौरा, बेल, कैथ, इमली और फूलों के बाग लगाने चाहिये। अपने विचारों को सोमिल ने क्रियान्वित किया। उसके बाग वाराणसी में प्रसिद्ध हो गये।

अब सोमिल तापस बनने का संकल्प करता है वह बहुत से लोहे के कड़ाहे, कड़छियाँ और तापसों के ताँबे के बर्तन बनवा कर, तापस बन जाता है। दीक्षा से पहले वह परिजनों को भोजन करवा कर उनका वस्त्र आदि से स्वागत करता है, फिर बड़े पुत्र को गृह-भार संभाल कर गंगा-तट पर तापस उपकरणों सहित आ जाता है। प्रस्तुत कथानक में अनेक प्रकार के तापसों का विवरण हमें प्राप्त होता है। उनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं :—

१. केवल एक कमण्डल धारण करने वाले, २. केवल फल खाने वाले, ३. एक बार जल में डूबकी लगाकर तत्काल बाहर निकलने वाले, ४. बार-बार जल में डूबकियाँ लगाने वाले, ५. जल में भी गले तक डूबकी लगाने वाले, ६. वस्त्रों, पात्रों और देह को प्रक्षालित रखने वाले, ७. शंख-ध्वनि कर भोजन करने वाले, ८. सदा खड़े रहने वाले, ९. मद्य मांस-भक्षण करने वाले, १०. हाथी का मांस खाकर जीने वाले, ११. सदा ऊँचा दण्ड किये रहने वाले, १२. बत्कल वस्त्र धारण करने वाले, १३. सदा पानी में रहने वाले, १४. सदा वृक्ष के नीचे रहने वाले, १५. केवल जल पर निर्भर रहने वाले, १६. जल के ऊपर रहने वाली शैवाल खाकर जीवन चलाने वाले, १७. वायु-भक्षण करने वाले, १८. वृक्ष-मूल का अहार करने वाले, १९. वृक्ष की छाल का आहार करने वाले, २०. केवल कन्द का आहार करने वाले, २१. वृक्ष के पत्तों का आहार करने वाले, २२. पुष्पों का आहार करने वाले, २३. बीजों का आहार करने वाले, २४. स्वतः दूर रह कर गिरे हुए पत्तों, पुष्पों, फलों का आहार करने वाले, २५. फेंका हुआ आहार ग्रहण करने वाले, २६. सूर्य की आतापना लेने वाले, २७. कष्ट सहनकर शरीर को पत्थर सा कठोर बनाने वाले, २८. पंचाग्नि तप करने वाले, २९. गर्भ बर्तन पर शरीर को परितप्त करने वाले आदि।

श्रौतपातिक सूत्र में भी तापसों का वर्णन प्राप्त होता है। सोमिल ब्राह्मण भी दिक्प्रोक्षक तापस बना और वह तापसों द्वारा किये जाने वाले विभिन्न प्रकार के तप करने लगा। उसने प्रतिज्ञा की कि जहाँ कहीं मैं गड्ढे में गिर जाऊँगा, मैं वहीं प्राण त्याग दूँगा। फिर उसने मुख पर काष्ठ-मुद्रा बाँधी और उत्तर दिशा की ओर गया। पहले दिन अशोक वृक्ष के नीचे बैठकर होम किया। वहीं एक देवता ने प्रकट होकर कहा—“सोमिल ! तुम्हारी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है।” पाँचों दिन उसे भिन्न-भिन्न स्थानों पर यही देव-वाणी सुनाई देती रही। पाँचवें दिन उसने देवता से पूछा मेरी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या कैसे है ?

देवता ने कहा—“तू ने अणुव्रत ग्रहण करके उनकी विराधना की है। अब भी समय है कि तুম मिथ्यात्व को त्याग कर पुनः अणुव्रत स्वीकार करो। देवता का कहना सोमिल ने माना और श्रवकत्व की साधना के कारण वह शुक्र देव बना।

प्रस्तुत अध्ययन में भगवान् श्री पार्श्वनाथ के समय की तापस-परम्परा का ऐतिहासिक वर्णन किया गया है। तापस हठयोगी थे, वे हठयोग को ही मोक्ष का साधन मानते थे। भगवान् पार्श्वनाथ ने हठ-योग का खण्डन किया। उन्होंने कहा तप के साथ ज्ञान भी आवश्यक है। अज्ञानता में किया गया तप बाल तप है, वह मोक्ष का कारण नहीं हो सकता।

निरयावलिका का चतुर्थ अध्ययन बहुत ही मनोरंजक, शिक्षाप्रद अध्ययन है। एक बार श्रमण भगवान महावीर राजगृह के गुणशोल चैत्य में पधारते हैं वहाँ भगवान के समवसरण में बहुपुत्रिका नाम की देवी अपनी दिव्य शक्ति से अपनी दाहिनी भुजा से १०८ देवकुमार और बायीं भुजा १०८ देवकुमारियाँ उत्पन्न करती है, जैन परिभाषा में इस विकुर्वणा कहा जाता है। फिर वह इस लीला को लमेठ लेती है वह भी नाट्य-विधि आदि द्वारा अपना ऋद्धि का प्रदर्शन करता है। गणधर गौतम के समक्ष भगवान महावीर ने बड़ रोचक ढंग से उसके भूत वर्तमान और भविष्य का कथन किया है। भगवान महावीर फरमाते हैं—

किसी समय एक भद्र नाम का सार्ववाह था, उसकी सुभद्रा नाम की पत्नी थी। वह वन्ध्या थी। सन्तान-प्राप्ति के लिए वह हर समय मटकती रहती थी। उसने उपजब्ब सभी उपचार करवाये, पर सन्तान प्राप्त न हो सकी।

एक बार पंच महाव्रत धारिणी साध्वी सुव्रता जो महाराज उस नगर में पधारों। वे भिक्षार्थ भद्रा के घर गईं। भद्रा ने उनका सत्कार, सम्मान कर सन्तान न होने की चिन्ता साध्वी जी के सम्मुख रखी। वीतरागी श्रमणा ने जो उत्तर दिया वह सभी वर्तमान साधु-पाद्वियों के ध्यान में रखने योग्य है। साधवा सुव्रता ने कहा—“ऐसा उपाय बताना तो एक तरफ, जैन धर्म में सन्तान-उत्पत्ति के बारे में चिन्तन-मनन करना भी पाप है, क्योंकि हम ब्रह्मचारिणी साध्वियाँ निर्ग्रन्थनी (जैन साध्वी) हैं। हम तो जीव, अजीव आदि तत्त्वों का ही धर्म-उपदेश करती हैं।

सुभद्रा ब्राह्मणी सुव्रता आर्या से बहुत प्रभावित होती है। जैन साध्वी की चर्या से प्रभावित होकर वह स्वयं संयम अंगीकार कर लेती है, पर सन्तान के प्रति उसका मोह नहीं छूटता। वह बालकों को उबटन, शृंगार, भोजन, स्नान, क्रोड़ा आदि करवा कर मन को सन्तुष्टि करती है। पर यह सब कार्य श्रमणी-जीवनचर्या के प्रतिकूल थे। सुव्रता आर्या ने सुभद्रा श्रमणी को बहुत समझाया। पर वह बालक-बालिकों से अपना मन बहलाती रही। सुभद्रा श्रमणी अब अपनी गुरुणी की बात न मान कर अलग उपाश्रय में रहने लगी। गुरु के उपदेश का उस पर उल्टा प्रभाव पड़ा। वह सोचने लगी—“जब मैं घर पर थी तो स्वतन्त्र थी, अब पराधीन हो गई हूँ। तब यह श्रमणियाँ मेरी बहुत ही इज्जत करती थीं। श्रमणी बनने के बाद तो यह मेरा अपमान कर रही हैं। मार्ग-भ्रष्ट व्यक्ति के लिए सच्चा उपदेश भी प्राण-घातक प्रतीत होता है।

अन्त में बिना आलोचना किये वह मर कर सौधर्म कल्प में बहुपुत्रिका देवी बनी।

भविष्य में वह विभेल नामक सन्निवेश में सोमा ब्राह्मणी के रूप में उत्पन्न होगी। सोलह वर्षों तक विवाहित जीवन में ३२ युगल सन्तानों को जन्म देगी। यह बच्चे उसकी परेशानी का कारण बनेंगे, वह इन बच्चों से दुःखी हो कर पुनः साध्वी-जीवन ग्रहण करेगी। मृत्यु के पश्चात् पुनः देव बनेगी, फिर देव-आयु पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होगी। बहुपुत्रिका अध्ययन से पता चलता है कि सन्तान का न होना भी बुरा है और सन्तान का अधिक होना उससे भी ज्यादा बुरा

है। इस अध्ययन में स्त्री की मनोवैज्ञानिक स्थिति का अच्छा चित्रण किया गया है।

पञ्चम अध्ययन में पूर्णभद्र देव व उसके पूर्व भवों क तथा छठे अध्ययन में मणिभद्र व उसके पूर्वभवों का संक्षिप्त वर्णन है।

सातवें से दसवें अध्ययनों में दत्त, शिव, बल, अनादृत देवों के पूर्व भवों का वर्णन है।

पुष्पचूला

इस उपांग में भी दस अध्ययन हैं—१. श्री देवी, २. ह्री देवी, ३. धृतिदेवी, ४. कीर्ति-देवी, ५. बुद्धि देवी, ६. लक्ष्मी देवी, ७. ईला देवी, ८. सुरा देवी, ९. रस देवी और १०. गन्ध देवी।

प्रथम अध्ययन में श्री देवी के सौधमं कल्प देवलोक से आकर प्रभु महावीर को वन्दन करने, नाट्य विधि के प्रदर्शन का वर्णन है। भगवान ने उसका पूर्व भव बतलाते हुए बताया है कि “पूर्व भव में वह सुदर्शन सार्धवाह की भूता नामक कन्या थी जो जीवन अवस्था में ही वृद्धा दिखाई देती थी। इसी कारण उसका विवाह कहीं नहीं हो सका। एक बार प्रभु पार्श्व धर्म-प्रचार करते हुए, उस नगरी में पधारे। भूता ने प्रभु का उपदेश सुना और वह साध्वी बन गई। वह पुष्प चूला आर्यिका की शिष्या बनी। भूता साध्वाचार के विपरीत शरीर का हार-शृङ्गार करने लगी। साधना की तरफ उसका कोई ध्यान नहीं था। उसकी गुरुणी ने भूता साध्वी को यह कार्य छोड़ कर आलोचना करने का परामर्श दिया। पर भूता साध्वी को यह अनुकूल परामर्श भी प्रतिकूल लगा। वह रात-दिन शरीर एवं स्थान की जल से शुद्धि करने में ही लगी रहती थी। साध्वाचार के विपरीत कार्य करने कारण वह मर कर सौधम देवलोक में पैदा हुई।

शेष नौ देवियों का जीवन-वृत्त भी श्री देवी से बिल्कुल मिलता-जुलता है। सभी पूर्व भव में पुष्पचूला के पास साध्वियां बनीं। सभी को शृंगार आदि क्रियायें पसन्द थीं। सभी देवियां देव आयु क्षय कर महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध-बुद्ध मुक्त हो गईं।

वृष्णि दशा

इस उपांग के १२ अध्ययन हैं। नन्दी चूणि के अनुसार इस उपांग का नाम “अन्धकवृष्णि दशा” है। इस उपांग में वृष्णि वंशीय बारह राजकुमारों का वर्णन है जिनके नाम इस प्रकार हैं—

१. निषध कुमार, २. मातली कुमार, ३. वह कुमार, ४. वेह कुमार, ५. प्रगति कुमार, ६. ज्योति कुमार, ७. दशरथ कुमार, ८. दृढरथ कुमार, ९. महाधनु कुमार, १०. सप्त धनु कुमार, ११. दशधनु कुमार और १२. शतधनु कुमार। वृष्णि-वंश, यदु-वंश का दूसरा नाम है। प्रथम अध्ययन में बताया गया है कि प्राचीन काल में २२वें तीर्थङ्कर भगवान श्री अरिष्ट नेमि द्वारिका

पधारते हैं। उस द्वारिका के अधिपति श्री कृष्ण वासुदेव थे। उनके भ्राता बलदेव थे। बलदेव की महारानी रेवती के यहां निषध कुमार का जन्म होता है। निषध कुमार को हर प्रकार की शिक्षा-दीक्षा दी जाती है।

एक बार निषध कुमार भी अपने परिजनों के साथ भगवान श्री अरिष्टनेमि जो के उपदेश मुनता है। निषध कुमार के पूर्व भव के विषय में भगवान श्री अरिष्टनेमि के शिष्य वरदत्त पूछते हैं। भगवान उत्तर में फरमाते हैं—हे वरदत्त ! पूर्व भव में रोहितक नगर में महाबल नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी पद्मावती के वीरांग (वीरांगद) नाम का पुत्र हुआ। वह बहुत सुन्दर था। युवा होने पर वह मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों का सेवन करने लगा।

एक बार उस नगर में सिद्धार्थ नाम के आचार्य पधारे, उनके उपदेश से वह मुनि बन गया। ४५ वर्षों तक उसने संयम का पालन किया, अन्त समय समाधि-मरण द्वारा मर कर ब्रह्मलोक में देव बना। वहां से आयु पूर्ण करके वह निषध कुमार के रूप में पैदा हुआ है। पूर्व भव में पुण्योपाजन के कारण वह इस ऋद्धि एवं रूप लावण्य का स्वामी है।

कुछ समय बाद निषध कुमार भी भगवान अरिष्टनेमि का शिष्य बन गया। अन्तिम समय उसने जीवन का लक्ष्य निर्वाण प्राप्त किया।

इस प्रकार शेष अध्ययनों का वर्णन भी निषध कुमार की तरह समझना चाहिये। इस प्रकार निरयावलिका श्रुत-स्कन्ध समाप्त हुआ। उपांग समाप्त हुए। निरयावलिका उपांग का एक ही श्रुत-स्कन्ध है, इसके पांच वर्ग हैं, यह पांच वर्ग पांच दिनों में उपदिष्ट करने का विधान है। पहले से चौथे तक वर्गों के १०-१० अध्ययन और पांचवें के १२ अध्ययन हैं।

आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी शास्त्री निरयावलिका की भूमिका में लिखते हैं* कि निरयावलिका के उपसंहार में निरयावलिका की समाप्ति की सूचना दी गई है। पुनः वृष्णि-दशा के अन्त में भी निरयावलिका के समाप्त होने की सूचना प्राप्त होती है। दो बार एक ही बात की सूचना कैसे दी गई? इस सूचना में उपांग समाप्त हुए यह भी सूचित किया गया है। इससे यह तो स्पष्ट है कि वर्तमान में पृथक्-पृथक् कल्पिता, कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका और वृष्णि - दशा ये पांचों उपांग किसी समय एक ही उपांग के रूप में प्रतिष्ठित थे।

हमारी दृष्टि में यह विषय अभी शोध का विषय है, क्योंकि नन्दी सूत्र में इन पांच उपांगों को अलग परिगणित किया गया है।

निरयावलिका के अनुवाद

आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी आगे लिखते हैं — 'कथा प्रधान होने के कारण निरयावलिका पर न निर्युक्तियां लिखी गईं, न भाष्य व चूणियों का निर्माण हुआ। केवल श्री चन्द्र सूरि* ने

*भूमिका श्री निरयावलिका पृष्ठ २६ आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी शास्त्री।



साध्वी सुश्री सुधा जी महाराज

संस्कृत भाषा में निरयावलिका, कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूला और वृष्णि - दशा पर संक्षिप्त और शब्दार्थ स्पर्शी वृत्ति लिखी है।

श्री चन्द्र सूरि का ही अपर नाम पार्श्वदेव गणि था, जो शीलभद्र सूरि के शिष्य थे। उन्होंने विक्रम संवत् ११७४ में निशीथचूर्णि पर दुर्गपद व्याख्या लिखी थी और थमणोपासक प्रतिक्रमण, नन्दी, जीत-कल्प, बृहच्चूर्णि आदि पर भी टीकाएं लिखी हैं। प्रस्तुत आगम के प्रारम्भ में आचार्य ने भगवान् श्री पार्श्व को नमस्कार किया है।

पार्श्वनाथ, नमस्कृत्य प्रायोऽन्यग्रन्थस्थिता।

निरयावलिभूत-स्कन्ध व्याख्या काचित् प्रकाशयते ॥

वृत्ति के अन्त में वृत्तिकार ने न तो अपना नाम दिया है और न गुरु का निर्देश किया है। ग्रन्थ की जो मुद्रित प्रति है उसमें "इति श्री चन्द्र सूरि विरचित निरयावलिका श्रुत स्कन्ध विधरण समाप्तेति, केवल" इतना ही उल्लेख है। वृत्ति का ग्रन्थ मान ६०० श्लोक प्रमाण है। बड़े लम्बे अन्तराल के पश्चात् आचार्य श्री घासी लाल जो महाराज ने इस पर संस्कृत टीका लिखी है।

इस शास्त्र का आगमोदय समिति द्वारा संवत् १९२८ में चन्द्र सूरि की वृत्ति सहित प्रथम प्रकाशन हुआ। इससे पूर्व सन् १८८४ में आगम संग्रह बनारस से इसका गुजराती विवेचन छपा। १९३२ में श्री पी. एल. वैद्य पूना द्वारा, सन् १९३० में ए. ए. एस. गोपानी और बी. जे. चौकसी का अंग्रेजी अनुवाद छपा था। १९३४ में इसका गुर्जर ग्रन्थ कार्यालय अहमदाबाद से भावानुवाद निकला। वि. सं० १९४५ में आचार्य श्री अमोलक ऋषि जी ने इसका हिन्दी अनुवाद किया। आचार्य श्री आत्माराम जो महाराज ने शुद्ध पाठ के लिये अंग्रेजी अनुवाद व अमोलक ऋषि जी वाले अनुवाद का अनुकरण किया है। ऐसा आपने अपनी भूमिका में लिखा है।

श्री पुष्पभिक्षु ने १९५४ में ३२ आगमों का शुद्ध पाठ छपवाया। वाचना प्रमुख आचार्य श्री तुलसी जी ने इसका शुद्ध पाठ छपवाया था। अन्य कई स्थानों से इसके हिन्दी अनुवाद व गुजराती अनुवाद छप चुके हैं। इस उपांग का पंजाबी अनुवाद हमारे द्वारा हो चुका है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।

विदेशों में इस उपांग पर काफी कार्य हुआ है। इसकी सूचना हमें फ्रांस की प्रसिद्ध जैन विदुषी डा० नलिनी बलवीर ने अपने अभिनन्दन-ग्रन्थ में दी है। डा० वारेन ने १८७८ में एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर इस आगम का सम्पादन किया था। इसके सौ साल बाद बैल्जियम के प्रोफेसर दलो ने इसका पुनः प्रकाशन किया। इसमें चाहे मूल अनुवाद न हो पर उपांग की विस्तृत भूमिका है, जो डव भाषा में लिखी गई है। अब श्री मधुकर मुनि जी महाराज के निर्देशन में डा० देव कुमार का हिन्दी अनुवाद छपा है।

इस उपांग का प्रथम उपांग भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण कड़ी है। इस उपांग की नई

घटनाएं भारतीय इतिहास की टूटी कड़ियां जोड़ती हैं। यह उपांग युद्ध के भयंकर खतरों से हमें सावधान करता है।

प्रस्तुत अनुवाद के कर्ता व मुख्य सम्पादिका

प्रस्तुत अनुवाद कैसा बन पड़ा है? इसका निर्णय विद्वद्वर्ग ही करेगा। स्थानकवासी श्रमण-संघ के प्रथम शास्ता आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज ने इस प्रागम का अनुवाद आज से ४७ वर्ष पहले किया था। आचार्य श्री जी ने अपने जीवन में २० आगमों पर टीकाएँ लिखीं। आप हिन्दी भाषा के प्रथम आगमों के टीकाकार थे। राहों के एक क्षत्रिय परिवार में उत्पन्न हो उन्होंने अपने जीवन का अधिक भाग शास्त्रों की शोध में लगा दिया। उनकी बाहर की नेत्र-ज्योति चली गई थी। पर आत्म-ज्योति का दीपक निरन्तर जलता रहा।

हमारी गुरुणी जैन-ज्योति, उपप्रवर्तिनी श्री स्वर्णकान्ता जी महाराज के हम पर बहुत उपकार हैं। उनका प्रत्येक कार्य अद्वितीय होता है। कार्य निर्वाण शताब्दी का हो, चाहे किसी अवार्ड का आप हर कार्य में आगे हैं। हर समय तप, स्वाध्याय के लिये उनका जीवन समर्पित है। आप पंजाबी जैन साहित्य की प्रेरिका व लेखिका हैं। उनकी प्रेरणा से ४० से ज्यादा पुस्तकें पच्चीसवीं महावीर निर्वाण शताब्दी संयोजिका समिति पंजाब द्वारा प्रकाशित हो चुकी हैं। अनेक पुस्तकों का राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान हुआ है।

भगवान महावीर नामक पुस्तक इस समय पटियाला विश्वविद्यालय के बी.ए. की पाठ्य-क्रम में लगी हुई है। उनकी शिष्यानुशिष्या भी उनका अनुकरण करती हुई तप-स्वाध्याय में लगी रहती हैं। उनकी बलवती इच्छा थी कि आचार्य श्री के किसी प्रागम का प्रकाशन हमारी संस्था के माध्यम से हो। इस शुभ कार्य में प्रमुख सहयोग रहा आत्म-कुल-कमल दिवाकर श्री रत्न मुनि जी महाराज का जिन्होंने साध्वी जी की इच्छा का सम्मान करते हुए अपने गुरु की धरोहर हमें देने में कोई संकोच नहीं किया।

पांच साल साध्वी श्री स्वर्णकान्ता जी महाराज के सान्निध्य में सम्पादक-मण्डल कार्य करता रहा। हम जहां इस कार्य में साध्वी जी का उपकार मानते हैं वहां अनन्त उपकार श्री रत्न मुनि जी महाराज का मानते हैं। उनके इस उपकार का हम ऋण कभी नहीं चुका सकते।

वर्तमान आचार्य-सम्राट् श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज के आशीर्वाद एवं उत्तर भारतीय प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज की असीम अनुकम्पा से हमने यह प्रकाशन-कार्य आरम्भ कर दिया।

शुभ कार्य में देरी तो होनी सहज है। हमारे परम अद्वेय श्री तिलकधर जी शास्त्री इस अन्तराल में काफी बीमार रहे, कुछ प्रेस की गड़बड़ी के कारण प्रकाशन में विलम्ब हुआ। सब कुछ

होते हुए भी हमने कार्य सतत जारी रखा। साध्वी श्री जी मुख्य सम्पादिका बनीं। चार सम्पादक हमारे अतिरिक्त श्री तिलकधर जी शास्त्री व साध्वी श्री स्मृति जी महाराज एम. ए., साध्वी श्री स्वर्णकान्ता जी महाराज की शिष्या साध्वी श्री सुधा जी महाराज, साध्वी श्री राजकुमारी जी महाराज, साध्वी श्री संतोष जी महाराज, साध्वी श्री वीरकान्ता जी महाराज का सहयोग हम कंसे भुला सकते हैं? प्रेस कापी तैयार करने में उनका प्रमुख हाथ रहा है। साध्वी श्री सुधा जी महाराज तो हमारी दिशा-निर्देशिका रही हैं।

प्रस्तुत संस्करण

हमारी दृष्टि में आज तक छपे सभी संस्करणों से इस ग्रंथ का आकार बड़ा है। इसमें उत्थानिका मूल पाठ, संस्कृत-छाया, पदार्थान्वय, मूलार्थ, हिन्दी टीका बड़ी सरल व स्पष्ट है। कई जगह आचार्य श्री ने अपनी विद्वत्ता का प्रमाण देते हुए कुछ स्पष्टीकरण दिये हैं जैसे कि रानी चेलना द्वारा मांसाहार व सेना की गिनती में "कोटि" शब्द के अर्थ चिन्तनीय हैं। हमारी दृष्टि में पहले किसी अनुवाद में ऐसा नहीं हुआ।

ग्रन्थवाद

हम इस ग्रन्थ के सम्पादक होने के साथ-साथ प्रबन्ध सम्पादक भी हैं। इस नाते हम साध्वी श्री की ओर से गुरुदेव विद्वद्-रत्न श्री रत्न मुनि जी महाराज के प्रति श्रद्धान्वित कृतज्ञता प्रकट करते हैं। श्रमण-सघीय मल्लहकार श्री ज्ञान मुनि जी महाराज तो हमारे मार्ग-दर्शक हैं, उन्होंने हमारे मन में समय-समय पर उठी शंकाओं के समाधान देकर हमें कृतार्थ किया है। वे तो हमारी कृतज्ञता को स्वीकार करेंगे ही। अनेक बार पदार्थान्वय में भी उनकी विद्वत्ता का लाभ हमें मिला। भविष्य में भी उनका सहयोग इसी प्रकार मिलता रहे, यही शासनदेव से प्रार्थना है।

साधु-रत्न युवाचार्य डा० श्री शिव मुनि जी महाराज, आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज, आचार्य श्री विजयेन्द्र दिक्षु सूर्यश्वर जी महाराज एवं साध्वी डा० श्री मुक्तिप्रभा जी महाराज आदि के आशीर्वादों का ही फल है कि यह दुस्तर कार्य सम्पन्न हो पाया है। इसके साथ ही साध्वी डा० श्री साधना जी व दर्शनआचार्य श्री चन्दना जी महाराज (राजगृही) आदि के आशीर्वादों के लिए भी आभारी हैं।

आभार-प्रदर्शन

आदरणीय बहिन डा० नलिनी बलवीर पटियाला विश्वविद्यालय में जैन धर्म पढ़ाती हैं। प्राकृत, संस्कृत की विद्वत् हैं। उन्होंने हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर दो शब्द लिख कर भेजे हैं। ये शब्द उनको विद्वत्ता के जीते-जागते प्रमाण हैं। हम उनका भी आभार मानते हैं। श्री तिलकधर जी शास्त्री के प्रति हम पुनः आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने अपने स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए इस कार्य की पूर्णता एवं व्यवस्था में अपेक्षा से अधिक सहयोग दिया है।

शास्त्र-प्रकाशन के सम्पन्न होने की शुभ वेला में हम जैन साध्वी श्री सन्तोष जी महाराज के विशेष कृतज्ञ हैं जिन्होंने हमें सम्पादन - कार्य में सतत सहायता प्रदान की है। प्रस्तुत शास्त्र की प्रेस कापी भी आपके कर-कमलों से ही तैयार हुई। आप बड़ी प्रतिभाशाली साध्वी हैं। आप लम्बे समय से गुरुणी साध्वी श्री स्वर्णकान्ता जी महाराज के चरणों में दीक्षित होकर स्वाध्याय, आत्म-चिन्तन एवं ध्यान में लीन रहती हैं। आपने शास्त्र का प्रेस कापी प्रस्तुत कर हम पर जो उपकार किया है उसे हम कैसे भुला सकते हैं? आपने इस शास्त्र की प्रेस कापी ही तैयार नहीं की, बल्कि हमें समय-समय पर परामर्श व दिशा-निर्देश भी दिया है। भविष्य में भी आप श्री के आशीर्वाद हमें मिलते रहेंगे, ऐसी आशा है।

हम शास्त्र-प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देने वाले दानियों को भी कैसे भूल सकते हैं जिन्होंने आचार्य श्री की भक्ति का प्रमाण देते हुए समिति को विपुल धन-राशि प्रदान की है, जिससे गुरुणी जी का स्वप्न साकार हो सका है।

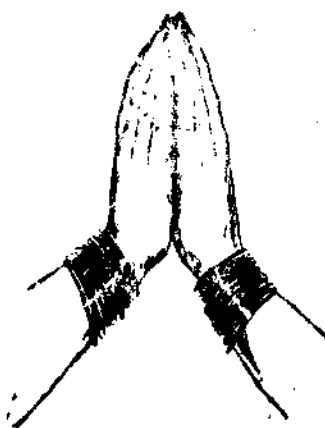
साध्वी श्री स्मृति जी महाराज एम० ए० का यह प्रथम सम्पादन है। आप भी वधार्थ की पात्र हैं। डा० श्री धर्मचन्द जी जैन जिन्होंने सम्पादक-परिचय लिखकर हमारा उत्साह बढ़ाया है हम समिति की ओर से उनके प्रति सादर आभार व्यक्त करते हैं। हम उन समस्त प्रकाशकों, लेखकों के भी आभारी हैं, जिनकी पुस्तकों से हमें सहायता प्राप्त हुई है।

हम सम्पादक मण्डल की ओर से आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज की दीक्षा शताब्दी पर और समिति के रजत-जयंती वर्ष पर आचार्य श्री की यह कृति उपप्रवर्तिनी साध्वी-रत्न श्री स्वर्ण कान्ता जी महाराज के कर-कमलों में सादर समर्पित करते हैं।

श्री-सच के दास

रवीन्द्र बंस, पुढोत्तम जैन (प्रबन्ध सम्पादक)

जैन भवन, मालेर कोटला (संगरूर)



श्रमण संघ के तृतीय पट्टधर आचार्य-सम्राट् जैन-धर्म-दिवाकर पूज्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज

के

आशीर्चन

★

जैन आगम साहित्य भारतीय ज्ञान-विज्ञान का अक्षय कोश है, आत्मा-परमात्मा, जीव-जगत, पुनर्जन्म, कर्म-प्रवृत्ति आदि विषयों पर जितना विशद रूप से जेनागमों का विश्लेषण हुआ है उतना विश्व के अन्य साहित्य में कहीं नहीं हुआ। चाहे आध्यात्मिक प्रश्न हो चाहे दार्शनिक प्रश्न हो, चाहे आचार का प्रश्न हो, चाहे विचार का, सभी प्रश्नों का सटीक समाधान जैन ग्रन्थों में मिलता है। आगम साहित्य अंग उपांग, मूल छेद आदि के रूप में विभक्त है।

जिस अर्थ के प्ररूपक तोर्थकर हैं और सूत्र के रचयिता गणधर हैं वह ग्रंथ साहित्य है और जिसके अर्थ के प्ररूपक तोर्थङ्कुर और सूत्र के रचयिता गणधर या स्थविर हैं, वह अंग-बाह्य आगम है। उपांग सूत्र अङ्ग बाह्य आगमों में है। निरियावलिका यह उपांग सूत्र है। कप्पिया, कप्पवडंसिया, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वल्लीदशा इन पाँचों का समवाय निरियावलिका के नाम से विश्रुत है।

प्रस्तुत आगम में भगवान महावीर के परम भवत सम्राट् श्रेणिक और उसके पारिवारिक जनों का विस्तार से निरूपण है। अनेक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विषयों का इसमें निरूपण हुआ है। आगम साहित्य में प्रस्तुत आगम का अपना अनूठा स्थान है।

महामहिम जैन-धर्म-दिवाकर स्वर्गीय आचार्य-सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज ने विक्रम संवत् २००३ में प्रस्तुत आगम पर विस्तार से विवेचन लिखा था। अन्य आगमों के साथ उस समय प्रस्तुत आगम का प्रकाशन किन्हीं कारणों से नहीं हो सका।

परम आल्लाह का विषय है कि परम-विदुषी साध्वी-रत्न उपप्रवर्तिनी श्री स्वर्णकान्ता जी म० के प्रधान सम्पादकत्व में सम्पादक मण्डल—श्री सुधा जी महाराज की शिष्या साध्वी श्री स्मृति जी महाराज, श्री तिलकधर शास्त्री एवं एक प्राण दो देह के रूप में प्रसिद्ध रवीन्द्र जैन पुरुषोत्तम जैन ने प्रस्तुत आगम का पुनः सम्पादन कर स्वर्गीय आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के श्री चरणों में अपनी अनन्त आस्थाएं व्यक्त की हैं और स्वर्गीय आचार्य-सम्राट् के दीक्षा शताब्दी वर्ष पर मां भारती के मण्डार में एक ओर ग्रन्थ-रत्न समर्पित कर शासन की गरिमा में बार-बार लगाये हैं, एतदर्थ श्री स्वर्ण कान्ता जी महाराज एवं सम्पादक मण्डल साधुवाद के पात्र हैं।

आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज



आप के शुभाशीर्वाद से प्रस्तुत ग्रन्थ निरयावलिका पूर्ण हो पाया है।

आप की ही कृपा-दृष्टि से उपप्रवर्तिनी जिन-शासन-प्रभाविका श्री स्वर्णकांता जी महाराज
ने प्रस्तुत ग्रन्थ निरयावलिका का सम्पादन-कार्य पूर्ण किया है।

श्री निरयावलिकासूत्रम्

संस्कृत छाया व हिन्दी भाषा टीका सहितम्

१. निरयावलियाओ

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहणामं णयरे होत्था, रिद्ध० (उत्तर पुरिच्छिमे दिसीभाए) गुणसिलए चेइए, वण्णओ० । असोगवरपायवे पुढविसिलापट्टए, वण्णओ० ॥ १ ॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नाम नगरमभवत्, ऋद्ध (उत्तर-पौरस्थे) दिग्भागे गुणशैलकः चैत्यम् (वर्णकः), अशोकवरपादपः, पृथ्वीशिलापट्टकः ॥ १ ॥

पदार्थान्वयः—तेणं कालेणं—अवसर्पिणी काल के चतुर्थ भाग में, तेणं समएणं—उस विशेष समय में, रायगिहे णामं—राजगृह नाम वाला, णयरे—नगर, होत्था—था, रिद्ध—ऋद्धि आदि से युक्त, (उत्तर पुरिच्छिमे दिसीभाए)—उत्तर और पूर्व दिशा के विभाग में, गुणसिलए—गुणशैलक नाम वाला, चेइए—चैत्य व्यन्तरायतन, वण्णओ०—उसका विशेष वर्णन समझना, असोगवरपायवे—अशोक नाम वाला एक (औपपातिकवत्) वृक्ष, पुढवीसिला-पट्टए—उसके नीचे पृथ्वी शिला का सिंहासन रूप पट्टक था, चण्णओ—जैसा कि वर्णन किया गया है।

मूलार्थ—उस काल उस समय में एक राजगृह नामक नगर था जो ऋद्धि आदि से युक्त था, उसके ईशान कोण की दिशा में, गुणशैल नाम वाला चैत्य था, उसका (औप-पातिक-सूत्र जैसा) वर्णन समझना, उस चैत्य में एक अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वी-शिला का पट्टक था।

टीका—इस सूत्र में राजगृह नगरी का संक्षेप में वर्णन किया गया है। जिस प्रकार औप-पातिक सूत्र में चम्पा नाम की नगरी का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है, ठीक वैसा ही वर्णन राजगृह

नगर का जानना चाहिए, किन्तु सूत्रकार ने नगर के स्वरूप का वर्णन अत्यन्त संक्षेप में किया है।

काल शब्द से अवसर्पिणी काल के चतुर्थ भाग को समझना चाहिये और “तस्मिन् समये” शब्द से वह विशेष समय जानना चाहिये, जैसे कि उस समय मगध प्रान्त में राजगृह नाम का एक प्रसिद्ध नगर था, जिस पर श्रेणिक नाम के राजा का राज्य था, वहां श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, इत्यादि विषय जानने चाहिये।

मूल पाठ में ‘रिद्ध’ पद देकर विषय को पूर्ण किया गया है, किन्तु कुछ हस्त-लिखित प्रतियों में “रिद्धित्थिमिय-समिद्धे” इस प्रकार का पाठ प्राप्त होता है, जिसका भाव यह है कि वह नगर भवनादि से युक्त भय-रहित और धन-धान्यादि से परिपूर्ण था। कुछ हस्तलिखित प्रतियों में गुणशैलक पद से पूर्व ‘तत्थण’ पद दिया गया है और कुछ हस्तलिखित प्रतियों में यह समग्र पाठ निम्न प्रकार से प्राप्त होता है—तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे होत्था, रिद्धित्थिमिय-समिद्धे, तत्थणं रायगिहे नामं नगरे बहिंया उत्तर पुरत्थिमे विसीभाए, तत्थणं गुणसिलए नामं चेइए होत्था।” इसका भाव यह है कि उस समय राजगृह नाम का एक नगर था, वह नगर अत्यन्त समृद्ध था, उस राजगृह नगर के बाहर उत्तर-पश्चिम भाग में एक गुण शैलक नाम का चैत्य था।

‘वण्णओ’० पद से औपपातिक सूत्र में जो नगरी का वर्णन किया गया है वह सब यहां पर समझ लेना चाहिये और साथ ही गुणशैल नामक चैत्य का वर्णन भी जान लेना चाहिये। जैसे कि—“वण्णओ” स्ति चैत्यवर्णको वाच्यः”।

राजगृह नगर—यह नगर भवनादि वैभव से सम्पन्न सुशासित, सुरक्षित एवं धन-धान्य से समृद्ध था। वहां नगर-जन और जानपद प्रमोद के प्रचुर साधन होने से प्रमुदित रहते थे। निकटवर्ती कृषि-भूमि अतीव रमणीय थी। उसके चारों ओर आस-पास ग्राम बसे हुए थे। सुन्दर स्थापत्य-कला से सुशोभित चैत्यों और पथ-तरुणियों के सन्निवेशों का वहां बाहुल्य था। तस्करों आदि का अभाव होने से वह नगर क्षेम रूप सुख-शान्तिमय था। सुभिक्ष होने से भिक्षुओं को वहां सुगमता से भिक्षा मिल जाती थी। वह नट-नर्तक आदि मनोरंजन करने वालों से व्याप्त—सेवित था और उद्यानों आदि की अधिकता से तन्दन वन सा प्रतीत होता था। सुरक्षा की दृष्टि से वह नगर खात, परिखा एवं प्राकार से परिवेष्टित था। नगर में शृंगटक—सिंघाड़े जमे आकर वाले त्रिकोणाकार चौराहे तथा राजमार्ग बने हुए थे। वह नगर अपनी सुन्दरता से दर्शनीय, मनोरम और मनोहर था।

गुणशैलक चैत्य—वह चैत्य नगर के बाहर ईशान कोण में था। यह चैत्य अत्यन्त प्राचीन एवं विख्यात था। भेंट के रूप में प्रचुर धन-सम्पत्ति उसे प्राप्त होती थी। वह जनसमूह द्वारा प्रशंसित था। छत्र, ध्वजा, धंटा, पताका आदि से परिमंडित था। उसका आंगन लिपा-पुता था और दीवारों पर लम्बी-लम्बी मालाएं लटकी रहती थीं। वहां स्थान-स्थान पर गौरोक्ष्म, चंदन आदि के धागे लगे हुए थे। काले अगर आदि की धूप की मधमघाती मंहक से वहां का वातावरण गंध-वर्तिका जैसा प्रतीत होता था और नट, नर्तक, भोजक मागध-चारण आदि यशोगायकों से व्याप्त रहता था। दूर-दूर तक

के देशवासियों में उसकी कीर्ति बखानी जाती थी और बहुत से लोग वहां मनौती पूर्ण होने पर मनो-
तिथां देने आया करते थे । वे उसे अर्चनीय, वंदनीय, नमस्करणीय, कल्याणकारक, मंगलरूप एवं
दिव्य मान कर विशेष रूप से उपासनीय मानते थे । विशेष पर्व-त्यौहारों पर हजारों प्रकार की पूजा-
उपासना वहां की जाती थी । बहुत से लोग वहां आकर जय-जयकार करते हुए उसकी पूजा-अर्चना
करते थे ।

वनखण्ड—वह गुणशिलक चैत्य चारों ओर से एक वनखण्ड से घिरा हुआ था । वृक्षों की
सघनता से वह काली आभावाला, शीतल आभावाला, एवं सलौनी आभावाला दिखता था । वहां
के सघन एवं विशाल वृक्षों की शाखाओं-प्रशाखाओं के परस्पर गुंथ जाने से ऐसा रमणीक दिखता
था मानो सघन मेघ घटाएं घिरी हुई हों ।

अशोक वृक्ष—उस वनखण्ड के बीचों-बीच एक विशाल एवं रमणीय अशोक वृक्ष था । वह
उत्तम मूल, कंद, स्कन्ध, शाखाओं, प्रशाखाओं, प्रवालों, पत्तों, पुष्पों और फलों से सम्पन्न था । उसका
सुघड़ और विशाल तना इतना विशाल था कि अनेक मनुष्यों द्वारा भुजाएं फैलाए जाने पर भी धरा
नहीं जा सकता था । उसके पत्ते एक दूसरे से सटे हुए, अधामुख और निर्दोष थे । नवीन पत्तों, कोमल
किसलयों आदि से उसका शिखर भाग सुशोभित था । तोता, मैना, तोतर, बटेर, कोयल, मयूर आदि
पक्षियों के कलरव से गूंजता रहता था । वहां मधु-लोलुप भ्रमर-समूह मस्तो में गुनगुनाते रहते थे ।
उसके आस-पास में अन्यान्य वृक्ष, लताकुंज, मंडप आदि शोभायमान थे । वह अशोक तृप्तिप्रद विपुल
सुगंध को फैला रहा था । अतिविशाल परिधिवाला होने से उस के नीचे अनेक रथ, डोलियां, पालकियां
आदि ठहर सकती थीं ।

पृथ्वीशिलापट्टक—उस अशोक वृक्ष के नीचे स्कन्ध से सटा हुआ एक पृथ्वीशिलापट्टक रक्खा
था । उसका वर्ण काला था और उसकी प्रभा अंजन, मेघमाला, नील कमल, केश-राशि, खंजन पक्षी,
मैस के सींग के गर्भभाग, जामुन के फल अथवा अलसी के फूल जैसी थी । वह अत्यन्त चिकना था । वह
अष्टकोण था और दर्पण के समान सम, सुरम्य एवं चमकदार था । उस पर ईहामृग, भेंड़िया, वृषभ,
वश्व, मगर, विहग (पक्षी), व्याल (सर्प), कित्रर, रुह (हिरण विशेष) शरभ, कुंजर, वनलता, पद्म-
स्रता आदि के चित्र उकेरे हुए थे । उसका स्पर्श मृगछाला, रुई, मक्खन और अर्कतूल (आक की रुई)
आदि के समान सुकोमल था । इस प्रकार का वह शिलापट्टक मनोरम, दर्शनीय मोहक और
बलिव मनोहर था ।

“तेजं कालेण तेजं समएणं”—ये दोनों ही पद सप्तमी के अर्थ में तृतीयान्त दिए गए हैं
तथा यदि “णं” वाक्यालङ्कार अर्थ में लिया जाए और मागधी का एकारान्त शब्द माना जाए तो
फिर उस एकारान्त को छेद कर केवल “ते” शब्द का सप्तमी के अर्थ में प्रयोग होता है, अर्थात्
“तस्मिन् काले तस्मिन् समये” इन शब्दों के द्वारा वह विशेष समय ग्रहण करना चाहिये ।

आर्य सुधर्मा स्वामी का आगमन

मूल—तेणं कालेणं तंणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्जसुहम्मं नामं अणगारे जाइसंपन्ने जहा केसी (जाव०) पंचहिं अणगार-सएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जणव रायगिहे नयरे (जाव) जहापडिरुवं उगगहं ओगिण्हित्ता संजमेणं (तवत्ता अप्पाणं भावेमाणे) जाव विहरइ । परिसा निग्गया । धम्मो कहिओ, परिसा पडिग्गया ॥२॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अंतेवासी आर्यसुधर्मः नाम अनगारः जातिसम्पन्नः यथा केशो यावत् पंचभिः अनगरशतैः साद्धं सह संपरिवृतः पूर्वानुपूर्वश्च चरमाणे यस्मिन्नेव देशे राजगृहं नगरं यावत् यथाप्रतिरूपं अवग्रहं अवगृह्य संयमेन यावत् विहरति । परिषद् निर्गता, धर्मः कथितः । परिषत् प्रतिगता ॥२॥

पदार्थान्वय —तेणं कालेणं—उस काल, तेणं समएणं—उस समय में, समणस्स—श्रमण, भगवओ—भगवान्, महावीरस्स—महावीर का, अंतेवासी—शिष्य, अज्जसुहम्मं—आर्य सुधर्मा, नामं—नाम वाला, अणगारे—अनगार, जाइसंपन्ने—जाति-सम्पन्न, जहा—जैसे, केसी—केशी कुमार श्रमण थे, जाव—यावत्, पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं—पांच सौ अनगारों के साथ, संपरिवुडे—संपरिवृत अर्थात् संयुक्त, पुव्वाणुपुव्विं चरे माणे—पूर्वानुपूर्वी—अनुक्रम पूर्वक विचरते हुए, जेणव—जहाँ पर, रायगिहे नगरे—राजगृह नगर, जाव—यावत्, जहापडिरुवं—यथा प्रतिरूप मुनिजन वे यथोचित, उगगहं—निवास, ओगिण्हित्ता—आज्ञा लेकर, संजमेणं—संयम से, जाव—यावत् विहरइ—विचरते हैं । परिसा—परिषद्, निग्गया—नगर से निकली, धम्मो कहिओ—श्री भगवान् ने धर्म-कथा कथन की । परिसा पडिग्गया—परिषद् नगर को ओर चली गई ।

मूलार्थ—उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शिष्य आर्य सुधर्मा नाम वाले अनगार थे जो कि केशी कुमार श्रमण की भांति जाति-सम्पन्न थे वे ५०० अनगारों के साथ संपरिवृत होकर अनुक्रमता पूर्वक चलते हुए जहाँ पर राजगृह नगर था (वहाँ पधारे) यावत् यथाप्रतिरूप मुनिजनों के उचित आवास की आज्ञा लेकर संयम और तप के द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे। वन्दनादि के लिए परिषद् आई, श्री भगवान् ने धर्म-कथा वर्णन की । परिषद् धर्म-कथा सुनकर नगर की ओर चली गई ।

टीका—उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शिष्य जाति-सम्पन्न आर्य सुधर्मा

स्वामी वहाँ आये, उनका वर्णन जिस प्रकार राजप्रश्नीय सूत्र में श्रमण-केशी कुमार जी का किया गया है ठीक उसी प्रकार जान लेना चाहिये। वे गुणों से युक्त ५०० मुनियों के साथ अनुक्रमता पूर्वक विचरते हुए राजगृह नगर के बाहर गुणशैल नामक चैत्य में साधु के योग्य उपकरणों को आज्ञा लेकर संयम और तप के द्वारा अपनी आत्मा को विशुद्ध करते हुए विचरने लगे।

कुछ हस्तलिखित प्रतियों में “चरे माणे” के अनन्तर “गामानुगामं दुइज्ज माणे” पाठ भी प्राप्त होता है जिसकी आचार्य श्री चन्द्र सूरि विरचित निरयावलिया सूत्रवृत्ति में इस प्रकार व्याख्या की गई है।—

“गामानुगामं दुइज्जमाणे” ति ग्रामानुगामश्च विवक्षितग्रामादनन्तरं ग्रामो ग्रामानुगामं तत् इवन्—गच्छन् एकस्माद् ग्रामादनन्तरं ग्रामं स्तुल्लंघयन्नित्यर्थः, अनेनाप्रतिबद्धं विहारमाह। तत्राप्योत्सुक्याभावमाह सुहं सुहेणं विहरमाणे सुखं सुखेन—शरीरखेदाभावेन संयमाऽऽवाद्याभावेन च विहरन् ग्रामादिषु वा तिष्ठन्।” इसका अभिप्राय यह है कि जिस ग्राम से वे चलते थे उस ग्राम से दूसरे अभीष्ट ग्राम तक जो बीच में छोटे ग्राम पड़ते थे उनमें भी वे उपदेश देते हुए आगे बढ़ते थे, और वह भी बिना थकावट के सुख पूर्वक।

इस कथन से यह भली-भान्ति सिद्ध हो जाता है कि विहार-क्रिया में प्रवृत्त होते हुए, विनय पूर्वक चलना चाहिए और प्रत्येक ग्राम में उपदेश करते हुए सफल विहार-चर्या करनी चाहिए। ‘सुहं सुहेणं’ इस पद से यह सिद्ध किया गया है कि जिस प्रकार शरीर और संयम में कोई बाधा न हो उस प्रकार विचरना चाहिए।

सूत्र-कर्त्ता ने यहां सुधर्मा जी की केशी कुमार श्रमण से उपमा दी है जिसका भाव यह है कि आर्य सुधर्मा में समग्र साधूचित गुण तो थे ही, इसके साथ वे चतुर्दश पूर्वों के पाठों और चार ज्ञान से युक्त भी थे। जैसे कि वृत्तिकार का कथन है—

“चोहसपुब्बो-चउनाणोवणए” चतुर्जानोपयोगतः केवलवर्जज्ञानयुक्तः। (श्रमण श्रेष्ठ केशी कुमार का विस्तृत वर्णन राज प्रश्नीय सूत्र में विस्तार से किया गया है)

एक हस्तलिखित प्रति में निम्नलिखित पाठ भी प्राप्त हुआ है—

जेणेव रायगिहे नयरे जेणेव गुणसिलए नामं चेइय जेणेव असोगवरपायवे पुढविसिलापट्टए तेणेव उवागए, अहापडिरूढं उगहं उभिण्हिता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे जाव विहरइ।

इस पाठ का भाव भी उपर्युक्त पक्तियों से मिलता-जुलता होने से हम उसकी पुनः व्याख्या नहीं कर रहे।

तत्परचात् नगर की परिषद् श्रद्धालु जनता धर्म-कथा सुनने के लिए उस वाग में आई, फिर धर्म-कथा सुन कर अपने-अपने स्थानों पर चली गई।

इस विषय का विशद वर्णन विस्तार पूर्वक जानने के लिये जिज्ञासुओं को औपपातिक सूत्र का स्वाध्याय करना चाहिए।

उत्थानिका—तत्परचात् क्या हुआ ? अब सूत्रकार इसी विषय में कहते हैं—

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स अंतेवासी जम्बूनामं अणगारे समचउरंससंठाणसंठिए, जाव० संखित्त-विउलतेयलेस्से अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स अदूरसामंते उड्ढंजानू जाव विहरइ ॥३॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये आर्यसुधर्मानगरस्य अन्तेवासी जम्बूना-
माऽनगरः समचतुरस्रसंस्थान-संस्थितः यावत् संक्षिप्तविपुलतेजोलेश्यः आर्य सुधर्मस्य
अनगरस्य अदूरसामन्तम् उड्ढंजानुः यावत् विहरति ।

पदार्थान्वयः—तेणं कालेणं—उस काल—अवसर्पिणी काल के चतुर्थे विभाग, तेणं समए णं—
उस समय वहाँ जिस समय श्री सुधर्मा स्वामी विराजमान थे, अज्जसुहम्मस्स—आर्यसुधर्मा स्वामी,
अणगारस्स—अनगर के, अन्तेवासी—शिष्य, जम्बूनामं अणगारे—जम्बू नामक अनगर, (जो)
समचउरंस—सम चतुरस्र (चौरस), संठाणसंठिए—संस्थान से संस्थित थे, जाव—यावत्, संखित्त-
विउलतेयलेस्से—संक्षिप्त की हुई है विपुल तेजोलेश्या युक्त, अज्जसुहम्मस्स—आर्य सुधर्मा,
अणगारस्स—अनगर के, अदूर सामन्ते—न अति दूर न अति समीप, मर्यादा-पूर्वक भूमि पर,
उड्ढंजानू—ऊँचे जानु, जाव—यावत्, विहरइ—विचरते हैं।

मूलार्थ—उस काल उस समय में आर्य सुधर्मा अनगर के शिष्य जम्बू नाम के
अनगर जो समचतुरस्र-संस्थान से युक्त (और) यावत् संक्षिप्त की हुई विपुल तेजो-
लेश्या से युक्त थे, आर्य सुधर्मा अनगर के समक्ष मर्यादा-पूर्वक भूमि पर स्थित हो,
ऊँचे जानु कर यावत् जैसे कि विधान है वैसे विचरते अर्थात् आचरण करते हैं।

टीका—इस सूत्र में आर्य सुधर्मा स्वामी के शिष्य जम्बू स्वामी का वर्णन किया गया है
जैसे कि आर्य सुधर्मा स्वामी के सुशिष्य अनगर आर्य जम्बू जो समचतुरस्र-संस्थान से संस्थित थे
जो “वज्जरिसंहनारायसंधयणे कणगपुलगनिगसपम्हगोरे” अर्थात् वज्र ऋषभनाराय संहनन से
युक्त तथा कनक-पट्ट रेखा लक्षण वाले थे, जैसे कि वृत्तिकार का कथन है।

कनकस्य-सुवर्णस्य ‘पुसग’ इति यः पुलको—सर्वः तस्य यो निकषः—कणकपट्टरेखा लक्षणः तथा
‘पम्हेति’ पद्मगर्भः तद्वत् यो गौरः स तथा, बृद्धव्याख्या तु कनकस्य न लोहादेर्य पुलकः—सारी वर्गतिशयः
तत्प्रधानो यो निकषो—रेखा तस्य यत् पक्ष्म—बहुलत्वं तद्वच्चो गौरः स कनकपुलकनिकषपक्ष्मगौरः।

अर्थात् जिस प्रकार कनकपट्ट (काली कसौटी) पर रेखा होती है, जिस प्रकार पद्मगर्भ होता
है, तद्वत् उनका शरीर था तथा उग्र तप, तप्त तप, दीप्त तप, प्रधान परीषहों के जीतने वाले

कठिन वृत्तों को धारण करने वाले इतना ही नहीं किन्तु वे घोर तप के करने वाले थे, अतः उनके शरीर में विपुल तेजोलेश्या उत्पन्न हो रहा था, किन्तु उन्होंने उस लेश्या को संक्षिप्त किया हुआ था इसलिए वृत्तिकार ने निम्नलिखित पद दिया है—

“संक्षिप्त विउल ते उलेस्से” संक्षिप्ता—शरीरान्तर्बिलोना विपुला—अनेकयोजनप्रमाणक्षेत्राश्रित-वस्तुबहनसमर्था तेजोलेश्या—विशिष्टतपोजन्यलब्धिविशेषप्रभावा तेजोलेश्या (यस्य सः) ।

अर्थात् अनेक कोसों तक रहने वाली वस्तु को भी भस्म कर देने की शक्ति वाली तेजोलेश्या को उन्होंने तपोबल से अपने अन्तर में ही आत्मसात् कर रखा था ।

इस कथन से यह भली भाँति सिद्ध हो जाता है कि साधु में तपोजन्य शक्ति होने पर भी उस शक्ति का प्रयोग करने से बचते रहना चाहिये । वह जम्बू अनगर आर्य सुधर्मा अनगर के समीप ऊँचे जानु कर अर्थात् उत्तान आसन पर बैठकर मुख को नीचे झुकाए हुए ध्यान रूपी कोष्ठक में प्रविष्ट होकर आत्म-ध्यान में लीन रहते थे, इसलिए वृत्तिकार ने कहा है कि—“ज्ञानकोटोवगए” ध्यानमेव कोष्ठो ध्यानकोष्ठस्तमुपगतो ध्यानकोष्ठोपगतो यथा हि कोष्ठक धान्यं प्रक्षिप्तमविप्रकीर्णं भवति एवं स भगवान् धर्मध्यानकोष्ठमनुप्रविश्य इन्द्रियमनांस्यधिकृत्य संबृतात्मा भवतीति भावः ।

इस कथन का अभिप्राय यह है कि जैसे कोठे में डाला हुआ अन्न इधर-उधर फैलता नहीं है इसी प्रकार आर्य जम्बू स्वामो ने ध्यान रूपी कोठे में समस्त वृत्तियों को एकाग्र कर दिया था, अतः वे स्थिर-ध्यान थे ।

इस कथन से यह भली भाँति सिद्ध हो जाता है कि साधु-वृत्ति का मुख्य उद्देश्य ध्यानस्थ होना ही है । सूत्र कर्ता ने “अदूर-सामन्ते” पद दिया है, इसका भाव यह है कि गुरु की आशातना न हो इस बात को ध्यान में रखकर शिष्य गुरु के पास उचित स्थान पर बैठे । जैसे कि वृत्तिकार लिखते हैं—“अदूरसामन्ते” त्ति दूरं—विप्रकर्षः सामन्तं समीपम्, उभयोरभावोऽदूरसामन्तं (तस्मिन्) नातिदूरे नातिसमीपे उचिते देशे स्थित इत्यर्थः ।

अर्थात् अति दूरी और अति समीपता न रख कर यथोचित स्थान पर वे आकर बैठते थे । इस प्रकार गुणों से पूर्ण युक्त होते हुए श्री जम्बू अनगर विचरण किया करते थे । सूत्रकर्ता ने ‘जाव’ अर्थात् यावत् शब्द से उनमें सभी साधूचित गुणों की विद्यमानता प्रदर्शित की है ।

साधु के योग्य समस्त गुणों का विस्तृत वर्णन “व्याख्या-प्रज्ञप्ति” आदि सूत्रों में वर्णित किया गया है ।

जब आर्य सुधर्मा गुणशील चैत्य के उद्यान में पधारे तो परिषद् दर्शन करने आई । सभी पाँच अभिगमपूर्वक आये । पाँच अभिगम इस प्रकार हैं—

१. धर्म-स्थान में न पहिने योग्य पुष्प-माला आदि सचित द्रव्यों का त्याग । २. वस्त्र-भाभूषण आदि अचित द्रव्यों का त्याग, ३. एक बिना सिला वस्त्र, ४. गुरु पर दृष्टि पड़ते ही होनों हाथ जोड़ कर चलना, ५. मन की एकाग्र करना ।

उत्थानिका—अब सूत्रकार आगामी घटनाओं का वर्णन करते हैं—

मूल—तए णं से भगवं जंबू जायसइडे जाव० पञ्जुवासमाणे एवं वयासि, उवंगाणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं एवं उवंगाणं पंच वग्गा पणत्ता, तं जहा—१. निरयावलियाओ, २. कप्पवीडिसियाओ, ३. पुष्पियाओ, ४. पुष्पचूलियाओ, वण्हिदसाओ ॥ ४ ॥

छाया—ततः सो भगवान् जम्बू जातश्रद्धः यावत् पर्युपासनां विदधान एवमवादीत्—उपाङ्गानां भवन्त ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ?

एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन भगवता यावत्सम्प्राप्तेन एवमुपाङ्गानां पञ्च वर्गा प्रज्ञप्ताः तद्यथा—
१. निरयावलिका, २. कल्पावतंसिका, ३. पुष्पिका, ४. पुष्पचूलिका, ५. वृष्णिदशा ॥ ४ ॥

पदार्थान्वय.—तए—इसके अनन्तर, णं—वाक्यालङ्कारार्थ में, से—वह, भगवं—भगवान्, जंबू—जम्बू नामक, जायसइडे—प्रश्न पूछने की श्रद्धा वाले, जाव—यावत्, पञ्जुवासमाणे—पर्युपासना करते हुए, एवं वयासि—इस प्रकार बोले, उवंगाणं भंते—हे भगवन् उपाङ्गों का, समणेणं—श्रमण भगवान् महावीर ने, जाव—यावत्, संपत्तेणं—मोक्ष को सम्प्राप्त हुए उन्होंने, के अट्ठे पणत्ते—क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

एवं खलु जंबू—इस प्रकार हे जम्बू ! समणेणं—श्रमण भगवान् ने, भगवया—भगवान् महावीर ने, जाव संपत्तेणं—यावत् मोक्ष को प्राप्त हुए उन्होंने, एवं उवंगाणं—इस प्रकार उपाङ्गों के, पंच—पांच, वग्गा—वर्ग, पणत्ता—कथन किये हैं, तं जहा—जैसे, १. निरयावलियाओ—निरयावलिका, २. कप्पवीडिसियाओ—कल्पावतंसिका, ३. पुष्पियाओ—पुष्पिका, ४. पुष्पचूलियाओ—पुष्पचूलिका, ५. वण्हिदसाओ—वृष्णिदशा ।

मूलार्थ—उसके पश्चात् जिनके हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हो चुकी है यावत् वे जम्बू स्वामी भगवान् श्री सुधर्मा स्वामी की पर्युपासना करते हुए इस प्रकार कहने लगे—हे भगवन् ! उपाङ्गों का श्रमण भगवान् महावीर ने जो कि अब मोक्ष में पधार चुके हैं क्या अर्थ कथन किया है ?

तब श्री सुधर्मा स्वामी जी इस प्रकार बोले—हे जम्बू ! उन श्रमण भगवान् महावीर ने जो अब मोक्ष में पधार चुके हैं उपाङ्गों के पांच वर्ग इस प्रकार कहे

हैं—जैसे कि—१. निरयावलिका, २. कल्पावतंसिका, ३. पुष्पिका; ४. पुष्पचूलिका, ५. वृष्णिदशा ॥ ५ ॥

टीका—इस सूत्र में उपर्युक्त सूत्र के विषय का ही वर्णन किया गया है, जैसे कि जब आर्य जम्बू स्वामी के मन में श्रद्धा-पूर्वक कुछ पूछने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई, तब वे उठ कर आर्य सुधर्मा स्वामी के पास जाकर विनय और भक्ति पूर्वक पर्युपासना करते हुए हाथ जोड़ कर पूछने लगे कि—
“भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जो कि अब निर्वाण पद को प्राप्त कर चुके हैं, उन्होंने उपाङ्गों के विषय में क्या वर्णन किया है ?”

इसके उत्तर में भगवान् सुधर्मा स्वामी कहने लगे कि—“हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जो मोक्ष को प्राप्त कर चुके हैं, उन्होंने उपाङ्गों के पांच वर्ग कथन किये हैं, जैसे कि—१. निरयावलिका, २. कल्पावतंसिका, ३. पुष्पिका, ४. पुष्पचूलिका और ५. वृष्णिदशा ।

ये पांच वर्ग उपाङ्गों के कथन किए गए हैं, किन्तु इस स्थान पर यह उल्लेख नहीं किया गया कि प्रत्येक अङ्ग के भिन्न-भिन्न उपाङ्ग हैं । यद्यपि चूर्णी आदि ग्रन्थों में प्रत्येक अङ्ग के साथ प्रत्येक उपाङ्ग का वर्णन किया गया है, जैसे कि आचाराङ्ग का उपाङ्ग औपपातिक सूत्र है इत्यादि । किन्तु अङ्ग नामक उत्कालिक सूत्रों के संकेत नन्दी आदि आगमों में भी उपलब्ध होते हैं । छेद और मूल सूत्र आदि संज्ञायें आगमों में नहीं हैं, इससे प्रतीत होता है कि ये दोनों संज्ञाएं अर्वाचीन हैं ।

प्रस्तुत सूत्र के अतिरिक्त उपाङ्ग संज्ञा का कहीं पर भी उल्लेख देखने को प्राप्त नहीं हुआ । यह तो भली भाँति सिद्ध होता है कि अङ्गों के उपाङ्ग होते ही हैं, अतः श्रुत रूपी पुरुष के १२ अंग और १२ ही उपाङ्ग-युक्ति सिद्ध हैं । ये उपाङ्ग पांच वर्गों के नामों से सुप्रसिद्ध हैं । आचार्य हेमचन्द्र जी भी अपने अभिधानचिन्तामणि कोष में लिखते हैं । जैसे कि—

आचाराङ्गं सूत्रकृतं स्थानाङ्गं समवाययुक्तं ।

पञ्चमं भगवत्यङ्गं ज्ञाताधर्मकथाऽपि च ॥ १५७ ॥

उपासकान्तकृदनुत्तरोपपातिकास्तथा ।

प्रश्नव्याकरणं चैव विपाकश्रुतमेव च ॥ १५८ ॥

इत्येकादश सोपाङ्गान्यङ्गानि । (देवकाण्ड, द्वितीय)

इत्येकादश प्रवचनपुरुषस्य अङ्गानीवाऽङ्गानि सहोपाङ्गैरौपपातिकादिभिर्वर्तन्ते सोपाङ्गानि ॥

उक्त सूत्र में जो सुधर्मा स्वामी और जम्बू स्वामी का संक्षिप्त वर्णन किया गया है, यह समग्र पाठ “व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र” के प्रथम उद्देशक में प्राप्त होता है, उस सूत्र के प्रथम शतक के प्रथम उद्देशक में गौतम स्वामी विषयक वर्णन किया गया है । वह समग्र पाठ उक्त पाठ से सम्बन्ध रखता है, केवल नाम मात्र का ही अन्तर है ।

उत्थानिका—अब सूत्रकार फिर उक्त विषय में ही कहते हैं—

मूल—जइ णं भन्ते ! समणेणं जाव संपत्तेणं उवंगाणं पंच वर्गा
पणत्ता तं जहा—निरयावलियाओ जाव वण्हदसाओ, पढमस्स णं भन्ते !
वग्गस्स उवंगाणं निरयावलियाणं समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं कइ
अज्झयणा पणत्ता ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं उवंगाणं पढमस्स वग्गस्स
निरयावलियाणं दस अज्झयणा पणत्ता, तं जहा—

काले सुकाले महाकाले कण्हे सुकण्हे ।

तहा महाकण्हे वीरकण्हे य बोद्धव्वे ।

रामकण्हे, तहेव य पिउसेणकण्हे नवमे ।

दसमं महासेणकण्हे उ ॥ ५ ॥

छाया—यदि णं भदन्त ! श्रमणेण यावत् सम्प्राप्तेन उपाङ्गानां पञ्चवर्गाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा
निरयावलिकाः यावत् वृण्हदशा, प्रथमस्य णं भदन्त ! वर्गस्य उपाङ्गानां निरयावलिकानां श्रमेण
भगवता यावत् सम्प्राप्तेन कति अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि ।

एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन उपाङ्गानां प्रथमस्य वर्गस्य निरयावलिकानां
दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा—

कालः सुकालः महाकालः कृष्णः सुकृष्णःस्तथा ।

महाकृष्णः वीरकृष्णश्च बोधव्या ।

रामकृष्णःस्तथैव च पितृसेन कृष्णः नवमः ।

दशमः महासेन कृष्णस्तु ॥ ५ ॥

पदार्थान्वयः—णं—वाक्यालङ्कार अर्थ में है, भन्ते—हे भगवन्, जइ—यदि, समणेणं—
श्रमण, भगवया—भगवान्, महावीरेणं—महावीर स्वामी ने, जाव—यावत्, संपत्तेणं—मोक्ष
प्राप्त करने वाले, उवंगाणं—उपाङ्गों के, पंचवर्गा—पांच वर्ग, पणत्ता—प्रतिपादित किए हैं,
तं जहा—जैसे कि, निरयावलियाओ—निरयावलिका, जाव—यावत्, वण्हदसाओ—वृण्हदशा,
णं—वाक्यालङ्कार अर्थ में है, भन्ते—तो हे भदन्त, पढमस्स—प्रथम, वग्गस्स—वर्ग के, उवंगाणं—
उपाङ्ग, निरयावलियाणं—निरयावलिका सूत्र का, समणेणं—श्रमण, भगवया—भगवान्, जाव—
यावत्, संपत्तेणं—मोक्ष को प्राप्त हुए ने, कइ अज्झयणा—कितने अध्ययन, पणत्ता—प्रतिपादित
किए हैं। एवं खलु जंबू—इस प्रकार हे जम्बू ! निश्चय से, समणेणं—श्रमण, जाव—यावत्

संज्ञेण—मोक्ष-प्राप्त्यर्थे, उवाचान् पठमस्स वग्गस्स—उपाङ्गों के प्रथम वर्ग के, निरयावलिकाणं—निरयावलिका सूत्र के, दस अज्झयणा पण्णत्ता—दस अध्ययन प्रतिपादित किए हैं, तं जहा—जैसे कि, काले काल कुमार का, सुकाले—सुकाल कुमार का, महाकाले—महाकाल कुमार का, कण्हे—कृष्ण कुमार का, सुकण्हे—सुकृष्ण कुमार का, तथा, महाकण्हे—महाकृष्ण कुमार का, य—और, वीरकण्हे बोद्धव्वे—वीर कृष्ण कुमार का जानना चाहिए, य—पुनः, तद्देव—उसी प्रकार, रामकण्हे—राम कृष्ण का, नवमे—नवमा, पितृसेनकण्हे—पितृसेन कृष्ण कुमार का और दसमे—दशवें महासेन कण्हे—महासेन कृष्ण का, उ—वितर्क अर्थ में है।

सुवार्थ—हे भदन्त ! यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी यावत् मोक्ष प्राप्त हुए ने उपाङ्गों के पांच वर्ग कथन किए हैं, जैसे कि निरयावलिका यावत् वृष्णिदशा तो हे भदन्त ! प्रथम वर्ग के उपाङ्ग निरयावलिका के श्रमण भगवान् महावीर यावत् मोक्ष प्राप्त ने कितने अध्ययन प्रतिपादित किए हैं।

इसके उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामी कहने लगे इस प्रकार निश्चय ही हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् मोक्ष प्राप्त ने उपाङ्गों के प्रथम वर्ग निरयावलिका के दस अध्ययन प्रतिपादित किए हैं। जैसे कि—१ काल, २ सुकाल, ३ महाकाल, ४ कृष्ण, ५ सुकृष्ण, ६ महाकृष्ण, ७ वीरकृष्ण, ८ रामकृष्ण, ९ पितृसेन कृष्ण और महासेन कृष्ण। प्रत्येक अध्ययन प्रत्येक कुमार के नाम पर कथन किया गया है।

टीका—इस सूत्र में प्रथम वर्ग के अध्ययनों के विषय का वर्णन किया गया है। यहां पर 'वर्ग' शब्द अध्ययनों के समूह का नाम है। तो प्रथम वर्ग में दस अध्ययनों का विषय वर्णन किया गया है। इन विषय में वृत्तिकार निम्न प्रकार से लिखते हैं—

प्रथमवर्गो दशाध्ययनात्मकः प्रज्ञप्तः अध्ययनदशकमेवाह—'काले सुकाले' इत्यादि। मातृनाम-भिस्तदपत्यानां—पुत्राणां नामानि, यथा काल्या अपत्यमिति कालः कुमारः, एवं सुकाल्याः महाकाल्याः कृष्णयाः सुकृष्णयाः मरुतकृष्णयाः वीरकृष्णयाः रामकृष्णयाः पितृसेनकृष्णयाः महासेनकृष्णयाः अपत्येन पुत्रनाम वाच्यम्। इह काल्या अपत्यमित्याद्यर्थे प्रत्ययो नोत्पाद्यः, काल्यादिशब्देऽपत्येऽर्थे एष्य प्राप्त्या कालसुकालादिनामसिद्धेः, एवं चाद्यः १ कालः, २ तदनुसुकालः, ३ महाकालः, ४ कृष्णः, ५ सुकृष्णः, ६ महाकृष्णः, ७ वीरकृष्णः, ८ रामकृष्णः, ९ पितृसेनकृष्णः, १० महासेन कृष्णः, दशमः। इत्येवं दशाध्ययनानि निरयावलिकानाम् के प्रथमवर्गो इति ॥

इस पाठ का भाव यह है कि महाराज श्रेणिक की काली आदि दस रानियां थीं। उनके काली कुमार आदि १० पुत्र हुए। प्रत्येक अध्ययन प्रत्येक पुत्र के नाम पर इस वर्ग में कथन किया गया है। ये १० कुमार तरक में गये थे, अतः इस वर्ग का नाम निरयावलिका है। किस प्रकार वे तरक में गए ?

इस विषय का विस्तृत वर्णन इस अध्ययन में किया गया है जो ऐतिहासिक व्यक्तियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। सूत्र कर्ता ने 'समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं' आदि जो पद दिए हैं इनका भाव यह है कि यह कथन श्रमण भगवान महावीर स्वामी का है, न कि अन्य किसी द्वारा यह विषय प्रतिपादित किया गया है। इस घटना के भगवान महावीर के सम्मुख होने से उस समय की परिस्थितियों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है, इसलिए इस विषय का ध्यानपूर्वक पठन करना चाहिए।

उत्थानिका—अब सूत्रकार प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन के विषय का वर्णन करते हैं—

मूल—जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं उवंगणं पढमस्स वगस्स निरयावलियाणं दस अज्झयणा पणत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स निरयावलियाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते ? एवं खलु जंबू । तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबु द्वीवे दीवे भारहे वासे चंपा नामं नयरी होत्था, रिद्ध० । पुन्नभद्दे चेइए ॥ ६ ॥

छाया—यदि णं भवन्त श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन उपाङ्गानां प्रथमस्य निरयावलिकाणां दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य णं भवन्त ! अध्ययनस्य निरयावलिकाणां श्रमणेणं यावत् सम्प्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः एवं जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये इहेव जम्बूद्वीपे द्वीपे, भारतवर्षे चम्पा नाम्नी नगरी अभूत् । ऋद्ध० पूर्णभद्रं चैत्यं ॥ ६ ॥

पदार्थान्वयः—णं—वाक्यालंकार अर्थ में, भंते—हे भदन्त, जइ—यदि, समणेणं—श्रमण, जाव—यावत्, सम्पत्तेणं—मोक्ष प्राप्त ने, उवंगणं—उपाङ्गों के, पढमस्स वगस्स—प्रथम वर्ग के, निरयावलियाणं—निरयावलिका सूत्र के, समणेणं—श्रमण भगवान महावीर ने, जाव—जो यावत्, संपत्तेणं—मोक्ष को प्राप्त हो गए हैं, के अट्ठे पणत्ते—क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? एवं खलु जम्बू—इस प्रकार निश्चय से हे जम्बू, तेणं कालेणं तेणं समएणं—उस काल और उस समय में, इहेव—इसी, जंबुद्वीवे दीवे—जम्बूद्वीप नाम के द्वीप में, भारहे वासे—भारतवर्ष में, चंपा नामं नयरी होत्था—चम्पा नाम की नगरी थी, रिद्ध०—ऋद्धि यावत् धन-धान्य से युक्त थी, पुन्न भद्दे चेइए—और उसके पूर्व और उत्तर दिशा के मध्य भाग में ईशान कोण में पूर्णभद्र नाम का चैत्य उद्यान था।

मूलार्थ—(आर्य जम्बू अपने गुरु गणधर गौतम से प्रश्न करते हैं) हे भगवन् ! यदि यावत् मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने उपाङ्गों के प्रथम वर्ग निरयावलिका सूत्र के दस अध्ययन प्रतिपादित किए हैं, तो हे भगवन् । -पहले अध्ययन

निरयावलिका सूत्र के मोक्ष संप्राप्त श्रमण भगवन् महावीर ने क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

इसके उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी के प्रति कहने लगे—हे जम्बू ! उस काल उस समय में इसी जम्बू द्वीप नाम के द्वीप में स्थित भारतवर्ष में चम्पा नाम की नगरी थी जो भवनादि से युक्त, भय से रहित, धन-धान्य से पूर्ण थी । इस नगरी के बाहर ईशान कोण में पूर्णभद्र नाम का एक उद्यान था, उस उद्यान में एक पूर्णभद्र यक्ष का आयतन था अर्थात् पूर्णभद्र यक्ष का मन्दिर था ।

टीका—इस सूत्र में पूर्णभद्र आदि स्थानों का वर्णन किया गया है । आर्य जम्बू ने प्रश्न किया कि हे भगवन ! यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जो मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं उन्होंने उपाङ्गों के प्रथम वर्ग निरयावलिका नामक सूत्र के दस अध्ययन प्रतिपादन किए हैं, तो हे भगवन ! प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कथन किया है ?

उत्तर—“हे शिष्य ! हे जम्बू ! वह काल जो अवसर्पिणी काल का चतुर्थ विभाग रूप था उस समय में अर्थात् जिस समय श्री भगवान् महावीर विद्यमान थे, इसी जम्बू द्वीप नामक द्वीप में स्थित भारतवर्ष में चम्पा नाम की नगरी थी जो ऋद्धि आदि गुणों से युक्त तथा परम रमणीय थी और उसके बाहर ईशान कोण में पूर्णभद्र नाम का उद्यान था उसमें एक पूर्णभद्र नामक यक्ष का मन्दिर था ।

वह व्यन्तरायतन जनता की अभीष्ट इच्छाओं की पूर्ति करने में समर्थ था—इस का विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र से जानना चाहिये । चम्पा नाम की नगरी का वर्णन भी उसी सूत्र में विस्तार पूर्वक किया गया है, अतः जिज्ञासुओं को उक्त सूत्र का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए ।

उत्थानिका—अब सूत्रकार चम्पा नगरी का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मूल—तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रत्तो पुत्ते चेल्लणाए देवीए-
अत्तए कूणिए नामं राया होत्था, महया० ॥ ७ ॥

छाया—तत्र णं चंपायाम् नगर्याम् श्रेणिकस्य राज्ञः पुत्रः चेलनायाः देव्याः आत्मजः कूणिकः नाम राजा अभवत् । महान्० ।

पदार्थनिर्घटनः—णं—वाक्यालङ्कार में, तत्थ—उस, चंपाए—चम्पा नाम वाली, नयरीए—नगरी में, सेणियस्स रत्तो—राजा श्रेणिक का, पुत्ते—पुत्र, चेल्लणाए—चेलना, देवीअत्तए—देवी का आत्मज, कूणिए नामं—कूणिक नाम का, महया—महान्, राया होत्था—राजा था ।

मूलार्थ—उस चम्पा नाम की नगरी में राजा श्रेणिक का पुत्र चेलना देवी का आत्मज कोणिक नाम का एक महान राजा था ।

टीका—इस सूत्र में संक्षेप से कूणिक राजा का वर्णन किया गया है, जैसे कि उस चम्पा नगरी में राजा श्रेणिक का पुत्र और चेलना देवी का आत्मज कोणिक नाम का राजा राज करता था । इसका सम्पूर्ण वर्णन औपनिषदिक सूत्र में किया गया है । यह राजा महा हिमवान् पर्वत के समान अन्य राजाओं की अपेक्षा से महान था । उस का राज्य निष्कण्टक था । उस राजा ने बहुत से राजाओं पर विजय प्राप्त की थी और अनेक धन्यों का मान मर्दन किया था तथा न्यायशील था, किन्तु उसके पुण्य के प्रभाव से राज्य में विघ्न, ज्वर, मरी, दुर्भिक्ष तथा संग्राम आदि का सर्वथा अभाव था । प्रजा प्रसन्नता-पूर्वक जीवन व्यतीत कर रही थी । नगरी धन-धान्य से परिपूर्ण थी । चारों ओर सर्व प्रकार मे लक्ष्मी की वृद्धि ही रही थी । सर्वत्र लक्ष्मी का बोल-बाला था । नये से नये आविष्कारों का प्रादुर्भाव हो रहा था । राज्य में सर्वत्र शान्ति एवं उन्नति का साम्राज्य था ।

उत्थानिका—अब सूत्रकार राजा की रानी के विषय में कहते हैं—

मूल—तस्स णं कूणियस्स रन्नो पउमावई नामं देवी होत्था, सोमाल जाव विहरइ ॥ ८ ॥

छाया—तस्य णं कूणिकस्य राज्ञः पद्मावती नाम्नी देवी अभवत् सुकुमाल यावत् विहरति ।

पदार्थव्याख्यान—णं—प्राग्वत्, तस्स—उस, कूणियस्स रन्नो—राजा कोणिक की, पउमावई—पद्मावती, नामं—नाम वाली, देवी—देवी (महारानी), होत्था—थी । सोमाल—सुकुमार, जाव—यावत्, विहरइ—विचरती है ।

मूलार्थ—उस राजा कोणिक की पद्मावती नाम की देवी (महारानी) थी जो सुकुमार यावत् सुख भोगती हुई विचरती थी ।

टीका—इस सूत्र में रानी पद्मावती देवी का वर्णन किया गया है । राजा कोणिक की एक पद्मावती नाम वाली रानी थी जिसके हस्त और पाद सुकोमल थे, वह पाँचों इन्द्रियों से पूर्ण, शरीर-लक्षणों व्यञ्जनों और गुणों से युक्त थी । स्वस्तिक चक्रादि लक्षण होते हैं और मस्सा तिलकादि व्यञ्जन होते हैं । वह स्त्रियोचित सभी गुणों से पूर्ण थी । मान और उन्मान से युक्त थी । इतना ही नहीं, उसका शरीर प्रतिपूर्ण था और वह सर्वाङ्ग सुन्दर थी । वृत्तिकार मान और उन्मान का वर्णन निम्न प्रकार से करते हैं—

तत्र मानं—जलद्रोणप्रमाणता कथं ? जलस्यातिभूते कुण्डे पुरुषे निवेशिते यज्जलं निःसरति तत्तर्हि द्रोणमानं भवति, तदा स पुरुषो मानप्राप्त उच्यते, तथा उन्मानम् अर्धभार-प्रमाणता, कथं ?

तुलारोपितः पुरुषो यद्यर्धभारं तुलयति तदा स तन्मानप्राप्त उच्यते । प्रमाणं तु स्वांगुलेनाष्टोत्तरशतो-
च्छायिता, ततश्च मानोन्मानप्रमाणैः प्रतिपूर्णानि अन्यूनानि सुजातानि सर्वाणि अङ्गानि—शिरः प्रभृतानि
यस्मिस्तत् तथाविधं सुन्दरम् अङ्गं—शरीरं यस्या सा तथा ।

इस का भाव यह है कि किसी जल-कुण्ड में पुरुष के बैठने पर यदि एक द्रोण मात्र प्रमाण जल
बाहर निकल जाना है तब वह पुरुष द्रोणमान प्रमाण कहा जाता है । तुला में आरोपण किया हुआ
पुरुष यदि अर्ध भाग के तुल्य होता है तब उसको उन्मान-प्राप्त कहते हैं । अपनी अंगुली से १०८
अंगुल ऊंचा हो तो उसे प्रमाण-युक्त कहते हैं । वह देवी उक्त गुणों से पूर्ण थी । उसका मुख चन्द्रवत्
सौम्याकार था । इतना ही नहीं वह सरूपा थी—शरद पूर्णिमा के चन्द्र सदृश उसका मुख-मण्डल था ।

रानी के कर्ण-कुण्डलों की आभा से कपोलों की छवि द्विगुणित हो रही थी, मानो शृंगार
रस स्वयं अपना रूप धारण कर मुख पर आ बैठा हो । वह महाराजा कूणिक की हृदय-बल्लभा थी
तथा अपूर्व सुखों का अनुभव करती हुई विचर रही थी ।

इसका विशेष वर्णन औपपातिक सूत्र में देखें ।

उत्थानिका :—अब सूत्रकार काली देवी का वर्णन करते हुए कहते हैं ।

मूल—तत्स्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रन्नो भज्जा कूणियस्स
रन्नो चुलमाउया काली नामं देवी होत्था, सोमाल जाव सुरूवा । तीसे
णं कालीए देवीए पुत्ते काले नामं कुमारे होत्था, सोमाल नाम सुरूवे ।

॥ ६ ॥

छाया—तत्र णं चम्पायां नगर्याम् श्रेणिकस्य राज्ञः भार्या कूणिकस्य राज्ञः लघु माता (चुल-
माउया) काली नाम्नी देवी अभवत्, सुकुमाल यावत् सुरूवा । तस्याः णं काल्याः देव्याः पुत्रः कालः
नामा कुमारः अभवत्, सुकुमाल यावत् सुरूपः ।

पदार्थाश्वयः—तत्स्थ—उस, णं—वाक्यालङ्कार में, चंपाए नयरीए—चम्पा नगरी में, सेणियस्स—
श्रेणिक, रन्नो—राजा श्रेणिक की, भज्जा—भार्या, कूणियस्स—कूणिक, रन्नो—राजा की,
चुलमाउया—लघु माता, काली नामं—काली नाम वाली, देवी होत्था—देवी थी, सोमाल—सुकुमाल,
जाव सुरूवा—यावत् सुरूपा थी, तीसे णं कालीए देवीए—उस काली देवी का, पुत्ते—पुत्र, काले नामं
कुमारे होत्था—काल नाम वाला कुमार था । सोमाल जाव सुरूवे—सुकुमाल यावत् सुरूप था ।

मूलार्थ—उस चम्पा नगरी में राजा श्रेणिक की भार्या कूणिक राजा की लघु
माता काली नाम वाली देवी थी, जो सुकुमार और सुरूपवती थी । उस काली देवी

का पुत्र “काल” नाम का कुमार था । वह भी सुकुमार और सुन्दर रूप वाला था ।

टीका—इस सूत्र में काली देवी और उसके पुत्र का वर्णन किया गया है । हस्तलिखित प्रतियों में पुत्र के विषय में “सुकुमाल—“सुकुमाल पाणीपाए जाव सुरूवे” इस प्रकार पाठ दिया गया है, महाराजा श्रेणिक की भार्या और कोणिक राजा की अपर माता काली नाम वाली देवी चम्पा नगरी में रहती थी । इस का पूर्ण वर्णन औपपातिक सूत्र से जानना चाहिए । उस सूत्र से एवं ज्ञाता-धर्म-कथाङ्ग सूत्र से कुछ पद लेकर वृत्तिकार ने निम्न प्रकार से उस के विषय में वर्णन किया है—

सा च काली “सेणियस्त रत्नो इट्ठा” वल्लभा कान्ता काम्यत्वात्, ‘पिया’ सदा प्रेमविषयत्वात्, ‘मणुजा’ सुन्दरत्वात्, ‘नामधिजा’ प्रशस्तनामधेयवतीत्यर्थः नाम वा धार्य—हृदि धरणीयं यस्याः सा तथा ‘वेसासिया’ विश्वस्तनोयत्वात् ‘सम्मया’ तत्कृतकार्यस्य संमतत्वात्, ‘महुमता’ बहुशो बहुभ्यो वाच्येभ्यः सकाशात् बहुमता बहुमान-प्राप्तं वा, ‘अणुमया’ प्रियकरणस्यापि पश्चान्मताऽनुमता ‘भंडकरंडकसमाणा’ आभरण-करण्डकसमाना उपदेयत्वात् सुरक्षितत्वाच्च । ‘तेलकेला इव सुसंगोविया’ तेलकेला सौराष्ट्रप्रसिद्धो मृण्मयस्तैलस्य भाजनविशेष, स च भङ्गभयात् लोचनभयाच्च सृष्टु संगोप्यते, एवं साऽपि संगोप्यते तथोच्यते । ‘चेलापेडा इव सुसंगिरिगहिया’ वस्त्रमञ्जुषेवेत्यर्थः ‘सा काली देवी सेणिएण रत्ना सद्धि विडलाई भोग भोगाई भुंजमाणा विहरइ’ । कालनामा च तत्पुत्रः ‘सोमाल पाणिपाए’ इत्यादि प्रागुक्तवर्णकोपेतो वाच्यः, यावत् ‘पासाइए दरिसणिजे अभिरूवे पडिरूवे’ इति ।

इस पाठ का भाव यह है कि वह काली देवी महाराजा श्रेणिक की वल्लभा, प्रिय विश्व-सनीय सम्मत बहुमत आभरण करण्डक के समान, सुगन्धमय तेल के भाजन के समान, वस्त्रमञ्जूषा के समान अति प्रिय थी, अतः राजा श्रेणिक के साथ उसका परम स्नेह था और उसके हाथ, पांव वड़े ही सुकुमार थे । उस काली देवी का पुत्र काल नामा कुमार था जो सुकुमाल और सर्वाङ्ग पूर्ण (वा सुरूप) था । जिस प्रकार ज्ञाता-धर्म-कथाङ्ग सूत्र में मेघ कुमार का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार इसके विषय में जानना चाहिए ।

उत्थानिका अब सूत्रकार काली कुमार के विषय में कहते हैं :—

मूल—तए णं से काले कुमारे अन्नया कयाइ तिहि दन्तिहसस्सेहि
तिहि रहसहस्सेहि तिहि आससहस्सेहि तिहि मणुयकोडोहि गरुलवूहे ।
एवकारसमेणं खंडेणं कूणिणं रण्णा सद्धि रहमुसल संगामं ओयाए ।

॥ १० ॥

छाया—ततः णं सः कालः कुमारः अन्यदा कदाचित् त्रिभिः वंतीसहस्रैः त्रिभिः रथसहस्रैः, त्रिभिः अश्वसहस्रैः, त्रिभिः मनुज कोटिभिः गरुड-व्यूहे एकादशेन खण्डेन कूणिकेन राज्ञा सार्धं रथमश्वसंश्रमं उपयातः ।

पदार्थान्वयः—तए णं से काले कुमारे—तत्पश्चात् वह काल कुमार, अन्नया कयाइ—किसी अन्य समय, तिहि—तीन, दंतिसहस्सेहि—हजार हाथियों, तिहि—तीन, रहसहस्सेहि—हजार रथों और तिहि आससहस्सेहि—तीन हजार घोड़ों के साथ, तिहि मणुयकोडीहि—तीन करोड़ मनुष्यों के साथ, गरु नवूहे—गरुड़ व्यूह, एक्कारसमेणं खंडेणं—राज्य के एकादशवें भाग के भागीदार, कूणिणं रत्ता सद्धि—कोणिक राजा के साथ, रहमूसलं—रथमूसल नाम वाले, संग्रामं—संग्राम में, ओयाए—प्राप्त हुआ अर्थात्—रथमूसल संग्राम में गया ।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह काल कुमार किसी अन्य समय तीन सहस्र हस्ती, तीन सहस्र रथ, तीन सहस्र अश्व और तीन करोड़ मनुष्यों को साथ लेकर राज्य के एकादशवें भाग के भागीदार राजा कोणिक के साथ गरुड़ व्यूह के आकार वाले रथ-मूसल संग्राम में प्रवृत्त हुआ ।

टीका—इस सूत्र में रथमूसल संग्राम का वर्णन किया गया है, इस स्थान पर जिज्ञासुओं के जानने के लिए उक्त विषय का संक्षेप में वर्णन करते हैं ।

वृत्तिकार ने लिखा है कि श्रेणिक राजा के राज्य में दो रत्न उत्पन्न हुए—(१) अष्टादश वक्र हार और (२) सेचनक हस्ती । इनके कारण से ही संग्राम हुआ जैसे कि लिखा है—

सेणियस्स रज्जे दुवे रयणा—१. अट्ठारसबंको हारो २. सेयणगे हत्थीए । तत्थ किर सेणियस्स रणो जावइयं रज्जस्स भुल्लं तावइयं देवदिन्नहारस्स सेयणगस्स य गन्धहत्थिस्स । तत्थ हारस्स उप्पत्ती- पत्थवे कहिज्जिस्सइ । कूणियस्स यएत्थेव उप्पत्ती वित्थरेण भणिस्सई ।

तथा कोणिक राजा के साथ कालादि दश कुमार चम्पा नगरी में राज्य करते थे । वे सब दोगुन्धुग देवों के समान सांसारिक सुखों का अनुभव करते हुए विचरते थे । हल्ल, विहल्ल नामों वाले कोणिक राजा के दो भ्राता थे ।

अब हार की उत्पत्ति के विषय में कहते हैं । शक्रेन्द्र द्वारा श्रेणिक राजा की भक्ति की प्रशंसा सुन कर एक देव उस भक्ति से प्रसन्न हो गया । उसने राजा श्रेणिक को अष्टादशवक्र हार दिया और दो वृत्त गोलक दिए । राजा ने वह हार चेलना नाम वाली देवी को दे दिया और वृत्त-गोलक मंत्री अभय कुमार की माता सुनन्दा देवी को दिए । रानों ने उनको तोड़ कर उनमें से एक में से कुण्डल युगल और एक में से वस्त्र-युगल ग्रहण किए ।

एक बार मन्त्री अभय कुमार ने श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से पूछा—भगवन् ! आपके पश्चात् अंतिम राजर्षि कौन होगा ? भगवान् महावीर ने उत्तर में कहा—‘राजा उद्दयिन राजर्षि होगा । तत्पश्चात् बद्धमुकुट राजा दीक्षित नहीं होंगे । तत्पश्चात् राजा श्रेणिक ने अभय कुमार को राज्य देने का निश्चय किया, किन्तु अभय कुमार ने राज्य लेना स्वीकार नहीं किया । तब राजा श्रेणिक

ने कोणिक कुमार को राज्य देने का निश्चय कर हल्ल कुमार को सेवनक हस्तो दे दिया और विहल्ल कुमार को देव का दिया हुआ हार दिया गया ।

मंत्री अभयकुमार के दीक्षित होने पर सुनन्दा देवी ने क्षौम-युगल और कुण्डल-युगल हल्ल और विहल्ल कुमार को दे दिये । तब बृहत् महोत्सव के साथ अभय कुमार और उनकी माता सुनन्दा देवी दीक्षित हो गए ।

राजा श्रेणिक की रानी चेलणा देवी के तीन पुत्र हुए—१. कोणिक, २. हल्ल और ३. विहल्ल ।

अब कोणिक की उत्पत्ति के विषय में कहते हैं—काली महाकाली प्रमुख राजा श्रेणिक की रानियों से काल कुमार आदि बहुत से पुत्र थे । अभय कुमार के दीक्षित होने पर किसी अन्य समय कोणिक कुमार काल आदि दश कुमारों को आमन्त्रित कर कहने लगा—हे कुमारो ! राजा श्रेणिक के विघ्न के कारण हम राज्य का सुख प्राप्त नहीं कर सकते, अतः आओ हम पिता को कारागृह में डालकर राज्य के ११ भाग करें और राज्य के सुखों का अनुभव करें, उन दश कुमारों ने भाई की इस बात को स्वीकार कर लिया । तब कोणिक ने श्रेणिक को बांध कर कारागृह में डाल दिया । वहाँ पर कोणिक उसे अनेक प्रकार के कष्ट देने लगा—

वृत्तिकार ने प्राकृत में इस विषय में इस प्रकार लिखा है कि—

देवगुणदेवा इव कामभोग-परायणास्त्रयस्त्रिशत्या देवाः फुट्टमाणेहि मुडंगमन्थएहि वरतरुणि-
सप्पिणिहिएहि बत्तोसइपत्तिन्नद्धेहि नाडएहि उवगिज्जमाणा भोगभोलाइ भुंजमाणा विहरति ।
हल्ल-विहल्लनामाणो कुणियस्स चिल्लणादेवी-अंग-जाया दो भायरा अन्नेऽपि अत्थि ।

अहुणा हारस्स उप्पत्ती भन्नइ—इत्थ सक्को सेणियस्स भगवन्तं पइ निचचलभत्तिस्स पसंसं करेइ । तओ सेडुयस्स जीव देवो तभत्ति-रंजिओ सेणियस्स तुट्ठो सत्तो अट्ठारसवकं हारं देइ । दोन्नि य वट्ठगोलके देइ । सेणिएणं सो हारो चेलणाए दिन्तो पिय ति काउं, वट्ठदुगं सुनंदाए अभय-
मंति जणोए । ताए वट्ठाए किं अहं वेडळ्ळं ति काअण अच्छोडिया भग्गा, तत्थ एगम्मि कुंडलजुयलं ।
एगम्मि वत्थ-जुयलं तुट्ठाए गहियाणि ।

अन्तया अभओ सार्मि पुच्छइ—“को अरच्छिमो रायरिसि ति ?”

सामिणा उहायिणो वागरिओ, अओ परं वद्धमउडा न पव्वयंति ।

ताहे अभएण रज्जं दिज्जमाणं न इच्छिग्रं ति पच्छा सेणिओ चित्तेइ—“कोणियस्स दिज्जिं
त्ति, हारय हत्थि दिन्तो, सेयणो विहल्लस्स देवदिन्तो हारो अभएण वि पठवयंतेण सुनंदाए खोमजु-
यलं कुंडलजुयलं च हल्ल-विहल्लणं दिन्नाणि । महया विहवेण अभओ नियजणणीसमेओ पव्वइओ ।

सेणियस्स चेलणादेवी-अंग-समुदभूया तिन्नि पुत्ता कूणिओ हल्ल-विहल्ला य । कूणियस्स
उप्पत्ती एत्थेव भणित्ताइ । काली-महाकाली पमुहदेवीणं अन्नासि तणया सेणियस्स बहवे पुत्ता काल

पमुहा संति । अभयस्मि गहियव्वए अन्नया कोणिओ कालाईहि दसहि कुमारेहि समं मंतेइ—“सेणियं सेण्डाविघकारयं बंधिता एक्कं रसभाए रज्जं करेमो ति ।”

तेहि पडिस्सुयं, सेणिओ बट्टो । पुःवन्हे अवरन्है य कससयं दवावेइ सेणियस्य कूणिओ पुब्ब-
भवे वेरियत्तणेण ।

चेत्तलणाए कयाइ भोयं नदेइ, भत्तं वारियं पाणियं न देइ । ताहे चेत्तलणा कह वि कुम्मासे
वालेहि बंधिता सयवारं सुरंपवेसेइ । सा फिर घोव्वइ सयवारे सुरापाणियं सव्वं होइ । तीए पहावेण
सो वेयणं न वेएइ ।

इस समस्त पाठ का अर्थ ऊपर ही प्रकट कर दिया गया है ।

राजा कोणिक जब राज-सिंहासन पर स्वयं ही बैठ गया तब वह चेलना देवी माता जी के
चरण-वन्दन करने के लिए गया । माता उसे देखकर प्रसन्नता प्रकट न कर सकी । तब उसने कहा—“हे
माता ! मुझे राज्य की प्राप्ति हुई है, क्या तू इस विषय में प्रसन्न नहीं है ?”

माता ने उत्तर में कहा—“हे पुत्र ! देव-गुरु के समान पिता को तू ने कारागृह में वन्दन कर
दिया है, मुझे प्रसन्नता किस बात की हो ।” तब इसके उत्तर में उसने कहा—

माता—“राजा श्रेणिक मुझे मारना चाहता था ।”

माता ने कहा—“पुत्र ! तेरा यह विचार निराधार है । जब तू बाल्यावस्था में था तब
तेरी अंगुली में पोप और शोणित के कारण अत्यन्त वेदना हो रही थी, तब आपके पूज्य पिता
इस अंगुली को मुख में डाल कर तुम्हें शान्त करते थे ।” तब कोणिक ने कहा—

“हे माता जी यदि मेरे पूज्य पिता जी मुझ से परम स्नेह रखते थे तो मैं अभी
उनकी बेड़ी आदि को काट कर लाता हूँ । फिर वह परशु हाथ में लेकर कारागृह में गया । महाराज
श्रेणिक ने उसे आते हुए देखकर भयभीत होकर तालपुट विष के द्वारा प्राण त्याग दिए । जब कोणिक
ने उनको मृत पाया तब उसने वियोग-जन्य-दुःख के साथ पिता का अन्त्येष्टि संस्कार किया । कुछ
समय के पश्चात् जब उनका शोक दूर होगया तब उसने राजगृही नगरी को छोड़कर चम्पा नगरी को
अपनी राजधानी बनाया । उक्त वर्णन निम्नलिखित वृत्ति पाठ से जिज्ञासु जन अवगत करें—

अन्नया तस्स पडमावईदेवीए पुत्तो एवं पिओ अत्थि । मायाए सो भणिओ—“दुरात्मन् ! तव
अंगुली किमिह वमंती पिमा मुहे काऊण अत्थियाओ, इयरहा तुमं रोयंतो चेव चिट्ठेसु ।” ताहे चित्तं
मणगुवसंतं जायं । मए विया एवं वसणं पाविओ, तस्स अधिई जाया । भुजंतओ चेव उट्ठाय परसु-
हृत्थगओ, अन्ने भणंति लोहदंडं गहाय, ‘नियलाणि भंजामि’ ति पहाविओ । रक्खवाल्लो नेहेण भणइ-
एसो सो पावी । लोहदंडं परसुं वा गहाय एइ’ ति । सेणिएण चित्तियं ‘न नज्जइ केण कुमारेण
मारेहि ?’ तउ तालपुडगं विसं खइयं । जाव एइ ताव भओ । सुट्ठुयरं अधिई जाया । ताहे यमकिञ्चं
काऊण घरमागओ, रज्जधुरामुक्कतत्तीओ तं चेव चित्तंतो अच्छइ ।

एवं कालेण विस्रो गो जाओ । पुणरवि सयणआसणाईए पिइसंतिए दट्ठण अधिई होई । तओ रायणिहाओ निम्गंतुं चंपं रायहाणिं करेइ । एवं चंपाए कूणिओ राया रज्ज करेइ, नियगभायपमुह सयणसंजोगओ । इह निर्यावलिया-सुखन्धे कूणिकवक्तव्यता आदावुत्तिष्णता ।

इस पाठ का भाव ऊपर लिखा जा चुका है, उसकी सहायता करने वाले कालादि १० कुमार रथ-मूसल संग्राम में अनेक लोगों का साथ करने से नरक के योग्य कर्म एकत्र कर नरक में उत्पन्न हुए । इसलिए इस सूत्र का नाम निर्यावलिका गुण निष्पन्न है । संग्राम का विषय निम्न प्रकार से जानना चाहिए ।

चम्पा नगरी में कोणिक नाम वाला राजा राज्य करता था । वे दोनों भाई हल्ल और विहल्ल नाम वाले पिता के दिए हुए सेचनक नाम वाले गन्ध हस्ती पर समारूढ़ होकर, दिव्य कुण्डल दिव्य वस्त्र, दिव्य हार से विभूषित तथा अपने अन्तःपुर के साथ गंगा नदी में विलास कर रहे थे । उन्हें देखकर पद्मावती नाम वाली देवी ने राजा कोणिक को हार और हस्ती पाने के लिए प्रेरित किया । तब राजा कोणिक ने विहल्ल कुमार को दोनों पदार्थ देने का आदेश दिया । वे राजा के भय से अपने मातामह (नाना) चेटक नाम वाले राजा के पास वैशाली नगरी में चले गए । कोणिक ने हूट भेज कर फिर आदेश दिया । चेटक राजा ने कहा तुल्य मातृक होने से उनको भी राज्य का भाग मिलना चाहिये । कोणिक ने इस बात को स्वीकार न किया । वह संग्राम के लिए उद्यत हो गया । कोणिक की ग्राजानुसार तीन-तीन हजार हस्ती, रथ और घोड़े लेकर, इतना ही नहीं प्रत्येक के साथ तीन-तीन करोड़ मनुष्य भी थे । इसी प्रकार कूणिक स्वयं भी तैयार हुआ । सारी सेना में एकादश भाइयों की सेना ३३ हजार हस्ती, ३३ हजार रथ, ३३ हजार घोड़े और ३३ करोड़ मनुष्य गहड़ व्यूह के संस्थान पर संस्थित की गई ।

इस वृत्तान्त को जान कर राजा चेटक ने भी अष्टादश गण राजाओं को एकत्र किया, उन राजाओं की सेना और राजा चेटक की सेना में इतने ही हस्ती आदि का प्रमाण था । तत्पश्चात् युद्ध में संलग्न हुए राजा चेटक ने एक ही बार धनुषबाण छोड़ने की प्रतिज्ञा कर ली थी । उसका वाग अमोघ होता था । इसी क्रम से १० दिनों में कालादि १० कुमार मृत्यु को प्राप्त हो गए । एकादशवें दिन राजा चेटक को जीतने के लिए कोणिक ने अष्टम भक्त के साथ देवाराधन किया । तब यमकेन्द्र और चमरेन्द्र दोनों इन्द्र आगए । शक्र ने कहा—चेटक श्रावक है, अतः उसके ऊपर मैं प्रहार नहीं कर सकता । किन्तु आप की रक्षा अवश्य करूंगा । तब उसकी रक्षा के लिए वज्र के समान अभेद्य कवच निर्माण किया । चमर ने दो संग्राम विकुर्वण किए महाशिला कंटक और रथ-मूसल । उनमें महाशिला कण्टक संग्राम में शत्रु के प्रति तृणादि पदार्थ भी महाशिला के समान काम करते थे । रथ-मूसल संग्राम में एक रथ मूसल से युक्त बिना घोड़े और सारथी के चारों ओर सेनाओं का क्षय करता हुआ भागता था ।

उस रथ-मूसल संग्राम में काल कुमार मृत्यु को प्राप्त हुआ । उक्त विषय की वृत्तिका निम्न प्रकार से लिखते हैं ।

ततः शक्रो बभाषे—“चेष्टकः श्रावक इत्यहं न तं प्रति प्रहरामि, नवरं भवन्तं संरक्षामि” । ततोऽसौ तद्वक्षार्थं वज्रप्रतिरूपकमभेद्यकवचं कृतवान् । चमरस्तु द्वौ सङ्ग्रामौ विकुवितवान् महाशिलाकण्टकं रथमुशलं वेति । तत्र महाशिलेव कण्टको जीवित-भेदकत्वान्महाशिलाकण्टकः । ततश्च यत्र तृणशूनादिनाऽप्यहतस्याश्वहस्त्यादेर्महाशिलाकण्टकेनेवास्याहतस्य देवना जायते, स सङ्ग्रामो महाशिलाकण्टक एवोचरते । ‘रहमुशले’ ति यत्र रथो मुशलेन युक्तः परिधावन् अतो रथमुशलः ।

तथा जो सूत्रकर्ता ने “तिहि आससहस्सेहि तिहि मणुयकोडोहिं गरुलवूहे ।” पद दिए हैं इस पर विचार किया जाता है कि सहस्रों का सम्बन्ध कोटि के साथ युक्तिपूर्वक संगत नहीं होता, अर्थात् तीन हजार घोड़े और तीन करोड़ मनुष्य, अतः कोटि शब्द कोई राजकीय संज्ञा विशेष प्रतीत होता है । जैसे कि स्थानाङ्ग-सूत्र में कथन किया गया है—साधु का ६ कोटि प्रत्याख्यान होता है । इस स्थान पर कोटि शब्द एक कारिका का वाचो है, अथवा कोड़ी २० का नाम भी है । आगमों में कोड़ी शब्द सीमा का वाचक भी माना गया है । इससे भली भाँति सिद्ध हो जाता है कि इस स्थान पर कोटि शब्द सेना की किसी विशेष इकाई का नाम है, क्योंकि दोनों राजाओं की सर्व सेना देश के अर्थात् अंग देश और त्रिदेह देश की सीमा पर स्थित है । ३३ करोड़ और ५७ करोड़ दोनों राजाओं की सेना थी । संग्राम का अन्तर केवल एक योजन प्रमाण है । इससे सिद्ध होता है कि कोटि शब्द से कोई संज्ञा विशेष जाननी चाहिए । आजकल सिख समाज में “सत्रा लाख” केवल एक व्यक्ति के लिये कहा जाता है, तत्त्व तो केवली-गम्य है ।

उप्यतिक्रान्ति—अत्र सूत्रकार उक्त विषय में फिर कहते हैं—

मूल—तए णं तीसे कालीए देवीए अन्नया कयाइ कुडुम्ब-जागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए (जाव०) समुप्पज्जित्था । एवं खलु ममं पुत्ते कालकुमारे तिहिं दन्तिसहस्सेहिं (जाव०) ओयाए । से मन्ने किं जइस्सइ ? नो जइस्सइ ? जीविस्सइ ? नो जीविस्सइ ? पराजिणिस्सइ ? नो पराजिणिस्सइ ? काले ण कुमारे अहं जीवमाणं पासिज्जा ? ओहयमण० (जाव०) झियाइ ॥११॥

छाया—ततः खलु तस्याः काल्या देव्या अन्यदा कदाचित् कुटुम्ब-जागरिकां जाग्रत्या अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः यावद् समुदपद्यत । एवं खलु मम पुत्रः कालकुमारः त्रिभिर्दन्ति-सहस्रैः यावत् उपयातस्तन्मन्ये किं जेष्यति ? न जेष्यति ? जीविष्यति ? न जीविष्यति ? पराजेष्यते ? न पराजेष्यते ? कालं खलु कुमारमहं जीवन्तं द्रक्ष्यामि ? अपहतमनः-संकल्पा यावत् ध्यायति ॥११॥

पदार्थान्वयः—तए णं—तत्पश्चात्,—तीसे—उस, कालीए देवीए—काली देवी के, अन्नया कयाइ—अन्य समय में एक बार, कुटुम्ब जागरियं—कुटुम्ब की जागरिक अर्थात् कुटुम्ब सम्बन्धी विचार, अयमेवारुवे—इस प्रकार के, अज्झत्थि—आध्यात्मिक विचार, जाव—यावत् समुत्प-ज्जित्था—उत्पन्न हुए, एवं खलु—निश्चय ही इस प्रकार, ममं—मेरा, पुत्ते कालकुमारे—पुत्र काल कुमार, तिहि दन्तिसहरसेहि—तीन हजार हाथी लेकर, जाव—यावत्, ओयाए—(संग्राम-भूमि में) पहुंचा है, से—वह काल कुमार, मन्ने—मैं सोचती हूं, कि जइस्सइ—क्या जीतेगा ? नो जइस्सइ—नहीं जीतेगा ? जीवस्सइ—जीवित रहेगा ? नो जीवस्सइ—जीवित नहीं रहेगा ? पराजिनिस्सइ—शत्रु को पराजित करेगा ? नो परजिस्सइ—या पराजित नहीं करेगा ? काले णं कुमारे—काल कुमार को, अहं—मैं, जीवमाणं—जीवित अवस्था में, पासिज्जा—क्या देख सकूंगी ? ओहयमण—उपहत मन होकर अर्थात् उदास होकर, जाव—यावत्, श्रियाइ—आर्त-ध्यान करने लगी ॥ ११ ॥

मूलार्थ—तत् पश्चात् उस काली देवी के (हृदय में) एक समय कुटुम्ब का विचार करती हुई के इस प्रकार के आध्यात्मिक (मानसिक) विचार उत्पन्न हुए। इस प्रकार निश्चय ही मेरा पुत्र काल कुमार तीन हजार हाथियों के साथ यावत् संग्राम में गया है, मैं सोचती हूं कि क्या वह जीतेगा या नहीं जीतेगा ? क्या वह जीवित रहेगा, या जीवित नहीं रहेगा ? क्या वह हार जाएगा, या जीत जाएगा ? क्या मैं काल कुमार को जीते हुए को देख पाऊंगी, इस प्रकार के विचारों से वह उपहत-मन अर्थात् उदास होकर यावत् आर्तध्यान करने लगी ।

टीका—इस सूत्र में काली देवी के विषय में वर्णन किया गया है। एक समय की बात है कि काली देवी के हृदय में अर्द्धरात्रि के समय अपने कुटुम्ब के सम्बन्ध में विचार करते हुए ये संकल्प उत्पन्न हुए कि ये बात ठीक निश्चय है कि मेरा पुत्र काल कुमार ३ सहस्र हस्तो ३ सहस्र अश्व और ३ सहस्र रथ और ३ कोटि मनुष्यों के साथ रथ-मूसल नाम वाले संग्राम में गया है। यह मैं नहीं जान पा रही हूं कि क्या वह जीतेगा या नहीं ? जीवित रहेगा या नहीं ? वैरी को पराजित कर देगा या नहीं। काल कुमार को मैं जीवित अवस्था में देखूंगी या नहीं ? इस प्रकार के विचारों से उसका मन उपहत अर्थात् उदास हो गया और वह अपने दोनों हाथ कपोलों पर रख कर आर्तध्यान में डूबी अधो-मुखी होकर भूमि की ओर देखने लगी। उसका कमल सा मुख और नयन विकसित न रह सके। जैसे दीन व्यक्ति का मुख होता है, उसी प्रकार मानसिक दुःख के कारण से उसका मुख भी दीन हो गया कारण कि अन्तरंग की वेदना से उस का शरीर तेज-हीन सा हो गया था। इसलिए सूत्रकर्ता ने 'ओहयमण जाव श्रियाइ' यह पाठ दिया है इस के विषय में वृत्तिकार लिखते हैं—

उपहतो मनः—संकल्यो युक्तायुक्तविवेचनं यस्याः सा उपहतमनः-संकल्पा । यावत्कारणात् “करपलपल्हति यमुहो अट्टुज्झाणो वगया ओमंथियवयणनयणकमला” ओमंथियं—अधोमुखीकृतं वदनं च नयनकमले च यथा सा तथा । ‘दीणविवन्तवयणा’ दीनस्येव विवर्णं वदनं यस्याः सा तथा । ‘झियाई’ त्ति आर्तध्यानं ध्यायति, मणोमाणसिएणं दुबले वचनेनाप्रकाशितत्वात् तन्मनो-मानसिकं तेन अबहिर्व-तिनाऽभिभूता ।

इस वृत्ति का भाव यह है कि वह देवी मानसिक दुख से व्याकुल हुई आर्त-ध्यान में लीन हो गई ।

उत्थानिका—तत्पश्चात् क्या हुआ ? अब सूत्रकार इसी विषय में कहते हैं—

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं महावीरे समोसरिए, परिसा निगया ॥१२॥

छाया—तस्मिन् काले, तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरः समवसृत । परिषद् निर्गता ।

पदार्थान्वयः—तेणं कालेणं—उस अवसर्पिणी काल के चतुर्थ भाग में, तेणं समएणं—उस समय जिस समय श्रमण भगवान् महावीर विद्यमान थे, समणे—श्रमण, भगवं—भगवान्, महावीरे—महा-वीर, समोसरिए—पधारे, परिसा—परिषद्, निगया—नगर से निकली ।

मूलार्थ—उस काल उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का समवसरण हुआ, अर्थात् वे पधारे । तब नगर की परिषद् (जनता) भगवान् महावीर के वचनामृत सुनने को आई ।

टीका—इस सूत्र में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समवसरण विषयक वर्णन किया गया है, उस समय संग्राम हो रहा था और काल कुमार आदि १० भ्राता उस संग्राम में गए हुए थे । तब उस समय काली देवी स्वकीय कुटुम्ब विषयक चिन्ता में काल कुमार के जय पराजय विषय की चिन्ता में मग्न हो रही थी । उसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी चम्पा नगरी के बाहर ईशान कोण में पूर्ण भद्र चैत्य में विराजमान हुए । नगर की परिषद् अर्थात् जनता भगवान् महावीर के वचनामृत सुनने के लिए आई ।

उत्थानिका—तत्पश्चात् इस विषय में क्या हुआ ? यही सूत्रकार—बतलाते हैं—

मूल—तए णं तीसे कालीए देवीए इमीसे कहाए लढट्टाए समाणी । अयमेवारूवे अज्झत्थिए जावसमुप्पज्जित्था—एवं खलु समणे भगवं पुब्बाणु-पुब्बिं इहमागए जाव विहरइ । तं महाफलं खलु तहारूवाणं जाव विउ-लस्स अट्ठस्स गहणयाए । तं गच्छामि समणं जाव पज्जुवासामि, इमं च णं एयारूवं वागरणं पुच्छिस्सामि त्ति कट्ठ एवं संपेहेइ, संपेहिता कोटु-म्बिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणु-प्पिया ! धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तमेव उवट्ठवेह । उवट्ठवित्ता जाव पच्च-प्पिणंति ॥ १३ ॥

छाया—ततः खलु तस्याः देव्याः एतस्याः कथायाः लब्धार्थायाः सत्याः अयमेतद्रूपः आध्या-त्मिकः यावत् समुदपद्यत - एवं खलु श्रमणो भगवान् महावीरः पूर्वानुपूर्व्याः इहागतः यावद् विहरति तन्महाफलं खलु तथा रूपाणां यावत् विपुलस्यार्थस्य ग्रहणतया तद् गच्छामि खलु श्रमणं यावत् पर्युपासे, इदं च खलु एतद्रूपं व्याकरणं प्रक्ष्यामि, इतिकृत्वा एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य कौटुम्बिक-पुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एव नवादीत्—क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! धार्मिकं यान-प्रवरं युक्तमेव उपस्था-पयत । उपस्थाप्य यावत् प्रत्यर्पयन्ति । ॥१३॥

पदार्थान्वयः— तए णं, तत्पश्चात् णं वाक्यालङ्कार के लिये प्रयुक्त है), तीसे कालीए देवीए—उस काली देवी के हृदय में, इमीसे—इस, कहाए—कथा के (वृत्तान्त के), लढट्टाए समाणीए—वह जो चाहती थी वह हो जाने पर, अयमेवारूवे—इस प्रकार का मानसिक भाव, जाव—यावत्, समुप्पज्जित्था—उत्पन्न हुआ, एवं खलु—यह निश्चित है कि, समणे श्रमण, भगवं—भगवान् महावीर, पुब्बाणुपुब्बिं—ग्रामानुग्राम, इहमागए—यहां इस चम्पा नगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य में पधारे हैं, यावत्-विहरइ—यावत् विहार करते हुए, तं महाफलं—यह महान् फलदायक है, खलु—निश्चय ही, तहारूवाणं—तथारूप अर्थात् शुभ परिणाम देने वाले, जाव—यावत् अर्थात् श्रमण भगवन्तों का नाम-स्मरण ही, (अतः) विउलस्स—विपुल अर्थात् बहुत, अट्ठस्स—अर्थ अर्थात् प्रयोजन को, गहणयाए—को ग्रहण करने के लिये अर्थात् प्रयोजन-सिद्धि के लिये, तं—इसलिये, गच्छामि—मैं जाती हूं, समणं—श्रमण भगवान् महावीर की, जाव—यावत्, पज्जुवासामि—सेवा करूं, इमं च णं—और अपने हृदय में पूर्व उठे हुए, एयारूवं—और उसी प्रकार के अन्य, वागरणं—अनेक प्रश्न पुच्छिस्सामि—मैं पूछूंगी, त्ति कट्ठ—यह कह कर, एवं संपेहेइ—इस प्रकार विचार करती है, संपेहिता—विचार करके, कोटुम्बियपुरुसे—पारिवारिक निजी दासों को, सद्दावेइ—बुलवाती है,

सहायिता—बुलवा कर, एवं वयासी—और उनसे कहती है कि, भो देवानुप्रियो ! क्षिप्पामेव—शीघ्र ही, धम्मियं—धार्मिक कार्यों में ही प्रयुक्त किये जाने वाले, आणप्पवरं—सर्वश्रेष्ठ रथ, जुत्तामेव—अश्व-सारथी आदि से युक्त, उवहुवेह—तैयार करो, उवहुवित्ता—रथ को तैयार करके दास लोग, जाव—यावत्, पच्चप्पिणंति—महारानी को अर्पित करते हैं—अर्थात् “रथ तैयार है” यह निवेदन करते हैं ।

मूलार्थ—तत्पश्चात् काली देवी (भगवान् महावीर के आगमन सम्बन्धी) समाचार को सुनकर वह जो चाहती थी वही उसे प्राप्त हुआ था, अतः उसके हृदय में यह भाव उत्पन्न हुआ कि यह तो निश्चित ही है कि श्रमण भगवान् महावीर इस चम्पा नगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य में ग्रामानुग्राम विहार करते हुए पधारे हैं । उनका आगमन निश्चय ही शुभ फलदायक है, ऐसे श्रमण भगवन्तों का नाम-स्मरण ही जबकि महाफलदायक होता है तो उनके दर्शनार्थ जाना, उन्हें नमस्कार करना, उनकी सेवा करना तो शुभ फलदायक होगा ही, अतः मैं उनके दर्शनार्थ जाती हूँ, उनको वन्दन करती हूँ, उनकी उपासना करती हूँ और अपने हृदय में जो पुत्र-सम्बन्धी प्रश्न हैं वह उनसे पूछती हूँ । यह सोचकर उसने अपने पारिवारिक दासों को बुलवाया और उनसे कहा—देवानुप्रियो ! धार्मिक कार्यों के लिये निश्चित मेरा अश्व-सारथी आदि से युक्त रथ शीघ्र लाओ । दास लोग रथ को तैयार करके “रथ तैयार है” महारानी से यह निवेदन करते हैं ।

टीका—इस सूत्र में काली देवी के विषय में वर्णन किया गया है, जैसे कि जब काली देवी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के आगमन का समाचार प्राप्त किया, तब उसके हृदय में निम्न लिखित विचार उत्पन्न हुए । जैसे कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अनुक्रम से ग्रामानुग्राम विचरते हुए इस चम्पा नगरी के बाहर पूर्णभद्र नामक चैत्य में (उद्यान में) विराजमान हो गए हैं । जो व्यक्ति महापुरुषों के धर्मोपदेश को धारण करता है, उसे महाफल प्राप्त होता है, इसलिए मैं भी भगवान् महावीर की सेवा कर के यह प्रत्यक्ष प्रश्न पूछूंगी । तब वह स्वकीय दासों को ग्रामान्वित कर कहने लगी—“हे देवानुप्रियो ! मेरे जाने के लिए धार्मिक रथ को अश्वों से संयुक्त कर, मुझे शीघ्र ही सूचित करो । तब दासों ने उसी प्रकार करके काली देवी को सूचित कर दिया ।

कुछ प्रतियों में वृत्तिकार ने “अज्जत्थिए” के पश्चात् निम्न लिखित पाठ अधिक दिया है—

‘चित्तिय पणिय मणोगए संपत्ते’ अर्थात् चिन्तित स्मरण-रूप, प्रार्थितः आशंसा रूपः, मनोयतः

मनोगत रूपः संकल्प-विकल्प रूपः और “समणे भगवं” इस के आगे यह पाठ देखा जाता है ।

“पुब्बाणु पुण्वि चरमाणे जाव सुहं सुहेणं विहरमाणे”

वृत्तिकार ने उक्त विषय को निम्न प्रकार से सम्पूर्ण किया है । वह सर्व पाठ औपपत्तिक सूत्र के आधार से लिखा गया है जैसे कि—

पुब्बाणुपुण्वि चरमाणे गामाणुगामं दुइज्जमाणे इहमागए इह सम्पत्ते इह समोसडे, इहेव चंपाए नयरीए पुव्वणभदे चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पणं भावेमाणे विहरइ ।” “तं महाफलं खलु” भो देवाणुप्पिया ! “तहारूवाणं” अरहंताणं, भगवंताणं. नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमणवंदगनमंसंगपडिपुच्छणपज्जुवासणाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स वयणस्स सवणयाए, किमंग पुण ‘विउलस्स अट्टस्स गहणयाए” ‘गच्छामि ण’ अहं ‘समणं’ भगवं महावीरं वंदामि तमंसामि सत्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं “पज्जुवासामि,” एवं नो पेच्चभवे हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भदिससइ ‘इमं च णं एयारूवं वागरणं पुच्छिस्सामि ति कटट्ठु एवं संपेहेइ संप्रेक्षते-पर्यालोचयति । सुगमम् ।

नवरं “इहमागए” ति चम्पायां, ‘इह संपत्ते’ ति पूर्णभद्रे चैत्ये, “इह समोसडे” ति साधू-चितावगृहे, एतदेवाह-इहेव चंपाए इत्यादि । ‘अहापडिरूवं’ ति यथाप्रतिरूपम् उचितमित्यर्थः । ‘तं’ इति तस्मात्, ‘महाफलं’ ति महत्फलमायस्यां भवतीति गम्यं ।

‘तहारूवाणं’ ति तत्प्रकारस्वभावानां - महाफलजननस्वभावानामित्यर्थः । नामगोयस्स ति नाम्ना-याइच्छिकस्याभिधानस्य, गोत्रस्य-गुणनिष्पन्नस्य, “सवणयाए” ति श्रवणेन, ‘किमंग पुण’ ति किं पुनरिति पूर्वोक्तार्थस्य विशेषद्योतनार्थम् अङ्गैस्त्यामन्त्रणे, यद्वा परिपूर्ण एवायं शब्दो विशेषणार्थः, अभिगमनं, वन्दनं-स्तुतिः, नमनं-प्रणमनं, प्रति पृच्छनं-शरीरादिवाताग्रसनं, पर्युपासनं-सेवा, तद्-भावस्तत्तातया, एकस्यापि आर्यस्य आर्यप्रणेतृकत्वात्, धार्मिकस्य धर्म-प्रतिबद्धत्वात्, वन्दामि, वन्दे स्तुमि, नमस्यामि—प्रणमामि, सत्कारयामि—आदरं करोमि वस्त्राद्यर्चनं वा, सम्मानयामि उचितप्रतिपत्त्येति । कल्याणं-कल्याणहेतुं, मंगलं दुरितोपशमनहेतुं, देवं चैत्यमिव चैत्यं, पर्युपासयामि-सेवे, एतत् नोऽस्माकं, प्रेत्यभवे-जन्मान्तरे, हिताय पथ्यान्नवत्, शर्मणे, क्षमाय-सङ्गतत्वाय, निःश्रेयसाय-मोक्षाय, आनुगामिकत्वाय-भवपरम्परासु सानुबन्धसुखाय, भविष्यति, इति कृत्वा इति हेतोः, संप्रेक्षते पर्यालोचयति संप्रेक्ष्य चैकमवादीत्—

श्रीघ्रमेव ‘भो देवाणुप्पिया’ । धर्माय नियुक्तं धार्मिकं, यानप्रवरं, ‘चाउघटं आसरहं’ ति चतस्रो घण्टाः पृष्ठतोऽग्रतः पार्श्वतश्च लम्बमाना यस्य स चतुर्घण्टः, अश्वयुक्तो रथोऽश्वरथस्तमश्व-प्परथं, युक्तमेवाश्वदिभिः, उपस्थापयत—प्रगुणीकुरुत, प्रगुणीकृत्य मम समर्पयत् ।

इस वृत्ति का भाव ऊपर लिखा जा चुका है तथा “धम्मियं यानप्पवरं” इस पद से यह निश्चित होता है कि धर्म के लिए वह रथ नियुक्त था, अर्थात् धार्मिक क्रियायें करते समय ही उसका उपयोग किया जाता था, तथा ‘तं महाफलं’ इत्यादि पदों से यह सिद्ध किया गया है कि तथारूप

अर्हत भगवन्तो के नाम सुनने मात्र से ही महाफल होता है, फिर जो उनके पास जाकर वन्दन नमस्कार करके प्रश्न का पूछना तथा उनकी पर्युपासना करना इतना, ही नहीं उन के मुख से निकले हुए आर्योचित धार्मिक वचनों का श्रवण करना और विपुल अर्थों का धारण करना, उसका फल हम क्या कह सकते हैं, अथवा भगवत्-स्तुति इस लोक और परलोक में हित के लिए, सुख के लिए, श्रेय और मोक्ष के लिए होती है । इस सूत्र के आधार पर स्तुति वा स्तोत्रों की रचनाएं हुई हैं ।

जो सूत्र कर्ता ने 'कोडुंबिय पुरिसे' पद दिया है इसका भाव सेवक पुरुष है ।

उत्थानिका—तदनन्तर काली देवी ने क्या किया अब सूत्रकार इसी विषय में कहते हैं—

सूत्र—तए णं सा काली देवी ण्हाया कयबलिकम्मा जाव अण्णमह-
ग्गाभरणालंकियसरीरा बहूहिं खुज्जाहिं जाव महत्तरगविंदपरिविखत्ता
अतेउराओ निगच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव
धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं
दूरुहइ, दूरुहित्ता नियगपरियालसंपरिवुडा चंपं नयारिं मज्झं-मज्झेणं निग्ग-
च्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पुन्नभट्ठे चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
छत्ताईए जाव धम्मियं जाणप्पवरं ठवेइ, ठवित्ता धम्मियाओ जाणप्प-
वराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता बहूहिं जाव खुज्जाहिं महत्तरगविंद-
परिविखत्ता जेणेव सभणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
संभणं भगवं महावीरं तिख्खुनां वंदइ, वंदित्ता ठिया चैव सपरिवारा
सुसूतमाणा नमंसमाणा अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा पज्जुवासइ ॥१४॥

आयः—ततः खलु सा काली देवी स्नाता कृतबलिकर्मा यावत् अल्पमहाग्गाभरणालङ्कृत-
सरीरा बहूभिः पावन्महत्तरकवृन्दपरिक्षिप्ता अन्तःपुरान्निगच्छति, निर्गत्य यत्रैव धार्मिको यानप्रवर-
स्तत्रोपागच्छति, उपागत्य धार्मिकं यानप्रवरं दूरुहति, दूरुह्य निजकपरिवारसंपरिवृता चम्पां नगरीं
गन्ध-मध्येन निगच्छति, निर्गत्य यत्रैव पूर्णभद्रश्चैत्यस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य छत्रादिकं यत्रैव
धार्मिकं यानप्रवरं स्थापयति, स्थापयित्वा धार्मिकाद् यानप्रवरात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरह्य बह्वीभिः
कुन्दाभिः यावत्—महत्तरकवृन्दपरिक्षिप्ता यत्रैव श्रमणो भगवान् महावीरस्तत्रैवोपागच्छति,
उपागत्य श्रमणं भगवन्तं त्रिःकृत्वा वन्दते, वन्दित्वा स्थिता चैव सपरिवारा शुश्रूषमाणा नमसयन्ती
अभिमुखी विनयेन प्राञ्जलिपुटा पर्युपासते ॥ १४ ॥

पदार्थान्वयः—तए णं—तदनन्तर, (णं वाक्यलंकार में), सा काली देवी—उस काली देवी ने, ण्हाया—स्नान किया, कयबलिकम्मा—बलिकर्म किया, जाव-यावत्, अप्पमहग्घाभरणालंकिय-सरीरा—भार में हल्के किन्तु बहुमूल्य आभूषणों से अपने को अलंकृत किया, बहूहि—बहुत सी, खुज्जाहि—कुबड़ी दासियों, महत्तारगविन्द-परिक्खित्ता—और महत्तरकवृन्द (अन्तःपुर-रक्षिका दासियों) को साथ लेकर, अन्तेउराओ—अन्तःपुर से, निग्गच्छइ—निकली, निग्गच्छिता—वहां से निकलकर, जेणेव बाहिरिया—जहां बाहरी सभा-मण्डप था, (और) जेणेव—जहां पर, धम्मिकं यान-प्रवरं—जहां पर धर्मयात्रा के लिए रथ खड़ा था, दूरुहइ—वहां आकर रथ में बैठ गई। दूरुहिता—रथ पर बैठ कर, निग्ग-परियाल-संपरिवुडा—अपने परिवार से घिरी हुई, चंपं नयारि मज्झं-मज्झेणं—चम्पा नगरी के बीचों बीच के रास्ते से, निग्गच्छइ—निकली—आगे बढ़ी, निग्गच्छिता—वहां से आगे बढ़कर, जेणेव—जहां, पुण्णभद्दे—पूर्णभद्र, चेइए—चैत्य था, तेणेव उवागच्छइ—वहां आ पहुंची, उवागच्छिता—वहां पहुंच कर, छत्ताईए—भगवान् महावीर के छत्रादि अतिशयों को देखकर, (उसने अपने) जाव यावत् धम्मियं जाणप्पवरं—धर्म-यात्रा में प्रयुक्त होने वाले रथ को रुकवा दिया। ठवित्ता—रथ को रुकवा कर, धम्मियाओ जाणप्पवराओ—उस धर्म-यात्रा रथ से, पच्चोरुहइ—नीचे उतर आई। पच्चोरुहिता—रथ से नीचे उतर कर, बहूहि खुज्जाहि—समस्त कुबड़ी दासियों, (और) जाव—यावत्, महत्तारग-विन्द परिक्खित्ता—यावत् महत्तरक वृन्द के साथ अर्थात् अन्तःपुर की रक्षिका दासियों के साथ, जेणेव—जहां पर, समणे भगवं महावीरे—श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, तेणेव—वहीं पर उवागच्छइ—आ पहुंची, उवागच्छिता—वहां आ कर, समणं भगवं महावीरं—उसने श्रमण भगवान् महावीर को, तिक्खुत्तो—तीन बार प्रदक्षिणा करके बंदइ—उन्हें वन्दना की, बंदिता—वन्दना करने के अनन्तर, ठिया चेव सपरिवारा—परिवार सहित वहां खड़ी हुई, सुस्सुसमाणा—सेवा-भक्ति करती हुई, नमंसमाणा—नमस्कार करती हुई, अभिमुए—भगवान् के सामने, विणएणं—विनय-पूर्वक, पंजलिउडा—कर-बद्धा होकर, पज्जुवासइ—भगवान् की सेवा-भक्ति करने लगी।

मूलार्थ—तदनन्तर उस काली देवी ने स्नान किया, बलिकर्म किया, यावत् बहुत सी कुब्जा दासियों के वृन्द से घिरी हुई वह अन्तःपुर से निकली और निकल कर जहां बाहर की ओर उपस्थान-शाला थी, जहां धार्मिक प्रधान रथ तैयार खड़ा था, वहां आई। आकर धार्मिक प्रधान रथ पर आरुढ़ हुई। आरुढ़ होकर अपने परिवार से परिवृत हुई और चम्पा नगरी के बीचों-बीच के मार्ग से निकली। निकल कर जहां पूर्णभद्र चैत्य था, वहां आई। तीर्थङ्कर देव के छत्रादि अतिशयों को देख कर उसने धार्मिक प्रधान रथ को खड़ा किया। रथ खड़ा करके, धार्मिक प्रधान रथ से नीचे उतर आई, उतर कर उन बहुत सी कुब्जा दासियों के वृन्द से परिवृत हुई जहां श्रमण भगवान्

महावीर अपनी उपदेश रूपी दृष्टि से भव्य जनों की अज्ञानता की धूल को शांत कर रहे थे, वहां पर आई। आकर श्रमग भगवान महावीर स्वामी की तीन बार प्रदक्षिणा की। वन्दना नमस्कार कर परिवार सहित खड़ी हुई। सेवा करती हुई नमस्कार करती हुई उनके सम्मुख विनय-पूर्वक हाथ जोड़कर सेवा करने लगी।

टीका—इस सूत्र में काली देवी के विषय में वर्णन किया गया है। जब काली देवी ने रथ पर आरोहण किया तो उस से पूर्व पहले स्नान और बलि कर्म किया।

इस के विषय में वृत्तिकार लिखते हैं—“कयबलिकम्मा” त्ति स्वगृहे देवतानां कृत-बलिकर्मा” अर्थात् स्वगृह में देवताओं के पूजन आदि कृत्य को बलो - कर्म कहते हैं, किन्तु यह शब्द अर्धमागधी गुजराती कोश के ५७४ पृष्ठ पर तीन अर्थों में ग्रहण किया गया है—जैसे कि बलिकम्म, १. बलिकम्म शरीर की स्फूर्ति माटे तेलादि थी मर्दन करवू ते, २. देवताने निमित्ते अपायते और ३. गृहदेवतानुं पूजन। इस स्थान पर शरीर की स्फूर्ति के लिए तेलादि मर्दन ही सिद्ध होता है।^१ कारण यह कि औपपातिक सूत्र में स्नान की पूर्ण विधि का विधान किया गया है जिस में उल्लेख है कि स्नान के पूर्व तेलादि के मर्दन का विधान है। उस स्थान पर इसका विस्तार सहित वर्णन किया गया है, किन्तु वहां पर “कयबलिकम्मा” का पाठ नहीं है। इससे सिद्ध हुआ जिस स्थान पर स्नान विधि का संक्षिप्त वर्णन किया गया हो वहां पर तो ‘कयबलिकम्मा’ का पाठ होता है और जिस स्थान पर स्नान की पूर्ण विधि का वर्णन होता है उस स्थान पर नहीं। इसलिये पूर्व अर्थ ही युक्ति-युक्त सिद्ध होता है तथा कौतुक मंगल क्रिया और दुःस्वप्नादि के फल को दूर करने के लिये, प्रायश्चित्त किया। कौतुक शब्द से मषी-पुण्ड्र आदि का ग्रहण है और मंगल शब्द से सिद्धार्थ दही, अक्षत, दूर्वादि (दूब) का ग्रहण है। जैसे कि—कौतुकानि मषीपुण्ड्रादीनि, मंगलादीनिसर्षादध्यञ्जवन्दनदूर्वाकुरादीनि। इतना ही नहीं उसने अच्छे सुन्दर वस्त्रों को पहन कर जो भार में अल्प किन्तु मूल्य में कीमती थे इस प्रकार के आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया। फिर बहुत से देशों से आई हुई दासियों के वृन्द के साथ परिवृत होती हुई भगवान महावीर के दर्शनों के लिये उत्सुक हो रही थी।

सूत्रकर्ता ने ‘बहूहि खुज्जाहि जाव’ इन पदों से अनेक देशों की दासियों का वर्णन किया है। यावत् शब्द से अनेक देशों की सूचना दी गई है। वृत्तिकार ने उन देशों में उत्पन्न होने वाली दासियों के विषय में बहुत विस्तार से लिखा है।

उत्थानिका—तदनन्तर क्या हुआ ? अब सूत्रकार इस विषय में कहते हैं—

मूल—तए णं समणे भगवं जाव कालीए देवीए तीसे य महइमहालि-
याए, धम्मकहा भाणियव्वा, जाव समणोवासए वा समणोवासिया वा

१. स्नान के अनन्तर तैल-मर्दन तो लोक प्रसिद्ध नहीं है, सम्भवतः सुगन्धित तैलादि लगाना अर्थ हो।

विहरमाणा आणाए आराहए भवइ ।१५।

छाया—ततः णं श्रमणो भगवान् महावीरः योयत् काल्याः देव्याः तस्याः महातिमहत्याः (धर्मकथायाः नेतव्याः) भाणितव्या यावत् श्रमणोपासकः वा श्रमणोपासिका वा विहरमाणा आज्ञायाः आराधको भवति ।

पदार्थान्वयः—तए णं—तत्पश्चात्, समणे भगवं—श्रमण भगवान् महावीर, जाव—यावत्-अर्थात् मोक्षगामी, कालीए देवीए—महारानी काली देवी को लक्ष्य में रखकर, तीसे य—और उस महातिमहात्याए—अत्यन्त विशाल परिपद् में, धम्मकहा - धर्म-कथा (धर्मोपदेश), भाणियव्वा—सुनाई, जाव—यावत् (आगार अतगार धर्म की शिक्षा में तत्पर), समणोवासए—श्रमणोपासक (श्रावक), वा—अथवा, समणोवासिया—श्रमणोपासिका (श्राविका), विहरमाणा—विचरते हुये, आणाए—आज्ञा के, आराहए—आराधक (आज्ञा का पालन करने वाले), भवइ—होते हैं ।

मूलार्थ—तत्पश्चात् मोक्षगामी भगवान् महावीर स्वामी ने महारानी काली देवी एवं उस विशाल धर्म-सभा को ऐसी धर्म-कथा सुनाई, जिसको श्रवण कर श्रावक एवं श्राविकायें धर्म में स्थिर रहकर जीवन-पथ पर चलते हुए (विहरमाणा) प्रभु की आज्ञा के आराधक—पालन करने वाले होते हैं ।

टीका—इस सूत्र में श्री भगवान् महावीर की (धर्मोपदेश) कथा के विषय में वर्णन किया गया है, जैसे कि जब काली देवी और विशाल धर्म-परिपद् उस उद्यान में एकत्र हुईं, तब भगवान् महावीर ने धर्म कथा-वर्णन की, यावत् साधु-धर्म वा श्रावक धर्म का वर्णन किया । अन्त में यह बतलाया जो इस धर्म की पूर्णतया आराधना करता है, वह प्रभु की आज्ञा का आराधक हो जाता है । धर्मकथा का पूर्ण विवरण औपनिषदिक सूत्र से जानना चाहिये । इस स्थान पर तो केवल संक्षिप्त वर्णन किया गया है ।

उत्थानिका—अब सूत्रकार उक्त विषय में और वर्णन करते हैं :—

मूलम्—तए णं सा काली देवी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्मजावहियया समणं भगवं महावीरं तिवखुत्तो जाव एवं वयासी—एवं खलु भंते ! मम पुत्ते काले कुमारे तिहिं दंतिसहस्सेहिं जाव रहमुसलसंगाम “ओयाए, से णं किं जइस्सइ ? नो जइस्सइ ? जाव काले णं कुमारे अहं जीवमाणं पासिज्जा ? । कालीत्ति समणे भगवं

महावीरे कालि देवि वं वयासी-एवं खलु काली ! तव पुत्ते काले कुमारे तिहिं दंतिसहस्सेहिं जाव कूणिएणं रत्ना सद्धि रहमुसलं संगामं संगामेमाणे हयमहिपपरवीरघाडयणिवडियचिधज्जयपडागे निरालोयाओ दिसाओ करमाणे चेडगस्स रत्नो सपक्खं सपडिदिस्सि रहेणं पडिरहं हव्वमागए ।

तए णं से चेडए राया कालं कुमारं एज्जमाणं पासइ, कालं एज्जमाणं पासित्ता आसुत्ते जाव निसिमिसमाणे धणुं परामुसइ, परामुसत्ता उसुं परामुसइ, वइसाहं ठाणं ठाइ, ठाइत्ता आययकण्णाययं उसुं करेइ, करित्ता कालं कुमारं एगाहव्वं कूडाहव्वं जीवियाओ ववरोवेइ । तं कालगए णं काली ! काले कुमारे नो चव णं तुमं कालं कुमारं जीवमाणं पासिहिसि ।

छाया—ततः खलु सा काली देवी श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अन्तिके धर्मां श्रुत्वा निश्चयं यावत् हृदया श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः-कृत्वा यावदेवमवादीत्—एवं खलु भवन्त ! मम पुत्रः कालः कुमारः त्रिभिर्दन्तिसहस्रैः यावत्—रथमुसलसंग्रामम् उपगतः, स खलु भवन्त ! किं जेष्यति ? नो जेष्यति ? यावत् कालं खलु कुमारमहं जीवन्तं द्रक्ष्यामि ? कालि ! इति श्रमणो भगवान् महावीरः कालीं देवीमेवमवादीत् एवं खलु कालि ! तव पुत्रः कालः कुमारः त्रिभिर्दन्तिसहस्रैर्यावत् कूणिकेन राज्ञा सद्धं रथमुशलं संग्रामं सङ्ग्रामयन् हतमथितप्रवीरघातितचिह्नध्वजपताकः निरालोका दिशः कुर्वन् चेटकस्य राज्ञः सपक्षं सप्रतिदिक् रथेन प्रतिरथं हव्यमागतः ॥

ततः खलु स चेटको राजा कालं कुमारम् एजमानं पश्यति । कालमेजमानं दृष्ट्वा अशुभतः यावत् निसिमिस्सन् धनुः परामुशति, परामुश्य इधुं परामुशति, परामुश्य वैशाखं स्थानं तिष्ठति, स्थित्वा अत्यतकर्णायतामधुं करोति, कृत्वा कालं कुमारमेकाहत्यं कूडाहत्यं जीवित्वा व्यपरोपयति । तत् कालवतः खलु कालि ! कालः कुमारः नो चैव खलु त्वं कालं कुमारं जीवन्तं द्रक्ष्यसि ॥

पदार्थान्वयः—तए णं—उसके अनन्तर (धर्म-कथा श्रवण के अनन्तर), “णं” वाक्यलंकार में, सा कालो देवी—वह महारानी काली देवी, भगवओ—भगवान्, महावीरस्स—महावीर के, अंतियं—गोप, धम्मं—धर्म (धर्म-कथा), सोच्चा—सुनकर, निसम्म—उस पर विचार करके, हियया—अत्यन्त सन्न हृदय से, समणं—श्रमण, भगवं—भगवान् महावीर की, तिक्खुत्तो—तीन बार प्रवक्षिणा करके, जाव-यावत्—वन्दना-नमस्कार करके, एवं वयासी—इस प्रकार कहने लगी, एवं खलु स्ते—भगवन् इस प्रकार निश्चय से, मम पुत्ते—मेरा पुत्र, काले कुमारे—काल कुमार, तिहिं—तीन, दंति-सहस्सेहिं—तीन हजार हाथियों को साथ लेकर, जाव—यावत् अर्थात् तीन हजार रथों तीन हजार घोड़ों और तीन करोड़ सैनिकों के साथ, रह-मुसल-संगामं—रथ-मुसल संग्राम में,

ओयाए—गया है, से—वह काल कुमार, णं भन्ते—हे भगवन् ! खलु—निश्चय पूर्वक, जइस्सइ—क्या जीतेगा ? नो जइस्सइ—क्या नहीं जीतेगा ? जाव—यावत्—जीता रहेगा या नहीं और शत्रुओं को पराजित कर पाएगा या नहीं, काले णं कुमारे—काल कुमार को, अहं—मैं, जीवमाणं—जीवित ही, पासिज्जा—क्या देख पाऊंगी, कालीति—काली देवी के प्रश्न को सुनकर, समणे भगवं महावीरे—श्रमण भगवान् महावीर, कालि देवि—काली देवी से, एवं वयासी—इस प्रकार कहने लगे, काली एवं खलु - काली निश्चय ही, तव पुत्ते—तुम्हारा पुत्र, काले कुमारे—काल कुमार, तिहिं दंति-सहस्सेहि—तीन हजार हाथियों, जाव—यावत् अर्थात् अन्य युद्ध-सामग्री के साथ, कूणिएणं रन्ता सद्धि - राजा कूणिक के साथ, रह-मुसलं संगामं—रथ-मुशल संग्राम में, संगामे माणे—युद्ध करता हुआ, हय-महिय-पवर वोर घाइय णिवडिय, चिधज्झय-पडागो—उसका मान-मर्दन हो गया है, उसके प्रधान वीरों का घात हुआ है, उसके पताका आदि चिह्न गिर चुके हैं, (वह) दिसाओ—सभी दिशाओं को, निरालोयाओ—अन्धकारमय—निस्तेज करता हुआ, चेटयस्स रन्तो—राजा चेटक के, सपक्खं—सन्मुख, सपडिविकं—एक दूसरे के सामने, रहेणं—रथ पर बैठ कर, पडिरहं—राजा चेटक के रथ के सामने, हव्वं—शीघ्र ही, आगए—ग्रा गया ।

तए णं—तत्पश्चात्, से—वह, चेडए राया—राजा चेटक, कालं कुमारं—काल कुमार को, एज्जमाणं—आते हुए के, पासित्ता—देख कर, आसुरुत्ते—शीघ्र ही क्रोध में आकर, जाव—यावत् अर्थात् रुष्ट हो गए और क्रोध के कारण उनके होठ, (फड़फड़ाने लगे), मिसिमिसेमाणे—क्रोध की ज्वालाओं से जलते हुए, धणुं—धनुष को, परामुसइ—सुसज्जित करने लगे, परामुसित्ता—धनुष को सुसज्जित करके, उसुं—बाण को, परामुसइ—धनुष पर चढ़ाता है, वड्ढसाहं ठाणं ठाई—वैशाख स्थान, धनुष पर तीर चलाने की विशेष मुद्रा में बैठता है, ठाडित्ता—और बैठ कर, आथय-कण्णाययं—कानों तक, उसुं—बाण को, करेइ—ले जाता है, करित्ता—और ले जाकर, कालं कुमारं—काल कुमार को, एगाहच्चं—एक ही प्रहार से, कूडाहच्चं—जैसे किसी यन्त्र विशेष से किसी पर्वत शिखर को गिराया जाता है उसी प्रकार बाण के एक ही प्रहार से पर्वत शिखर—जैसे काल कुमार को, जीवियाओ—जीवन से, ववरोवेइ—रहित कर देता है. अर्थात् मार देता है, तं कालगए णं काली - हे काली इस प्रकार कालधर्म को प्राप्त हुए, कालं कुमारं—काल कुमार को, नो चेव णं—तू नहीं, जीवमाणं जीवित अवस्था में, पासिहिस्सि—देख पाएगी ।

मूलार्थ—तदनन्तर वह काली देवी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप धर्म को सुनकर और विचार कर. यावत् हृदय से प्रसन्न होकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा यावत् और वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहने लगी—“भगवन् ! मेरा पुत्र काल कुमार तीन सहस्र हस्तियों के साथ यावत् रथ-मूसल संग्राम में गया है । हे भदन्त ! क्या वह जीतेगा ? या नहीं जीतेगा ! अपने

पुत्र काल कुमार को मैं जीवित देख पाऊंगी या नहीं ? भगवान् कहने लगे—हे काली ! तेरे पुत्र काल कुमार का तीन सहस्र हस्तियों के साथ यावत् अर्थात् तीन हजार रथों, तीन हजार घोड़ों और तीन करोड़ सैनिकों की साथ लेकर राजा कूणिक के साथ रथमुसल संग्राम में संग्राम करते हुए मान-मर्दन हो गया है, उसके साथी वीरों का घात हुआ है, उसके (राज-) चिन्ह और पताका गिर चुके हैं, वह दिशाओं में अन्धकार करता हुआ, चेटक राजा के समक्ष और सम्प्रतिदिक् में अपने रथ से चेटक राजा के रथ के सम्मुख आ गया । तब चेटक राजा ने काल कुमार को सम्मुख आते हुए देख कर क्रोध में भर कर यावत् क्रोध से देदीप्यमान होते हुए धनुष को ऊंचा किया, उस पर बाण चढ़ा दिया । धनुष के चलाने के आसन पर बैठ कर कर्ण-पर्यन्त धनुष को खींच कर बाण छोड़ दिया । तब काल कुमार एक ही बाण से पर्वत-शिखर की भान्ति गिर कर जीवन से रहित हो गया, अर्थात् मारा गया । इसलिए हे काली ! तू कालगत कालकुमार को जीवित नहीं देख पाएगी, क्योंकि वह मारा गया है ॥१६॥

टीका—इस सूत्र में काल कुमार के विषय में वर्णन किया गया है । जैसे कि काली देवी ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया—“भगवन् ! मेरा पुत्र काल कुमार तीन सहस्र हस्ती आदि की सेना लेकर रथमुसल-संग्राम में गया है, “क्या वह जीतेगा ? या नहीं ? यावत् मैं काल कुमार को जीते हुए को देख पाऊंगी या नहीं ?”

तब भगवान् महावीर ने उत्तर में कहा—“हे काली ! तेरा पुत्र काल कुमार तीन सहस्र हाथियों आदि को लेकर, यावत् कूणिक राजा के साथ रथ-मुसल-संग्राम में संग्राम करते हुए मारा गया है । जिसका वर्णन मूलार्थ में किया गया है, किन्तु निम्नलिखित शब्दों का भाव जान लेना चाहिए । जैसे कि—‘हयमहियपवरवीरघाड्यणिवडियचिधज्जयपडानो’, अर्थात् (हृतः) सैन्यस्य हतत्वात्, मथितो मानस्य मन्थनात्, प्रवरवीराः—सुभटाः घातिताः—विनाशिताः यस्य, तथा निपातिताश्चिन्ध्वजाः—गहडादि-चिन्हयुक्ताः केतवः पताकाश्च यस्य सः तथा, ततः पवत्तुष्टयस्य कर्मधारयः ।

तथा ‘मिसिमिसेमाणे’ इस पद का यह भाव है कि वह क्रोध से देदीप्यमान हो गया ।

“सपक्खं सपडिदिंसि रहेणं पडिरहं हव्वमागए ।

इन पदों का भाव यह है कि चेटक राजा के रथ की तरफ काल कुमार का रथ सामने आ गया, समान प्रतिदिक् से रथ सम्मुख हो गया ।

इसी प्रकार—‘आसुरत्ते’ इस पद का भाव यह है कि शीघ्र ही रोष से भर गया । तथा जैसे कि—

आशु शीघ्र रुष्टः—क्रोधेन विमोहितो यः सः आशुरुष्टः, आसुरं वा आसुरसत्कं क्रोधेन दारुणत्वात् उक्तं भणितं यस्य स आसुरोक्तः, रुष्टो रोषवान् ।

‘एगाहृच्च’ इस पद का भाव यह है कि एक ही बाण से जैसे यंत्र द्वारा कूट पर्वत-शिखर उड़ जाता है, उसी प्रकार काल कुमार का सिर धड़ से पृथक् हो गया ।

एगाहृच्च ‘कूडाहृच्च’ कूटस्थेव पाषाणमयमहामारणयन्त्रस्थेव आहृत्या आहननं यत्र तत्कूटाहृत्य’ इसका यह भाव है कि जिस प्रकार यन्त्र द्वारा (मशीन द्वारा) पर्वत का शिखर उड़ जाता है ठीक उसी प्रकार एक ही बाण से काल कुमार का सिर धड़ से पृथक् हो गया ।

सूत्र कर्ता ने जो ‘वइसाहं ठाणं ठाइ’ पद दिए हैं अर्थात् “विशाख स्थानेन तिष्ठति” धनुष के चलाने के आसन पर ठहरता है अर्थात् जिस मुद्रा में बैठ कर धनुष चलाया जाता है उसी मुद्रा में बैठ कर धनुष चलाया गया ।

कुछ हस्त लिखित प्रतियों में निम्नलिखित पाठ अधिक है—

‘तिहि दंतिसहस्सेहि, तिहि अस-सहस्सेहि तिहि रहसहस्सेहि तिहि मणुयकोडीहि, तथा ‘कि जियसत्ति नो जियसत्ति जीवेस्सइ नो जीवेस्सइ, पराजिणस्सइ नो पराजिणस्सइ’ ।

इसी प्रकार भगवान के प्रतिवचन में तिहि दंतिसहस्सेहि इत्यादि सर्व पाठ दिया गया है ।

“निरालोयाओ दिसाओ करेमाणे”; इसका भाव यह है, चारों दिशाओं को निरालोक करता हुआ अर्थात् अन्धकारमय करता हुआ, राजा चेटक के रथ के सम्मुख अपना रथ लेकर आ गया । भगवान महावीर ने तं काल गते णं काली ! काले कुमारो नो चेव णं तुमं कालं कुमारं जीवमाणं पासिहिसि” जो यह कहा था उसका भाव यह है, भगवान महावीर ने यह कथन किया है कि हे काली ! तेरा पुत्र काल कुमार काल गत हो चुका है, अतः तू उसको जीते हुए को नहीं देख सकेगी ।

यह (आगम-विहारी) सर्वज्ञ का कथन है, इसलिए इसमें कोई भी दोषापत्ति नहीं है, क्योंकि आगम-विहारी जिस प्रकार अपने ज्ञान में देखते हैं, जिस प्रकार उस प्राणी का कल्याण देखते हैं, उसी प्रकार द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को देखकर वर्णन करते हैं । काली देवी दीक्षा लेकर (अन्त समय) केवली हुई है, अतः भगवान महावीर ने इसी कारण से उक्त प्रकार का कथन किया है, क्योंकि दीक्षा का कारण यही था ।

उत्थानिका—तत्पश्चात् क्या हुआ ? अब सूत्रकार इसी विषय में कहते हैं—

मूल—तए णं सा कालीदेवी समणस्स भगवओ अन्तियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म महया पुत्तसोएणं अप्फुन्ना समाणी परसुनियत्ताविव चम्पगलया धस त्ति धरणीयलंसि सब्वज्जेहि संनिवडिया ॥१७॥

छाया—ततः णं सा काली देवी श्रमणस्य भगवतः अन्तिकं एतदर्थं श्रुत्वा निशम्य महता पुत्रशोकेन व्याप्ता सती परशु-निकृन्ते चम्पकलता धस इति धरणीतले सर्वाङ्गं संनिपतिता ॥१७॥

पदार्थान्वयः—तए—तदनन्तर, णं—वाक्यालङ्कार में, सा काली देवी—वह महारानी काली देवी, समणस्स भगवओ—श्रमण भगवान् महावीर के, अन्तियं—पास से (उनके मुखार-विन्द से), एयमट्ठं—इस अर्थ (पुत्र-मरण के समाचार) को, सोच्चा—सुन कर, निसम्म—उसके सम्बन्ध में विचार करके, महया—बहुत भारी, पुत्त-सोएणं—पुत्र-शोक से, अफुन्ता समाणी—व्याप्त हुई, परसु-नियत्ता—कुहाड़े से काटी हुई, चम्पकलया विव—चम्पक लता, धस ति—धम्म करके गिर पड़ती है, वैसे ही कालीदेवी भी, धरणीयलंसि—भूमि पर, सव्वंगेहि—सर्वाङ्ग से, संनिवडिया—गिर पड़ी ॥१७॥

मूलार्थ—तदनन्तर महारानी काली देवी श्रमण भगवान् महावीर के मुखारविन्द से पुत्र-मरण के समाचार को सुनकर एवं कुछ विचार कर बहुत भारी पुत्र-शोक से व्याप्त हुई कुल्हाड़े से काटी गई चम्पक लता के समान धम्म करके अर्थात् पछाड़ खाकर धरती पर सभी अंगों सहित गिर पड़ी ॥१७॥

टीका—इस सूत्र में कालीदेवी के शोक-विषय का वर्णन किया गया है। जैसे कि जय काली देवी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के मुख से उक्त समाचार को सुना तब वह पुत्र के शोक से व्याप्त होती हुई, इस प्रकार भूमि पर गिरी, जैसे परशु द्वारा छेदन की हुई चम्पक लता गिर पड़ती है। परशु की तीक्ष्णता और चम्पक लता की सुकोमलता को लक्ष्य में रखकर सूत्र कर्ता ने काली देवी को इस उपमा से उपमित किया है। जैसे पुत्र-स्नेह की सुकोमल लता पर पुत्र-वियोग की तीक्ष्ण धारा गिरी, तब वह देवी जिस प्रकार छेदन की हुई चम्पक लता गिर पड़ती है, ठीक उसी प्रकार सर्वाङ्गों से भूमि पर गिर पड़ी।

इस सूत्र से सूत्र-कर्ता ने माता का पुत्र के प्रति कैसा स्नेह होता है यह सूचित किया है।

मूल—तए णं सा काली देवी मुहुत्तन्तरेण आसत्था समाणी उट्ठाए उट्ठेइ । उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं वन्दइ, नमंसइ । वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—“एवमेयं भन्ते ! तहमेयं भन्ते ! अवितहमेयं भन्ते ! असंदिद्धमेयं भन्ते ! सच्चे णं भन्ते ! एयमट्ठे, जहेयं तुब्भे वयह” त्ति कट्ठु समणं भगवं वन्दइ नमंसइ । वंदित्ता नमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ दुरुहित्ता जामेव दिंसि पाउब्भूया तामेव विसि पडिगया ॥१८॥

छाया—ततः खलु सा काली देवी मुहूर्तान्तरेण आश्वस्ता सती उत्थाय उत्तिष्ठति, उत्थाय श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्—एवमेतद् भदन्त ! तथ्यमेतद् भदन्त ! अवतिथ्यमेतद् भदन्त ! असंदिग्धमेतद् भदन्त ! सत्यः खलु भदन्त ! एषोऽर्थः तद् यथैतद् यूयं वदथ, इति कृत्वा श्रमणं भगवन्तं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा तमेव धार्मिकं यानप्रवरं आरोहति, आरूढ्या यामेव दिशं प्रादुर्भूता तामेव दिशं प्रतिगता ॥१८॥

पदार्थान्वय.—तए णं—तत्पश्चात् (णं वाक्यालंकार में), सा काली देवी—वह काली देवी, मुहूर्तान्तरेण—मुहूर्त मात्र के अन्तर से, आसत्था—आश्वस्त—सचेष्ट होकर, उट्ठाए उट्टेइ—दासियों आदि द्वारा उठाने पर उठी, उट्टित्ता—उठ कर, तमणं भगवं महावीरं—श्रमण भगवान् महावीर को, वन्दइ—वन्दन करती है, नमंसइ—नमन करती है, वंदित्ता—वन्दना करके, नमंसित्ता—नमस्कार करके, एवं—इस प्रकार, वयासी—बोली, एवमेयं भंते—भगवन् ! आप जैसा कहते हैं वैसा ही है, तहमेयं भंते—आपने यथार्थ ही कहा है, अवितहमेयं भंते—भगवन् ! आपके वचन यथार्थ हैं, असंदिग्धमेयं भंते—भगवन् आपके वचन सन्देह से रहित हैं, सच्चेणं भन्ते एयमट्ठे—भगवन् आपवें वचन बिल्कुल सत्य हैं, जहेयं—ठीक वैसा ही है, जहेयं तुम्हे वदह—जैसा आप कह रहे हैं, तिकट्ठु—ऐसा करके—कह कर, तमणं भगवं महावीरं—श्रमण भगवान् महावीर को, वन्दइ—वन्दना करती है नमंसइ—नमस्कार करती है, वंदित्ता नमंसित्ता—वन्दना-नमस्कार करके, तमेव—उसी, धम्मियं—धर्म-कार्यों में ही प्रयुक्त होने वाले, जाणप्पवरं—उस श्रेष्ठ रथ पर, दुरुहिता—आरूढ़ होकर, जामेव दिसिं वाउभूया—जिस दिशा से आई थी, तामेव दिसिं—उसी दिशा में, पडिगया—लौट गई ॥१८॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह काली देवी एक मुहूर्त के अनन्तर—अर्थात् कुछ क्षण बाद आश्वस्त होकर दासियों आदि के द्वारा उठाने पर उठ खड़ी हुई । उठ कर उसने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार किया, वन्दना-नमस्कार करके वह इस प्रकार बोली—“भगवन् ! आप जैसा कह रहे हैं वैसा ही है, आपके वचन यथार्थ हैं भगवन् ! आपके वचन सन्देह से रहित हैं, बिल्कुल सत्य हैं, भगवन् ! आपके वचन, ठीक वैसे ही हैं जैसा आप कह रहे हैं । ऐसा कह कर वह श्रमण भगवान् महावीर को पुनः वन्दना-नमस्कार करती है और वन्दन नमस्कार करके (अपने साथ लाये हुए) उसी धार्मिक कार्यों में ही प्रयुक्त होने वाले श्रेष्ठ रथ पर आरूढ़ हो गई और आरूढ़ होकर जिस दिशा से आई थी उसी दिशा में लौट गई ॥१८॥

टीका—इस सूत्र में काली देवी के विश्वास के विषय में वर्णन किया गया है । जैसे कि जब काली देवी मुहूर्तान्तर के बाद सावधान हुई तब उठ कर भगवान् महावीर के प्रति कहे

लगी कि “हे भगवन् ! आपके वचन तथ्य, अविष्य और सन्देह-रहित हैं। आपका कथन सत्य है, जिस प्रकार आप कहते हैं, वह यथार्थ है।” इस प्रकार कह कर वन्दना-नमस्कार करके जिस रथ पर बैठ कर आई थी उसी रथ पर चढ़ कर अपने भवन की ओर चली गई।

सूत्र-कर्ता ने यहां जो पांच पद दिए हैं वे काली देवी की उत्कृष्ट श्रद्धा के सूचक हैं। कारण कि उसकी भगवान् महावीर के प्रति अनन्य श्रद्धा और भक्ति थी। वे पद निम्न प्रकार से हैं। “एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अविहमेयं भंते ! असंदिग्धमेयं भंते ! सच्चे णं एयमट्ठे जहेयं तुहमे वदह ।” तथा इन पदों में विशिष्ट-विशिष्टतर-विशिष्टतम श्रद्धा देखी जा रही है। अन्तिम पद द्वारा यह सूचित किया गया है—“हे भगवन् ! जो आप कहते हैं वही बात सत्य है। इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी को उचित है कि वह भगवान् महावीर के निर्ग्रन्थ प्रवचन पर दृढ़ विश्वास रखे।

उत्थानिका :—तदनन्तर क्या हुआ अब सूत्रकार इसी विषय में कहते हैं—

मूल—भंतेति भगवं गोयमे जाव वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता
एवं वयासी-कालेणं भंते ! कुमारे तिहिं दंतिसहस्सेहिं जाव रहमुसलं
संगमं संगामेमाणे चेडएणं रत्ता एगाहच्चं कूडाहच्चं जीवियाओ ववरोविए
समाणे कालमासे कालं किच्चा कहिं उववन्ने ? ॥१६॥

छाया—भदन्त ! इति भगवन्तं गौतमो यावद् वन्दते नमस्यन्ते वन्दित्वा नमस्यित्वा एवम-
वादीत्—कालः खलु भदन्त ! कुमारः त्रिभिर्दन्तिसहस्रैर्यावद् रथमुशलं संग्रामं संग्रामयन् चेदकेन राज्ञा
एकहृत्य कूटाहृत्य जीविताद् व्यपरोपितः सन् कालमासे कालं कृत्वा क्व उत्पन्नः ?

पदार्थान्वयः—भंतेति—भगवन् ! इस प्रकार कह कर, भगवं—भगवान् महावीर को,
गोयमे—गौतम, जाव—यावत्, वंदति—वन्दना करते हैं, नमंसति—नमस्कार करते हैं, वंदित्ता-
नमंसित्ता—वन्दना ! नमस्कार करके, एवं वयासी—इस प्रकार पूछने लगे— कालेणं भंते—भगवन्
वह काल कुमार, तिहिं दंतिसहस्सेहिं—तीन हजार हाथियों के साथ, जाव—यावत्, रहमुसलं
संगमं संगामेमाणे—रथ-मुशल संग्राम में युद्ध करते हुए, चेडएणं रत्ता—राजा चेटक के द्वारा,
एगाहच्चं—एक ही बाण के प्रहार से, कूडाहच्चं—कूट की भान्ति (वज्र जैसे), जीवियाओ—जीवन
से, ववरोविए समाणे—रहित होने पर अर्थात् मर कर, काल मासे कालं किच्चा—मृत्यु समय
आने पर जब मर गया (तो वह), कहिं उववन्ने—कहां उत्पन्न हुआ ?

मूलार्थ—महारानी काली देवी के चले जाने के बाद गौतम स्वामी भगवान् से
पूछते हैं—भगवन् ! वह काल कुमार तीन-तीन हजार हाथियों, घोड़ों, रथों और तीन

करोड़ सैनिकों को साथ लेकर रथ-मूषत्र संग्राम में युद्ध करते हुए राजा चेटक के कूट (वज्र) जैसे एक ही बाण से मारा गया। वह मृत्यु का समय आने पर मर कर कहां उत्पन्न हुआ ?

टीका—इस सूत्र में काल कुमार की मृत्यु के अन्तर की गति का वर्णन किया गया है। जैसे कि गणधर गौतम ने प्रश्न किया “हे भगवन् ! रथमूसल संग्राम में काल कुमार अपनी सर्व सेना के साथ जब उक्त संग्राम में गया तो वह संग्राम करता हुआ जब चेटक राजा के बाण से मारा गया तब वह मर कर कहां उत्पन्न हुआ ?

मूल—गोयमाइ समणे भगवं गोयमं एवं वयासी—एवं खलु गोयमा ! काले कुमारे तिहि दंतिसहस्सेहि जाव जीवियाओ ववरोविए समाणे काल-मासे कालं किच्चा चउत्थीए पंकप्पभाए पुडवीए हेमाभे नरगे दससागरो-वमठिइएसु नेरइएसु ने इयत्ताए उववन्ने ॥२०॥

छाया—गोयमादि श्रमणो भगवान् गौतममेवमवादीत्—एवं खलु गौतम ! कालः कुमार-स्त्रिभिर्दन्तिसहस्रैर्वावद् जीविताद् व्यपरोपितः सन् कालमासे कालं कृत्वा चतुर्थ्या पङ्कप्रभायां पृथिव्यां हेमाभे नरके दशसागरोपमस्थितिकेषु नैरयिकेषु नैरयिकतया उपपन्नः ॥२०॥

पदार्थान्वयः—गोयमाइ—गौतम आदि मुनि-वृन्द को पास बुलाकर, समणे भगवं—श्रमण भगवान् महावीर, गोयमं एवं वयासी—गौतम से इस प्रकार कहने लगे— एवं खलु गोयमा—हे गौतम इस प्रकार निश्चय ही, काले कुमारे—वह काल कुमार, तिहि दन्तिसहस्सेहि—तीन हजार हाथियों, जाव—यावत् अर्थात् तीन हजार घोड़ों, तीन हजार रथों और तीन करोड़ सैनिकों को साथ लेकर लड़ते हुए, जीवियाओ—(जब) जीवन से, ववरोविए समाणे—रहित कर दिया गया, (तब वह), कालमासे कालं किच्चा—मृत्यु वेला आते ही मर कर, चउत्थीए—चौथी, पंकप्पभाए पुडवीए—पंकप्रभा नामक पृथ्वी में, हेमाभे नरगे—हेमाभ नामक नरकावास में, दस सागरो-वमठिइएसु—दस सागरोपम स्थितिवाले, नेरइएसु—नरक में, नेरइयत्ताए—नारकी जीव के रूप में, उववन्ने—उत्पन्न हुआ ॥२०॥

मूलार्थ—भगवान् ने गौतमादि अन्य मुनियों को भी बुलाकर कहा कि—वह काल कुमार हाथियों, घोड़ों, रथों और सैनिकों आदि को साथ लेकर जब जीवन से रहित हो

गया तो मृत्यु का समय आने पर मर कर चौथी पंकप्रभा नामक पृथ्वी पर स्थित उस हेमाभ नामक नरकावास में नारकी जीव के रूप में उत्पन्न हुआ जिसकी स्थिति दस सागरोपम की बतलाई गई है ॥२०॥

टीका—तब भगवान् महावीर ने गौतमादि मुनियों को भी बुला कर कहा—“हे गौतम ! काल कुमार अपनी सर्व सेना से युक्त होकर जब चेटक राजा द्वारा मारा गया, तब वह काल कर के चौथी पङ्कप्रभा नाम वाली पृथ्वी के हेमाभ नाम वाले नरकावास में दस सागरोपम की स्थिति वाले नरक में नारकी के रूप में उत्पन्न हुआ । सारांश यह है कि वह चौथे नरक में दस सागरोपम स्थिति वाला नारकी बना ।

सूत्र कर्ता ने ‘काल मासे कालं किच्चा कंहि उववन्ने ?’ यह सूत्र दिया है । इसका यह भाव है कि काल मास कहने पर उस मास के जितने पक्ष तिथियाँ तथा दिन और मुहूर्त व्यतीत हो चुके थे उन सबका भी ग्रहण कर लेना चाहिए ।

और “कंहि उववन्ने” इस पद से जीव का अस्तित्व और कर्मों द्वारा गतियों में जाना सिद्ध किया गया है, कारण कि नरक तिर्यच मनुष्य और देव इन चारों गतियों में जीव कृत-कर्मों के अनुसार ही जाते हैं, किन्तु कर्म-क्षय से सिद्ध-गति को प्राप्त होते हैं । इससे जीव का अनादि अस्तित्व भाव सिद्ध किया गया है ।

“चउत्थिए” इत्यादि पदों से नरकों और उनके आवासों की स्थिति बतलाई गई है । ‘दस सागरोपम’ इत्यादि पदों से नारकी जीवों की आयु सूचित की गई है । आयु के विषय में प्रज्ञापना सूत्र के स्थिति-पद का अध्ययन करें । कुछ हस्त-लिखित प्रतियों में सम्पूर्ण पाठ इस प्रकार दिया गया है ।

“तिहिं वंतिसहस्सेहिं तिहिं रहसहस्सेहिं तिहिं मणुय-कोडीहिं” इत्यादि—

उत्थानिका—तदनन्तर उसी विषय को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं—

मूल—काले णं भन्ते ! कुमारे केरिसएहिं भोगेहिं केरिसएहिं आरम्भेहिं केरिसएहिं समारम्भेहिं केरिसएहिं आरम्भ-समारम्भेहिं केरिसएहिं संभोगेहिं केरिसएहिं भोग-सम्भोगेहिं केरिसएण वा असुभ-कड-कम्मपवभारेणं काल-मासे कालं किच्चा चउत्थिए पङ्कप्पभाए पृढवीए जाव नेरइयत्ताए उव-वन्ने ? ॥२१॥

व्याख्या—कालः खलु भदन्त ! कुमारः कीदृशोभोगैः कीदृशैरारम्भैः कीदृशैः समारम्भैः कीदृशैः आरम्भ-समारम्भैः, कीदृशैः सम्भोगैः कीदृशैः भोग-सम्भोगैः, कीदृशेन वा अशुभ-कृतकर्मप्राप्त्यभारेण कालमासे कालं कृत्वा चतुर्थ्या पङ्कप्रभायां पृथिव्यां यावत् नैरिक्ततया उपपन्नः ॥२१॥

पदार्थान्वयः—भस्ते—भगवन् ! काले कुमारः—काल कुमार, णं—वाक्यालंकार में, केरिसर्हि भोगेहि—किस प्रकार के भोगों से, केरिसर्हि आरम्भेहि—किस प्रकार के आरम्भों से, केरिसर्हि समारम्भेहि—किस प्रकार के समारम्भों से, केरिसर्हि आरम्भ-समारम्भेहि—किस प्रकार के आरम्भ-समारम्भों से, केरिसर्हि सम्भोगेहि—किस प्रकार के सम्भोगों से, केरिसर्हि भोगसम्भोगेहि—किस प्रकार के भोग-सम्भोगों से, केरिसर्हि वा—और किस प्रकार के, असुभकड-कम्म पव्वारेण—किए हुए अशुभ कर्मों के भार से या प्रभाव से, काल मासे कालं किच्च—काल मास में काल करके, चउत्थीए—चौथी, पङ्कप्रभाए—पङ्कप्रभा नाम वाली, पुढवीए—पृथ्वी में, जाव—यावत्, नेरइयत्ताए—नारकी के रूप में, उववन्ने—उत्पन्न हुआ ॥२१॥

मूलार्थ—भगवन् ! वह काल कुमार हिंसा झूठ आदि सावद्य क्रिया रूप आरम्भ से, शस्त्रादि द्वारा प्राणियों के वध रूप समारम्भ से तथा किस प्रकार के आरम्भ-समारम्भ से, किस प्रकार के भोगों (शब्दादि विषयों) से, किस प्रकार के सम्भोगों (तीव्र अभिलाषा-जनक विषय-विकारों) से और किस प्रकार के महारम्भ एवं परिग्रह रूप विषय-अभिलाषाओं के कारण और किस प्रकार के अशुभ कर्म समूह के कारण मृत्यु के समय मर कर चौथी पङ्कप्रभा नामक पृथ्वी पर स्थित नरक में उत्पन्न हुआ ॥२१॥

टीका—इस सूत्र में काल कुमार के नरक जाने के विषय में उल्लेख किया गया है। जैसे कि गणधर गीतम ने प्रश्न किया है—‘हे भगवन् ! किस प्रकार के आरम्भ समारम्भादि कर्मों से, वा किस प्रकार के भोग-संभोग से, किस प्रकार के अशुभ कर्मों के प्रभाव से वह काल कुमार मर कर चौथी पङ्कप्रभा नाम वाली पृथ्वी में स्थित नरक में उत्पन्न हुआ है ?

इस प्रश्न से यह भली भाँति सिद्ध हो जाता है कि हिंसा, कर्म और विषय-आसेवन तथा अशुभ कर्म ये तीनों ही नरक की उत्पत्ति के कारण हैं, क्योंकि हिंसा मैथुन और अशुभ कर्म के कथन में १८ ही पापों का समावेश हो जाता है।

निष्कर्ष यह है कि अठारह पापों के आसेवन से जीव (भारी) गुरु होकर नरक में उत्पन्न होता है। इस स्थान पर आरम्भ से समारम्भ शब्द विशेष अर्थ का सूचक जानना चाहिए। इसी प्रकार भोग और संभोग के विषय में जानना चाहिए। अशुभ कृत कर्मों के भार से जीव अधोगति में चला जाता है ॥२१॥

उत्थानिका—क्या सभी अशुभ कर्मों के भार से दबे जीव अधोगति अर्थात् नरक में ही जाते हैं? अब इस प्रश्न का उत्तर देते हुए शास्त्रकार कहते हैं—

मूल—एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था, रिद्धत्थिमिय समिद्धे । तत्थ णं रायगिहे नयरे सोणिए नामं राया होत्था महया० । तस्स णं सेणियस्स रत्तो नन्दा नामं देवी होत्था सोमाला जाव विहरइ ॥२२॥

छाया—एवं खलु गौतम ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नाम नगरो आसीत्, ऋद्धस्तिमित समुद्धम् । तत्र खलु श्रेणिको नाम राजाभूत्, महा० । तस्य खलु श्रेणिकस्य राज्ञो नन्दा नाम्नी देवी आसीत्, सुकुमारा यावत् विहरति ॥२२॥

पदार्थान्वयः—एवं खलु गोयमा—इस प्रकार निश्चय ही हे गौतम, तेणं कालेणं—उस समय (चौथे आरे में जिस समय भगवान् महावीर विद्यमान थे), रायगिहे नामं—राजगृह नाम का, नयरे होत्था—नगर था, रिद्धत्थिमिय-समिद्धे—विशाल भवनों से युक्त सब प्रकार के भयों से रहित और धन-धान्य से परिपूर्ण था, तत्थ णं रायगिहे नयरे—उस राजगृह नगर में, सेणिए नामं—श्रेणिक नाम का, राया—राजा, होत्था—था, महया—जो कि सभी दृष्टियों से महान् था, तस्स णं—उस, सेणियस्स रत्तो—श्रेणिक राजा की, नन्दा नामं—नन्दा नाम की महारानी, होत्था—थी (जो), सोमाला—सुकुमार, जाव—यावत् अर्थात् पूर्वं जन्मार्जित पुण्यों से नाना सुखों का उपभोग करती हुई, विहरति—विचरण करती थी ॥२२॥

मूलार्थ—गौतम ! उस काल—उस समय (चौथे आरे में जब भगवान् महावीर विद्यमान थे) तब एक राजगृह नामक नगर था जो कि विशाल भवनों से युक्त, धन-धान्य से परिपूर्ण और सब प्रकार के भयों से रहित था । उस नगर में श्रेणिक नामक राजा राज्य करता था जो कि सभी दृष्टियों से महान् था । उस राजा श्रेणिक की नन्दा नाम की महारानी थी जो कि अत्यन्त सुकुमार थी और जो पूर्वं जन्मार्जित पुण्यों के कारण सब प्रकार के सुखों का उपभोग करती हुई विचरती थी ।

टीका—इस सूत्र में गणधर गौतम जी के उत्तर के विषय में वर्णन किया गया है । जैसे कि—भगवान् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से पहले प्रश्न किया था कि—“भगवन् ! काल-कुमार किस कृत अशुभ कर्म के कारण नरक में उत्पन्न हुआ ?” इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् महावीर ने कथन किया है कि—“हे गौतम ! अवसर्पिणी काल के चतुर्थ विभाग में एक राजगृह

नाम का नगर था जो सुन्दर भवनों से युक्त और सभी प्रकार के भयों से रहित एवं धन-धान्य से परिपूर्ण एवं समृद्धिशाली था । उस नगर में एक श्रेणिक नाम का राजा राज्य करता था जिसकी नन्दा नाम की महारानी थी जो अत्यन्त सुकुमार सभी इन्द्रियों के विषयों का सुख भोग रही थी ।

इस सूत्र में “होत्था”—“आसीत्” इस भूतकाल की क्रिया के द्वारा यह निर्दिष्ट किया गया है कि अवसर्पिणी काल में समय-समय पर सभी शुभ पदार्थ ह्वास को प्राप्त होते रहते हैं ।

“रिद्धत्थिमिय-समिद्धा”—इस पद से नगर की सुन्दरता प्रदर्शित की गई है और यह भी प्रदर्शित किया गया है कि भय-मुक्त नगर ही उन्नति के शिखरों पर पहुँच सकता है ।

“नन्दा नामं देवी”—इस पद में नन्दा के साथ “देवी” विशेषण देकर सूत्रकार ने यह सिद्ध किया है कि महारानी नन्दा प्रमोद-क्रीड़ा आदि गुणों से भी सम्पन्न थी ।

“सोमाला”—पद से यह सूचित किया गया है कि स्त्रियोचित सभी गुण उसमें पूर्ण रूप से विद्यमान थे ।

अराजकता ही विनाश का कारण है, इसलिये प्रजा को न्यायशील राजा की आवश्यकता रहती है, अतः “राज्ञः” एवं “सेणियस्स” इन शब्दों द्वारा यह निर्दिष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि राजा श्रेणिक एक न्यायशील शासक राजगृह पर राज्य कर रहा था ।

उत्थानिका—अब सूत्रकर्ता पुनः इसी विषय में कहते हैं—

मूल—तस्स णं सेणियस्स रन्तो नन्दाए देवीए अत्तए अभए नामं
कुमारे होत्था, सोमाले जाव सुरूवे साम-दाम-दण्ड-भेद-कुसले जहा
चित्ते जाव रज्जधुराए चित्तए यावि होत्था ॥२३॥

छाया—तस्य खलु श्रेणिकस्य राज्ञः नन्दायाः देव्याः आत्मजः अभयो नाम कुमारोऽभवत्
सुकुमारः यावत् सुरूवः साम-दाम-दण्ड-भेद-कुशलः, यावत् राज्य-धुरायाश्चिन्तकश्चापि अभवत् ॥२३॥

पदार्थान्वयः—तस्य णं—उस, सेणियस्स—श्रेणिक, रन्तो—राजा की, नन्दा देवीए अत्तए—
नन्दा देवी का आत्मज अर्थात् पुत्र, अभय नामं कुमारे होत्था—अभय नामक कुमार था, सोमाले-
(जो) सुकुमार, जाव—यावत्, सुरूवे—सुन्दर रूप वाला, (और) साम-दाम-दण्ड-भेद-कुसले—
साम-दाम-दण्ड-भेद नामक चारों नीतियों में कुशल था, जहा चित्ते—जैसे चित्त नामक सारथी या
वैसे ही वह, रज्जधुराए चित्तए—राज्य का शुभ-चित्तक, यावि—भी, होत्था—था ॥२३॥

मूलार्थ—उस राजा श्रेणिक की महारानी नन्दा देवी का आत्मज अर्थात् पुत्र

अभय नामक राजकुमार था जो साम-दाम-दण्ड-भेद नामक चारों राजनीतियों में कुशल था और चित्त नामक सारथी के समान समस्त राज्य का शुभ चिन्तक भी था ॥२३॥

टीका—इस सूत्र में राज कुमार अभय का वर्णन किया गया है कि वह राजा श्रेणिक की नन्दा नामक महारानी का पुत्र और कुशल राजनीतिज्ञ भी था । अभय कुमार का विशद परिचय “ज्ञाता धर्म कथाङ्ग सूत्र” में प्रथम अध्ययन के सातवें सूत्र में विस्तार से दिया गया है, जिसका भाव यह है कि—

उस राजा श्रेणिक की महारानी नन्दा का अभय कुमार नामक पुत्र था जो पाँचों इन्द्रियों से परिपूर्ण तथा शुभ लक्षणों एवं व्यञ्जनों से युक्त था । उसका शरीर मान-उन्मान की दृष्टि से उपयुक्त एवं उसके सभी अङ्ग अत्यन्त सुन्दर थे । वह चन्द्र के समान सौम्याकार कान्त और प्रियदर्शी था । सुख एवं साम-दाम-दण्ड-भेद—इन चारों नीतियों के प्रयोग में कुशल था । ईहा, अपोह, अन्वय और व्यतिरेक आदि रूप विचार-शक्ति में निपुण था । उसकी बुद्धि अर्थ-शास्त्र में भी निपुणता प्राप्त किये हुए थी । औपातिकी, वनेयकी, कामिकी और पारिणामिकी चार प्रकार की बुद्धि से युक्त था । राजा श्रेणिक समस्त राज्य-कार्यों, पारिवारिक कार्यों, कौटुम्बिक मन्त्रणाओं, गुप्त कार्यों और रहस्यमयी वार्ताओं में उसकी सलाह अवश्य लेता था । वह राजा का आलम्बन-रूप, चक्षु-रूप, प्रमाण रूप और आधार रूप था । वह सभी कार्यों में विश्वसनीय माना जाता था । उसे सभी स्थानों पर जाने की खुली छूट थी । वह राज्य का शुभ चिन्तक था । वह राजा श्रेणिक के राज्य, राष्ट्र-कोष, कोष्ठागार, बल, वाहन, नगर और अन्तःपुर सब को स्वयमेव देखता हुआ विचरता था ।

उत्थानिका—अब सूत्रकार पुनः इसी विषय में कहते हैं—

मूल—तस्स णं सेणियस्स रन्नो चेलणा नामं देवी होत्था, सोमाला जाव-विहरइ ॥ २४ ॥

छाया—तस्य खलु श्रेणिकस्य राज्ञः चेलना नाम्नी देवी आसीत्, सुकुमारा यावत् विहरति ॥२४

पदार्थान्वय—तस्स णं—उस, सेणियस्स—श्रेणिक, रन्नो—राजा की चेलना नाम की, देवी होत्था—एक रानी थी, (जो) सोमाला—सुकुमारी, (नाना) यावत्—सुखों का अनुभव करती हुई, विहरइ—विचरती थी ।

मूलार्थ—उस राजा श्रेणिक की एक रानी चेलना भी थी, जो सुकुमारता आदि नाना स्त्रियोचित गुणों से युक्त थी और सुखोपभोग करती हुई विचरती थी ॥२४॥

टीका—इस सूत्र में महारानी चेलना का परिचय दिया गया है कि वह महाराजा चेटक

की पुत्री थी और राजा श्रेणिक की रानी थी। वह अत्यन्त सुकुमार और स्त्रियोचित नाना गुणों से युक्त थी। वह नानाविध सुखोपभोग करती हुई विचरती थी।

उत्थानिका—अब सूत्रकार पुनः इसी विषय को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

मूल—तए णं सा चेल्लणा देवी अन्नया कयाइं तंसि तारिसगंसी
वासघरंसि जाव सीहं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा, जहा पभावई, जाव
सुमिण-पाढगा पडिविसज्जित्ता, जाव चेल्लणा से वयणं पडिच्छित्ता जेणेव
सए भवणे तेणेव अणुपविट्ठा ॥२५॥

छाया—ततः खलु सा चेलणा देवी अन्यदा कदाचित् तस्मिन्तादृशके वासगृहे यावत् सिंह स्वप्ने
दृष्ट्वा खलु प्रतिबुद्धा यथा प्रभावती, यावत् स्वप्न-पाठकाः प्रतिविसर्जिताः, यावत् चेलना तस्य वचनं
प्रतीक्ष्य यत्रैव स्वकं भवनं तत्रैवानुप्रविष्टा ॥२५॥

पदार्थान्वयः—तते णं—तत्पश्चात्, सा चेल्लणा देवी—वह महादेवी चेलना, अन्यदा
कयाइं—किसी और समय, तंसि तारिसगंसी—पुण्यात्माओं के शयन करने योग्य, वासघरं स—
निवास-स्थान (राज-महल) में, जाव—यावत्, सीहं—सिंह को, सुमिणे पासित्ता णं—स्वप्न में
देखकर, पडिबुद्धा—जाग गई, जहा पभावती—जैसे प्रभावती जागी थी, जाव—यावत्, सुमिण
पाढगा—स्वप्न-फल के विशेषज्ञों को, पडिविसज्जित्ता—विसर्जित करके, जाव चेल्लणा से वयणं
पडिच्छित्ता—वह चेलना स्वप्न-विशेषज्ञों द्वारा कथित वचनों पर विश्वास करके, जेणेव सए
भवणे—जहां पर उसका अपना निवास-स्थान था, तेणेव—वहीं जाकर, अणुपविट्ठा—उसमें उसने
प्रवेश किया ॥२५॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् महारानी चेलना देवी अन्य किसी समय पुण्यात्माओं के
शयन करने योग्य अपने निवास-स्थान में शय्या पर सोते हुए स्वप्न में सिंह को देख
कर जागृत हुई—जैसे रानी प्रभावती जागी थी। यावत्—अर्थात् उसने राजा के पास
जाकर स्वप्न की बात कही और राजा ने उसी समय स्वप्न-फल के विशेषज्ञ विद्वानों
को बुलवा कर उनसे स्वप्न-फल जाना और उन्हें प्रीतिदान देकर विसर्जित किया और
चेलना देवी उनके वचनों पर विश्वास करके अपने निवास-स्थान में चली गई ॥२५॥

टीका—इस सूत्र में महारानी चेलना देवी के विषय में वर्णन किया गया है, जैसे कि वह
चेलना देवी अपने राज-महल में जब शयन कर रही थी तो उसने स्वप्नावस्था में सिंह को देखा।

स्वप्न देखते ही वह जागी और प्रसन्न होती हुई राजा श्रेणिक के शयन कक्ष में पहुँची और स्वप्न का वृत्तान्त उसे सुनाया । राजा ने कुछ स्वप्न-फल तो स्वयं ही बतला दिया, फिर प्रातःकाल होते ही राजा श्रेणिक ने स्वप्न-पाठकों अर्थात् स्वप्न-फल के विशेषज्ञों का राज-सभा में बुलवाया और उन्होंने स्वप्न-फल के रूप में पुत्र-प्राप्ति बतलाई । स्वप्न-पाठकों के फलादेश पर विश्वास करके महारानी चेलना अपने निवास-स्थान पर चली गई ।

स्वप्न-दर्शन विषयक सम्पूर्ण वर्णन भगवती सूत्र के ११वें शतक में और ज्ञाता-धर्म कथाङ्ग-सूत्र के प्रथम अध्ययन में महारानी प्रभावती और महारानी धारिणी के प्रसंगों में विस्तार से प्राप्त होता है ।

इस सूत्र के कुछ विशेष शब्दों का भावार्थ इस प्रकार है—

तसि तारिसगंसी—इन शब्दों से यह ध्वनित होता है कि जो जीव जैसा पुण्यवान् होता है उसके लिये वैसे ही शयनादि स्थान उपलब्ध होते हैं ।

वास-घरसि—इस शब्द से यह भाव प्रकट हो रहा है कि पुण्यात्माओं के शयन करने का गृह और शय्या आदि सुगन्धित पदार्थों से वासित किये हुए होते थे, जैसे कि वृत्तिकार का कथन है कि पुण्यात्माओं की शय्या-बढ़िया पुष्पों और कर्पूर, लवंग, चन्दन आदि पदार्थों की धूप से सुगन्धित की हुई होती थी जो मन और हृदय को शान्त एवं प्रसन्न करती है ।

सीहं सुमणे—इन शब्दों द्वारा सूचित किया गया है कि पुण्यशील जीवों की गर्भवती मातायें “सिह” आदि के दर्शन रूप शुभ स्वप्न देखती हैं ॥२५॥

मूल—तए णं तीसे चेलणाए देवीए अन्नया कयाइं तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अयमेवारूवे दोहले पाउब्भूए—धन्नाओ णं ताओ अम्म-याओ जाव जन्म-जीविय-फले जाओ णं णियस्स रन्नो उदरवली-मंसेहिं सोल्लेहिं य तलिएहिं य भज्जिएहिं य सुरं च जाव पसन्नं च आसाएमा-णीओ जाव परिभाएमाणीओ दोहलं पविणेंति ॥२६॥

छाया—ततः खलु तस्याश्चेलनायाः देव्या अन्यदा कदाचित् त्रिषु मासेषु बहुप्रतिपूणेषु अयमे-तद्रूपो दोहवः प्रादुर्भूतः—धन्याः खलु ताः अम्माः यावत् (तासां) जन्म-जीवित-फलं यः खलु निजस्य राज्ञः उदर-वलिमांसैः शूलैश्च तलितंश्च भजितंश्च सुरां च यावत् प्रसन्नां च आस्वादयन्त्यो यावत् परिभाजयन्त्यो दोहवं प्रविणयन्ति—पूरयन्ति ॥२६॥

पदार्थावयवः—तए णं—तत्पश्चात्, तीसे चेलणाए देवीए—उस चेलना देवी के, अन्नया

वयणा पंडुइय-मुही ओमंथिय-नयण-वयण-कमला जहोचियं पुष्प-वत्थ-गंध-
मल्ला-लंकारं अपरिभुंजमाणी करतलमलियव्व-कमल-माला ओहयमण-
संकप्पा जाव श्रियाइ ॥२७॥

छाया—ततः खलु सा चेलना देवी तस्मिन् दोहदे अविनीयमाने शुष्का वृभुक्षिता निर्मासा
अवरुणा अवरुण-शरीरा निस्तेजाः दीन-विमनोवदना पाण्डुकितमुखी अवमन्यित-नयन-वदन-कमला
यथोचितं पुष्प-वस्त्र-गन्ध-माल्यालङ्कारं अपरिभुञ्जन्ती करतल-मलितेव कमल-माला उपहतमनः-
संकल्पा यावत् ध्यायति ॥२७॥

पदार्थान्वयः—तए णं—तत्पश्चात्, सा—वह, चेल्लणा देवी—चेलना देवी, तंसि दोहलसि—
उस दोहद के, अविणिज्ज-माणंसि—पूर्ण न होने पर, सुक्का—सूख गई, भुक्खा—आहारादि न
करने के कारण भूखी रहने लगी, निम्मंसा—शरीर पर मांस न रहने के कारण, (और) ओलुग्गा—
इच्छा-पूर्ति के अभाव में रुग्ण सी, ओलुग्ग-सरीरा—क्षीणकाय हो जाने के कारण, गिस्सेया—निस्तेज,
दीण-विमण-वयणा—दीन उत्साह-रहित एवं निस्तेज मुखवाली, पंडुइय मुही—फीके से मुख वाली
चेलना, ओमंथिय-नयण-वयण-कमला—नेत्र और मुख-कमल को नीचा किये, जहोचियं—यथोचित,
पुष्प-वत्थ-गंधमल्लालङ्कारं—पुष्प वस्त्र सुगन्धित पदार्थों और आभूषणों का, अपरिभुंजमाणी—
उपभोग न करती हुई, करतल-मलियव्व—हथेलियों से मसली हुई, कमल-माला—कमलों की माला
के समान, ओहयमण-संकप्पा—मन का संकल्प—अभिलाषा पूर्ण न होने के कारण, जाव श्रियाइ—
आर्त-ध्यान करने लगी ॥२७॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् महारानी चेलना दोहद की पूर्ति न होने के कारण सूखने
लगी, रुचि का अभाव होने से भूखी रहने लगी, अतः क्षीण-काय हो गई, मानसिक व्यथा
के कारण रुग्ण रहने लगी और रुग्णता के कारण निस्तेज हो गई । दीन-हीन मानसिक
उत्साह न रहने के कारण उसका सुख-कमल मुरझा सा गया—मुख फीका पड़ गया ।
अब वह आँखें और मुख नीचा किए हुए यथायोग्य पुष्प, वस्त्र सुगन्धित पदार्थों तथा
आभूषणों का सेवन नहीं करती थी । वह हाथों से मसली हुई कमलों की माला के
समान मुरझा सी गई और मानसिक संकल्प (दोहद-पूर्ति की अभिलाषा) पूर्ण न होने
के कारण कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक से रहित होकर आर्त-ध्यान करती रहती थी—
अर्थात् दुःख में पड़ी सोचती रहती थी ।

क्याइ—कभी एक बार, तिन्हं मासाणं—तीन महीने, बहुपडिपुण्णाणं—प्रतिपूर्ण होने पर, अयमेवा-
रूवे—इस प्रकार का, दोहले—दोहद, पाउबभूए—उत्पन्न हुआ कि, धन्नाओ णं—निश्चित ही
धन्य हैं, ताओ अम्मयाओ—वे मातायें, जाव—यावत्, जम्म-जीविय-फले—जन्म और जीवन
सफल हैं, जाओ णं—जो कि, णियस्स रन्नो—अपने राजा अर्थात् पति के, उदरवलीमंसेहि—
उदरवली अर्थात् कलेजे के मांस को, सोल्लेहि—शूलों अर्थात् सलाइयों पर पका कर, और
तलिएहि—तले हुए मांस का, य भज्जिएहि—और भुने हुए मांस का, सुरं च—सुरा अर्थात् शराब
का, जाव—यावत्, पसन्नं च—प्रसन्न करने वाली विशेष प्रकार की मदिरा का, आसाएमाणीओ—
आस्वादन करती हुई, यावत्—परस्पर, परिभाएमाणीओ—आदान-प्रदान करती हुई, दोहलं—
दोहद को, पविणेंति—पूरा करती हैं ।

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस चेलना देवी के कभी एक बार (गर्भ) के तीन महीने पूरे
होने पर (उसके हृदय में) इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ कि निश्चित ही धन्य हैं वे
मातायें उन्हीं का जन्म और जीवन सफल है जो कि अपने राजा अर्थात् पति के कलेजे
के मांस को शूलों अर्थात् सलाइयों पर पका कर और तले हुए या भुने हुए मांस का
सुरा अर्थात् शराब का एवं प्रसन्न कर देनेवाली विशेष प्रकार की मदिरा परस्पर बांट
कर आस्वादन करती हुई अपने दोहद को पूरा करती हैं ।

टोका—इस सूत्र में चेलना के दोहद का वर्णन किया गया है । गर्भ - धारण के तीन महीने
पूरे होने पर उसके हृदय में अपने पति के कलेजे का मांस खाने का दोहद (गर्भिणी नारी के मन में
उत्पन्न होनेवाली इच्छा) उत्पन्न हुआ । इस सूत्र के विशिष्ट पदों का जो अर्थ वृत्तिकार ने स्पष्ट
किया है वह जानने योग्य है । जैसे कि—

उदरवली-मंसेहि—इन शब्दों का अर्थ है कलेजे का मांस ।

सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिएहि—इन शब्दों द्वारा मांस के पकाने, तलने और भूनने का
संकेत किया गया है ।

पसन्नं—इस पद का अर्थ मन को प्रसन्न करनेवाली विशेष प्रकार की मदिरा है ।

उत्थानिका—दोहद की पूर्ति के अभाव में चेलना की क्या दशा हुई ? अब इस विषय पर
प्रकाश डालते हुए सूत्रकार कहते हैं :—

मूल—तए णं सा चेल्लणा देवी तंसि दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि
सुक्का भुक्खा निम्मंसा ओलुग्गा ओलुग्ग-सरीरा नित्तेया दीण-विमण-

टीका—इस सूत्र में दोहद की पूर्ति न होने के कारण महारानी चेलना की क्या दशा हुई इसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है ।

सुकका—इस पद का भाव यह है कि भोजन के अभाव में रुधिर-क्षीणता हो जानी स्वाभाविक है और रुधिर के अभाव में उसका शरीर सूख गया ।

भुक्खा—इस पद का भाव यह है कि—गर्भावस्था में प्रायः भोजन में अरुचि हो जाती है, साथ ही दोहद - पूर्ति के अभाव के कारण भी वह भोजन नहीं करती थी, अतः वह भूखी-सी ही रहती थी ।

निम्नंसा—शब्द सूचित कर रहा है कि रुधिर-क्षीणता और भोजन के अभाव में उसके शरीर का मांस उतर गया, अतः वह दुर्बल एवं क्षीणकाय हो गई ।

चिन्ता अनेक दुःखों की माता है । महारानी चेलना चिन्तातुर रहने के कारण शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार से रुग्ण रहने लगी, अतः उसके चेहरे का तेज उड़ सा गया । दीन-हीन सी हो जाने के कारण वह सोचती रहती थी कि सब लोग क्या सोचेंगे, अतः वह मुंह नीचा करके और आंखें झुकाए बैठी रहती थी, अब फूलों की मालायें, सुन्दर वस्त्र आभूषण और इत्र-फुल्ल आदि के प्रयोग में भी उसकी रुचि नहीं रही, अतः वह मुझाई हुई कमल-माला के समान पड़ी-पड़ी चिन्ता-निमग्न रहने लगी ।

इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र में चिन्ता के दुष्परिणामों का बहुत सुन्दर विवेचन किया गया है ॥२७॥

उत्थानिका—उसकी सेविकाओं द्वारा राजा श्रेणिक को सूचना देना—

मूल—तए णं तीसे चेलणाए देवीए अंग-पडियारियाओ चेल्लणं देवि सुक्कं भुक्खं जाव झियायमाणीं पासंति, पासित्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता करतल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्ठु सेणियं रायं एवं वयासी—एवं खलु सामी ! चेल्लणा देवी न जानामो केणइ कारणेणं सुक्का भुक्खा, जाव झियायइ ॥२८॥

छाया—ततः खलु तस्याश्चेलनायाः देव्याः अंगपरिचारिकाः चेलनां देवीं शुष्कां बुभुक्षितां यावद् ध्यायन्तीं पश्यन्ति । दृष्ट्वा यत्रैव श्रेणिको राजा तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागत्य करतल-परि-गृहीतं शिरसावर्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा श्रेणिकं राजानं एवमवाविषुः—एवं खलु स्वामिन् ! चेल्लेना देवी न जानामः केनापि कारणेन शुष्का बुभुक्षिता यावत् ध्यायति ॥२८॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, तोसे चेल्लणाए देवीए—उस चेलना देवी की, अंग-पडियारियाओ—महारानी की सेविकाओं ने, चेल्लणं देवीं—महारानी चेलना देवी को, सुक्कं—दुर्बल—सूख सी गई, भुक्खं—आहार का त्याग करने के कारण भूखी सी, क्षीण जाव—क्षीणकाय मानसिक एवं शारीरिक रूप से बीमार निस्तेज जैसी दशा को (प्राप्त), झियायमाणीं—आर्त-ध्यान करती हुई को, पासंति—देखा, पासित्ता—देखकर वे, जेणेव सेणिए राया—जहां राजा श्रेणिक थे, तेणेव—वहीं पर, उपागच्छन्ती—आ गई, उवागच्छित्ता—और वहां आकर, कर-तल-परिग्माह्यं—दोनों हाथ जोड़कर, सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु—आवर्त-पूर्वक मस्तक पर जुड़े हुए हाथ रख कर, सेणिए रायं वयासी—राजा श्रेणिक से इस प्रकार कहने लगी, एवं खलु स्वामी—स्वामिन् ! बात यह है कि, न जानामो—हम नहीं जान पा रही हैं कि, चेल्लणा देवी—महारानी चेलना देवी, केणइ कारणेणं—किस कारण से, सुक्का-भुक्खा—भूखी रहकर सूखती जा रही हैं, (और) आव—यावत्, झियायई—आर्त-ध्यान में डूबी रहती हैं ॥२८॥

मूलार्थ—तब चेलना देवी की अंग-परिचारिकाओं अर्थात् उस ही वैयक्तिक सेवा में नियुक्त दासियों ने चेलना देवी को सूखी-सी और भूख से ग्रस्त-सी तथा चिन्तालीन स्थिति में देखा तो वे देखते ही वे राजा श्रेणिक के पास पहुंचीं। उन्होंने दोनों हाथ जोड़ कर आवर्त-पूर्वक मस्तक पर दोनों जुड़े हुए हाथ रखकर राजा श्रेणिक से इस प्रकार निवेदन किया कि—“स्वामिन् ! न मालूम किस कारण से महारानी चेलना देवी क्षीणकाय एवं भूखी रहकर आर्तध्यान में लीन रहती हैं—चिन्ता-ग्रस्त रहती हैं।

टीका—इस सूत्र द्वारा ज्ञात होता है कि राज-महलों में उस समय महारानियों की सेवा के लिये अनेक प्रकार की दासियां रहती थीं जिनमें अंग-परिचारिकायें भी होती थीं, जिन पर महारानी के स्वास्थ्य की देख-रेख और उसकी शारीरिक परिचर्या का दायित्व होता था।

कोई ऐसी वैसी स्थिति उत्पन्न होने पर वे सारी स्थिति राजा को जाकर बतलाती थीं। यह तत्कालीन राज-व्यवस्था थी ॥२८॥ ★

मूल—तए णं से सेणि ! राया तासिं अंग परियारियाणं अंतिए एय-मट्ठं सोच्चा निसम्म तहेव संभंते समाणे जेणेव चेल्लणा देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चेल्लणं देविं सुक्कं भुक्खं जाव झियायमाणि पासित्ता एवं वयासी—किन्नं तुमं देवानुप्पिये ! सुक्का भुक्खा जाव झिया-यसि ? ॥२९॥

छाया—ततः खलु सः श्रेणिको राजा तासामङ्गपरिचारिकाणामन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा, निश्चयं तथैव सभ्रान्तः सन् यत्रैव चेल्लना देवी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य चेल्लनां देवीं शुष्कां बुभुक्षितां यावद् ध्यायन्तीं दृष्ट्वा एवमवादीत्—किं खलु त्वं देवानुप्रिये ! शुष्का बुभुक्षिता यावद् ध्यायसि ?

पदार्थान्वयः—ततः खलु—तत्पश्चात्, से सेणिए राया—वह राजा श्रेणिक, तासि अंग-परियारियाणं अंतिए—उन अंग-परिचारिकाओं के पास से, एयमट्ठं सोच्चा—इस बात को सुनकर, निसम्म—कुछ विचार कर, तहेव—उसी समय, संभंते समाणे—आश्चर्य-चकित होते हुए, जेणेव चेल्लना देवी—जहां पर रानी चेलना देवी थी, तेणेव—वहीं पर, उवागच्छइ—आ गया, (और) उवागच्छिता—वहां आकर, चेल्लणं देवि—चेलना देवी को, सुक्कं भुक्खं—सूखी सी (क्षीणकाय) एवं भूख से पीड़ित हो कर, श्रियायमारणि—आर्तध्यान करती हुई को, पासिस्ता—देखकर, एवं वयासी—इस प्रकार बोला—किन्तुं तुम—क्यों तुम, देवानुप्पिये !—हे देवानुप्रिये !, सुक्का भुक्खा—शरीर को सुखा कर और भूखी रह कर, जाव यावत्—पूर्व वर्णित प्रकार से, श्रियायसी—चिन्ता-ग्रस्त होकर कुछ सोच रही हो ? ॥२६॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह राजा श्रेणिक उन अंग - परिचारिकाओं (दासियों) के मुख से रानी चेलना की दशा सुनकर और कुछ विचार कर उसी समय कुछ आश्चर्य-चकित होते हुए जहां पर महारानी चेलना देवी थी वहीं आ गया और वहां आकर चेलना देवी को कृशकाय और भूख से पीड़ित होकर आर्तध्यान करती हुई, अर्थात् चिन्ता-ग्रस्त होकर कुछ सोचती हुई देखा और उसे देख कर बोले—“हे देवानुप्रिये ! इस प्रकार अपने शरीर को सुखा कर और भूखी रह कर तुम क्यों चिन्तातुर होकर कुछ सोच रही हो ? ॥२६॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में गृहस्थावस्था में पति के कर्तव्य की ओर ध्यान दिलाया गया है कि अपनी पत्नी के कष्ट की बात सुनते ही उसे उसके पास जाकर उसकी चिन्तातुरता का कारण जानना चाहिये ।

“देवानुप्रिये !” इस सम्बोधन से राजा श्रेणिक की पत्नी के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई । जो गृहस्थ जीवन में आवश्यक होती है ॥२६॥

★

मूल—तएणं सा चेल्लणा देवी सेणियस्स रन्नो एयमट्ठं णो आढाइ, णो परिजाणइ, तुसिणीया संचिट्ठइ ॥३०॥

छाया—ततः खलु सा चेल्लना देवी श्रेणिकस्य राज्ञः एतमर्थं नो आद्रियते, नो परिजानाति तूष्णीका संतिष्ठति ॥३०॥

पदार्थान्वयः—ततः खलु—उसके बाद अर्थात् राजा श्रेणिक के पूछने पर, सा चेल्लणा देवी—उस महारानी चेलना ने, सेणियरस रन्नो—राजा श्रेणिक के, एतमर्थ—किए गए प्रश्न का, णो आढाइ—कोई आदर नहीं किया, णो परिजाणइ—न उसे स्वीकार ही किया—मानो उस सम्बन्ध में वह कुछ जानती ही न हो, तुसिणीया संचिद्रइ—वह चुप चाप मौन धारण करके बैठी रही ॥३०॥

मूलार्थः—तत्पश्चात् राजा श्रेणिक के पूछने पर महारानी चेलना ने राजा के प्रश्न का कोई आदर नहीं किया, अर्थात् प्रश्न को सुनकर भी अनसूना कर दिया, मानो वह कुछ जानती ही न हो, अपितु वह मौन धारण करके ज्यों की त्यों बैठी रही ॥३०॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र द्वारा एक मनोवैज्ञानिक तथ्य पर प्रकाश डाला गया है। पति और पत्नी के सम्बन्ध प्रेम और विश्वास के आधार पर टिके होते हैं, अतः पत्नी पति की प्रत्येक बात को आदरपूर्वक स्वीकार करे। पूछने पर दोनों तत्काल उत्तर दें। किन्तु स्त्रियों में प्रायः मान-मनौवल करवाने की आदत होती है, उसी आदत के अनुसार महारानी चेलना ने भी राजा श्रेणिक के साथ एक मानिनी स्त्री जैसा व्यवहार किया।

मूल—तए णं से सेणिए राया चेल्लणं देवीं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—किं णं अहं देवानुप्पिए ! एयमट्ठस्स नो अरिहे सवणयाए जं णं तुमं एयमट्ठं रहस्सीकरेसि ? ॥३१॥

छाया—ततः खलु श्रेणिको राजा चेल्लनां देवीं द्वितीयमपि तृतीयमपि (वारं) एवमवादीत्—कि खलु अहं देवानुप्रिये ! एतदर्थस्य नो अर्हः श्रवणाय यत्खलु त्वं एतमर्थं रहस्मीकरोषि ? ॥३१॥

पदार्थान्वयः—तए णं—तत्पश्चात्, से सेणिए राया—उस राजा श्रेणिक ने, चेल्लणं देवीं—महारानी चेलना से, दोच्चं पि—दूसरी बार, तच्चं पि—फिर तीसरी बार, एवं वयासी—इस प्रकार कहा—, किं णं अहं—किस कारण से मैं निश्चय ही, देवानुप्पिए—देवानुप्रिये, एयमट्ठस्स—तुम्हारे इस अर्थ को—तुम्हारे इस प्रकार न बोलने के कारण को, नो अरिहे सवणयाए—मैं सुनने के योग्य नहीं हूँ, जं णं तुमं—जो कि तुम, एयमट्ठं—इस बात को मुझ से, रहस्सीकरेसि—छिपा रही हो ॥३१॥

मूलार्थः—तत्पश्चात् राजा श्रेणिक ने महारानी से दूसरी बार और फिर तीसरी बार भी पूछते हुए इस प्रकार कहा—देवानुप्रिये ! किस कारण से मैं निश्चय ही तुम्हारे इस प्रकार न बोलने के कारण को जानने के अयोग्य हूँ ? जो कि तुम मुझ से इस प्रकार छिपाव कर रही हो ?

टीका—प्रस्तुत सूत्र में राजा श्रेणिक ने महारानी चेलना देवी से एक बार पूछा तो वह मौन रही, दूसरी तीसरी बार पूछने पर भी उसने अपना मौन नहीं तोड़ा । इस घटना के द्वारा यह संकेत किया जा रहा है कि जैसे राजा श्रेणिक अपनी पत्नी के कष्ट को देख कर आतुर हो रहा था ऐसे ही प्रत्येक पति को अपनी पत्नी के कष्ट निवारण के लिये आतुर होकर कष्ट निवृत्ति का उपाय करना चाहिये ।

रानी चेलना के मौन रहने से यह भी ध्वनित होता है कि उसके मनोजगत में कहीं न कहीं पति के प्रति श्रद्धा छिपी हुई है, प्रेम छिपा हुआ है जिसके कारण वह पति के कलेजे का मांस खाने की बात नहीं कह पा रही थी । यह एक वैज्ञानिक तथ्य है । ज्ञाता धर्म-कथा में महारानी धारणी के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार वर्णन प्राप्त होता है ।

★

उत्थानिका—अब सूत्रकार पुनः इसी विषय में कहते हैं—

मूल—तए णं सा चेल्लणा देवी सेणिएणं रन्ना दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ता समानी सेणियं रायं एवं वयासी—णत्थि णं सामी ! से केइ अट्ठे जस्स णं तुभ्भे अणरिहा सवणयाए, नो चेव णं इमस्स अट्ठस्स सवणयाए, एवं खलु सामी ! ममं तस्स ओरालस्सं जाव महासुमिणस्स तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अयमेयारूवे दोहले पाउभूए—“धन्नाणं ताओ अम्मयाओ जाओ णं णियस्स रन्नो उदरवलिमंसेहिं सोल्लएहिं य जाव दोहलं विणेंति ।” तए णं अहं सामी ! तंसि दोहलंसि अविणिज्ज माणंसि सुक्का भुक्खा जाव झियायामि ॥३२॥

छाया—ततः खलु सा चेल्लना देवी श्रेणिकेन राज्ञा द्वितीयमपि तृतीयमपि (वारं) एवमुक्ता सती श्रेणिकं राजानं एवं अवादीत्—“नास्ति खलु स्वामिन् ! सः कोऽप्यर्थः यस्य खलु यूयमतर्हः श्रवणतायं, नो चेव खलु अस्यार्थस्य श्रवणतायं एवं खलु स्वामिन् । मम तस्य उदारस्य यावत् महा-स्वप्नस्य त्रिषु मासेषु बहुप्रतिपूर्णेषु अयमेतद्रूपो दोहदः प्रादुर्भूतः—“धन्याः खलु ताः अम्बा याः खलु निजस्य राज्ञः उदरवलिमांसं शूलकैश्च यावत् दोहदं विनयन्ति । ततः खलु अहं स्वामिन् ! तस्मिन्दोहदे अचिनीयमाने शुक्का बुभुक्षिता यावत् ध्याये ॥ ३२ ॥

पदार्थान्वयः—तए णं—तदनन्तर, सा—वह, चेल्लणा देवी—चेलना देवी, सेणिएणं रन्ना—राजा श्रेणिक के द्वारा, दोच्चं पि-तच्चं पि—दो बार-तीन बार, एवं वुत्ता समानी—इस प्रकार बुलाई जाने पर अथवा इस प्रकार राजा द्वारा कहने पर, सेणियं रायं एवं वयासी—राजा श्रेणिक

से इस प्रकार बोली, गच्छिष्यं सामी—हे स्वामिन् ! ऐसा कुछ भी नहीं, से—ऐसी, केई अट्टे—कोई भी बात जस्स णं—जो कि, तुम्हे—आपके, अणरिहा सवणयाए—सुनने के योग्य न हो, नो चेव णं—और न ही, इमस्स अट्ठस्स—इस बात को, सवणयाए—सुनने के (अयोग्य हैं), एवं खलु सामी—इस प्रकार निश्चय ही हे स्वामी, ममं—मुझे, तस्स ओरालस्स—उस महान्, जाव महासुमिणस्स—महास्वप्न अर्थात् सिंह-दर्शन वाले सुन्दर स्वप्न को देखने के अनन्तर, तिप्पहं मासाणं—तीन महीनों के, बहुपडिपुण्णाणं—परिपूर्ण होने पर, अयमेयारूवे—इस प्रकार का, दोहले पाउडभूए—दोहद उत्पन्न हुआ, धम्माओ णं—धन्य हैं वे, अम्मयाओ—मातायें, जाओ णं—जो कि अपने, णियस्स—निजी—अपने, रत्तो—राजा अर्थात् पति के, उदरवल्लिमंसेहि—कलेजे के मांस को, सोत्तसएहि—शूलों पर सेके हुए मांस को (एक दूसरे को देकर खाती हुई), जाव—मांस और मदिरा द्वारा, दोहल विण्णंति—अपने दोहद को पूरा करती हैं, तएणं—तत्पश्चात्, सामी—हे स्वामिन्, अहं—मैं, तसि दोहलंसि—उस दोहद के, अविण्णज्जमाणांसि—पूर्ण न होने पर, सुक्का—सूखती जा रही हूं, भुक्खा—भूखी रह रही हूं, जाव मियायामि—यावत् आर्तध्यान कर रही हूं ॥३२॥

मूलार्थ—तदनन्तर वह चेलना देवी राजा श्रेणिक के द्वारा दो-तीन बार बुलाई जाने पर अर्थात् पूछने पर राजा श्रेणिक से इस प्रकार कहने लगी—“हे स्वामिन् ! ऐसी कोई भी बात नहीं है जिसे सुनने के योग्य आप न हों, इस बात को भी आप सुनने के अयोग्य नहीं है, (किन्तु यह बात आपके सुनने के योग्य नहीं है), क्योंकि स्वामिन् सिंह दर्शन वाले महान स्वप्न को देखने के अनन्तर गर्भ के तीन मास पूर्ण होने पर मेरे मन में एक विचित्र दोहद उत्पन्न हुआ है कि वे मातायें धन्य हैं जो अपन राजा अर्थात् पति के कलेजे का मांस सलाइयों पर भून कर (एक दूसरे को बांट कर मदिरा पीते हुए खाती हैं) । तदनन्तर हे स्वामिन् ! मैं उस दोहद के पूर्ण न होने पर सूखती जा रही हूं, भूखी रह रही हूं और आर्तध्यान कर रही हूं, अर्थात् चिन्तातुर होकर सोच में डूबी रहती हूं ॥३२॥

टीका—इस सूत्र में उक्त विषय का स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है कि जब राजा ने दो-तीन बार रानी चेलना से पूछा तो उसने कहा—“हे स्वामिन् ! ऐसी कोई भी बात नहीं है जो आपके सुनने योग्य न हो, किन्तु यह बात आपके सुनने योग्य नहीं है, क्योंकि यह घटना अत्यन्त कष्ट देने वाली है ।

जब राजा ने पुनः-पुनः आग्रह किया तो चेलना देवी कहने लगी कि “हे स्वामिन् ! मैंने सिंह दर्शन वाला स्वप्न देखा था उसके बाद गर्भ के तीन मास बीतने पर मुझे आपके कलेजे

का मांस खाने का दोहद उत्पन्न हुआ, इस दोहद की पूर्ति न होने से मेरी यह दशा हो रही है कि मेरा शरीर सूखता जा रहा है और अरुचि के कारण मुझे भोजन भी अच्छा नहीं लग रहा, अतः मैं हर समय चिन्तित रहती हूँ । इसके द्वारा महारानी ने अपनी असमंजस में पड़ी स्थिति को स्पष्ट कर दिया है ।

इस कथन से यह भी भली-भांति सिद्ध हो जाता है कि रानी की इच्छा मांस-भक्षण की नहीं थी, किन्तु यह इच्छा केवल गर्भस्थ शिशु के प्रभाव के कारण उत्पन्न हुई थी ।

उक्त घटना से यह भी व्जनित होता है कि पति-पत्नी को चाहे जैसी भी घटना अथवा परिस्थिति हो परस्पर सत्य रूप से वह स्थिति स्पष्ट कह देनी चाहिये । स्पष्टता से उसका समाधान भी ढूँढा जा सकता है—और प्रायः ढूँढ ही लिया जाता है ॥३२॥

उत्थानिका—अब सूत्रकार उसी घटना के विषय में अन्य विवरण प्रस्तुत करते हैं—

मूल—तए णं से सेणिए राया चेल्लणं देवि एवं वयासी—माणं तुमं देवानुप्पिए ! ओह्य० जाव झियायह, अहं णं तह। जइस्सामि जहा णं तव दोहलस्स संपत्ती भविस्सइत्ति कट्ठु चेल्लणं देवि ताहि इट्ठाहि कंताहि विथाहि मणुन्नाहि मणामाहि ओरालाहि कल्लाणाहि सिवाहि धन्नाहि, मंगल्लाहि, मियमधुरसस्सिरीयाहि वग्गूहि, समासासेइ, समासासित्ता, चेल्लणाए देवीए अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरया उवट्ठाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ, निसीइत्ता तस्स दोहलस्स संपत्ति-निमित्तं बहूहि आएहि उवाएहि य उप्पत्तियाहि य वेणइयाहि य कम्मियाहि य पारिणामियाहि य परिणामेमाणे-२ तस्स दोहलस्स आयं वा उदायं वा ठिइं व अविदमाणे ओह्यमणसंकप्पे जाव झियायइ ॥३३॥

छाया—ततः खलु सः श्रेणिको राजा चेल्लनां देवीमेवमवादीत्—मा खलु त्वं देवानुप्रिये अकहत० यावत् ध्याय, अहं खलु तथा यतिष्ये, यथा खलु तव दोहदस्य सम्पत्तिर्भविष्यतीति उक्त्वा चेल्लणां देवीं ताभिरिष्टाभिः कान्ताभिः प्रियाभिर्मनोज्ञाभिर्मनो-रमाभिरुदाराभिः कल्याणाभिः शिशुभिर्धन्याभिर्माङ्गल्याभिर्मितमधुरसञ्जीवाभिर्वर्तुभिः समाशवासयति, समाशवास्य चेल्लनाया देव्या अन्तिकात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला यत्रैव सिंहासनं तत्रैवोपागच्छति,

उपागत्य सिंहासनवरे पौरस्त्याभिमुखो निषीदति, निषद्य तस्य दोहदस्य संपत्ति-निमित्तं बहुभिरायैरुपा-
यैश्च औत्पत्तिकीभिश्च वैनयिकीभिश्च कामिकी (कर्मजा) भिश्च पारिणामिकीभिश्च परिणामयन्—
परिणामयन् तस्य दोहदस्य आयं वा उपायं वा स्थितिं वा अविन्दन् अपहतमनः संकल्पो यावद्
ध्यायति ॥ ३३ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तदनन्तर, स सेणिए राया—वह राजा श्रेणिक, चेल्लणं देवि—
महारानी चेलना से, एवं वयासी—इस प्रकार बोले, माणं तुमं देवाणाम्पए—देवानुप्रिये ! तुम इस
प्रकार, ओहय० जाव० सियायइ—उपहत मन होकर अर्थात् अपने मन को मार कर आर्त-ध्यान मत
करो, अहं णं तथा जइस्सामि—मैं निश्चय ही कोई ऐसा प्रयत्न करूंगा, जहा णं—जिससे कि, तव
दोहलस्स—तुम्हारे दोहद की, संपत्ती भविस्सइ—पूति होगी, त्ति कट्टु—इस प्रकार कह कर,
चेल्लणं देवि—महारानी चेलना देवी, ताहि—उसको, इट्ठाहि—इष्ट-पूति करने वाले, कंताहि—
अत्यन्त सुन्दर, पियाहि—प्रियकारी, मणुन्नाहि—मन को भाने वाले, मणाहि—मनोनुकूल,
ओरालाहि—उदार भावनाओं से युक्त अर्थात् गर्म-काल की कामनाओं को पूर्ण करनेवाली, कल्ला-
णाहि—कल्याणकारी, सिवाहि—शुभकारी, धन्नाहि—धन्य कहलाने के योग्य, मंगल्लाहि—
मंगलकारी, मिय-मधुर-सस्सिरीयाहि—थोड़े से शब्दों द्वारा अत्यन्त मधुर लगने वाली—शोभायमान,
वग्गाहि—वचनों द्वारा, समासासेइ—आश्वासन देता है, समासासित्ता—और फिर आश्वासन
देकर, चेल्लणाए देवोए अंतियाओ—चेलना देवी के पास से, पडिनिक्खमइ—वापिस लौट जाता
है, पडिनिक्खमिता—और लौट कर, जेणेव बाहिरिया—अन्तःपुर से बाहर जहां पर, उवट्ठाण-
सात्ता—उपस्थानशाला—अर्थात् सभा-मण्डप था, जेणेव सोहासणे—और उसमें जहां पर राज-
सिंहासन था, तेणेव उवामच्छइ—वहीं पर आ जाता है, उवागच्छित्ता—और आकर, सीहासनवरंसि—
अपने सिंहासन पर, पुरत्थाभिमुहे—पूर्व दिशा की ओर मुख करके, निसीयइ—बैठ जाता है,
निसीइत्ता—और बैठ कर, तस्स दोहलस्स—उस दोहद के, संपत्ति-निमित्तं—पूर्णता के लिये,
बहूहि आएहि उवाएहि—बहुत प्रकार के साधनों और उपायों के सम्बन्ध में, उत्पत्तियाहि—औत्पत्तिकी
बुद्धि द्वारा, य वेणइयाहि—वैनयिकी बुद्धि द्वारा, य कम्मियाहि—कामिकी बुद्धि के द्वारा,
य पारिणामियाहि—और पारिणामिकी बुद्धि के द्वारा, परिणामेमाणे-परिणामेमाणे—अनेक प्रकार
के विचार करता हुआ, तस्स दोहलस्स—उस दोहद की पूति का, आयं वा उपायं वा—किसी भी
साधन या प्रयोग, ठिइं वा—व्यवस्था के, अविदमाणे—न सूझने पर, ओहयमण-संकप्पे—मानसिक
संकल्प की पूति न होने के कारण, जाव सियायइ—अतः वह भी आर्तध्यान करने लगा ॥ ३३ ॥

मूलार्थ—तदनन्तर वह राजा श्रेणिक महारानी चेलना देवी से इस प्रकार बोले—
देवि ! तुम इस प्रकार अपने मन को मार कर आर्तध्यान मत करो, अर्थात् दुःखी मत होओ
मैं निश्चित ही कोई ऐसा प्रयत्न करूंगा जिससे कि तुम्हारे दोहद की पूति होगी । इस

प्रकार कहकर राजा श्रेणिक महारानी चेलना देवी को इष्ट की पूति करने वाले अत्यन्त सुन्दर प्रियकारी, मन को भानेवाले, उसे अनुकूल प्रतीत होन वाले उदार भावनाओं से युक्त अर्थात् गर्भकाल की इच्छाओं को पूर्ण करने वाले, कल्याणकारी शुभकारी, धन्य कहलाने के योग्य मंगलकारी, अल्प शब्दों द्वारा अत्यन्त मधुर एवं शोभायमान वचनों द्वारा आश्वासन देते हैं और आश्वासन देकर चेलना देवी के पास से वापिस लौट जाते हैं और वे लौट कर जहां अपनी राज-सभा थी और उस सभा में जहां उनका अपना निजी सिंहासन था वहां पर आकर अपने श्रेष्ठ अत्युत्तम राज-सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठ गए । बैठकर उस दोहद की पूति के लिये अनेक साधन, एवं उपाय उत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और परिणामिकी बुद्धि द्वारा सोचते हुए उस दोहद की पूति का कोई भी साधन, उपाय एवं व्यवस्था न सूझने पर और अपने मानसिक संकल्प की पूति न होने पर राजा श्रेणिक भी आर्तध्यान करने लगे—अर्थात् चिन्ता-निमग्न हो गए ॥३३॥

टोका—प्रस्तुत सूत्र में राजा श्रेणिक द्वारा महारानी चेलना को उसकी दोहद-पूति के आश्वासन देने का वर्णन किया गया है । आश्वासन के लिये प्रयुक्त शब्दों द्वारा यह ध्वनित होता है कि किसी को यदि आश्वासन दिया जाये तो वह प्रियकारी शुभकारी एवं कल्याणकारी शब्दों द्वारा ही देना चाहिये ।

साथ ही “जइस्सामि” इस क्रिया द्वारा यह शिक्षा दी गई है कि जब तक किसी बात को पूर्ण करने की शक्ति पर पूर्ण विश्वास न हो जाय तब तक निश्चयकारी वचन नहीं बोलने चाहिये ।

प्रस्तुत सूत्र में चार प्रकार की बुद्धियों का वर्णन किया गया है । चारों प्रकार बुद्धियों का विवरण इस प्रकार है—

१. औत्पत्तिकी बुद्धि—जिस बुद्धि के द्वारा शास्त्रों के अभ्यास के बिना ही अनदेखे अनसुने और पहले अनुभव में न आए हुए विषयों का भी यथार्थ ज्ञान हो जाय उसे औत्पत्तिकी बुद्धि कहा जाता है ।
२. वैनयिकी बुद्धि—विनय-भाव से उत्पन्न होने वाली बुद्धि वैनयिकी बुद्धि कही जाती है ।
३. कार्मिकी (कर्मजा) बुद्धि—उपयोग-पूर्वक चिन्तन-मनन करते हुए कार्य करने से उत्पन्न होनेवाली बुद्धि कार्मिकी बुद्धि कहलाती है ।
४. पारिणामिकी बुद्धि—अनुमान आदि द्वारा कार्य को सिद्ध करनेवाली एवं आयु की परिपक्वता के कारण परिपुष्ट होने के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाली बुद्धि पारिणामिकी बुद्धि कहलाती है ॥३३॥

उत्थानिका—तदनन्तर चेलना की दोहद-पूति के विषय में क्या हुआ ? अब सूत्रकार इस विषय में कहते हैं—

मूल—इमं च णं अभय कुमारे ण्हाए जाव सरीरे, सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमिस्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाण-साला जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता सेणियं रायं ओहय० जाव झियायमाणं पासइ, पासिता एवं वयासी—“अन्नया णं ताओ ! तुब्भे मम पासिता हट्ठ जाव हियया भवह, किन्नं ताओ ! अज्ज तुब्भे ओहय० जाव झियायह ? तं जइणं अहं ताओ ! एयस्स अट्ठस्स अरिहे सवणयाए तो णं तुब्भे मम एयमट्ठं जहाभूयमवितहं असंदिद्धं परिकहेह, जाणं अहं तस्स अट्ठस्स अंतगमणं करोमि ॥३४॥

छाया—इतश्च खलु अभयः कुमारः स्नातः यावत् शरीरः, स्वकात् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला यत्रैव श्रेणिकी राजा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य च श्रेणिकं राजानं अवहत्० यावत् ध्यायन्तं पश्यति, दृष्ट्वा एवमवादीत्—“अन्यदा खलु तात ! यूयं मां दृष्ट्वा हृष्टः यावत् हृदयः भवथ, किं खलु तात ! अद्य यूयं अवहत्० यावत् ध्यायथ, तद्यदि खल्वहं तात ! एतस्यार्थस्याऽहं श्रवणताये तदा खलु यूयं मम एतमर्थं यथाभूतम् अवितथं असंदिग्धं परिकथयत, यस्मात् खल्वहं तस्यार्थस्यान्तगमनं करोमि ॥ ३४ ॥

पदार्थान्वय—इमं च णं—उस समय, अभय कुमारे—अभय कुमार, ण्हाए—स्नान करके, जाव—यावत्, सरीरे—शरीर को अलंकृत करके, सयाओ गिण्हाओ—अपने निजी राज-महल में से, पडिनिक्खमइ—बाहर निकला, पडिनिक्खमिस्ता—और बाहर निकले कर, जेणेव—जहां पर, बाहिरिया—बाहर की ओर, उवट्ठाणसाला—राज-सभा-मण्डप था, जेणेव और जहां पर, सेणिए राया—राजा श्रेणिक बैठा था, तेणेव—वहां पर, उवागच्छइ—आता है, उवागच्छिता—और वहां आकर, सेणियं रायं—राजा श्रेणिक को, ओहय०—उपहत मन वाले अर्थात् मरे हुए मन से, जाव—यावत्, झियायमाणं—आर्तध्यान करते हुए, पासइ—देखता है, पासिता एवं वयासी—और उन्हें इस दशा में देख कर बोला, ताओ !—तात, अन्नया णं—अन्यदा हर समय अर्थात् पहले तो, तुब्भे—आप, मम पासिता—मुझे देखते ही, हट्ठ—ईर्ष-युक्त, जाव—यावत्, हियय—हृदय से, भवह—होते रहे हैं, किं णं ताओ अज्ज—हे तात फिर आज किस कारण से, तुब्भे—आप, ओहय०—अपने मन को मार कर, जाव—यावत्, झियायह—आर्तध्यान कर रहे

हैं, तं जइ णं—वह यदि, ताओ—हे तात, अहं एयमट्ठस्स—इस अर्थ को अर्थात् आपके दुखित होने के कारण को, अरिहे सवणयाए—सुनने के योग्य हूँ, तो णं—तब, तुवभे—आप, ममं—मुझे, एयमट्ठं—इन नमस्त कारणों को, जहाभूयं—यथाभूत अर्थात् ज्यों का त्यों, अवितहं—बिलकुल सत्य, असंदिद्धं—सन्देह-रहित, परिकहेह—कह दीजिए, जा णं अहं—जिससे कि मैं, तस्स अट्ठस्स—उस अर्थ अर्थात् कार्य के, अंत-गमणं करोमि—अन्त तक पहुँच कर—मर्म तक जाकर उसे दूर कर सकूँ ॥३४॥

मूलार्थ—उस समय अभय कुमार स्नान करके और शरीर को अलंकारों से सुसज्जित करके अपने राज-भवन से बाहर निकला और बाहर निकल कर जहाँ पर राज-सभा-समूह था और जहाँ राजा श्रेणिक अपने मन को मारकर अर्थात् चिन्ता में डूबा हुआ आर्त-ध्यान कर रहा था वहाँ आकर उसे देखा और देखकर इस प्रकार बोला—“तात ! अन्यथा अर्थात् पहले तो आप सदैव मुझे देखते ही हर्षित हृदय हो जाया करते थे, तात ! तो आज फिर क्यों अपने मन को मारे हुए आर्तध्यान में डूबे हुए हैं, अर्थात् चिन्तातुर हो रहे हैं ? तात ! यदि आप मुझे उस चिन्ता के कारण को सुनने के योग्य समझते हैं तो आप मुझ से वह कारण ज्यों का त्यों यथार्थ रूप से सन्देह-रहित होकर कहें, जिससे कि मैं उस कारण के अन्त तक—मर्म तक पहुँच कर उसे दूर कर सकूँ ॥३४॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में अभय कुमार द्वारा पिता के पास आकर चिन्ता के कारण को पूछने का वर्णन किया गया है और साथ ही यह मनोवैज्ञानिक तथ्य प्रकट किया गया है कि पिता को पुत्रों से हर्षित हृदय से मिलना चाहिये । पुत्रों का यह कर्तव्य है कि वे पिता को यह विश्वास दिलायें कि हम आपकी चिन्ताओं को जान कर उन्हें हर सम्भव उपाय करके दूर करेंगे ।

सूत्र द्वारा यह भी ध्वनित होता है कि—पुत्रों को अपने पिता से जो भी बात पूछनी हो वह बड़े प्रेम से पूछनी चाहिये ॥३४॥

मूल—तए णं से सेणिए राया अभयं कुमारं एवं वयासी—णत्थि णं पुत्ता ! से केइ अट्ठे जस्स णं तुमं अणरिहे सवणाए एवं खलु पुत्ता ! तव चुल्लमाउयाए चेल्लणाए देवीए तस्स ओरालस्स जाव महासुमिणस्स तिण्हं मासाणं बहुवड्ढिपुत्ताणं जाव अयमेवारुवे दोहसे पाउवमूए “धन्नाओ

णं ताओ अम्मयाओ जाओ उयरवलिमंसेहिं सोत्लेहिं य जाव दोहलं
विणेंति ॥३५॥

छाया—ततः खलु स श्रेणिको राजा अभयकुमारमेवमवादीत्—नास्ति खलु पुत्र सः
कोऽप्यर्थः यस्य खलु त्वमनर्हः श्रवणतार्यै । एवं खलु पुत्र ! तव क्षुल्लकमातुश्चेत्लनाया देव्यास्तस्योदा-
रस्य यावत् महास्वप्नस्य त्रिषु मासेषु बहुप्रतिपूर्णेषु अयमेवरूपः दोहलः प्रादुर्भूतः—“घन्यास्ते अम्माः याः
तव उदरवलिमांसैः शूलकैश्च यावत् दोहवं विनयन्ति ।” ततः खलु सा चेत्लना देवी तस्मिन्
दोहवेऽविनीयमाने शुष्का यावत् ध्यायति । ततः खल्वहं पुत्र ! तस्य दोहवस्य सम्पत्ति-निमित्तं
बहुभिरार्यैरुपायैश्च यावत् स्थितिं वा अविश्वन् अपहतं ध्यायामि ॥ ३५ ॥

पदार्थान्वयः—तए णं—तदनन्तर, से सेणिये राजा—वह राजा श्रेणिक, अभय कुमार—
अभय कुमार को, एवं वयासी—इस प्रकार बोला, णत्थि णं पुत्ता !—हे पुत्र ऐसा कुछ भी नहीं
है, जस्स णं तुम—तुम जिसके, अणरिहे सबणाए—जिसे तुम सुनने योग्य के नहीं हो, एवं खलु
पुत्ता !—हे पुत्र वस्तुतः बात यह है कि, तव—तुम्हारी, क्षुल्लमाउयाए चेत्लणाए देवीए—छोटी
माता चेलना देवी के, तस्स ओरालस्स—उस प्रमुख, जाव—यावत्, महासुमिणस्स—महास्वप्न
के, तिण्णं मासाणं—तीन महीने, बहुपडिपुग्गं णं—परिपूर्ण होने पर, अयमेवरूपे—इस प्रकार
का, दोहले पाउभूए—दोहद उत्पन्न हुआ, घन्याओ णं ताओ अम्मयाओ—घन्य हैं वे मातायें जो
कि तुम्हारे (राजा श्रेणिक के), उयरवलिमंसेहिं—कलेजे के मांस से, सोत्लेहिं—तल-भून कर, दोहलं
विणेंति—अपने दोहद को पूर्ण करती हैं ॥३५॥

मूलार्थ—तव उस राजा श्रेणिक ने अभय कुमार से इस प्रकार कहा—“पुत्र ! ऐसी
कोई भी बात नहीं है जो तुम्हारे सुनने के योग्य न हो, किन्तु बात यह है कि तुम्हारी
छोटी माता चेलना देवी को एक महान् उदार महास्वप्न को देखे हुए तीन मास
बीतने पर यह दोहद उत्पन्न हुआ कि “वे मातायें घन्य हैं जो मेरे (श्रेणिक) के हृदय
के मांस को सलाइयों पर सेक एवं तल-भून कर उस मांस से अपने दोहद को पूर्ण
करती हैं ॥ ३५ ॥

टीका—प्रस्तुत प्रकरण द्वारा पहला ज्ञातव्य यह संकेत मिलता है कि राजा और मन्त्री
बाहे पिता-पुत्र ही क्यों न हों उन्हें कुछ भी छिपाए बिना सब बातें एक दूसरे को स्पष्ट रूप से बतला
देनी चाहिये, तभी कोई कार्य सम्पन्न हो सकता है, अन्यथा नहीं ।

दूसरा संकेत इस प्रकार भी दिया गया है कि जहां माता-पिता के आचरण, वात्सलाप आदि का गर्भस्थ बालक पर प्रभाव पड़ता है वहां गर्भस्थ जीव का माता-पिता पर भी प्रभाव पड़ता है। महारानी चेलना पर गर्भस्थ दुष्ट जीव का ही यह प्रभाव पड़ा कि वह पति के कलेजे के मांस से दोहद-पूर्ति जैसा निकृष्ट विचार करने लगी।

“उयरावलिमंसेहि” शब्द का “जैनागम शब्द-संग्रह अर्धमागधी गुजराती कोश” में कलेजे का मांस अर्थ प्राप्त होता है और ‘सोल्लेहि’ शब्द का अर्थ उसी कोष में ‘सलाइयों पर पकाया हुआ मांस’ किया है। अतः हमने कोषानुसारी अर्थ ही ग्रहण किया है ॥ ३५ ॥

**मूल—तएणं सा चेल्लणा देवीतंसि दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि
सुक्का जाव झियायइ । तएणं अहं पुत्ता ! तस्स दोहलस्स संपत्ति-निमित्तं
बहुहि आएहिं य जाव ठिइं वा अविंदमाणे ओहयं जाव० झियामि ॥३६॥**

छाया—ततः खलु सा चेलना देवी तस्मिन् दोहदे अविनीयमाणे शुक्का यावत् ध्यायति । ततः खल्वहं पुत्र । तस्य दोहदस्य संपत्ति-निमित्तं बहुभिरायैः—उपायैः यावत् स्थिति वा अविन्दन् अपहत० यावद्० ध्यायामि ॥३६॥

पदार्थान्वयः—तएणं—इसलिए, सा चेल्लणा देवी—वह महारानी चेलना, तंसि दोहलंसि—उस दोहद के, अविणिज्जमाणंसि—पूर्ण न होने के कारण, सुक्का—कृशकाय होकर, जाव झियायइ—आर्तध्यान कर रही है । तएणं—इसलिये, अहं पुत्ता—हे पुत्र मैं, तस्स दोहलस्स—उसके उस दोहद की, संपत्ति-निमित्तं—पूर्णता के लिये, बहुहि आएहिं—बहुत उपायों से भी, जाव० ठिइं वा अविंदमाणे—स्थिति को न समझ पाने के कारण, ओहयं जाव० झियामि—मैं भग्न-मनोरथ होकर चिन्तातुर हो सोच रहा हूँ ॥३६॥

मूलार्थ—हे पुत्र ! महारानी चेलना देवी के उस दोहद के पूर्ण न होने के कारण वह कृशकाय होकर चिन्तातुर रहती है । उस दोहद की पूर्ति के बहुत से उपाय करके भी कुछ समझ न पाने के कारण हताश होकर मैं भग्नमनोरथ होकर चिन्ता में डूबा रहता हूँ ॥३६॥

टीका—इस सूत्र द्वारा यह स्पष्ट हो रहा है कि गृहस्थी को अपनी चिन्ता के साथ अपने पारिवारिक-जनों के लिये भी चिन्तातुर रहना पड़ता है । दोहद-पूर्ति जैसे सामान्य से कार्य के

लिये भी राजा श्रेणिक इतना चिन्तातुर हो उठा । इसीलिये गृहस्थ को “चिन्ता-गृह-निवासी” कहा गया है ॥ ३६ ॥

उत्थानिका—इसके अनन्तर अभय कुमार ने क्या किया ? और दोहव-पूति के लिये क्या उपाय किया ? शास्त्रकार इस विषय का वर्णन करते हैं—

मूल—तए णं से अभये कुमारे सेणियं रायं एवं वयासी—“मा णं ताओ ! तुब्भे ओहयं जाव झियायह, अहं णं तह जइहामि जहाणं मम चुल्लमाउयाए चेल्लणाए देवीए तस्स दोहलस्स संपत्ती भविस्सइ—त्ति कट्ठु सेणियं रायं ताहिं इट्ठाहिं जाव वग्गूहिं समासासेइ, समासासित्ता जेणेव सए गिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अब्भंतरए रहस्सिए ठाणिज्जे पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सूणाओ अल्लं मंसं रहिरं वत्थिपुडगं च गिण्हह ।

तए णं ते ठाणिज्जा पुरिसा अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठं करतलं जाव पडिसुणेत्ता अभयस्स कुमारस्स अंतियाओ—पडि-निक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सूणा तेणेव उवागच्छन्ति, उवा-गच्छित्ता अल्लं मंसं रहिरं वत्थिपुडगं च गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव अभये कुमारे तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता करयलं तं अल्लं मंसं रहिरं वत्थिपुडगं च उवर्णेति ॥ ३७ ॥

छाया—ततः खलु सः अभयः कुमारः श्रेणिकं राजानमेवमवदीत्—मा खलु तात ! यूयं अवहत्० यावद् ध्यायत, अहं खलु तथा यतिष्ये यथा खलु मम क्षुल्लमातुश्चेल्लनायाः देव्यास्तस्य दोहवस्य सत्पत्तिर्भविष्यतीति कृत्वा श्रेणिकं राजानं ताभिरिष्टाभिर्यावद् बल्लुभिः समाश्वासयति, समाश्वास्य यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य आभ्यन्तरान् राहस्यिकान् स्थानीयान् पुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—गच्छत खलु यूयं देवानुप्रियाः सूनात् आद्रं मांसं रहिरं वस्तु-पुटकञ्च गृह्णीत ।

ततः खलु ते स्थानीयाः पुरुषा अभयेन कुमारेण एवमुक्ताः सन्तः हृष्टाः करतलं यावद् प्रतिश्रुत्य अभयस्य कुमारस्यान्तिकात् प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रतिनिष्क्राम्य यत्रैव सूना तत्रैवोपागच्छन्ति,

आर्द्र मांस रुधिरं बस्तिपटकं च गृह्णन्ति, गृहीत्वा यत्रैव अभयः कुमारस्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य करतलं तमार्द्र मांसं रुधिरं बस्तिपटकञ्च उपनयन्ति ॥३७॥

पदार्थान्वयः—तएणं ते—तत्पश्चात् उस, अभये कुमारे—अभय कुमार ने, सेणियं रायं—राजा श्रेणिक को, एवं वयासी—इस प्रकार कहा, तुम्हे—आप, ओहयं—भग्न-मनोरथ होकर, यावत् मा क्षियायह चिन्तातुर न हों, अहं तथा जत्तिहामी—मैं कोई ऐसा यत्न करूंगा, जहा णं—जिससे कि, मम—मेरी, चुल्लमाउयाए चेल्लणाए छोटी माता चेलना देवी के, तस्स दोहलस्स—उस दोहद की, संपत्ती भविस्सइ—पूति हो सकेगी, त्ति कट्टु—इस प्रकार कह कर, सेणियं रायं—राजा श्रेणिक को, तर्हि इट्ठाहि—उसकी मनभाती (जाव), वरगूहि—वचनों द्वारा, समासासेइ—आश्वासन प्रदान किया और, समासासित्ता—आश्वासन देकर, जेणेव—जहां पर, सए गिहे—अपना महल था, तेणेव उवागच्छइ—वहीं पर लौट गया। उवागच्छित्ता—लौट कर, अर्धतरण—आन्तरिक, रहस्सिए—रहस्यों को जानने वाले, ठाणिज्जे पुरिसे—सम्माननीय स्थान प्राप्त विश्वस्त व्यक्तियों को, सद्दावेइ—बुलवाता है, सद्दावित्ता—और बुलवा कर, एवं वयासी—उन्हें इस प्रकार कहा, गच्छह णं तुम्हे देवाणुप्पिया—हे देवानुप्रिय ! आप लोग जाओ और, सूणाओ—किसी कसाई के घर या दुकान से, अल्लं—आर्द्र अर्थात् ताजा, मंसं रुधिरं—मांस और रुधिर, वत्थिपुडगं च—इस रुधिर और मांस से भरी थैली (कुछ विद्वानों की दृष्टि में कलेजा) लेकर आओ, तएणं—तब, ते ठाणिज्जा पुरिसा—वे स्थानीय विशेष विश्वास-पात्र सेवक, अभएणं कुमारेणं—अभय कुमार के द्वारा, एवं बुत्ता समाणा—इस प्रकार कहे जाने पर, करतल जाव—यावत् हाथ जोड़कर, हट्टु-मुट्टु—प्रसन्न एवं संतुष्ट होकर, पडिस्सणेत्ता—अभय कुमार की बातों को सुनते ही, अभयस्स कुमारस्स अन्तियाओ—अभय कुमार के महल से, पडिनिक्खमंति—बाहर निकले, पडिनिक्खमिता—बाहर निकल कर, जेणेव सूणा—जहां कसाई का घर था, तेणेव उवागच्छंति—वहीं पर आ पहुंचे, उवागच्छित्ता—तथा वहां आकर उन्होंने, अल्लं मांसं रुधिरं वत्थिपुडगं च—ताजे अतएव गीले-गीले मांस, रुधिर और शोणित से भरी थैली ले ली, गिहिस्सा—और उसे लेकर, जेणेव अभये कुमारे—जहां पर अभय कुमार बैठे थे, तेणेव उवागच्छन्ति—वहां पर वापिस लौट आये, उवागच्छित्ता—और लौट कर, करयलं—हाथ जोड़ कर, तं अल्लं मंसं रुधिरं वत्थिपुडगं च—उस ताजे मांस रुधिर से भरी थैली, उवणेति—उसे दे देते हैं।

मूलार्थ—तत्पश्चात् अभय कुमार ने राजा श्रेणिक से इस प्रकार कहा—आप भग्न-मनोरथ होकर इस प्रकार चिन्तातुर न हों, मैं ऐसा कोई यत्न करूंगा जिससे मेरी छोटी माता चेलना देवी के उस दोहद की पूति हो सके। इस प्रकार कहकर राजा को प्रिय लगने वाले वचनों द्वारा उसने आश्वासन कर दिया।

राजा श्रेणिक को आश्वस्त करने ने पश्चात्, अभय कुमार अपने महल में लौट आए और लौटते ही आन्तरिक गुप्त रहस्यों के जानकार अपने सेवकों को बुलवाया और उनसे इस प्रकार कहा—देवानुप्रियों ! तुम लोग किसी कसाई के घर पर जाओ और वहां से गीले (ताजे) मांस और रुधिर से भरी थैली लेकर आओ ।

वे सेवक अभय कुमार की बातें सुनकर प्रसन्न और परितुष्ट होकर अभय कुमार के पास से बाहर निकले और निकल कर किसी कसाई के घर पर पहुंचे और वहां से मांस एवं रुधिर से भरी थैली लेकर जहां अभय कुमार थे वहां पहुंचे और मांस एवं रुधिर भरी थैली हाथ जोड़कर उनको सौंप दी ।

टीका—उक्त वर्णन का यह आशय कदापि नहीं है कि उस समय राजा लोग मांसाहार करते थे । शास्त्रकार तो यह दिखलाना चाहते हैं कि “बुरे जीव के गर्भ में आने पर” सात्त्विक प्रकृति की महिलाओं के विचार भी दूषित हो जाते हैं, अतः चेलना देवी को इस प्रकार का दुष्ट एवं घृणित दोहद उत्पन्न हुआ ।

यहां यह तथ्य भी स्मरणीय है कि स्त्रियों के दोहद की पूर्ति उस समय के समाज में एक उचित एवं महत्वपूर्ण प्रथा मानी जाती थी, अतः अभय कुमार और राजा श्रेणिक को कलेजे का मांस देने का नाटक करना पड़ा । दोहद-पूर्ति कोई धार्मिक कृत्य नहीं, केवल सामाजिक रूढ़ि मात्र है । इसीलिये महारानी चेलना आगे चलकर आत्म-भ्रान्ति से प्रायश्चित्त कर इस कार्य का प्रायश्चित्त करती है, गर्भ नष्ट करने के उपाय करती है और उस बालक को अनिष्टकारी समझ कर दासी द्वारा उसे कूड़े के ढेर पर फिकवा देती है ।

महारानी चेलना के दोहद में “पति के कलेजे का मांस खाने की इच्छा” बतलाई गई है, सामान्य से सामान्य नारी भी ऐसी कल्पना नहीं कर सकती । गर्भस्थ जीव की दुष्टता का केवल प्रभाव दिवाने के लिये ऐसा चित्रण किया गया है ।

मूल तएणं से अभए कुमारे तं अल्लं मंसं रहिरं कप्पणीकप्पियं करेइ, करित्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, सेणियं रायं रहसिगयं सयणिज्जंसि उत्ताणयं निवज्जावेइ, निवज्जावित्ता सेणियस्स उदरवलोसु तं अल्लं मंसं रहिरं विरवेइ, विरवित्ता, वत्थि-

पुडणं वेढेइ, वेढित्ता सवंतीकरणेणं करेइ, करित्ता चेल्लणं देवि उप्पि-
पासाए अवलोयणवरगयं ठवावेइ, ठवावित्ता चेल्लणाए देवीए अहे
सपक्खं सपडिदिंसि सेणियं रायं सयणिज्जंसि उत्ताणं निवज्जावेइ, सेणि-
यस्स रन्नो उयरवलिमंसाइ कप्पणीकप्पियाइ करेइ, करित्ता से ये भायणसि
पक्खिवइ ।

तएणं से सेणिए राया अलियमुच्छियं करेइ, करित्ता मुहुत्तंतरेणं अन्न-
मन्नेणं सद्धिं संलबमाणे चिट्ठइ ।

तएणं से अभयकुमारे सेणियस्स रन्नो उयरवलिमंसाइ गिण्हेइ,
गिण्हित्ता जेणेव चेल्लणा देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चेल्लणाए
देवीए उवणेइ ।

तएणं सा चेल्लणा देवी सेणियस्स रन्नो तेहिं उदरवलि - मंसेहिं
सोल्लेहिं जाव दोहलं विणेइ ।

तएणं सा चेल्लणा देवी संपुण्णदोहला एवं संमाणियदोहला विच्छिन्न-
दोहला तं गम्भं सुहं सुहेणं परिवहइ ॥३८॥

छाया—ततः खलु सः अभयः कुमारस्तमाद्रं मासं रुधिरं कल्पनी-कल्पितं करोति, कृत्वा
यत्रैव श्रेणिको राजा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य श्रेणिकं राजानं रहसिगतं शयनीये उत्तानजं निषाद-
यति, निषाद्य श्रेणिकस्योदरवलिषु तमाद्रं मासं रुधिरं विरावयति, विराव्य, वस्तिपुटकेन वेष्टयति,
वेष्टयित्वा त्रवस्तीकरणेन करोति, कृत्वा चेल्लनां देवीमुपरिप्रासादे अवलोकनवरगतां स्थापयति,
स्थापयित्वा चेल्लनाया देव्या अघः सपक्षं सप्रतिदिकं श्रेणिकं राजानं शयनीये उत्तानकं निषादयति,
श्रेणिकस्य राज उदरवलिमांसानि कल्पनीकल्पनानि करोति, कृत्वा तच्च भाजने प्रक्षिपति ।

ततः खलु सा श्रेणिको राजा अलोकमूर्छां करोति, कृत्वा मुहूर्तान्तरेण अन्योन्येन सार्द्धं संलपन्
तिष्ठति ।

ततः खलु सा अभयकुमारः श्रेणिकस्य राज्ञः उदरवलिमांसानि गृह्णाति, यत्रैव चेल्लना देवी
तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य चेल्लनाया देव्या उपमयति ।

ततः खलु सा चेल्लना देवी श्रेणिकस्य राज्ञस्तदुदरवलिमांसैः शूलैर्यावद् दोहदं विनयति ।

ततः खलु सा चेललना देवी सम्पूर्णदोहदा एवं संमानितदोहदा विच्छिन्नदोहदा तं गर्भ-सुखं—
मुखेन परिवहति ॥ ३८ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से—वह, अभय कुमारे—अभय कुमार, तं—उस, अल्लं
मंसं—आर्द्र मांस, रहिरं—रुधिर युक्त को, कप्पणीकप्पियं करेइ—छुरी से काटता है अर्थात्
मांस के खण्ड-खण्ड कर देता है, करेइत्ता—टुकड़े-टुकड़े करके, जेणेव सेणिए राया—जहां पर
राजा श्रेणिक था, तेणेव—वहां पर, उवागच्छइ—आता है, उवागच्छित्ता—आकरके, सेणियं रायं—
राजा श्रेणिक को, रहसिगयं—गुप्त विचार कर, सयणिज्जंसि—शय्या पर, उताणयं—सीधा,
निवज्जावेइ—सुलाता है, निवज्जावित्ता—सुला कर, सेणियस्स—श्रेणिक राजा के, उदरवलीसु—
उदर पर, सं—उस, अल्लं मंसं रहिरं—रुधिर युक्त आर्द्र मांस को, विरवेइ—बांधता है, विरवित्ता—
बांधकर, वत्थिपुडणं—वस्ति पुटक के द्वारा, वेढेइ—पेट को ढकता है, वेढइत्ता—ढक कर,
सवंतीकरणेणं—रुधिर टपकने जैसा (दृश्य), करेइ—करता है, करित्ता—करके, चेल्लणं देवि—चेलना
देवी को, उप्पिपासाए—प्रासाद के उपर, अवलोयणवरगयं—अवलोकन करने योग्य स्थान पर अर्थात्
महल के झरोखे में, ठवावेई—बिठलाता है ठवावित्ता—बैठाकर, चेल्लणं देवि—चेलना देवी के, अहे—
नीचे, सपव्वं—दाहिने बायें और, सपडिदिंसि—सम्मुख दिशा पर, सेणियं रायं—श्रेणिक राजा को,
सयणिज्जंसि—शय्या पर, उताणयं—सीधा, निवज्जावेइ—सुला कर अर्थात् लिटा कर, सेणियस्स
रन्नो—श्रेणिक राजा के, उदरवलि मंसाइ—कलेजे के मांस को, कप्पणीकप्पियाइं करेइ—छुरी से
काट-काट कर ग्रहण करता है, करित्ता—काट-काटकर, सेयं—उन सांस खण्डों को (वह अभय
कुमार), भायणंसि—भाजन में, पक्खवइ—प्रक्षेप करता है—डालता है ।

तएणं—तत्पश्चात्, से—वह, सेणिए राया—श्रेणिक राजा, अलियमुच्छियं करेइ, करित्ता—
झूठी मूर्छा करता है और करके, मुहुत्तंतरेणं—मूर्त के अन्तर से, अन्नमन्नेणं सद्धि—अभय
कुमार के साथ परस्पर, संलवमाणे—वार्तालाप करता हुआ, चिट्ठइ—ठहरता है ।

तएणं—तत्पश्चात्, से—वह, अभयकुमारे—अभय कुमार, सेणियस्स रन्नो—श्रेणिक
राजा का, उदरवलिमंसाइं—उदर वली के मांस-खण्डों को, गिण्हेइ—ग्रहण करता है, गिण्हित्ता—
ग्रहण करके, जेणेव—जहां, चेल्लणा देवी—चेलना देवी थी, तेणेव—वहां, उवागच्छइ—आता है,
उवागच्छित्ता—और आकर, चेल्लणाए देवीए उवणेइ—चेलना देवी को दे देता है ।

तएणं—तत्पश्चात्, सा—उस, चेल्लणा देवी—चेलना देवी ने, सेणियस्स रन्नो—श्रेणिक
राजा के, तेहि उदरवलि-मंसेहि सोल्लेहि—उन कलेजे के मांस-खण्डों को सलाइयों पर भून-
कर, जाव दोहलं विण्णइ—यावत् अपने दोहद को पूरा किया ।

तएणं—तत्पश्चात्, सा—वह, चेल्लणा देवी—चेलना देवी, संपुण्णदोहला—सम्पूर्ण
दोहद वाली एवं इसी प्रकार, संमानिय - दोहला—सम्मानित दोहद वाली, विच्छिन्न दोहला—

दोहद की समाप्ति होने पर, तं गर्भ—उस गर्भ को, सुहं सुहेणं परिवहइ—सुख पूर्वक वहन करने लगी ॥ ३८ ॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह अभय कुमार उस आर्द्र रुधिर युक्त मांस को छुरी से काट कर जहां महाराजा श्रेणिक था वहां आता है, राजा श्रेणिक को गुप्त बात समझा कर उसे शय्या पर सीधा लिटाता है, लिटाकर श्रेणिक राजा के उदर से उस रुधिर युक्त मांस को बांधकर बस्ति पुटक द्वारा लपेटता है, लपेटकर चेलना देवी को महल के झरोखे में बिठाता है, बिठा कर चेलना देवी को जहां से नीचे दायें-बायें और सामने दिखाई दे वहां बिठलाया और श्रेणिक राजा को शय्या पर चित लिटाता है। फिर श्रेणिक राजा के उदरवलि मांस को छुरी से काट कर, (श्वेत चांदी के) पात्र में प्रक्षेप करता है, तब वह राजा श्रेणिक झूठी मूर्छा का दिखावा करता है और फिर कुछ समय के पश्चात् अभय कुमार से परस्पर वार्तालाप करने लगता है।

तत्पश्चात् वह अभय कुमार श्रेणिक राजा के उदरवलि मांस-खण्डों को ग्रहण करता है, ग्रहण करके जहां चेलना देवी थी वहां आता है आकर वह मांस-खण्डों से भरा पात्र चेलना देवी को भेंट कर देता है।

तब वह चेलना देवी राजा श्रेणिक के उदरवलि - मांस खण्डों के टुकड़े करके यावत् अर्थात् उन्हें भून कर अपना दोहद पूरा करती है।

तब चेलना देवी सम्पूर्ण दोहद वाली सम्मानित दोहद वाली व विछिन्न दोहद वाली अर्थात् दोहद की इच्छा के नष्ट हो जाने पर उस गर्भ को सुख-पूर्वक वहन करती है ॥ ३८ ॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में एक ओर तो अभय कुमार जैसे मन्त्री की बुद्धिमत्ता का परिचय दिया गया है और बलताया गया है कि दूरदर्शी मन्त्री ही राष्ट्र की समस्याओं को सुलझाने में सहायक हो सकता है।

दूसरा नारी-हठ का चित्रण किया गया है, चेलना सब कुछ आंखों से देखकर भी अपने हठ पर अडिग रही है। वह मां थी, अतः अभय कुमार को मांस-स्पर्श एवं मांस-काटने जैसे अकृत्य भी करने के लिये बाध्य होना पड़ा।

तीसरे यह प्रदर्शित किया गया है कि दुष्ट जीव के गर्भ में आने पर माता-पिता को अनेक तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ता है। कुछ ही दिन बाद गर्भस्थ शिशु की नीच वृत्तियों को समझ कर उस गर्भ को नष्ट करने के पापभार को उठाने के लिये भी वह प्रस्तुत हो जाती है।

यह सब कर्मों का खेल है, कर्म-विधान ही यह सब खेल रच रहा है ॥३८॥

मूल—तए णं तीसे चेल्लणाए देवीए अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्त-
कालसमयंसि अयमेयारूवे जाव समुपज्जित्था, जइ ताव इमेणं दारएणं
गम्भगएणं चेव पिउणो उदरवल्लिमंसाणि खाइयाणि तं सेयं खलु मम
एयं गम्भं साडित्तए वा गालित्तए वा विद्धंसित्तए वा, एवं संपेहेइ,
संपेहित्ता तं गम्भं बहूहिं गम्भपाडणेहिं य यम्भ गालणेहिं य गम्भविद्धंस-
णेहिं य इच्छइ साडित्तए वा पाडित्तए वा विद्धंसित्तए वा, नो चेव णं से
गम्भे सडइ वा पडइ वा गलइ व विद्धंसइ वा ॥३९॥

छाया—ततः खलु तस्याश्चेल्लनाया देव्या अन्यदा कदाचित् पूर्वरात्रापररात्र - कालसमये
अयमेतद्रूपो यावत् समुदपद्यत—यदि तावत् अनेन दारकेण गर्भगतेन चैव पितुर्दरवल्लिमंसानि
खावितानि तत् श्रेयः खलुमम एनं गर्भं शातयितुं वा पातयितुं वा गालयितुं वा विध्वंसयितुं वा,
एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य तं गर्भं बहुभिर्गर्भशातनेश्च गर्भपातनेश्च गर्भगालनेश्च गर्भविध्वंसनेश्च इच्छति
शातयितुं वा पातयितुं वा गालयितुं वा विध्वंसयितुं वा, नो चैव खलु स गर्भः शीर्यते वा पतति वा
वा गलति वा विध्वंसते वा ॥३९॥

पदार्थान्वयः—तए णं—तत्पश्चात्, तीसे चेल्लणाए देवीए—उस चेल्लणा देवी का, अन्नया
कयाइ—कभी फिर, पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि—मध्य रात्रि के समय, अयमेयारूवे—इस प्रकार के
विचार, जाव—यावत्, समुपज्जित्था—उत्पन्न हुआ, जइ—यदि, ताव इमेणं दारएणं—इस
बासक ने, गम्भगएणं चेव—गर्भ में रहते हुए ही, पिउणो—पिता के, उदरवल्लिमंसाणि—उदर-
वलि अर्थात् कलेजे का मांस खाया है, तं सेयं खलु—इसलिये निश्चय से यही उचित है कि,
मए—मेरे द्वारा, एयं गम्भं—इस गर्भ को, साडित्तए वा—पेट से बाहर कर दिया जाए अर्थात्
नष्ट कर दिया जाए, गालित्तए व—इसे गला दिया जाए, विद्धंसित्तए वा—विध्वस्त कर
दिया जाए, एवं संपेहेइ—इस प्रकार विचार करती है, संपेहित्ता—ऐसा विचार करके, तं गम्भं—
उस गर्भ को, बहूहिं—बहुत से, गम्भ साडणेहिं—गर्भ को नष्ट करने वाली औषधियों द्वारा,
गम्भ-पाडणेहिं—गर्भ-पात करने वाली, गर्भ-गालणेहिं—गर्भ को गला देने वाली, गम्भविद्धंसणेहिं—

गर्भ को विध्वस्त करनेवाली औषधियों द्वारा, य—और, इच्छति—इच्छा करने लगी, साडित्तए वा—गर्भ को सड़ाने के लिये, पाडित्तए वा—गर्भ-पात करने के लिये, गालित्तए वा—गर्भ को गला देने के लिये, विद्धंसित्तए वा—विध्वस्त कर देने के लिये, नो चेव से गभं—किन्तु वह सफल नहीं हो पाई उस गर्भ को, सडइ वा—सड़ा देने में, पडई वा—पतन करने में, गलइ वा—गला देने में, विद्धंसइ वा—विध्वस्त कर देने में ॥३६॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस चेलना देवी की अर्ध रात्रि के समय इस प्रकार के विचार उत्पन्न हुए कि यदि जन्म लेने से पूर्व ही इस गर्भस्थ बालक ने अपने पिता के कलेजे के मांस को खाया है, इसलिये यही उचित है कि इस गर्भ को किसी भी तरह उदर से बाहर निकाल दिया जाय, गर्भ-पात किया जाय, इसे गला दिया जाय या विध्वस्त कर दिया जाय, किन्तु इस प्रकार विचार करके वह उस गर्भ को सड़ा देने वाली, गिरा देने वाली गला देनेवाली गर्भ को विध्वस्त कर देने वाली औषधियों के द्वारा सड़ाने, गिराने, गलाने और विध्वस्त करने में सफल न हो सकी ॥३९॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में “इमेण दारएणं गभगएणं चेव पिबन्तो उदरवलि मंसाणि खाह्याणि”—अर्थात् इस गर्भगत शिशु ने पिता के कलेजे का मांस खाया है”—इन शब्दों से स्पष्ट ध्वनित होता है कि महारानी चेलना देवी तो मांस खाने का निमित्त मात्र थी, मांस तो गर्भस्थ नीच जीव ने खाया है । दारए कुलस्स अन्तकरे भविस्सइ”—उसे निश्चय हो गया कि यह बालक कुल का धातक होगा, अतः इसे गर्भ में ही समाप्त कर देना चाहिये । महारानी चेलना देवी यह गर्भपात रूप दूसरा पाप करने को भी समुद्यत हो गई, यह भी गर्भस्थ शिशु की हिंसक वृत्ति का ही प्रभाव था ।

सूत्र में “शातन” शब्द का अर्थ है औषधि आदि द्वारा बाहर निकालना, इसका अर्थ छीलना भी होता है, किन्तु वह अर्थ यहां ग्रभीष्ट नहीं है ।

महारानी चेलना गर्भ-पात में असफल रही, इससे सिद्ध होता है कि जीव के आयुष्य कर्म को कोई समाप्त नहीं कर सकता ॥३६॥

मूल—तए णं सा चेल्लणा देवी तं गभं जाहे नो संचाएइ बहूहि गभसाडणेहि य जाव गभविद्धंसणेहि य साडित्तए वा जाव विद्धंसित्तए वा, ताहे संता तंसा परितंता निव्वन्ना समाणा अकामिया अवसवसा

अट्टवसट्टदुहट्टा तं गढ्भं परिवहइ ।

तए णं सा चेल्लणा देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं जाव
सोमालं सुरुवं दारयं पयाया ॥४०॥

छाया—ततः खलु सा चेल्लना देवी तं गर्भं यदा नो शक्नोति बहुभिर्गर्भं शातनैश्च यावद्
गर्भविध्वंसनैश्च शातयितुं वा यावद् विध्वंसयितुं वा तदा शान्ता तान्ता परितान्ता निर्विण्णा सती
अकामिका अपस्ववशा आर्तवशातं दुःखार्ता तं गर्भं परिवहति ।

ततः खलु सा चेल्लना देवी नवसु मासेसु बहुप्रतिपूणेषु यावत् सुकुमारं सुरुवं दारकं
प्रजाता ॥४०॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तदनन्तर, सा चेल्लणा देवी—वह महारानी चेलना, तं गढ्भं—उस
(अपने) गर्भ को, जाहे नो संचाएइ—जब वह (गिराने में) समर्थ न हुई—गिरा न सकी, बहूहि
गढ्भसाडोर्णेहि—गर्भ-नाशक अनेक औषधियों द्वारा, य-एवं, जाव०—यावत्, गढ्भ-विध्वंसणेहि—
गर्भ के शातन विध्वंसन आदि में, ताहे संता तंता परितंता—वह ग्लानि पूर्वक खेद-खिन्न होती हुई,
निर्विण्णा समाणा—अतिशय दुःखित हो गई, (तो) अकामिया—अनिच्छा से, अवसवसा—विवशता
के कारण अट्टवसट्टदुहट्टा—आर्तध्यान के वशीभूत होकर, तं गढ्भं—उस गर्भ को, परिवहइ—वहन
करने लगी, अर्थात् धारण किए रही, तएणं—तत्पश्चात्, सा चेल्लणा देवी—वह महारानी चेलना,
नवण्हं मासाणं—नौ महीनों का लम्बा समय व्यतीत होने पर, जाव—यावत्, सोमालं सुरुवं—
(उसने एक) सुकुमार एवं सुरुप—सुंदर रूप वाले, दारयं—पुत्र को, पयाया—जन्म दिया ॥४०॥

मूलार्थ—तदनन्तर महारानी चेलना देवी जब अपने उस गर्भ को अनेक विध
गर्भ-नाशक औषधियों द्वारा उदर से बाहर लाने उसे नष्ट एवं डबस्त करने में विफल
रही तो वह ग्लानिपूर्वक खेद-खिन्न होती हुई अतिशय दुःखी हो गई, तब वह अनिच्छा-
पूर्वक विवशता के कारण आर्तध्यान के वशीभूत होकर उस गर्भ को वहन करने लगी,
अर्थात् विवशता से धारण किये रही । तत्पश्चात् चेलना देवी ने नौ मासों का लम्बा
समय पूर्ण होने पर एक सुकुमार एवं सुरुप—सुन्दर बालक को जन्म दिया ॥४०॥

टीका—इस सूत्र द्वारा यह ध्वनित होता है कि गर्भस्थ जीव के दुष्ट होने के कारण महारानी
चेलना देवी समय से पूर्व ही उस गर्भ को नष्ट कर देना चाहती थी, अतः यह स्पष्ट हो रहा है कि

वह मांसाहार नहीं करती थी, केवल गर्भस्थ दुष्ट जीव के प्रभाव से वह मांसाहार में प्रवृत्त हुई।

गर्भ-पात भी एक महापाप है, उसके गर्भ में क्रूर कर्मी जीव होने से उसने यह कुत्स्य भी किया, किन्तु गर्भस्थ जीव के आयुष्य-कर्म की प्रबलता ने उस पर किसी भी औषधि का प्रभाव नहीं पड़ने दिया, क्योंकि आयुष्य कर्म को कोई मिटा नहीं सकता।

वह ऐसे दुष्ट बालक की माता नहीं बनना चाहती थी, किन्तु गर्भपात के सभी उपायों में विफल होने पर उसे दुःखी होकर अनिच्छा-पूर्वक उस गर्भ को धारण किए रहना पड़ा और उसने यथासमय एक बालक को जन्म दिया ॥४०॥

मूल— तएणं तीसे चेल्लणाए देवीए इमे एयारूवे जाव समुप्पज्जित्था-
जइ ताव इमेणं दारएणं गब्भगएणं चेव पिउणो उदरवलिमंसाइं खाइ-
याइं, तं न नज्जइ णं एस दारए संबड्ढमाणे अम्हं कुलस्स अंतकरे भविस्सइ,
तं सेयं खलु अम्हं एयं दारगं उक्कुरुडियाए उज्झावित्तए एवं संपेहेइ,
संपेहिता दासचेडिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी- गच्छ णं तुमं देवाणु-
प्पिए ! एयं दारगं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झाहि ॥४१॥

छाया—ततः खलु तस्याचेल्लनाया देव्या अयमेतद्रूपी यावत् समुद्पद्यत—यदि तावत् अनेन दारकेण गर्भगतेन चैव पितु उदरवलिमंसादि खादितानि तन्न ज्ञायते खलु एष दारकः संवर्द्धमानः अस्माकं कुलस्यान्तकरो भविष्यति, तच्छ्रेयः खलु अस्माकम् एनं दारकमेकान्ते उत्कुरुटिकायामुज्जितुम्, एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य दासचेटीं शब्दयित्वा एवमवादीत्—गच्छ खलु त्वं देवानुप्रिये ! एनं दारकमेकान्ते उत्कुरुटिकायामुज्ज ॥४१॥

पदार्थान्वयः—तए णं तीसे चेल्लणाए देवीए—तत्पश्चात् उस चेलना देवी के, इमे एयारूवे—इस प्रकार का विचार, जाव०—यावत्, समुप्पज्जित्था—उत्पन्न हुआ, जइ ताव०—क्योंकि, इमेणं दारएणं—इस बालक ने, गब्भं गएणं चेव—गर्भ में रहते हुए निश्चय ही, पिउणो—पिता के, उदरवलि मंसाइं—उदरवली अर्थात् कलेजे के मांस को, खाइयाइं—खाया है, तं न नज्जइ णं—क्या इससे यह आभास नहीं हो रहा कि, एसदारए संबड्ढमाणे—यह बालक बड़ा होने पर, अम्हं कुलस्स—हमारे कुल का, अंतकरे भविस्सइ—अन्त करने वाला होगा, तं सेयं खलु—अतः इसी में (हमारा) श्रेय है, अम्हं एयं दारगं—कि हम इस बालक को, एगंते—किसी एकान्त स्थान में, उक्कुरुडिए—कूड़े-करकट के ढेर पर, उज्झावित्तए—फेंक दें, एवं संपेहेइ—(वह) इस प्रकार विचार करने लगी, संपेहिता—(और) विचार करके, दासचेडिं—अपनी चाकर दासी को,

सद्भावेद्—बुलाती है, सद्भावित्ता एवं वयासी—और बुलाकर उसे कहती है, गच्छणं तुम देवानुप्पिए—हे देवानुप्रिये तुम जाओ और, एयं बारगं—इस बालक को, एगंते—एकान्त स्थान में (ले जाकर), उक्कुड्डियाए—कूड़े-कचरे के ढेर पर, उज्जाहि—फेंक दो ॥४१॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस चेलना देवी के (मन में) इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ, क्योंकि गर्भ में रहते हुए ही इस बालक ने निश्चय ही अपने पिता के कलेजे के मांस को खाया है, क्या इससे यह आभास नहीं हो रहा कि यह बालक बड़ा होने पर हमारे कुल का अन्त करने वाला अर्थात् कुलघाती होगा, अतः हमारा इसी में श्रेय है कि हम इस बालक को किसी एकान्त स्थान में कूड़े-करकट के ढेर पर फेंक दें। वह इस प्रकार का विचार करने लगी और (खूब) विचार कर वह अपनी चाकर दासी को बुलाती है और बुलाकर उसे कहती है—“हे देवानुप्रिये ! तुम जाओ और इस बालक को किसी एकान्त स्थान में (लेजाकर), किसी कूड़े-कचरे के ढेर पर फेंक दो ॥४१॥

टीका—इस सूत्र में “पूत के पैर पालने से ही पहचान लिये जाते हैं,” इस उक्ति के आशय को स्पष्ट करते हुए सूत्रकार ने यह बतलाया है कि चेलना देवी को गर्भगत बालक के दुष्ट स्वभाव का पूर्ण रूप से पूर्वाभास हो गया था।

मांसासार की प्रवृत्ति ही बुरी होती है, इस बालक ने तो पिता के कलेजे का मांस खाने की इच्छा की जिसके परिणाम स्वरूप मुझे इस प्रकार का निकृष्ट दोहद उत्पन्न हुआ, अतः यह बालक निश्चय ही कुलघाती होगा, अतः इसे अभी से कूड़े-करकट के ढेर पर फिकवा दूँ इसी में हमारे कुल का श्रेय है।

क्योंकि राजा के कलेजे का मांस न होते हुए भी उसने पति के कलेजे का मांस समझ कर ही खाया था अतः उसमें बालघात की महापापमयी प्रवृत्ति उदित हो गई, अतः मांस-भक्षण साधारण पाप ही नहीं वह तो अनेक प्रकार की पापमयी प्रवृत्तियों को भी जन्म देता है।

कूड़े-करकट के ढेर के लिये “उक्कुड्डिया” शब्द तत्कालीन लोकभाषा का (देशी प्राकृत) का शब्द है ॥४१॥

मूल—तए णं सा दासच्चेडो चेल्लणाए देवीए एवं वुत्ता समानी करयल० जाव कट्टु चेल्लणाए देवीए एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता तं दारगं करतलपुडेणं गिण्हइ गिण्हित्ता, जेणेव असोगवणिया

तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता तं दारगं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झाई ।

तए णं तेणं दारएणं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झितेणं समाणेणं सा असोगवणिया उज्जोविया यावि होत्था ॥४२॥

छाया—ततः खलु सा दासवेदी चेलनया देव्या एवमुक्ता सती करतल० यावत् कृत्वा चेलनया देव्या एनमर्थं विनयेन प्रतिशृणोति, प्रतिश्रुत्य तं दारकं करतलपुटेन गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैवाशोकवनिना तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य तं दारकमेकान्ते उक्कुरुडिकायामुज्झति ।

ततः खलु तेन दारकेण एकान्ते उक्कुरुडिकायामुज्झितेन सता साऽशोकवनिना उद्योतितान्नाप्यभवत् ॥४२॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, सा दासवेदी—वह चाकर दासी, चेलणाए देवीए—महारानी चेलना के द्वारा, एवं वुत्ता समाणी—ऐसा आदेश देने पर, करयल जाव० कट्ठु—दोनों हाथ जोड़ कर, चेलणाए देवीए—महारानी चेलना के, एयमट्ठं—इस अर्थ अभिप्राय या आदेश को, विणएणं—विनय-पूर्वक, पडिसुणेइ—सुनती है; पडिसुणित्ता—और सुनकर, तं दारगं—उस नवजात शिशु को, करतलपुडेणं—दोनों हाथों के संपुट में ग्रहण करती है और, गिणित्ता—ग्रहण करके, जेणेव असोगवणिया—जहां पर अशोक वाटिका थी, तेणेव—वहां पर, उवागच्छइ—आ जाती है (और), उवागच्छिता—वहां आकर, तं दारगं—उस शिशु को, एगंते—सर्वथा एकान्त अर्थात् जन-शून्य स्थान देखकर, उक्कुरुडियाए—कूड़े-करकट के ढेर पर, उज्झाई—फेंक देती है । तएणं—तदनन्तर, तेणं दारएणं—उस शिशु को, एगंते उक्कुरुडियाए—निर्जन स्थान में कूड़े-कचरे के ढेर पर फेंके जाने पर, सा असोगवणिया—वह अशोक वाटिका, उज्जोविया—प्रकाशमयी, यावि-होत्था—हो गई ॥४२॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह चाकर दासी महारानी चेलना देवी के द्वारा दिये गए आदेश को दोनों हाथ जोड़कर उसके अभिप्राय एवं आदेश को सुनती है और सुनकर दोनों हाथों के सम्पुट में उस शिशु को ग्रहण करती है फिर उस शिशु को ग्रहण करके जहां (राजा की) अशोक वाटिका थी वहां आती है । वहां आकर उस नवजात शिशु को एकान्त अर्थात् सर्वथा जनशून्य स्थान देखकर कूड़े-करकट के ढेर पर फेंक देती है ।

उस बासक को एकान्त में कूड़े-करकट के ढेर पर फेंकते ही वह अशोक वाटिका प्रकाशमयी हो गई—अर्थात् वहां प्रकाश ही प्रकाश छा गया ॥४२॥

टीका—उपर्युक्त वर्णन से यह ध्वनित होता है कि महारानी चेलना द्वारा गर्भ-पात के सभी प्रयास केवल अपने कुल की रक्षा के लिये ही किये गए, क्योंकि अपने कुल की रक्षा प्रत्येक नारी का सांस्कृतिक कर्तव्य है।

चेलना मांसाहार नहीं करती थी, अतः उसके हृदय में दया थी, मांसाहारी प्रायः निर्दयी होते हैं। यदि वह निर्दयी होती तो बालक को फेंकने का आदेश न देकर स्वयं ही उसे मार सकती थी, अथवा चुपके-चुपके मरवा सकती थी, सम्भवतः मातृवात्सल्य के कारण उसने सोचा होगा कि हो सकता है कि फेंके हुए बालक को कोई निस्सन्तान दम्पति ले जायें और उसका पालन-पोषण करने लगे।

“दासचेडी” उस दासी को कहा जाता था जो रानियों की अत्यन्त विश्वस्त और उसके निजी कार्यों को करनेवाली होती थी। अन्यथा “दासी” शब्द से ही काम चल सकता था।

बालक आखिर राजकुमार था और भावी राजा था, अतः उसे कूड़े-कचरे के ढेर पर फेंके जाने पर भी वहां प्रकाश फैल गया, क्योंकि ऐसा प्रकाश भी एक राज-लक्षण है ॥४२॥

मूल - तएणं से सेणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समणे जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं दारगं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झियं पासेइ, पासित्ता आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे त दारगं करतलपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव चेल्लणा देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चेल्लणं देवि उच्चावयाहिं आओसणाहिं आओसइ, आओसित्ता उच्चावयाहिं निब्भच्छणाहिं निब्भच्छेइ, निब्भच्छित्ता एवं उद्धंसणाहिं उद्धंसेइ, उद्धंसित्ता एवं वयासी-किस्स णं तुमं मम पुत्तां एगंते उक्कुरुडियाए उज्जावेसि ? त्तिकट्ठु चेल्लणे देवि उच्चावयसवहसावियं करेइ, करित्ता एवं वयासी-तुमं णं देवाणुप्पिए ! एयं दारगं अणुपुब्बेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी संवड्ढेहि ।

तएणं सा चेल्लणा देवी सेणिएणं रन्ना एवं वुत्ता समानी लज्जिया विलिया विड्ढा करयलपरिगगहियं० सेणियस्स रन्नो विणएणो एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता तं दारयं अणुपुब्बेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी संवड्ढइ ॥४३॥

छाया ततः खलु सः श्रेणिको राजा अस्या कथाया लब्धार्थः सन् यत्रैवाशोकवनिका तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य तं दारकमेकान्ते उत्कुरुटिकायामुज्जयति पश्यति, दृष्ट्वा आशुरवतः यावत् मिसिमिसीकुर्वन् तं दारकं करतलपुटेन गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव चेल्लना देवी तत्रैवोपागच्छति, चेल्लनां देवीमुच्चावचाभिराक्रोशनाभिराक्रोशति, आक्रुश्य उच्चावचाभिर्निभर्त्सनाभिर्निभर्त्सयति, निभर्त्सयं, एवमुद्धर्षणाभिरुद्धर्षयति, उद्धर्षयं एवमवादीत्—किमर्थं खलु त्वं मम पुत्रमेकान्ते उत्कुरुटिकायामुज्जयसि ? इति कृत्वा चेल्लनां देवीमुच्चावचशपथशापितां करोति, कृत्वा एवमवादीत्—त्वं खलु देवानुप्रिये ! एनं दारकमनुपूर्वेण संरक्षन्ती संगोपयन्ती संवर्द्धय ।

ततः खलु सा चेल्लना देवी श्रेणिकेन राज्ञा एवमुक्ता सती लज्जिता विड्ढा करतलपरिगृहीतं श्रेणिकस्य राज्ञो विनयेन एतमर्थं प्रतिश्रुणोति, प्रतिश्रुत्य तं दारकमनुपूर्वेण संगोपयन्ती संवर्द्धयति ॥ ४३ ॥

पदार्थान्वयः—तएवं से सेणिए राया—तत्पश्चात् राजा श्रेणिक ने (जब), इसीसे कहाए लब्धसमाणे—इस कथा (समाचार) को सुना और जाना तो वह, खेगेव असोमखणिया—जहां पर अशोक वाटिका थी, तेणेव—वहीं पर, उवागच्छइ—(स्वयं ही) जाता है, उवागच्छिता—और वहां आकर, तं दारकं एगंते उक्कुरुडियाए उज्जयं—उसने उस निर्जन-स्थान में एक कूड़े-कचरे के ढेर पर फेंके गए उस बालक को, पासेइ—देखा, पासिस्ता—देखकर, आसुरत्ते—शीघ्र ही आखें लाल करके अर्थात् क्रोध-पूर्वक, जाब०—यावत्, मिसिमिसेमाणे—क्रोधाग्नि से जलते हुए, तं दारकं—कुरही पर पड़े हुए उस बालक को, करतलपुटेणं—दोनों हाथों से, गिण्हइ—ग्रहण करता है—उठा लेता है, गिण्हिता—(और) आकर, जेणेव चेल्लनादेवी—जहां पर महारानी चेल्लना देवी थी, तेणेव—वहीं पर, उवागच्छइ—जा जाता है, उवागच्छिता—और आकर, चेल्लनां देवि—चेल्लना देवी को, उच्चावयाहि—ऊंचे शब्दों में, आओसणाहि—आक्रोश भरे शब्दों द्वारा, आओसिइ—डांटता है, आओसिता—और डांट कर, उच्चावयाहि—ऊंच नीच शब्दों, निभच्छणाहि—और भर्त्सनाओं द्वारा, निभच्छेइ—उसकी भर्त्सना करता है, निभच्छिता—और भर्त्सना करके, एवं—इस प्रकार, उद्धसणाहि—फटकार द्वारा, उद्धसेइ—फटकारता है, उद्धसिता—और फटकार कर, एवं वयासी—इस प्रकार कहा, किस्स णं तुमं—कित लिये तुमने, मम पुत्तं—मेरे पुत्र को, एगन्ते—शून्य स्थान में, उक्कुरुडियाए—कूड़े-कचरे के ढेर पर, उज्जावेसि—तुमने फिकवाया है, सिक्कट्टु—ऐसा कह कर, चेल्लना देवी—चेल्लना देवी को, उच्चावयसवहसावियं करेइ—ऊंच नीच शब्द कह कर शपथ (सोगन्ध) दिलवाता है, करिता—और सोगन्ध दिलवा कर, एवं वयासी—उसको इस प्रकार कहा, तुमं णं देवानुप्पिये—हे देवानुप्रिये तुम्हीं, एयं दारकं—इस नव-जात बालक की, अनुपुब्बेणं—यथाक्रम अर्थात् इसकी अवस्था के अनुसार क्रम से, सारवलेमाणी—रक्षा करते हुए, संगोवेमाणी—पालन-पोषण करते हुए, संवड्ढेहि—इसका संवर्धन करो, अर्थात् इसे बड़ा करो ।

तए णं सा चेत्सलणा देवी—तब वह रानी चेलना देवी, सेणिएणं रत्ता—राजा श्रेणिक द्वारा, एवं वत्ता समाणी—इस प्रकार कहे जाने पर, लज्जिया—(मन ही मन बहुत) लज्जित हुई, विलिया—(बाहरी रूप से भी) लज्जित हुई और, विड्डा—(इस प्रकार दोनों रूपों में विशेष) लज्जित होती हुई, करयल परिग्गहियं—दोनों हाथ जोड़ कर, सेणियस्स रत्तो—राजा श्रेणिक के, विणयेणं—विनीत भाव से, एयमदठं पडिसुणेई—उस आदेश को सुनती है, पडिसुणत्ता—और सुन कर, तं दारयं—उस बालक का, आणपुव्वेणं—क्रमशः उसकी अवस्था के अनुरूप, सारक्खमाणी—संरक्षण एवं, संगोव्वेमाणी—उसका पालन-पोषण करती हुई, संवड्ढइ—उसका संवर्धन करने लगी ॥४३॥

मूलायं—तत्पश्चात् राजा श्रेणिक ने जब उस बालक सम्बन्धी वार्ता को सुना और जाना तो वह जहां पर अशोक-वाटिका थी वहीं पर गया और वहां जाकर उसने उस निर्जन स्थान में कूड़े-करकट के ढेर पर फेंके गए बालक को देखा और देखते ही आखें लाल करके अर्थात् क्रोध में आकर उस क्रोधाग्नि से जलते हुए, कुरडो पर पड़े उस बालक को दोनों हाथों से उठा लिया और उठाकर वह जिस राजमहल में चेलना देवी निवास करती थी वहीं आ गया और आते ही उसने चेलना देवी को ऊंच-नीच शब्दों द्वारा क्रोधान्वित शब्दों से डांटा, फटकारा और उसकी भत्सना की, उसको तिरस्कृत सा किया और फिर उससे कहा—“देवानुप्रिये ! तुमने मेरे पुत्र को किस लिये कुरडो पर फिकवाया,” ऐसा कह कर पुनः ऊंच-नीच शब्दों द्वारा उसे सौमन्धें दिलवाते हुए कहा—“देवानुप्रिये ! तुम्हीं इस बालक का आयु के अनुरूप प्रत्येक अवस्था में इसकी रक्षा करते हुए और इसका पालन-पोषण करते हुए इसका संवर्धन करो ।”

राजा श्रेणिक के द्वारा ऐसे ऊंच-नीचे शब्द कहे जाने पर वह मन ही मन बहुत लज्जित हुई और बाहर से भी वह लज्जित होती हुई प्रतीत हो रही थी (शायद नौकर चाकरों की उपस्थिति के कारण) इस प्रकार दोनों रूपों में लज्जित होती हुई वह हाथ जोड़कर विनयपूर्वक राजा श्रेणिक के आदेश को सुनने लगी और सुनकर उस बालक का उसकी अवस्था के अनुरूप संरक्षण करती हुई उसका पालन-पोषण करके उसका संवर्धन करने लगी ॥४३॥

टीका—इस सूत्र के वर्णन द्वारा ध्वनित होता है कि राजा श्रेणिक अपने भ्रानुचरों द्वारा सब तरह की सूचनायें तुरन्त प्राप्त करता रहता था ।

“अपना खून छिपता नहीं” इस उक्ति के अनुरूप कुरड़ी पर पड़े बालक को देखते ही उसे विश्व स हो गया कि यह उसी का पुत्र है और उसे यह समझते देर न लगी कि यह कृत्य चेलना ने ही किया है, अतः वह बालक को लेकर सीधा चेलना देवी के महल में ही पहुंचा ।

क्रोधावेश में मनुष्य ऊंच-नीच जो भी मुंह में आता है वही कह देता है । यद्यपि महारानी चेलना उसकी प्रिय रानी थी, उसके दोहद की पूर्ति के लिये उसने क्या कुछ नहीं किया था, किन्तु बालक के त्याग रूप अपराध पर उसे क्रोध आ ही गया और उसने उसे काफी फटकारा । मां होकर भी उसने सन्तान को कूड़े के ढेर पर फिकवा दिया, इसलिये वह अत्यन्त ही लज्जित हुई और राजा ने शायद नौकर-चाकरों की उपस्थिति में उसे फटकारा होगा, इसलिये वह बाहरी रूप से भी लज्जित हुई ।

नौकर-चाकर जब यह जानेंगे कि जिस बालक को इसने फिकवाया था अब राजा के आदेश से उसी का पालन-पोषण कर रही है उस समय उसे और भी लज्जा का अनुभव होता रहा होगा जिसे शास्त्रकार ने “विड्वा” शब्द द्वारा ध्वनित किया है ।

“विड्वा” शब्द का संस्कृत रूपान्तर “व्यालीका”—भी हो सकता है जिसका अर्थ हो सकता है कि “माता के कर्तव्य के विपरीत आचरण करने के कारण वह लज्जित हो रही थी ।”

राजा की “मुंहलगी” पत्नी होने पर भी उसने राजा के द्वारा दी गई डांट-फटकार को चुपचाप सहन कर लिया, इसके द्वारा उसने “पत्नी के कर्तव्य” पर अच्छा प्रकाश डाला है और उसने शोधता में पुत्र को फिकवाने का जो निर्णय लिया था उसके कारण लज्जित होते हुए भी उसने पति द्वारा सौगन्ध देने पर बालक का यथोचित पालन-पोषण किया । इससे यह शिक्षा मिलती है कि ब्रूठो सौगन्ध कभी नहीं खानी चाहिये ॥४३॥

मूल—तए णं तस्स दारगस्स एगंते उक्कुड्डियाए उज्झिज्जमाणस्स अगं गुलियाए कुक्कुड्डिपिच्छएणं दूमिया यावि होत्था, अभिक्खणं अभिक्खणं पूयं च सोणियं च अभिनिस्सवइ ।

तए णं से दारए वेयणाभिभूए समाणे महया महया सद्देणं आरसइ । तए णं सेणिए राया तस्स दारगस्स आरसितसद्दं सोच्चा निसम्म जेणेव से दारए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं दारगं करतलपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता तं अगं गुलियं आसरियसि पक्खवइ, पक्खवित्ता पूयं च सोणियं च आसएणं आमसइ ।

तए णं से दारए निव्वुए निव्वेयणे तुसिणीए संचिट्ठइ । जाहे वि य णं से दारए वेयणाए अभिभूए समाणे महया महया सद्देणं आर-
सइ ताहे वि य णं सेणिए राया जेणेव से दारए तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छिता तं दारगं करतलपुडेणं गिण्हइ, तं चेव जाव निव्वेयणे
तुसिणीए संचिट्ठइ ॥४४॥

छाया—ततः खलु तस्य दारकस्य एकान्ते उत्कुरुटिकायामुद्गयमानस्याऽऽङ्गुलिका कुक्कुट-
पिच्छकेन दूना चाऽप्यभूत्, अभोक्षणमभीक्ष्णं पूयं च शोणितं चाभिनस्त्विति ।

ततः खलु स दारको वेदनाभिभूतः सन् महता महता शब्देन आरसति । ततः खलु श्रेणिको
राजा तस्य दारकस्याऽऽरसितशब्दं श्रुत्वा निश्चय्य यत्रैव स दारकस्तत्रैवोपागच्छति, उपामत्य तं दारकं
करतलपुटेन गृह्णाति, गृहीत्वा ताम्रप्राङ्गुलिकामास्ये प्रक्षिपति, प्रक्षिप्य पूयं च शोणितं चास्येन आमु-
शति । ततः खलु सा दारको निवृत्तोनिर्वेदनस्तूणीकः संतिष्ठते । यद्यपि च खलु स दारको वेदनया-
ऽभिभूतः सन् महता-महता शब्देन आरसति तद्यापि च खलु श्रेणिको राजा यत्रैव स दारकस्तत्रैवोपा-
गच्छति, उपामत्य तं दारकं करतलपुटेन गृह्णाति, तदेव यावत् निर्वेदनस्तूणीकः संतिष्ठते ॥४४॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तदनन्तर, तस्स दारगस्स—उस बालक की, एणंते—निर्जन स्थान
में, उक्कुरुडियाए—कूड़े-कचरे के ढेर पर, उज्जित्तज्जमाणस्स—फँके हुए की, ब्रम्मं गुत्तियाए—अंगुली
का अग्रभाग, कुक्कुट-पिच्छकेन—मुर्गे की चोंच से, दूमिया यावि होत्था—घायल कर दिया गया था,
अभिक्खणं-अभिक्खणं—(और उससे) दार-बार, पूयं च शोणियं च—पीप और खून, अभिनस्सवइ—
टपकते रहते थे, तएणं—तब, से दारगे—वह बालक, वेयणाभिभूए समाणे—तीखी पीड़ा से
पीड़ित होकर, महया-महया—ऊंची-ऊंची, सद्देणं—आवाज से (चीखते हुए), आरसति—रोने
लगत था, तएणं—तब, सेणिए राया—राजा श्रेणिक, तस्स दारगस्स—उस बालक के, आर-
सितसइ—आर्तनाद को, सोच्चा—मुनकर, निस्सम्म—कुछ सोच कर, जेणेव से दारए—जहां
पर वह बालक होता, तेणेव उवागच्छइ—वहीं आ जाता, उवागच्छिता—प्रौर आकर, तं
दारगं—उस बालक को, करतलपुडेणं—अपने हाथों से (हथेलियों से), गिण्हइ—उठा लेता था,
गिण्हिता—और उठाकर, तं अगं गुलियं—अंगुलि के उस घाव वाले भाग को, आसयंसि—मुख
में, पक्खिवेइ—डाल लेता है, पक्खिवित्ता—और मुख में डालकर, पूयं च शोणियं च—पीप और
खून को, आसएणं—मुंह से, आमुसइ—चूस लेता है (और उसे थूक देता है), तएणं—तब वह,
दारए—वह बालक, निव्वुए—शान्त, निव्वेयणे—पीड़ा से मुक्त होकर, तुसिणीए संचिट्ठइ—
चुप हो जाता था, जाहे वि य णं दारए—जब भी वह बालक, वेयणाए अभिभूए समाणे—पीड़ा

से पीड़ित होकर, महुया-महुया-सहेणं—ऊँची-ऊँची आवाज से, आरसइ—रोता है, ताहे वि थ नं सेणिए—तब-तब वह राजा श्रेणिक, जेणेब से दारए—जहाँ पर भी वह बालक होता, तेणेव उषागच्छइ—वहीं पर आ जाता, उषागच्छिस्ता—और वहाँ आकर, तं दारगं—उस बालक को, करलपुडेणं—अपने हाथों से, गिण्हइ—उठा लेता, तं चेव जाव निव्वेयणे—और वह जब तक पीड़ा रहित होकर, तुसिणीए संचिठ्ठइ—मौन न हो जाता (तब तक वह वहीं) ठहरता ॥४४॥

मूलार्थ—निर्जंत स्थान में कूड़े-कचरे के ढेर पर फेंके जाने के कारण बच्चे की अंगुली का अग्रभाग किसी मुर्गे की चोंच से छिल गया था, उसकी अंगुली के घाव से बार-बार खून और पीव बहती रहती थी, इस कारण से वह बालक पीड़ा के कारण बार-बार चीख-चीख कर रोता था। उस बालक के रुदन को सुनकर और समझ कर राजा श्रेणिक बालक के पास आता और उसे अपने हाथों से उठा लेता और उठाकर उसकी घायल अंगुली को मुख में डालकर उससे बहती पीव और खून को चूस कर थूक देता। ऐसा करने पर बालक शान्त एवं पीड़ा से मुक्त होकर बैठ जाता। इस तरह वह बालक जब भी वेदना के कारण चीखता और रोता, तो राजा श्रेणिक उसके पास पहुंच जाता और उसे हाथों में उठाकर उसकी अंगुली को मुँह में डाल लेता और उससे पीव और खून को चूसता (और थूक देता), इस प्रकार वह बालक पीड़ा-मुक्त, शान्त और चुप होकर बैठ जाता ॥४४॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में राजा श्रेणिक के वात्सल्य का चित्रण करते हुए उसके द्वारा सन्तान की पीड़ा को दूर करने के लिये पीव और खून तक को चूसने और उसके थूक देने का वर्णन करते हुए सांसारिक जनों के मोह की अतिशयता का वर्णन किया गया है।

पीव और खून को चूसने जैसे घृणित कार्य के द्वारा संकेत किया गया है कि माता-पिता को मोह के नाते नहीं कर्तव्य के नाते सन्तान के प्रत्येक कष्ट को दूर करने का प्रयास करना चाहिये ॥४४॥

मूल—तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो तइए दिवसे चंदसूरवंसणियं करेति, जाव संपत्ते बारसाहे दिवसे सयमेयारुवं गुणनिप्पन्नं नामधिज्जं करेति, जम्हाणं अम्हं इमस्स दारगस्स एगंते उक्कस्सिवाए पज्झिज्जमाणस्स

अंगुलिया कुक्कुडपिच्छणं दूमिया, तं होउ णं अम्हं इमस्स दारगस्स नाम-
धेज्जं 'कूणिए' । तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधिज्जं करेति
'कूणिय' ति ॥४५॥

छाया—ततः खलु तस्य दारकस्याम्बापितरौ तृतीये दिवसे चन्द्रसूर्यदर्शनं कारयतः यावत्
संप्राप्ते द्वादशाहे दिवसे इममेतद्रूपं गुणनिष्पन्नं नामधेयं कुरुतः यस्मात् खलु अस्माकमस्य दारकस्य
एकान्ते उत्कुरुटिकायामुज्ज्यमानस्याङ्गुलिका कुक्कुटपिच्छकेन दूमिता (कूणिता) तत् भवतु खलु
अस्माकमस्य दारकस्य नामधेयं 'कूणिकः' । ततः खलु तस्य दारकस्य अम्बापितरौ नामधेयं कुरुतः
'कूणिकः' इति ॥४५॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तदनन्तर, तस्स दारगस्स—उस पुत्र को, अम्मापियरो—माता-पिता
ने, तइये दिवसे—तीसरे दिन, चंद-सूर-दंसणियं—चन्द्र-सूर्य के दर्शन, करेति—करवाते हैं, जाव०—
यावत्, संपत्ते बारसाहे दिवसे—बारहवां दिन आने पर, अयमेयारुखं—इस प्रकार का, गुण-
निष्पन्नं—गुणों के अनुरूप, नामधिज्जं—नाम, करेति—करते हैं, जम्हारणं—क्योंकि, अम्हं
इमस्स दारगस्स—हमारे इस पुत्र को, एमंते उक्कुरुडियाए—निर्जन स्थान में कुरड़ी पर, पज्जिज्ज-
माणस्स—फेंके जाने के बाद, अंगुलिया—अंगुलि, कुक्कुडपिच्छणं—मुर्गे ने अपनी चोंच से,
दूमिया—आहत कर दी थी, तं होउणं—इसलिये होना चाहिये, अम्हं इमस्स दारगस्स—हमारे
इस शिशु का, नामधेज्जं—नाम, कूणिए—कूणिक, तएणं—तदनन्तर, तस्स दारगस्स—उस
शिशु का, अम्मा-पियरो—माता-पिता ने, नामधिज्जं करेति—नामकरण किया, "कूणिय" इति—
कूणिक ॥४५॥

मूलार्थ—तदनन्तर माता-पिता अपने उस शिशु को तीसरे दिन चन्द्र-सूर्य के
दर्शन करवाते हैं और फिर बारहवां दिन आने पर गुणों के अनुरूप उसका इस प्रकार
का नाम करते हैं, क्योंकि हमारे इस बालक को एकान्त में कुरड़ी पर फेंकने के बाद
इसकी अंगुली को मुर्गे ने अपनी चोंच से कूणित कर दिया था, अर्थात् आहत कर दिया
था, इसलिये हमारे इस बालक का नाम "कूणिक" होना चाहिये । तदनन्तर उसके
माता-पिता ने अपने शिशु का नाम "कूणिक" ही रख दिया ॥४५॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में पुत्र-जन्म पर माता-पिता तीसरे दिन बच्चे को सूर्य - चन्द्र के दर्शन
करवाते थे और बारहवें दिन उसका नामकरण-संस्कार करते थे—इस सांस्कृतिक परम्परा का
उल्लेख किया गया है ।

प्रायः गृहस्थ बच्चे का नाम उसके गुणों के अनुरूप रखा करते थे, क्योंकि मुर्गे ने इनके बच्चे की अंगुलि कूणित अर्थात् आहत कर दी थी, अतः उसका नाम 'कूणिक' ही रखा।

तत्कालीन रीति-रिवाजों के ज्ञान के लिये प्रस्तुत सूत्र महत्वपूर्ण है ॥४५॥

मूल—तएणं तस्स कूणियस्स अणुपूब्बेणं ठिइवडियं च जहा मेहस्य जाव उप्पि पासायवरगए विहरइ, अट्ठट्ठओ दाओ ॥४६॥

छाया—ततः खलु तस्य कूणिकस्यानुपूर्वेण स्थितिपतितं च यथा मेघस्य यावत् उपरि प्रासाद-
वरगतो विहरति । अष्ट दायाः ॥४६॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तदनन्तर, तस्स कूणियस्स—उस राजकुमार कूणिक के, अणुपूब्बेणं—क्रमशः, ठिइवडियं च—कुल क्रमागत सभी उत्सवादि, जहा मेहस्य—जैसे मेघ कुमार के हुए थे, जाव०—यावत् युवावस्था में प्राप्त होकर, उप्पि पासायवरगए—अपने राज-महलों के ऊपर, विहरइ—आमोद-प्रमोद करता है, अट्ठट्ठओदाओ—(आठ कन्याओं के साथ उसका विवाह हुआ और) उसे आठ-आठ वस्तुएं दहेज के रूप में प्राप्त हुई ॥४६॥

मूलार्थ—तदनन्तर उस राजकुमार कूणिक के क्रमशः कुल - परम्परागत सभी महोत्सव आदि हुए, जैसे शास्त्रों में मेघ कुमार के (विवाह आदि का वर्णन प्राप्त होता है वैसे ही उसका) आठ कन्याओं के साथ विवाह हुआ और उसे आठ-आठ वस्तुयें प्रीतिदान (दहेज के रूप में प्राप्त हुई ॥४६॥

टीका—किसी बात का बार-बार वर्णन न करके किसी भी अन्य आगम में वर्णित विषय जैसा कह कर शास्त्रकार लौकिक विषय को अधिक विस्तार नहीं देते। यह संक्षेप - शैली आगमों की अपनी विशेषता है, अतः राजकुमार कूणिक के विवाह का विस्तृत वर्णन न करके “मेघ कुमार के समान” कह दिया गया है।

“ठिइवडियं”—“स्थिति-पतितं” कह कर शास्त्रकार ने गृहस्थों के लिये कुल-परम्पराओं का पालन आवश्यक बतलाया है, क्योंकि “संस्कार” बालकों को सुसंस्कृत बना देते हैं।

यहां दहेज के लिये “प्रीतिदान” शब्द का प्रयोग किया गया है। जिससे यह व्वनित होता है कि कन्या के माता-पिता प्रसन्नता पूर्वक कन्या को जो चाहे दें, किन्तु आज कल की तरह कन्या-पक्ष के समक्ष कोई मांग (डिमांड) नहीं रखी जानी चाहिये।

मूल—तएणं तस्स कूणियस्स कुमारस्स अन्नया पुव्वरत्ता० जाव समुपज्जित्था—एवं खलु अहं सेणियस्स रन्नो वाघाएणं नो संचाएमि सयमेव रज्जसिंरि करेमाणे पालेमाणे विहरित्तए, तं सेयं मम खलु सेणियं रायं निलयबंधणं करेत्ता अप्पाणं महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचा-वित्तए, त्तिकट्ठु एवं संपेहिता सेणियस्स 'रन्नो अंतराणि य विरहाणि य पडिजागरमाणे-पडिजागरमाणे विहरइ ॥४७॥

छाया—ततः खलु तस्य कूणिकस्य कुमारस्य अन्यदा पूर्ववत् ० यावत्समुपपद्यत—एवं खलु अहं श्रेणिकस्य राज्ञो व्याघातेन न शक्नोमि स्वयमेव राज्यश्रियं कुर्वन् पालयन् विहर्तुं, तच्छ्रेयो मम खलु श्रेणिकं राजानं निगडबन्धनं कृत्वा आत्मानं महता-महता राज्याभिषेकेणाभिषेचयितुम्, इति कृत्वा एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य श्रेणिकस्य राज्ञोऽन्तराणि च छिद्राणि च विरहान् च प्रतिजापद् विहरति । ॥४७॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तब, तस्स कूणियस्स—उस राज कुमार कूणिक (के हृदय में), अन्नया पुव्वरत्ता—(कुछ समय के बाद) अर्धरात्रि में), जाव—यावत्—यह विचार, समुपज्जित्था—उत्पन्न हुआ कि, एवं खलु—इस प्रकार जीवन व्यतीत करते हुए, अहं—मैं, सेणियस्स रन्नो—राजा श्रेणिक के, वाघाएणं—प्रतिबन्धों के होते हुए (स्वतन्त्रता पूर्वक), नो संचाएमि—प्राप्त करने में असमर्थ ही रहूंगा, सयमेव—मैं स्वयं, रज्जसिंरि करेमाणे—राज्य श्री का उपभोग करने में, पालेमाणे विहरित्तए—अपने परिवार का पालन-पोषण करते हुए जीवन-यापन करने में, तं सेयं मम खलु—अतः मेरे लिये यही कल्याणकारी होगा कि मैं, सेणियं रायं—राजा श्रेणिक को, निलयबंधणं करेत्ता—हथकड़ियों और बेड़ियों से बांध कर (कारागार में डाल दूं), अप्पाणं—और अपने आप को, महया-महया—महान् से भी महान्, रायाभिसेएणं—राज्याभिषेक से, अभिसिंचावित्तए—अभिषिक्त कर लेना, त्तिकट्ठु—ऐसा विचार करके, एवं संपेहिइ—उसने मन में यह (कार्य करने का) निश्चय कर लिया, संपेहिता—और यह निश्चय करके, सेणियस्स रन्नो—राजा श्रेणिक के, अन्तराणि—आन्तरिक (अन्दरूनी), छिद्राणि—छिद्रों अर्थात् दोषों एवं कमजोरियों को, विरहाणि—सहायकों से रहित होने के अवसर को, पडिजागरमाणे-पडिजागरमाणे—सावधानी से देखते हुए, विहरइ—अपना समय व्यतीत करने लगा ॥४७॥

मूलार्थ—तदनन्तर किसी समय अर्ध रात्रि में राजकुमार कूणिक के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि राजा श्रेणिक के प्रतिबन्धों के कारण मैं अपनी इच्छा से राज्य-वैभव का उपभोग नहीं कर पाता हूं, अतः मेरे लिये यही श्रेयस्कर होगा कि मैं राजा

श्रेणिक को हथकड़ियों एवं बेड़ियों आदि से जकड़ कर कारागार में डाल दूँ और बहुत बड़े राज्याभिषेक से (राज्याभिषेक महोत्सव आयोजित कर) अपना राज्याभिषेक कर लूँ । उसने इस प्रकार सोच-विचार कर ऐसा करने का दृढ़ निश्चय कर लिया और वह राजा श्रेणिक के आन्तरिक छिद्रों अर्थात् कमजोरियों तथा सहायकों से रहित होने का भौका देखते हुए समय व्यतीत करने लगा ॥४७॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में यह प्रदर्शित किया गया है कि लोभ बहुत बुरी बला है । लोभ उत्पन्न हो जाने पर मनुष्य के हृदय में किसी बड़े छोटे का भी खयाल नहीं रह जाता, वह कर्तव्य - अकर्तव्य को भी भूल जाता है ।

राजकुमार कूणिक पर स्वयं राजा बनने का भूत सवार हो गया तो उसने अपने पिता को ही हथकड़ियों और बेड़ियों में बाँध कर जेल में डाल देने का निश्चय कर लिया ।

इस उदाहरण को देखते हुए मनुष्य को अत्यधिक लालसाओं के चक्कर में नहीं फँसना चाहिये । कूणिक के पास घाठ राज महल थे, उसे सुखोपभोग में कोई रोक-टोक नहीं थी, फिर भी वह पिता के विपरीत हो गया ॥४७॥

उत्थानिका—तदनन्तर राज कुमार कूणिक ने अपने पिता को कैद करने का षड्गन्ध कसे रचा—अब सूत्रकार इस विषय का वर्णन करते हैं—

मूल—तएणं से कूणिए कुमारे सेणियस्स रन्नो अंतरं वा जाव मम्मं वा अलभमाणे अन्नया कयाइ कालादीए दस कुमारे नियघरे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—“एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे सेणियस्स रन्नो वाघाएणं नो संचाएमो सयमेव रज्जसिंरिं करेमाणा पालेमाणा विहरित्तए, तं सेयं देवाणुप्पिया ! अम्हं सेणियं रायं नियलबन्धणं करेत्ता रज्जं च रट्ठं च बलं च वाहणं च कोसं च कोट्ठागारं च जयवणं च एककारसभाए विरिचित्ता सयमेव रज्जसिंरिं करेमाणानं जाव विहरित्तए ॥४८॥

छाया—ततः खलु स कूणिकः श्रेणिकस्य राजोऽन्तरं वा यावत् ममं वा अलभमानः अन्यदा कदाचित् कालादिकान् दशकुमारान् निजगृहे शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—एवं खलु देवानु-

प्रिया ! वर्यं श्रेणिकस्य राज्ञो व्याघातेन नो शक्नुमः स्वयमेव राजश्रियं क्वन्तः पालयन्तो विहर्तुम्, तच्छ्रेयो देवानुप्रियो ! अस्माकं श्रेणिकं राजानं निगडबन्धनं कृत्वा राज्यं च राष्ट्रं च बलं च वाहनं च कोशं च कोष्ठागारं च जनपदं च एकादशभागान् विभज्य स्वयमेव राज्यश्रियं कुर्वाणानां पालयतां यावद् विहर्तुम् ॥४८॥

पदार्थान्वयः—तएण—तदनन्तर, से कूणिए कुमारे—उस कूणिक कुमार ने, सेणियस्स रत्नो—राजा श्रेणिक की, अन्तरं वा—कोई भी आन्तरिक कमजोरी, जाव मम्मं वा—एवं किसी भी मार्मिक बात को, अलभमाणे—न मिलने पर, अन्नया कयाइ—किसी अन्य दिन, कालादीए दस कुमारे—काल कुमार आदि दस राजकुमारों (अपने भाइयों को), नियघरे—अपने निजी स्थान पर, सद्दावेइ—बुलवाया, सद्दावित्ता एवं दयासी—और बुलाकर उनसे कहा, एवं खलु देवानुप्पिया—हे देवानुप्रियो ! इस प्रकार, अम्हे—हम लोग, सेणियस्स रत्नो—राजा श्रेणिक की, वाघाएणं—रुकावटों और बाधाओं के कारण, नो संचाएमो—हम कभी भी प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकते, सयमेव राजसिंरि—स्वयं राज्य-वैभव का उपभोग करते हुए, पालेमाणा—प्रजा का पालन-पोषण करते हुए, विहरित्तए—जीवन-यापन करने में, तं सेयं देवानुप्पिया—इस लिये हे देवानुप्रियो ! हमारे लिये यही श्रेयस्कर होगा कि, अम्हं—हम लोग, सेणियं रायं—राजा श्रेणिक की, निलय-बन्धनं करेत्ता—हथकड़ियों एवं बेड़ियों से बांधकर (जेल में डाल दें और फिर), रज्जं च रट्टं च बलं च वाहणं च कोशं च कोष्ठागारं च जयवणं च—अपने राज्य अपने इस राष्ट्र, बल, वाहन, कोष, भण्डार और जनपदों को, एक्कारसभाए—ग्यारह भागों में, विरिचित्ता—बांट कर, सयमेव—हम स्वयं, रज्जसिंरि—राज्य वैभव का उपभोग, करेमाणा णं—करते हुए, जाव विहरित्तए—अपना-अपना सुखी जीवन व्यतीत करें।

मूलार्थ—तदनन्तर उस कूणिक कुमार ने राजा श्रेणिक की किसी भी आन्तरिक कमजोरी एवं उसकी किसी भी मार्मिक बात के प्राप्त न होने पर, किसी दिन उचित अवसर देखकर अपने काल कुमार आदि दसों भाइयों को अपने निजी महल में बुलवाया और उनसे बोला—हे देवानुप्रियो ! इस प्रकार हम लोग स्वयं राज्य का उपभोग करने में कभी सफल नहीं हो सकते जब तक कि राजा श्रेणिक द्वारा खड़ी की गई रुकावटें और बाधाएँ विद्यमान हैं। इसलिये हमारे लिये यही श्रेयस्कर होगा कि हम लोग राजा श्रेणिक को हथकड़ियों एवं बेड़ियों से जकड़ कर (कारागार में डाल दें), और हम स्वयं राज्य-वैभव का उपभोग करते हुए जीवन-यापन करें। राज्य, राष्ट्र, बल (सेना), वाहन (हाथी, घोड़े, रथ आदि), कोष, धान्य-भण्डारों और जनपदों को

ग्यारह भागों में विभक्त करके स्वयं राज्य-सुख भोगते हुए राज करें और प्रजा का पालन करते हुए सुख-पूर्वक जियें ॥४८॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र राजा श्रेणिक के कृतघ्न एवं क्रूर पुत्रों के हृदय में उमड़ते लोभ का वर्णन किया है और उस दाम नीति पर प्रकाश डाला है जिसके अनुसार उसने अपने भाइयों को भी अपने जैसा लोभी, क्रूर एवं पितृघाती बना लिया ।

लोभ मनुष्य से क्या नहीं करवा देता ।

उत्थानिका—तदनन्तर कूणिक ने क्या किया इसका वर्णन करते हुए शास्त्रकार कहते हैं—

मूल- तएणं ते कालादीया दस कुमारा कूणियस्स कुमारस्स एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेंति ।

तएण से कूणिए कुमारे अन्नया क्याइं सेणियस्स रन्नो अंतरं जाणाइ, जाणित्ता सेणियं रायं नियलब्धणं करेइ, करित्ता अप्पाणं महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचावेइ । तएणं से कूणिए कुमारे राया जाए महया० ॥४९॥

छाया—ततः खलु स कूणिकः कुमारः अन्यदा कदाचित् कूणिकस्य राज्ञोऽन्तरं जानाति, ज्ञात्वा श्रेणिकं राजानं निगडबन्धनं करोति, कृत्वा आत्मानं महता-महता राज्याभिषेकेण अभिषेचयति । ततः खलु स कूणिकः कुमारो राजा जातो महा० ॥४९॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, ते कालादीया दस कुमारा—वे काल कुमार आदि दस राज कुमार, कूणियस्स कुमारस्स—कूणिक कुमार के, एयमट्ठं—इस विचार को, विणएणं पडिसुणेंति—विनय-पूर्वक ध्यान से सुनते हैं, तएणं—तदनन्तर, कूणिए कुमारे—कूणिक कुमार, अन्नया क्याइ—किसी समय (भोका पाते ही), सेणियस्स रन्नो—राजा श्रेणिक के, अन्तरं जाणाइ—कुछ अन्दरूनी रहस्यों को जान लेता है, जाणित्ता—और जान कर, श्रेणिकं राजानं—राजा श्रेणिक को, निगड बन्धनं करोति—हथकड़ियों और बेड़ियों से बांध देता है, करित्ता—और बांधकर, अप्पाणं—अपने आपको, महया-महया—विशाल से विशाल राज्याभिषेक (महोत्सव पूर्वक), अभिसिंचावेइ—अपने आपको अभिषिक्त करा देता है, तएणं—तत्पश्चात्, से कूणिए कुमारे राया जाए—कूणिक कुमार स्वयं ही राजा बन गया, महया-महया—महान से महान् ॥४९॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् काल कुमार आदि दसों राज कुमार, कूणिक कुमार के उन विचारों को विनय-पूर्वक ध्यान से सुनते हैं । कुछ दिन बाद कूणिक कुमार को राजा श्रेणिक के कुछ आन्तरिक रहस्य मालूम हो गये, उन्हें जानकर उसने राजा श्रेणिक को हथकड़ियों और बेड़ियों से बांध दिया (और कारागार में बन्द कर दिया), ऐसा करके उसने विशाल महोत्सव के साथ स्वयं ही अपना राज्याभिषेक करवा लिया । तब वह कूणिक कुमार बहुत बड़ा राजा बन गया ॥४९॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में यह बतलाया गया है कि कूणिक कुमार ने अपने काल कुमार आदि दस भाइयों को राज्य का एवं स्वतन्त्र होकर राज्य-वैभव के उपभोग का लोभ देकर अपनी तरफ मिला लिया, जिससे वे भविष्य में उसका विरोध न कर सकें ।

यह भी ध्वनित हो रहा है कि संसार के सभी सम्बन्ध तभी तक हैं जब तक मनुष्य स्वार्थी बन कर लोभाविष्ट नहीं हो जाता, लोभावेश में आते ही वह सभी सम्बन्धों को भूल कर बड़ से बड़ा अनर्थकारी कार्य करने के लिये भी प्रस्तुत हो जाता है । कूणिक ने राज्यलोभ में आकर अपने हितकारी एवं पूज्य पिता को भी कैद ही नहीं किया, अपितु उन्हें लोह-बन्धनों से बांध भी दिया ।४९।

मूल—तए णं से कूणिए राया अन्नया कयाइं ण्हाए जाव सव्वालंकार—विभूसिए चेल्लणाए देवीए पायवंदए हव्वमागच्छइ ।

तएणं से कूणिएराया चेल्लणं देवि ओहयं० जाव झियायमाणि पासइ, पासित्ता चेल्लणाए देवीए पायग्गहणं करेइ, करित्ता चेल्लणं देवि एवं वयासी—किं णं अम्मो ! तुम्हं न तुट्ठी व न ऊसए वा न हरिसे वा नाणंदे वा, जं णं अहं सयमेव रज्जसिंरि जाव विहरामि ? ॥५०॥

छाया—ततः खलु स कूणिको राजा अग्न्या कदाचित् स्नातः यावत् सर्वालङ्कारविभूषितश्चेल्लनाया देव्याः पादचन्दको हव्वमागच्छति ।

ततः खलु स कूणिको राजा चेल्लनां देवीम् अपहृतं यावदध्यायन्तीं पश्यति, दृष्ट्वा चेल्लनाया देव्याः पादग्रहणं करोति, कृत्वा, चेल्लनां देवीमेवमवादीत्—किं खलु अम्ब ! तव न तुष्टिर्वा नोत्सवो वा न हर्षो वा नानन्दो वा ? यत्खलु अहं स्वयमेव राज्यश्रियं यावद् विहरामि ॥५०॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से कूणिए राया—वह राजा कूणिक, अम्मया कयाइं—एक बार फिर कभी, ण्हाए—उसने स्नान किया, जाव० सव्वात्तंकार बिभूसिए—और सभी प्रकार के अलंकारों से सुसज्जित होकर, चेल्लणाए देवीए—महारानी चेलना देवी के, पाय-वन्दए—चरणों में नमस्कार करने के लिये, हव्वमागच्छइ—शीघ्रता से आता है।

तएणं—तत्पश्चात्, से कूणिए राया—वह राजा कूणिक, चेल्लणं देवि—महारानी चेलना देवी को, ओह्य०—उदास एवं मानसिक संकल्प के विपरीत कार्य होने के कारण खिन्न तथा, झियायमाणि—आर्तध्यान करती हुई को, पासति—देखता है, पासित्ता—और उसे उदास देख कर, चेल्लणाए देवीए—माता चेलना देवी के, पायगहणं करेइ—चरण पकड़ लेता है, करित्ता—और चरण-वन्दन करके, चेल्लणं देवि—महारानी चेलना देवी से, एवं वयासी—इस प्रकार बोला, कि णं अम्मो !—माता ऐसी क्या बात है ?, तुम्हें न तृप्ति वा—आज आपको सन्तोष नहीं हुआ ? न ऊसए वा—कोई आपको खुशी नहीं हुई ? हरिसे वा—हर्ष नहीं हुआ ? नाणं दे वा—आपको आनन्द नहीं हुआ ? जं णं—जब कि, अहं समयेव—मैं स्वयं, रज्जसिरी—राज्य-वैभव का उपभोग करते हुए, जाव बिहरामि—आनन्द-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।

मूलार्थ—तदनन्तर किसी दिन वह राजा कूणिक स्नान करके (और बलिकर्म प्रायश्चित्त आदि मंगल कार्य करने के अनन्तर) सर्वविध राजा के योग्य आभूषण पहन कर अपनी माता चेल्लणा देवी के पास चरण-वन्दनार्थ पहुंचा। तब राजा कूणिक ने माता चेल्लणा देवी को मानसिक संकल्प से विपरीत कार्य होने के कारण आर्तध्यान करते हुए देखा—चिन्तातुर देखा। देखते ही उसने माता चेलना देवी के चरण पकड़ लिये और माता चेलना देवी से इस प्रकार कहा—“मां ! ऐसी क्या बात है कि आज आपका मन सन्तुष्ट नहीं है, आज आपके मन में उत्साह हर्ष एवं आनन्द नहीं है, जब कि मैं स्वयं राज्य-वैभव का उपभोग करते हुए चैन की जिन्दगी जी रहा हूँ, अर्थात् आपको मेरा राजा बन जाना क्या अच्छा नहीं लग रहा ॥१०॥

टीका—पुत्र कितना भी दुष्ट क्यों न हो, वह पिता के प्रति क्रूर व्यवहार कर सकता है, किन्तु अपनी माता के प्रति वह कभी क्रूर नहीं हो सकता। अतः कूणिक ने पिता को बांध कर जेल में डाल दिया, किन्तु माता की चरण-वन्दना के लिये वह समय-समय पर आता ही रहता था।

कोई भी मां पुत्र से उदासीन न होते हुए भी अपने पति के प्रति भी अपनी निष्ठा एवं कर्तव्य को भूल नहीं सकती। कूणिक अब राजा बन गया था—अतः स्वच्छन्द था, इसलिये वह उसे कुछ विशेष कहना उचित न मानते हुए अपने पति राजा श्रेणिक को बन्दी बना दिये जाने के कारण

वह अत्यन्त उदास खिन्न एवं चिन्तातुर थी, अतः पुत्र के राजा बन जाने पर भी वह असन्तुष्ट एवं दुःखी ही रहती थी ॥५०॥

मूल—तएणं सा चेल्लणा देवी कूणियं रायं एवं वयासी—“कहणं पुत्ता ! ममं तुट्ठी वा उस्सए वा हरिसे वा आणंदे वा भविस्सइ ? जं णं तुमं सेणियं रायं पियं देवयं गुरुजणं अच्चंतनेहानुरागरत्तं नियल-बंधणं करित्ता अप्पाणं महया रायाभिसेएणं अभिसिंचावेसि ।

तएणं से कूणिए राया चेल्लण देवि एवं वयासी—घाएउकामेणं अम्मो ! मम सेणिए राया, एवं मारैउं, बंधिउं, निच्छुभिउकामेणं अम्मो ! मम सेणियं राया, तं वहणं अम्मो ! मम सेणिए राया अच्चंतनेहानुरागरत्ते ? ॥५१॥

छाया - ततः खलु सा चेल्लना देवी कूणिकं राजानमेवमवादीत्—कथं खलु पुत्र ! मम तुष्टिर्वा उत्सवो वा हर्षो वा आनन्दो वा भविष्यति यत्खलु त्वं श्रेणिकं राजानं प्रियं देवतं गुरुजनकमत्यन्त-स्नेहानुरागरत्तं निगडबन्धनं कृत्वा आत्मानं महता-महता राज्याभिषेकेण अभिषेचयसि ।

ततः खलु सा कूणिको राजा चेल्लनां देवीमेवमवादीत्—घातयितुकामः खलु अम्ब ! मम श्रेणिको राजा, एवं मारयितुं, बन्धयितुं, निःक्षोभयितुकामः खलु अम्ब ! मम श्रेणिको राजा, तत्कथं खलु प्रम्ब ! मम श्रेणिको रायाऽत्यन्तस्नेहानुरागरत्तः ? ॥५१॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, सा चेल्लणा देवी—वह चेल्लना देवी, कूणियं राया—कोणिक राजा को, एवं वयासी—इस प्रकार कहने लगी, कहणं पुत्ता णं—हे पुत्र कैसे, मम तुट्ठी वा—मुझे सन्तुष्टि होगी, उस्सए वा—उत्सव होगा, हरिसे वा—हर्ष होगा, आणंदे वा भविस्सइ—आनन्द होगा, जं णं तुमं—जो तूने, सेणियस्स रायं—श्रेणिक राजा को, पियं—जो तुम्हारे पिता हैं, देवयं—देव तुल्य, गुरुजणं—गुरुजनों के तुल्य, अच्चंतनेहानुरागरत्तं—अत्यन्त स्नेह व राग से युक्त को, नियलबंधणं करित्ता—हथकड़ियों और बेड़ियों से बांध कर, अप्पाणं—स्वयं को, महया—महान, रायाभिसेएणं—राज्याभिषेक से, अभिसिंचावेसि—अभिषिंचत करवाया है ।

तएणं—तत्पश्चात्, से कूणिए राया—वह कोणिक राजा, चेल्लणं देवि—चेल्लना देवी को, एवं वयासी—इस प्रकार कहने लगी, घाएउकामेणं—घात करने के इच्छुक, अम्मो—हे माता

मम सेणिए राया—श्रेणिक राजा तो मुझे, एवं—इस प्रकार, मारेउं—मारने के लिये इच्छुक, बंधिउं—बांधने के लिये इच्छुक, निच्छुभिउकामए णं—मुझे राज्य से बाहर करने के लिये इच्छुक था, अम्मो—हे माता, मम सेणिए राया—मुझे श्रेणिक राजा, तं—अतः, अम्मो—हे माता, मम—मुझ पर, सेणिए राया—श्रेणिक राजा, अच्छंतनेहाणुरागरत्ते—कैसे अत्यन्त स्नेह राग से युक्त था ॥५१॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् चेलना देवी ने राजा कूणिक को इस प्रकार कहा—“हे पुत्र ! मुझे कैसे प्रसन्नता, उत्सव, हर्ष व आनन्द हो सकता है ? क्योंकि तूने उस देव एवं गुरु के तुल्य अपने पिता राजा श्रेणिक को हथकड़ियों एवं बेड़ियों से बांध रखा है जिनका तुम्हारे प्रति गहरा स्नेह व राग है, ऐसे पिता को कैद करके तूने स्वयं का राज्याभिषेक किया है, इसलिए मेरे मन में हर्ष उत्सव, आनन्द कैसे हो सकता है ?

तत्पश्चात् वह राजा श्रेणिक, चेलना देवी की बात सुनकर इस प्रकार कहने लगा—“हे माता ! आप कैसे कह सकती हैं कि मुझ पर राजा श्रेणिक का अत्यंत रागात्मक स्नेह है ?

टोका—प्रस्तुत सूत्र में राजा कूणिक ने अपनी माता को प्रणाम करने के बाद अपने किये हुए कुकृत्य का समर्थन माता चेलना से करवाना चाहा, किन्तु महारानी चेलना पति के प्रति समर्पित रानी थी । वह अपने पति के प्रति अथाह स्नेह रखती थी । श्रेणिक की कैद के कारण वह सर्वाधिक दुःखी रहने लगी । प्रस्तुत सूत्र से रानी चेलना की स्पष्ट-वादिता का भी पता चलता है । रानी चेलना कहती है कि मुझे तेरे राजा बनने की खुशी कैसे हो सकती है ? तूने अपने देव-गुरु तुल्य पिता को कारागार में डाल दिया है, तुझे अपने पिता की महानता व तेरे प्रति स्नेह का भी ध्यान नहीं रहा ।

रानी चेलना देवी की बात सुनकर राजा कूणिक ने अपनी माता से पूछा—“हे माता ! आप कैसे कहती हैं कि मेरे पिता राजा श्रेणिक मेरे से बहुत स्नेह व राग रखते हैं ? इस सूत्र से सिद्ध होता है कि कोणिक ने राजा श्रेणिक को कैद में डालते समय माता से विचार-विमर्श नहीं किया था । इसी कारण माता ने आशीर्वाद के स्थान पर उपालम्भ दिया ।

पियं और जणगं “पिता” और “जनक” ये दोनों शब्द पिता के पर्यायवाची शब्द हैं तथा पियं शब्द बल्लभ पति आदि अर्थों में भी प्रयुक्त होता है । गुजराती अर्बमागधी कोष पृष्ठ ५४६ में ऐसा ही कथन है ॥५१॥

मूल—तएणं सा चेल्लणा देवी कूणियं कुमारं एवं वयासी---एवं खलु पुत्ता ! तुर्मेसि ममं गब्भे आभूए समाणे तिण्हं मासाणं बहुपडि-

पुंनानां मम अयमेयारूवे दोहले पाउळभूए-धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव अंगपडिचारियाओ निरवसेसं भाणियव्वं जाव० जाहे वि य णं तुमं वेयणाए अभिभूए महया जाव० तुसिणीए संचिट्ठसि, एवं खलु तव पुत्ता ! सेणिए राया अच्चंतनेहाणुरागरत्ते ॥५२॥

छाया—ततः खलु सा चेल्लना देवी कूणिकं कुमारमेवमवादीत्—एवं खलु पुत्र ! त्वयि मम गर्भे अभूते सति त्रिषु मासेषु बहुप्रतिपूर्णेषु ममायमेतद्रूपो दोहदः प्रादुर्भूतः—धन्याः खलु ता अम्बाः यावत् अङ्गप्रतिचारिकाः, निरवशेषं भणितव्यं यावत् यदापि च खलु एवं वेदनयाऽभिभूतो महता यावत् तूष्णीकः संतिष्ठसे, एवं खलु तव पुत्र ! श्रेणिको राजाऽत्यन्तस्नेहानुरागरवतः ॥५२॥

पदार्थान्वयः—तएण—तब, सा चेल्लना देवी—वह महारानी चेलना, कूणियं कुमारं—कोणिक कुमार से, एवं वयासी—इस प्रकार कहने लगी, एवं खलु पुत्ता हे पुत्र ! इस प्रकार समझो, तुमसि ममं गब्भे अभूए समाणे—जब तू मेरे गर्भ में आया था तब, तिण्हं मासाणं—त.न महीने, बहुपडिपुंनानं—बच्छो तरह पूर्ण होने पर, ममं—मेरे हृदय में, अयमेयारूवे—इस प्रकार का, दोहले पाउळभूए—दोहद उत्पन्न हुआ था, धन्ना णं ताओ अम्मयाओ—कि धन्य हैं वे मातायें, यावत्—यावत्, अंगपडिचारियाओ निरवसेसं भाणियव्वं—इस संकल्प से लेकर अंग-परिचारिकाओं (सेविकाओं) द्वारा जो जो कार्य किये गए थे और जो कुछ अभय कुमार ने किया था वह सब कार्य उसने बतला दिये, जाव—वहाँ तक जब उसे कुरड़ी पर फेंका गया था और उसकी अंगुली के अग्रभाग को मुर्गे ने चोंच से छील दिया था, उसे श्रेणिक ने चेलना को लाकर दिया था और उसे यह भी बतलाया था कि, जाहे वि य णं तुमं—और जब भी तुम, वेयणाए—वेदना से, अभिभूए—अभिभूत हो जाते थे, महया—महानु, जाव तुसिणीए संचिट्ठसि—जब तक तुम चुप होकर शान्त नहीं हो जाते थे (तब तक श्रेणिक तुम्हारी अंगुली के खून और पीक को चूस-चूस कर थूकते रहते थे, एवं खलु तव पुत्ता—हे पुत्र ! इस प्रकार (तुम स्वयं ही समझ सकते हो कि), सेणिए राया—राजा श्रेणिक, अच्चंतनेहाणुरागरत्ते—अत्यन्त स्नेह से तुम पर अनुरक्त था ॥५२॥

मूलार्थ—तब महारानी चेलना कोणिक कुमार को इस प्रकार कहने लगी—हे पुत्र ! तुम इस प्रकार समझो कि “जब तू मेरे गर्भ में आया था, तब तीन महीने अच्छी तरह पूरे हो जाने पर मेरे हृदय में इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ था कि “धन्य हैं वे मातायें जो यावत् अर्थात् अंग-परिचारिकाओं द्वारा जो-जो कार्य किये गए थे और जो कुछ भी अभय कुमार ने किया था वे सब कार्य उसी कोणिक को बतला दिये

और कुरड़ी पर फँकने से लेकर राजा श्रेणिक द्वारा उसे वापिस लाकर पुनः चेलना को सौंपने से लेकर यह भी बतलाया कि जब भी तुम मुर्गे द्वारा छीली गई अंगुली के भारी कस्ट के कारण व्यथित होते थे तब तुम्हारे पिता श्रेणिक तुम्हारी अंगुली से पीप और खून तब तक चूस कर थूकते रहते थे जब तक तुम चुप होकर शान्त नहीं हो जाते थे । इस प्रकार हे पुत्र ! तुम स्वयं ही समझ सकते हो कि राजा श्रेणिक तुम पर कितना स्नेहानुराग रखते थे ॥५२॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में बतलाया गया है कि महारानी चेलना ने कुमार कोणिक को उसके गर्भ में आने से लेकर आज तक का सारा वृत्तान्त आद्योपान्त सुना दिया, जिससे उसका हृदय एक दम बदल गया, क्योंकि सत्य में हृदय-परिवर्तन की अपार शक्ति है ।

इस सूत्र द्वारा यह भी ज्ञात होता है कि कोणिक कुमार इससे पूर्व इस घटना से सर्वथा अपरिचित था, अतः वह अपने पिता को अपना शत्रु समझता था, इसीलिये उसने उसे हथकड़ियों और बेड़ियों से बांध कर जेल में डाल दिया था ।

राज्य-लोभ और पूर्व जन्माजित कर्म भी इसमें कारण थे, किन्तु जीवन-क्रम के ज्ञान का अभाव भी उसके इस दुष्कार्य करने के पीछे एक कारण था ॥५२॥

तएणं से कूणिए राया चेल्लणाए देवीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा
निसम्म चेल्लणं देवि एवं वयासी—दुट्ठु णं अम्मो ! मए कयं, सेणियं रायं
पियं देवयं गुरुजणं अच्चंतनेहाणुरागरत्तां निलयबंधणं करंतेणं, तं गच्छामि
णं सेणियस्स रत्तो सयमेव नियलाणि छिदामि तिकट्ठं परसुहत्थगए जेणेव
चारगसाला तेणेव प्हारेत्थ गमणाए ॥५३॥

छाया—ततः खलु सः कूणिको राजा चेल्लनाया देव्या अन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य चेल्लनां देवीमेवमवादीत्—दुष्टु खलु अम्ब ! मया कृतं श्रेणिकं राजानं प्रियं वैवतं गुरुजनकमत्यन्तस्नेहानुरागरत्तं निगडबन्धनं कुर्वता, तद् गच्छामि खलु श्रेणिकस्य राज्ञः स्वयमेव निगडाति छिनत्ति, इति कृत्वा परसुहस्तगतो यत्रैव चारकशाला तत्रैव प्रधारयति गमनाय ॥५३॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तदनन्तर, स कूणिए राया—वह राजा कूणिक, चेल्लणाए देवीए—महारानी चेलना के, अंतिए—पास से, एयमट्ठं सोच्चा—इस वृत्तान्त (घटना-क्रम) को सुन कर,

निसम्भ—और सुनते ही, चेल्लण देवि—महारानी चेलना से, एवं वयासी—इस प्रकार बोला—
 दुट्टु णं अम्भो—हे मां ! निश्चय ही एक दुष्टकृत्य. मए कयं—मैंने किया है कि, सेणियं रायं—राजा
 श्रेणिक को (जो कि मेरे लिये), देवयं—देव स्वरूप, गुरुजणं—परमोपकारक (गुरुतुल्य), अच्चं-
 स्नेहानुरागरत्तं—अत्यन्त स्नेहानुराग से युक्त हैं उन्हें, निलय-बन्धनं करनेणं—हथकड़ियों बेड़ियों
 में बांधने वाले ने, तं गच्छामि—अतः मैं जाकर, सेणियस्स रत्तो—राजा श्रेणिक के, सयमेव
 निलयाणि छिदामि—स्वयमेव बन्धन भूत हथकड़ियों बेड़ियों को काटता हूँ, त्ति कट्टु—ऐसा कहकर,
 परसुहत्थगए—हाथ में परशु लेकर, जेणव चारगसाला—जहां जेलखाना था, तेणव—वहीं पर,
 प्हारेत्था गमणाए—पहुंचने के लिये चल पड़ा ॥५३॥

मूलार्थ—तदनन्तर उस राजा कूणिक ने महारानी चेलना से जब उपरोक्त वृत्तान्त
 सुना तो वह सुनते ही महारानी चेलना से इस प्रकार बोला—मां ! निश्चय ही मैंने
 राजा श्रेणिक को जो कि मेरे लिये देवता तुल्य है, मेरे परमोपकारक गुरु जैसे है और
 मुझ पर अत्यन्त स्नेहानुराग रखते हैं, उनके हथकड़ियों बेड़ियों जैसे बन्धन मैं स्वयमेव
 जाकर काटता हूँ। यह कह कर वह हाथ में परशु लेकर जहां जेलखाना था वहां पहुंचने
 के लिये चल दिया ॥५३॥

टीका—सदुपदेशों से और वास्तविकता को जानकर मनुष्य कैसा भी क्रूर क्यों न हो उसके
 हृदय का परिवर्तन हो ही जाता है।

अपनी माता से पिता के स्नेहानुराग की वास्तविक बात को सुनते ही कोणिक का हृदय
 बदल गया और वह परशु (कुल्हाड़ा अथवा कुल्हाड़े जैसा कोई औजार जिससे शीघ्र ही बन्धन कट
 सकें) हाथ में लेकर उस जेलखाने की ओर चल दिया जहां राजा श्रेणिक को उसने बन्द किया था।

सूत्रकार ने उपर्युक्त उल्लेख से यह सिद्ध कर दिया है कि सदुपदेश कभी व्यर्थ नहीं जाता—
 उसका प्रभाव मनुष्य के मन पर पड़ता ही है ॥५३॥

मूल—तएणं सेणिए राया कूणियं कुमारं परसुहत्थगयं एज्जमाणं पासइ,
 वासित्ता एवं वयासी—एस णं कूणिए कुमारे अपत्थियपत्थिए जाव सिरि-
 हिरिपरिवज्जिए परसुहत्थगए इह हव्वमागच्छइ । तं न नज्जइ णं ममं
 केणह कु-मारेणं मारिस्सइ त्ति कट्टु भीए जाव संजायभए तालपुडगं विसं
 आसगंसि पक्खिवइ ।

तएणं से सेणिए राया तालपुडगविसे आसगंसि पक्खित्ते समणे मुहुत्तंतरेणं परिणममाणंसि निप्पाणे निच्चिट्ठे जीवविप्पजढे ओइन्ने ।

तएणं से कूणिए कुमारे जेणेव चारगसाला तेणेव उवागयं, सेणियं रायं निप्पाणं निच्चिट्ठं जीवविप्पजढं ओइन्नं पासइ, पासित्ता महया पिइसोएणं अप्फुण्णे समणे परसुनियत्ते विव चंपगवरपायवे धसत्ति धरणीयलंसि सव्वंगेहिं संनिवडिए ॥५४॥

छाया—तत खलु श्रेणिको राजा कूणिकं कुमारं परशुहस्तगतमेजमानं पश्यति, दृष्ट्वा एवमवादीत्—एष खलु कूणिकः कुमारः अप्राथितप्रथितो यावत् श्रीह्रीपरिवर्जितः परशुहस्तगत इह हव्यमागच्छति, तत्र जायते खलु मां केनापि कुमारेण (कुत्सित-मारेण) मारयिष्यतीति, कृत्वा भीतो यावत् संजातभयस्तालपुटकं विषमास्ये प्रक्षिपति ।

ततः खलु स श्रेणिको राजा तालपुटकविषे आस्ये प्रक्षिप्ते सति मुहुत्तान्तरेण परिणम्यमाने निष्पन्नो निश्चेष्टो जीवविप्रत्यक्तोऽवतीर्णः । ततः खलु सः कूणिकः कुमारे यत्रैव चारकशाला तत्रैवोपागतः, उपागत्य श्रेणिकं राजानं निष्प्राणं निश्चेष्टं जीव-विप्रत्यक्तमवतीर्णं पश्यति, दृष्ट्वा महता पितृ-शोकेन आक्रान्तः सन् परशुनिकृत्त इव चम्पकवर-पादपः “धस” इति धरणीतले सर्वाङ्गैः निपतितः ॥५४॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, सेणिए राया—राजा श्रेणिक, कूणियं कुमारं—कूणिक कुमार को परशुहस्त गयं—हाथ में कुल्हाड़ा लिये हुए, एज्जमाणं—आते हुए को, पासइ—देखता है, पासित्ता—और उसे देखते ही (वह मन ही मन), एवं घयासो—इस प्रकार कहने लगा, एसणं कूणिए कुमारे—निश्चय ही यह कूणिक कुमार, अपत्थियपत्थिए—अप्राथित की प्रार्थना करनेवाला—अर्थात् कर्तव्य को कर्तव्य मानने वाला, जाव० सिरि-हिरि-परिवज्जिए—यावत् राजकर्तव्यरूप लक्ष्मी और लज्जा से रहित, परसु ह्थगए—हाथ में परशु लिये हुए, इह—यहां पर, हव्वमागच्छइ—शीघ्र ही पहुंचने वाला है, तं न नज्जइणं—इस समय मैं नहीं जान पा रहा, ममं—यह मुझे, केणइ—किस प्रकार की, कु-मारेणं—बुरी मौत से, मारिस्सइ—मारेगा, तिक्कट्ठु—ऐसा सोचते ही वह, भीए—भय-भीत हो गया, जाव संनाय भए—और भय उत्पन्न होते ही, तालपुडग विसं—तालपुट नामक भयंकर विष (वह अपने), आसगंसि—मुख में, पक्खिवइ—डाल लेता है ।

तएणं—तदनन्तर, से सेणिए राया—वह राजा श्रेणिक, तालपुडगविसे—तालपुट विष, आसगंसि पक्खित्ते समणे—मुख में डालते ही, मुहुत्तंतरेणं—कुछ ही क्षणों में, परिणममाणंसि—

विष के शरीर में घुलते ही, निष्प्राणे निश्चेष्टे—निष्प्राण एवं निश्चेष्ट होकर, जीवविष्वज्जडे—जीवन विहीन होकर (भूमि पर), ओइण्णे—गिर पड़ा। तएणं से कूणिए कुमारे—तब वह कूणिक कुमार, जेणेव चारगसाला—जहां पर बन्दी खाना था, तेणेव उवागयं—वहीं पर आ पहुंचा, (वह आते ही) सेणियं रायं—राजा श्रेणिक को, निष्प्राणं निश्चेष्टं—निष्प्राण एवं निश्चेष्ट, जीव-विष्वज्जडं—जीवन-विहीन को, ओइण्णं—भूमि पर गिरे हुए को, पासइ—देखता है, पासित्ता—देख कर, महया—अत्यन्त, पिइसोएणं—पितृ-शोक से, अक्खुण्णे समाने—शोकाक्रान्त हो जाने पर, परसु-नियत्ते विव—परशु से काटे हुए, चंपगवरपायवे—चम्पक वृक्ष के समान, “वसत्ति”—घड़ाम से, घरणियत्तंसि—पृथ्वी पर, सव्वंगेहि—पूरे शरीर सहित, सनिबडिए—गिर पड़ा ॥५४॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् राजा श्रेणिक हाथ में परशु लिए हुए कोणिक कुमार को अपनी ओर आते हुए देखता है और देखते ही उसने मन ही मन कहा—यह कूणिक कुमार निश्चय ही अकर्तव्य को कर्तव्य मानने वाला, राज-नियमों एवं लज्जा से रहित है। यह हाथ में परशु लिए हुए शीघ्र ही यहां पहुंचने वाला है, इस समय मैं नहीं जान पा रहा कि यह मुझे किस बुरी मौत से मारेगा, ऐसा सोचते ही भयभीत होकर उसने तालपुड विष को अपने मुंह में डाल लिया।

तदनन्तर वह राजा श्रेणिक तालपुड विष को मुख में डालते ही कुछ ही क्षणों में विष के शरीर में घुल जाने से निष्प्राण एवं निश्चेष्ट तथा जीवन-रहित होकर भूमि पर गिर पड़ा। तब वह कूणिक कुमार जहां पर बन्दी खाना था वहीं पर आ पहुंचा। उसने वहां आकर राजा श्रेणिक को निष्प्राण, निश्चेष्ट और जीवन - विहीन—मृतक अवस्था में भूमि पर पड़े हुए देखा और देखते ही वह अत्यन्त (भारी) पितृ-वियोग के कारण शोकाक्रान्त होकर, परशु से काटे हुए चम्पक वृक्ष के समान घड़ाम से धरती पर पूरे शरीर से गिर पड़ा ॥५४॥

टोका—प्रस्तुत सूत्र में राजा श्रेणिक की बन्दीगृह में हुई मृत्यु का वर्णन किया गया है। राजा श्रेणिक ने कूणिक कुमार के अब तक के व्यवहार से यही जाना था कि यह मुझे मारने ही आ रहा है।

यह घटना इस विषय का संकेत दे रही है कि मनुष्य को सहसा कोई निर्णय नहीं ले लेना चाहिये, बिना विचारे किया हुआ कार्य मृत्यु जैसे अनर्थ का कारण बन जाता है।

राजा लोग पहले अपने पास 'तालपुट' नामक भयंकर विष (साईनाइड जैसा विष) प्रायः रखा करते थे। आपात्त आने पर घुट-घुट कर मरने की अपेक्षा वे यह विष खाकर मर जाते थे। वह राजा था, इसलिए बन्दीखाने में बन्द करते समय शायद उसकी पूरी तरह तलाशी न ली गई हो, अतः यह विष राजा श्रेणिक के पास ही रह गया होगा। इसलिए जेल में उसे विष कहा से प्राप्त हुआ ? यह शंका नहीं करनी चाहिये ॥५४॥

मूल—तएणं से कूणिए कुमारे मुहुत्तंतरेणं आसत्थे समाणे रोयमाणे कंदमाणे, सोयमाणे विलवमाणे एवं वयासी—अहो णं मए अधन्नेण अपुन्नेणं अकय-पुन्नेणं दुट्ठु कयं सेणियं रायं पियं देवयं अच्चंतनेहाणुरागरत्तं निलयबंधणं करत्तेणं, मम मूलकं चैव णं सेणिए राया कालगए त्तिकट्ठु ईसर-तलवर जाव० संधिवाल-सद्धिं संपरिवुडे रोयमाणे इड्ढिसक्कार-समुदए णं सेणियस्स रन्नो नोहरणं करेइ । करित्ता बहूइ लोइयाइं मय-किच्चाइं करेइ ।

तएणं से कूणिये कुमारे एएणं महया मणोमाणसिएणं दुक्खेण अभिभूइ समाणे अन्नया कयाइ अंतउर-परिहाल संपरिवुडे सभंड मत्तोवगरणमायाए रायगिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव चंपा नयरी तेणेव उवागच्छइ । तत्थवि णं विउलभोगसमिइ-समन्नागए कालेणं अप्पसोए जाए यावि होत्था ।

तएणं से सेणिए राया अन्नया कयाइ कालादीए दस कुमारे सद्दावेइ-सद्दावित्ता रज्जं च जाव जणवयं च एक्कारसभाए विरिचइ, विरिचित्ता सममेव रज्जसिरिं करेमाणे पालेमाणे विहरइ ॥५५॥

छाया—ततः खलु सः कूणिकः कुमारो मुहुत्तान्तरेण आसवस्थः सन् रुदन् क्रन्दनं शोचन् विलपन् एवमवासीत्—अहो खलु मया अधन्येत अपुन्येत अकृतपुण्येन दुष्टं कृतं श्रेणिकं राजानं प्रियं वैद्यतमः यन्तस्नेहानुराग-रक्षसं निग्रह-बन्धनं कुर्वता, मम मूलकं चैव खलु श्रेणिको राजा कालगतः,

इति कृत्वा ईश्वर-तलवर यावत् सन्धिपालैः सार्धं संपरिवृतो रुदन् ३—(क्रन्दन, शोचन् विलपन्) महता ऋद्धिसत्कार-समुदयेन श्रेणिकस्य राज्ञो नोहरणं करोति, कृत्वा बहूनि लौकिकानि मृतकृत्यानि करोति ।

ततः खलु सः कूणिकः कुमार एतेन महता मनोमानसिकेन दुःखेनाभिभूतः सन् अन्यदा कदाचित् अन्तःपुर-परिवार - संपरिवृतः सभाण्डमत्तोप-करणमादाय राजगृहात् प्रतिनिष्क्रमति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव चम्पा-नगरी तत्रैवोपागच्छति, तत्रापिच विपुल-भोग-समिति समन्वागतः कालेन अल्पशोको जातश्चाप्य भूत् ।

ततः खलु सः कूणिको राजा अन्यदा कदाचित् कालिकादिकान् दसकुमरान् शब्दापयित्वा राज्यं च यावत् जनपदं च एकादश-भागान् विभजति, विभज्य स्वयमेव राज्यश्रियं कुर्वन् पालयन् विहरति ।

॥५५॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से कूणिए कुमारे—वह कूणिक कुमार, मृदुत्तरेण—कुछ ही क्षणों के अनन्तर, आसत्थे समाणे—स्वस्थ ही जाने पर, रोयमाणे—रोते हुए, कन्दमाणे—क्रन्दन करते हुए, सोयमाणे—शोकाकुल होते हुए, विलवमाणे—विलाप करते हुए, एवं वयासी—इस प्रकार कहने लगा, अहो नं मए—ओह मैं, अधन्नेणं—अभागा हूं, अपुन्नेणं—अधर्मी हूं, अकय-पुन्नेणं—पुण्य-हीन हूं, दुट्ठ कयं—मैंने दुष्कृत्य किया है जो कि, सेणियं रायं—राजा श्रेणिक को, (जो मेरे) पियं—प्रिय थे, देव तुल्य थे, अत्यन्त स्नेहानुराग-रंजित थे, निगडब्बध्मं कुर्वता—उन्हें हथकड़ियों बेड़ियों से बन्धन में डालते हुए, सम मूलगं चेव—तो निश्चय ही मैं ही इसका मूल कारण हूं, (जो कि) सेणिये राया कालगते—राजा श्रेणिक कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्त हुए हैं । त्तिकट्ठ—ऐसा कह कर, ईसर-तलवर-जाव संधिपाल सद्धि—ईश्वर तलवर और संधिपाल आदि, संपरिवृडे—से घिरे हुए, रोयमाणे—रुदन क्रन्दन विलाप आदि करते हुए, महया—महान्, इद्धिसवकारसमुदएणं—समृद्धि सत्कार एवं समारोह के साथ, सेणियस्स रन्तो नोहरणं करेई—राजा श्रेणिक के शव को देखता है; करित्ता—और देख कर, बहूइं—बहुत प्रकार के, लोइयाइं—लौकिक, मयकिच्चाइं करेइ—मृतकृत्यों को करता है ।

तएणं से कूणिए कुमारे—तदनन्तर वह कूणिक कुमार, एएणं महया—इस महान् मनो-मानसिएणं—अपने मानसिक, दुःखेणं—दुःख से, अभिभूए समाणे—अभिभूत हो जाने पर, अन्नया कयाइ—फिर कभी, अंतेउर परिवाल-संपरिवृडे—अन्तपुर—महारानियों और परिवार से युक्त अर्थात् घिरा हुआ; सभंडमत्तोवगरण मायाए—अपने वस्त्र-पात्र आदि जीवन-साधनों के साथ, राजगिहाओ—राजगृह नगरी से, पडिनिक्खमइ—बाहर निकलता है, पडिनिक्खमित्ता—और बाहर निकल कर, जेणेव चंपा नयरी—जहां पर चम्पा नाम की नगरी थी, तेणेव—वहीं पर, उवा-गच्छइ—आता है । तत्थ वि णं—और वहां पर आकर, विउलभोगसमिइ-समन्वागए—विपुल-भोग सामग्री उसने प्राप्त की, (और) कालेणं—और समय पाकर, अप्पसोए जाए याक्कि होत्था—अल्प शोक वाला अर्थात् शोक-रहित हो गया ।

तएण कोणिए राया—तत्पश्चात् वह राजा कोणिक, अन्नया कयाइ—किसी अन्य समय में कालादीए दस कुमारे—काल आदि अपने दस राज कुमार भाइयों को, सहावेइ—बुलवाता है, सहावित्ता—और बुलवाकर, रज्जं च—समस्त राज्य-वैभव तथा, जनवयं च—जनपदों को, एक्कारस भाए—ग्यारह भागों में, विरिचइ—बांट देता है, विरिचित्ता—और बांट कर, सयमेव—खुद ही, रज्जसिरि करेमाणे—राज्य-लक्ष्मी का उपभोग करते हुए, पालेमाणे—उसका पालन करते हुए, विहरइ—विहरण करने लगा ॥५५॥

मूलार्थ—तदनन्तर वह राजा कूणिक कुछ क्षणों के बाद कुछ स्वस्थ होकर रुदन, क्रन्दन, शोक और विलाप करता हुआ इस प्रकार बोला—“ओह मैं अभागा हूं, पापी हूं, अकृत-पुण्य हूं, मैंने बहुत ही दुष्ट कार्य किया है जो कि मैंने राजा श्रेणिक को जो कि मेरे अत्यन्त प्रिय देवतुल्य और गुरु के समान एवं स्नेहानुराग-रंजित थे उन्हें हथकड़ियों एवं वेड़ियों से जकड़ दिया। तो निश्चय पूर्वक मैं ही उसका मूल कारण हूं जो राजा श्रेणिक मृत्यु को प्राप्त हुए। इस प्रकार हार्दिक दुःख व्यक्त करके ईश्वर तलवर और सन्धिपाल आदि से घिरे हुए—रोते शोक करते विलाप करते हुए महान् ऋद्धि-समृद्धि के साथ उसने राजा श्रेणिक को देखा और अनेक विध लौकिक कृत्यों के साथ उनका अन्तिम-संस्कार किया।

तदनन्तर वह कोणिक कुमार अत्यन्त मानसिक पीड़ा से पीड़ित होने पर, एक बार अपनी महारानियों एवं परिवार के साथ अपने खान-पान एवं वस्त्रों आदि के सहित राजगृह नगर से बाहर निकला और जहां पर चम्पा नगरी थी वहां पर आया, वहां पर भी अनेकविध भोग-समुदाय को प्राप्त करता हुआ कुछ समय पाकर शोक-रहित हो गया अर्थात् अपने पितृ-शोक को भूल गया।

तत्पश्चात् एक बार उस राजा कोणिक ने अपने कालादिक दस राजकुमार भाइयों को बुलवाया और बुलवाकर प्राप्त राज्य-वैभव और समस्त जनपदों को उसने ११ भागों में बांट दिया और बांट कर स्वयं राज्य-श्री का उपभोग एवं पालन करने लगा। ॥५४॥

टोका—“बहूहि लोइयाइं भयकिच्चाइ” इन शब्दों से स्पष्ट ध्वनित हो रहा है कि कोणिक ने पिता की अन्त्येष्टि करते समय जो भी कृत्य किये वे लौकिक थे, उनका ध्यात्म-जगत से कोई सम्बन्ध नहीं था।

कोणिक को पितृ-शोक का इतना गहरा आघात लगा कि आखिर उसने राजगृह नगर का ही परित्याग कर दिया और चम्पा को उसने अपनी राजधानी बना लिया ।

“ईश्वर” “तलवर” आदि शब्द उस समय अधिकारी वर्ग के लिये प्रयुक्त होते थे ।

इस नगरी का नाम “चम्पा” इसलिए पड़ा था कि जहाँ पर यह नगरी बसाई गई थी उस स्थान पर पहले हजारों चम्पक वृक्ष थे, अतः वह नगरी ‘चम्पा’ नाम से प्रसिद्ध हुई ॥५५॥

मूल—तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए कूणियस्स रन्नो सहोदरे कणीयसे भाया वेहल्ले नामं कुमारे होत्था सोमाले जावं सुरूवे । तएणं तस्स वेहल्लस्स कुमारस्स सेणिएणं रन्ना जीवंतएणं चेव सेयणए गंधहत्थी अठारसबंके य हारे पुब्बदिन्ने ॥५६॥

छाया—तत्र खलु चम्पायां नगर्यां श्रेणिकस्य राज्ञः पुत्रश्चेल्लनाया देव्या आत्मजः कूणिकस्य राज्ञः सहोदरः कनीयान् भ्रातृ वेहल्लो नाम कुमार आसीत्, सुकुमारो यावत् सुरूपः । ततः खलु तस्य वेहल्लस्य कुमारस्य श्रेणिकेन राज्ञा जीवता चैव सेचनको गन्धहस्ती अष्टादशवक्रो हारश्च पूर्वं दत्तः ॥५६॥

पदार्थान्वयः—तत्थ णं चंपाए नयरीए—वहाँ उस चम्पा नामक नगरी में, सेणियस्स रन्नो पुत्ते—राजा श्रेणिक का पुत्र, चेल्लणाए देवीए अत्तए—चेलना देवी का आत्मज, कूणियस्स रन्नो सहोदरे—राजा कूणिक का सहोदर (सगा), कणीयसे भाया—छोटा भाई, वेहल्ले नामं कुमारे—वेहल्ल नाम का, कुमारे होत्था—राजकुमार था; सोमाले जावं सुरूवे—सुकुमार यावत् सुरूपा, तएणं तस्स वेहल्लस्स कुमारस्स—पहले कभी उस वेहल्ल कुमार को, सेणिएणं रन्ना—राजा श्रेणिक ने, जीवंतएणं—अपने जीवन-काल में ही, सेयणए गन्ध हत्थी—सेचनक गन्धहस्ती, अठारसबंके हारे—अठारह लड़ियों वाला हार, पुब्बदिन्ने—पहले ही दे दिया था ॥५६॥

मूलार्थ—उस चम्पा नामक नगरी में राजा श्रेणिक का ही पुत्र और सहारांनी चेलना का आत्मज तथा राजा कूणिक का सगा छोटा भाई वेहल्ल नाम का राजकुमार था जो कि सुकुमार एवं सुन्दर रूप वाला था । उस वेहल्ल कुमार को राजा श्रेणिक ने अपने जीवन-काल में ही सेचनक नाम का गन्धहस्ती और अठारह लड़ियों वाला हार पहले ही दे दिया था ॥५६॥

टीका—“आत्मज” शब्द का भाव यह है कि कोणिक और वेहल्ल कुमार की माता एक ही थी। इसी भाव को स्पष्ट करने के लिये वेहल्ल कुमार को “सहोदरे” सहोदर एक ही माता के उदर से उत्पन्न कहा है।

दोनों का पिता तो राजा श्रेणिक था ही। यह स्पष्टीकरण इसलिये दिया गया है कि राजा श्रेणिक की अनेक रानियां थीं, उन सबके पुत्र भी राजा श्रेणिक के ही पुत्र थे, किन्तु वे सब राजा कूणिक के सगे भाई न थे ॥५६॥

**मूल—तएणं से वेहल्ले कुमारे सेणएणं गन्धहत्थिणा अंतेउर परियाल-
संपरिवुडे चंपं नगरिं मज्झंमज्झेणं निगच्छइ, निगच्छिता अभिक्खणं-
अभिक्खणं गगं महानइं मज्जणयं ओयरइ ॥५७॥**

छाया—ततः खलु सः वेहल्लः कुमारः सेचनकेन गन्धहस्तिना अन्तःपुर-परिवार-संपरिवृतः, चम्पायाः नगर्याः मध्यं मध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य अभीक्ष्णं-अभीक्ष्णं गगां (गंगायां) महानदीं (महानद्यां) मज्जनकमवतरति ॥५७॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तब, से वेहल्ले कुमारे—वह वेहल्ल कुमार, सेणएणं गन्धहत्थिणा—सेचनक गन्धहाथी पर (सवार होकर), अंतेउर-परियाल-संपरिवुडे—अपनी रानियों और शेष परिवार एवं परिकर आदि के सहित, चंपं नगरिं—चम्पा नगरी के, मज्झं-मज्झेणं—बीचों-बीच के मार्ग से, निगच्छइ—(नगरी से) बाहर जाता है, निगच्छिता—और बाहर जाकर, अभिक्खणं-अभिक्खणं—बारम्बार, गगं महानइं—महानदी गंगा में, मज्जणयं—स्नानार्थ, ओयरइ—अवतरित होता है—उसमें प्रवेश करता है ॥५७॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह वेहल्ल कुमार सेचनक गन्धहस्ती पर सवार होकर अपनी रानियों और निजी परिवार एवं दास-दासियों के साथ चम्पा नगरी के बीचोंबीच के मार्ग से होते हुए नगरी से बाहर निकला और निकल कर महानदी गंगा में बार-बार स्नान करने के लिए उतरा—अर्थात् गंगा नदी में प्रविष्ट हुआ ॥५७॥

टीका—इस सूत्र द्वारा स्पष्ट हो रहा है कि कूणिक जब राजगृह नगरी से चम्पा नगरी में आया तो वेहल्ल कुमार आदि अपने दस भाइयों को भी साथ ही ले गया था।

वेहल्ल कुमार ने अपने पिता के दिए हुए गन्धहस्ती और अठारह लड़ियों वाले हार को भी

साथ ही लाना था और वह लाया । उसी हाथी पर बैठ कर वह अपने परिवार के साथ गंगा नदी पर स्नान करने के लिये गया था ॥५७॥

उत्थानिका—अब सूत्रकार वेहल्ल कुमार और उसके परिवार की जलक्रीड़ाओं का वर्णन करते हैं—

मूल—तएणं सेयणए गन्धहत्थी देवीओ सोंडाए गिण्हइ, गिण्हत्ता अप्पेगइयाओ पुट्ठे ठवेइ, अप्पेगइयाओ खंधे ठवेइ, एवं अप्पेगइयाओ कुंभे ठवेइ, अप्पेगइयाओ सीसे ठवेइ, अप्पेगइयाओ दंतमुसले ठवेइ, अप्पेगइयाओ सोंडाए गहाय उड्ढं वेहासं उविहइ, अप्पेगइयाओ सोंडागयाओ अंदोलावेइ, अप्पेगइयाओ दंतंतरेसु नीणेइ, अप्पेगइयाओ सीभरेणं ण्हाणेइ, अप्पेगइयाओ अणेगेहिं कीलावणेहिं कीलावेइ ॥५८॥

छाया—ततः खलु सोचनको गन्धहस्ती देवीः शृण्डया गृह्णाति, गृही वा अप्पेकिकाः पृष्ठे स्थापयति, अप्पेकिकाः स्कन्धे स्थापयति, अप्पेकिकाः कुम्भे स्थापयति, अप्पेकिकाः शीर्षे स्थापयति, अप्पेकिकाः दन्तमुशले स्थापयति, अप्पेकिकाः शृण्डया गृहीत्वा ऊर्ध्वं वेहायसमुद्रहते, अप्पेकिकाः शृण्डागता आन्दोलयति, अप्पेकिकाः दन्तान्तरेषु नयति, अप्पेकिकाः शीकरेण स्नपयति, अप्पेकिकाः अनेकैः क्रीडनकैः क्रीडयति ॥५८॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तब वह, सेयणए गंधहत्थी—सेचनक गन्धहस्ती, देवीओ—वेहल्ल कुमार की रानियों की, सोंडाए गिण्हइ—सूंड से पकड़ता है (ग्रीव), गिण्हत्ता—पकड़ कर, अप्पेगइयाओ—उनमें से किसी को, पुट्ठे ठवेइ—अपनी पीठ पर बिठला लेता है, अप्पेगइयाओ—किसी को, खंधे ठवेइ—कंधे पर बिठला लेता है, एवं—इस प्रकार, अप्पेगइयाओ—किसी को अपने कुम्भस्थल पर (अर्थात् गर्दन के पास), ठवेइ—स्थापित कर लेता है, अप्पेगइयाओ—किसी को, सीसे ठवेइ—सिर पर बिठला लेता है, अप्पेगइयाओ—और किसी को, दंतमुसले ठवेइ—दांतों पर बिठला लेता है, अप्पेगइयाओ—कुछ को, सोंडाए गहाय—सूंड से पकड़ कर, उड्ढं वेहासं उविहइ—ऊंचे आकाश में उछाल कर पुनः दांतों पर रख लेता है, अप्पेगइयाओ—किसी को, सोंडागयाओ—सूंड से उठा कर, अंदोलावेइ—झुलाता है, अप्पेगयाओ—कुछ को, दंतंतरेसु नीणेइ—दांतों के अन्तर में (दोनों दांतों के बीच में) ले जाता है, अप्पेगइयाओ—और कुछ को, सीभरेणं—जल-सीकरों अर्थात् जल की फुहारों से, ण्हाणेइ—स्नान करवाता है, अप्पेगइयाओ—अनेक स्त्रियों को, अणेगेहिं—अनेक प्रकार की, कीलावणेहिं—क्रीड़ाओं से, कीलावेइ—खेल खिलाता है ॥५८॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह सेचनक हाथी वेहल्ल कुमार को रानियों को सूंड से पकड़ता है और पकड़ कर किसी को अपनी पीठ पर बिठला लेता है, किसी को कंधे पर किसी को कुम्भ स्थल पर, किसी को सिर पर, किसी को दांतों पर बिठना देता है । किसी को सूंड से पकड़ कर ऊपर आकाश में उछालता है, किसी को सूंड से पकड़ कर झुलाता है, किसी को दांतों के मध्यभाग में बिठला लेता है, किसी को जब की फुहारों से स्नान करा देता है और किसी को अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं द्वारा खेल खिलाता है ॥५८॥

टीका—गीतार्थ शास्त्र-मर्मज्ञ मुनियों का यह कथन है कि इस गन्धहस्ती को जाति-स्मरण ज्ञान था । इसका मतिज्ञान भी अत्यन्त निर्मल था; इसी कारण वह उपर्युक्त जल-क्रीड़ाएँ कर रहा था ।

“गन्धहस्ती” ऐसा हाथी होता है जिसके शरीर की विशेष गन्ध को पाते ही अन्य हाथी त्रस्त हो जाते हैं और हथनियाँ उसकी गन्ध से आकृष्ट होकर स्वयं ही उसके पास आ जाती हैं ।

इससे यह भी प्रमाणित होता है कि पञ्चेन्द्रिय जीवों को प्रशिक्षित करके विशिष्ट ज्ञान भी दिया जा सकता है ॥५८॥

उत्थानिका—अब सूत्रकार इस घटना के परिणाम पर प्रकाश डालते हैं—

मूल—तएणं चंपाए नयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-महापह-
पहेसु बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ जाव० परुवेइ एवं खलु देवाणु-
प्पिया ! वेहल्ले कुमारे एयणएणं गन्धहत्थिणा अंतेउर० तं चेव जाव
अणेगेहिं कीलावणएहिं कीलावेइ, तं एस णं वेहल्ले कुमारे रज्ज-सिरि-
फलं पच्चणुभवमाणे विहरइ, नो कूणिए राया ॥५९॥

छाया—ततः खलु चम्पायां नगर्यां शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-महापथ-पथेषु बहुजनोज्ज्यो-
न्येस्य एवमाख्यापयति यावत् प्ररूपयति एवं खलु देवानुप्रियाः ! वेहल्लः कुमारः सेचकेन गन्धहस्तिना
अन्तःपुर० तदेव यावत् अनेकैः क्रीडनकैः क्रीडयति तदेव खलु वेहल्लः कुमारो राज्यभीफल-प्रत्यनुभवन्
विहरति नो कूणिको राजा ॥५९॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, चंपाए नयरीए—उस चम्पा नगरी में, सिंघाडग-तिग-
चउक्क-चच्चर-महापहपहेसु—सिंघाडे जैसे त्रिकोण भागों, चौखटों, राजमार्गों पर, बहुजणो—अनेक

व्यक्ति, अन्नमन्नस्स—परस्पर (एक-दूसरे से), एवमाइक्खइ—इस प्रकार कहने लगे, जाव०
 पल्लवेइ—यावत् आलोचनात्मक विचार करते हैं, एवं खलु देवानुप्पिया—हे देवानुप्रियो ! क्या यह
 निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि, वेहल्ले कुमारे—वेहल्ले कुमार ही, एयणएणं गंधहत्थिणा—
 इस गन्धहस्ती को पाकर, अंतेउर०—अपनी रानियों एवं अपने निजी परिवार के साथ, तं चेव
 जाव० अणेगेहिं कीलावणएहिं—वही अनेक प्रकार की क्रीडाओं द्वारा, कीलावेइ—क्रीडायेँ करता
 है—खेल खेलता है, तं एस णं वेहल्ले कुमारे—इसलिये यह वेहल्ले कुमार हो, रज्जसिरिफलं—
 राज्य-लक्ष्मी—राजसी ऐश्वर्य का, पञ्चणुब्भवमाणे—अनुभव करता हुआ उससे लाभ उठाता हुआ,
 विहरइ—सुखपूर्वक जी रहा है; नो कूणिए राजा—कूणिक राजा होते हुए भी राज्य श्री का लाभ
 नहीं उठा रहा ॥५६॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् अर्थात् वेहल्ले कुमार की क्रीडाओं को देखकर चम्पा नगरी के
 तिराहों, चौराहों और राजमार्गों पर खड़े अनेक व्यक्ति परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार
 कहते हुए आलोचना करने लगे कि देवानुप्रियो ! क्या यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा
 सकता कि वेहल्ले कुमार ही इस गन्धहस्ती को पाकर अपनी रानियों एवं अपने निजी
 परिवार के साथ अनेक प्रकार की क्रीडायेँ करता हुआ राज्य-सुख का पूरा-पूरा अनुभव
 कर रहा है ? अर्थात् वही राज-ऐश्वर्य का उपभोग कर रहा है, कूणिक राजा होते हुए भी
 राजसी ऐश्वर्य का पूर्णरूप से उपभोग नहीं कर पा रहा ॥५९॥

टीका—इस सूत्र द्वारा चम्पा नगरी के त्रिकोण मार्गों चौराहों आदि का जो वर्णन किया
 गया है उससे चम्पानगरी की विशालता और सुव्यस्थित रचना का बोध हो रहा है ।

प्राचीन काल से लोगों की यह आदत रही है कि एक दूसरे की अकारण ही आलोचना करते
 रहते हैं । चम्पा नगरी के नागरिक भी इसी प्रकार की आलोचना कर रहे थे—इसे ही “लोक-
 प्रवाद” कहा जाता है ॥५६॥

मूल—तएणं तीसे पउमावईए देवीए इमीसे कहाए लद्धट्ठाए समा-
 णीए अयमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था—एवं खलु वेहल्ले कुमारे सेयणएणं
 गंधहत्थिणा जाव अणेगेहिं कीलावणएहिं कीलावेइ, तं एस णं वेहल्ले
 कुमारे रज्जसिरिफलं पञ्चणुब्भवमाणे विहरइ, नो कूणिए राया, तं किं

अम्हं रज्जेण वा जाव जणवएण वा जइ णं अम्हं सेयणगे गंधहत्थी नत्थि ? तं सेयं खलु ममं कूणियं रायं एयमट्ठं विन्नवित्तए' त्ति कट्ठु एवं संपेहेइ. संपेहिता जेणेव कूणिए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता करयलं जाव एवं वयासी—एवं खलु सामी ! वेहल्ले कुमारे सेयणएणं गंधहत्थिणा जाव अणेगेहिं कीलावणएहिं कीलावेइ, तं किण्णं सामी ! अम्हं रज्जेण वा जाव जणवएण वा जइणं अम्हं सेयणए गंधहत्थी नत्थि ? ॥६०॥

छाया—ततः खलु तस्याः पद्यावत्या देव्या अस्याः कथायाः लब्धार्थायाः सत्या अयमेतद्रूपो यावत् समुद्पद्यत—एवं खलु वेहल्लः कुमारः सेचनकेन गन्धहस्तिना यावद् अनेकैः क्रीडनकैः क्रीडयति, तदेव खलु वेहल्लः कुमारो राज्यं श्रीफलं प्रत्यनुभवन् विहरति नो कूणिको राजा, तत्किमस्माकं राज्येन यावज्जनपदेन वा यदि खल्वस्माकं सेचनको गन्धहस्ती नास्ति, तच्छ्रेयः खलु मम कूणिकं राजानमेतमर्थं विज्ञपयितुम्, इति कृत्वा एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य यत्रैव कूणिको राजा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य कर-तलं यावदेवमब्रवीत्, एवं खलु स्वामिन् ! वेहल्लः कुमारः सेचनकेन गन्धहस्तिना यावद् अनेकैः क्रीडनकैः क्रीडयति, तत्किं खलु स्वामिन् ! अस्माकं राज्येन वा यावद् जनपदेन वा यदि खल्वस्माकं सेचनको गन्धहस्ती नास्ति ॥६०॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, तीसे पउमावईए देवीए—उस पद्यावती देवी को, इसीसे कहाए—इस समाचार के, लड्डुआए समाणीए—प्राप्त होने पर, अयमेयारुवे—इस प्रकार का विचार, जाव०—यावत्, सम्पपज्जित्था—उत्पन्न हुआ, एवं खलु—इस प्रकार तो, वेहल्ले कुमारे—वेहल्ल कुमार ही, सेयणएणं गन्धहत्थिणा—सेचनक हाथी के द्वारा, जाव—यावत्, अणेगेहिं कीलावणएहिं—अनेक प्रकार के खेल, कीलवाई—खेल रहा है, तं एस णं वेहल्ले कुमारे—अतः यह वेहल्ल कुमार ही, रज्जसिरोफलं—राज्य-वैभव-प्राप्ति के फल का, पक्कणुंभवमाणे—अनुभव करता हुआ, विहरइ—विहार कर रहा है, अर्थात् जीवन का आनन्द लूट रहा है, नो कूणिए राया—राजा कूणिक नहीं। तं कि अम्हं—(ऐसी दशा में) हमारा, रज्जेण वा जाव० जणवएण वा—इस राज्य और इस जनपद (पर अधिकार का क्या प्रयोजन रह जाता है), जइ णं अम्हे—यदि हमारे पास, सेयणगे गन्धहत्थी नत्थि—सेचनक हाथी नहीं है, तं सेयं खलु ममं—इसलिये अब इसी में मेरा श्रेय है कि, कूणियं रायं—(मैं) राजा कूणिक से, एयमट्ठं—यह बात, विन्नवित्तए—निवेदन कर दू, त्ति कट्ठु—ऐसा करके अर्थात् यह बात मन में आते ही, एवं संपेहेइ—यह निश्चय करती है (और), संपेहिता—निश्चय करके, जेणेव कूणिए राया—जहां पर राजा कूणिक था, तेणेव उवागच्छइ—वहीं पर आती है (और), उवागच्छिता—वहां पहुंच कर, करयलं जाव—दोनों हाथ जोड़ते हुए, एवं वयासी—इस प्रकार बोली, एवं खलु सामी—हे स्वामिन् ! (जब कि), वेहल्ले कुमारे—वेहल्ल

कुमार ही, सेयणएणं गंधहृत्थिणा—सेचनक हाथी को पाकर, अणेगेहि कीलावणएहि—अनेक प्रकार के खेल, कीलावेइ—खेलता है, तं किण्णं सामी अम्हं—तो हे स्वामी ! इससे हमें क्या लाभ है, रज्जेण वा जणवएण वा—इस राज्य-वैभव और इस विशाल राज्य से, जइणं अम्हं—जब कि हमारे पास, सेयणए गन्धहृत्थी—यह सेचनक हाथी ही, नत्थि—नहीं है ? ॥६०॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस महारानी पद्मावती को जब यह समाचार प्राप्त हुआ तो उसके मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि इस प्रकार तो वेहल्ल कुमार ही, सेचनक हाथी के द्वारा अनेक प्रकार के खेल खेल रहा है, तब तो वह वेहल्ल कुमार ही वस्तुतः राज्य-प्राप्ति का फल अनुभव करता हुआ, जीवन का आनन्द लूट रहा है, राजा कूणिक नहीं । ऐसी दशा में हमारा इस राज्य-वैभव और इतने बड़े प्रदेश की प्राप्ति का क्या प्रयोजन रह जाता है ? यदि हमारे पास सेचनक गन्धहृत्थी ही नहीं है । अब मेरा इसी में श्रेय है कि मैं यह बात राजा कूणिक से निवेदन कर दूँ । ऐसा करके अर्थात् यह बात मन में आते ही वह यह निश्चय करती है और निश्चय करते ही वह जहां राजा कूणिक था वहां आती है और वहां पहुंच कर दोनों हाथ जोड़ते हुए इस प्रकार कहती है—“हे स्वामिन् ! जब कि वेहल्ल कुमार ही सेचनक हाथी को पाकर अनेक प्रकार के खेल खेलता है तो हे स्वामी ! इस राज्य-वैभव और इतने विशाल राज्य से हमें क्या लाभ है ? जब कि हमारे पास सेचनक हाथी ही नहीं है ॥६०॥

टीका—इस वर्णन द्वारा सूत्रकार ने व्यर्थ की लोक-वर्चाओं की ओर ध्यान देने के दुष्परिणामों का वर्णन कर दिया है और यह भी बतलाया है कि उस समय पारिवारिक शान्ति भंग हो जाती है जब स्त्रियां देवर जेठ आदि से ईर्ष्या करने लगती हैं । दोनों भाइयों और परस्पर सम्बन्धी राज्यों में भविष्य में जो कलह उत्पन्न हुई वह रानी पद्मावती के हृदय की ईर्ष्या का ही दुष्परिणाम है । इसमें मनुष्य को यथाप्राप्त धन से सन्तुष्ट न रहने का दुष्परिणाम भी बतलाया गया है ।

स्त्री - हृदय विशेष ईर्ष्यालु होता है, इस मानवीय कमजोरी का भी शास्त्रकार ने सुन्दर चित्रण उपस्थित किया है ॥६०॥

मूल—तएणं से कूणिए राया पउमावईए देवीए एयमट्ठं नो आढाइ, नो परिजाणइ, तुसिणीए संचिट्ठइ । तएणं सा पउमावई देवी अभि-

कखणं-अभिकखणं कूणियं रायं एयमट्ठं विन्नवेइ ।

तएणं से कूणिए राया पडमावईए देवीए अभिक्खणं-अभिक्खणं
एयमट्ठं विन्नविज्जमाणे अन्नया कयाइ वेहल्लं कुमारं सदावेइ, सदाविता
सेयणं गंधर्हत्थि अट्ठारसबकं च हारं जायइ ॥६१॥

छाया—ततः खलु स कूणिको राजा पश्चादत्याः देव्याः एतमर्थं नो आद्रियते, नो परिजानाति,
तूष्णीकः संतिष्ठते ।

ततः खलु सा पद्मावती देवी अभीक्ष्ण-अभीक्ष्णं कृणिकं राजानं एतमर्थं विज्ञापयति । ततः खलु स कृणिको राजा पद्मावत्याः देव्याः अभीक्ष्ण - अभीक्ष्णं एतमर्थं विज्ञाप्यमानः अग्न्या कदाचित् वेह्ल्लं कुमारं शब्दयति, शब्दयित्वा सेचनकं गन्धहस्तिनं अष्टादशवक्त्रं च हारं याचते ॥६१॥

पदार्थान्वया—तएण—तब, से कूणिए राया—वह राजा कूणिक, पउमावईए देवीए—महाराणी पद्मावती द्वारा, एयमट्टु—निवेदित की गई बात को, नो आद्रियत्ते—कोई आदर नहीं देता अर्थात् उसे कोई महत्त्व नहीं देता, नो परिजाणइ—न ही उसे अच्छा मानता है, तुसिणीए संचिट्ठइ—अतः चुप्पी धारण करके बैठा रहता है। तएण—तब, सा पउमावई देवी—वह महारानी पद्मावती अभिक्खणं—अभिक्खणं—बारंबार, कूणियं रायं—राजा कूणिक के समक्ष, एयमट्टुं विस्सवेइ—वही बात दोहराती है।

तएणं—तब, से कूणिए राया—वह राजा कूणिक, पउभावईए देवीए—महारानो पद्मावती के द्वारा, अभिक्खणं—अभिक्षणं—बारम्बार, एयमट्ठं—उसी बात को, विन्नविज्जमाणे—कहने पर, अन्नया कयाइ—कुछ समय बाद, वेहल्लं कुमारं सहावेइ—वेहल्ल कुमार को बुलवाता है, सहावित्ता—और बुलवा कर उससे, सेयणगं गन्धहत्थि—सेचनक गन्धहस्ती, अट्ठारसबकं च हारं—और अठारह लडियों वाला हार, जायइ—मांगता है ॥६१॥

मूलार्थ—तब वह राजा कूणिक महारानी पद्मावती देवी की बातों को कोई महत्त्व नहीं देता और न ही वह उसकी बातों को अच्छा समझता है। बल्कि (उपेक्षा भाव से) चुप बैठा रहता है। तब वह महारानी पद्मावती बार-बार राजा कूणिक के समक्ष अपनी बात को दोहराती है। इस प्रकार महारानी पद्मावती के द्वारा बार-बार अपनी बातों को दोहराने पर राजा कूणिक कुछ समय के बाद बेहल्ल कुमार को बुलवाता है और बलवा कर उससे सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ियों वाला हार मांगता है ॥६१॥

टीका—राजा कूणिक रानी पद्मावती की बातों को लोभ-युक्त, असन्तुष्ट वृत्ति की तथा निरर्थक-सी जान कर उनको कोई महत्त्व नहीं देता और न ही उन बातों को अच्छा समझता है, अतः वह मुस्करा कर चुप रह जाता है। आखिर कूणिक राजा था, वह राजनीति को अच्छी तरह समझता था, अतः वह उसे कुछ कहने की अपेक्षा मौन धारण कर लेना ही उचित मानता है।

किन्तु 'तिरिया-हठ' प्रसिद्ध ही है, अतः रानी हठ-पूर्वक बार-बार अपनी बात को दोहराती है।

“रसरी आवत जात ते सिल पर परत निशान” की कहावत के अनुसार आखिर कूणिक उसकी बातों को मान लेता है, फिर भी उसे टालने का यत्न करता है। “अन्नया कथाइ” शब्दों द्वारा यह बात व्यक्त होती है कि वह यह समझता रहा कि सम्भवतः समय पाकर पद्मावती शायद हाथी और हार के लोभ को छोड़ दे, किन्तु उसके हठ के सामने आखिरकार उसे झुक जाना पड़ा और उसने वेहल्ल कुमार को बुलवा कर उसके समक्ष हाथी और हार की मांग रख ही दी।

स्त्री के सामने पुरुष झुक ही जाता है, यह एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है ॥६१॥

मूल—तएणं से वेहल्ले कुमारे कूणियं रायं एवं वयासी—“एवं खलु सामी ! सेणिएणं रन्ना जीवन्तेणं चैव सेयणए गन्धहत्थी अट्ठारसबंके य हारे दिन्ने, तं जइ णं सामी ! तुब्भे ममं रज्जस्स य जणवयस्स य अद्धं दलइ तो णं अहं तुब्भं सेयणगं गन्धहत्थि अट्ठारसबंके च हारं य दल-यामि ।

तएणं से कूणिए राया वेहल्लस्स कुमारस्स एयमट्ठं नो आढाइ, नो परिजाणइ, अभिवखणं-अभिवखणं सेयणगं गन्धहत्थि अट्ठारसबंके च हारं जायइ ॥६२॥

छाया—ततः खलु स वेहल्लः कुमारः कूणिकं राजनमेवमवादीत्—एवं खलु स्वामिन् ! भो जि-केन राज्ञा जीवता चैव सेचनको गन्धहस्ती अष्टादशवक्त्रश्च हारो दत्तः, तद् यदि खलु स्वामिन् ! यूयं भूयः राज्यस्य च यावत् जनपदस्य च अर्धं दत्तं तदा खल्वहं युष्मभ्यं सेचनकं गन्धहस्तिनम् अष्टादशवक्त्रं च हारं ददामि ।

ततः खलु स कूणिको राजा वेहल्लस्य कुमारस्य एतमर्थं नो आद्रियते, नो परिजानाति, अभीक्ष्णं-अभीक्ष्णं गन्धहस्तिनम् अष्टादशवक्त्रं च हारं याचते ॥६२॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से वेहल्ले कुमारे—वह वेहल्ल कुमार, कूणियं रायं एवं वयासी—कोणिक राजा को इस प्रकार बोला, एवं खलु सामी—हे स्वामी इस प्रकार निश्चय ही, सेणिएणं रत्ना—राजा श्रेणिक ने, जीवतेणं चेव—जीवित अवस्था में ही मुझे, सेयणए गंधहस्ती—सेचनक गन्धहस्ती (और), अट्टारसबंकं य हारे दिन्ने—अठारह लड़ियों वाला हार दिया था, तं जइ णं सामी—इसलिये हे स्वामी यदि, तुब्भे—आप, ममं रज्जस्स—मुझे राज्य का, य—और, जणवयस्स य—जनपद का, अद्धं दलइ—आधा भाग दें, तो णं अहं—तो मैं, तुब्भं—आपको, सेयणयं गंधहस्ती—सेचनक गन्धहस्ती, च—और, अट्टारसबंकं च हारं—अठारह लड़ियों वाला हार, दलयामि—दे देता हूँ।

तएणं—तत्पश्चात्, से कूणिए राया—वह कोणिक राजा, वेहल्लस्स—वेहल्ल कुमार के, एतमद्धं—इस अर्थ (बात) को सुन कर, नो आढाइ—न तो उसकी बात को आदर देता है, नो परिजाणइ—न उसकी बात मानता है, अभिक्खणं—अभिक्खणं—बार-बार, सेयणयं गंधहस्ती—सेचनक गन्धहस्ती, अट्टारसबंकं हारं—अठारह लड़ियों वाला हार, जायइ—मांगता है।

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस वेहल्ल कुमार ने कोणिक राजा को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार कहा—“हे स्वामी ! निश्चय ही मुझे राजा श्रेणिक ने अपने जीवन-काल में सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ियों वाला हार दिया था, (अगर आप इन्हें पाना ही चाहते हैं तो) हे स्वामी ! आप मुझे राज्य का और जनपद का आधा-आधा भाग दे दें, तो मैं आपको सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ियों वाला हार दे सकता हूँ।

तत्पश्चात् राजा कोणिक वेहल्ल कुमार की बात को आदर सम्मान न देता हुआ सेचनक गंधहस्ती व अठारह लड़ियों वाले हार की पुनः-पुनः याचना करता है।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में वेहल्ल कुमार की प्रतिक्रिया व्यक्त की गई है। जब वेहल्ल कुमार से राजा कोणिक ने सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ियों वाला हार मांगा तो वेहल्ल कुमार ने उत्तर दिया—हे स्वामी ! ये दोनों वस्तुएं पिता श्री ने मुझे अपने जीवन-काल में ही दे दी थीं। इस प्रकार इन वस्तुओं पर मेरा ही अधिकार है। अगर आप इन वस्तुओं को लेना ही चाहते हैं तो मुझे राज्य व जनपद का आधा भाग प्रदान करें, तभी आप ये वस्तुएँ ले सकते हैं, अन्यथा नहीं।

वेहल्ल कुमार का उत्तर न्याय-संगत था, परन्तु कोणिक अपनी पटरानी की इच्छा-पूर्ति के विरुद्ध कुछ भी सुनने को तैयार नहीं था।

वेहल्ल कुमार के कथन का कोणिक पर कोई प्रभाव न पड़ा। वह अपनी बात पर अडिग रहा।

प्रस्तुत सूत्र में कोणिक के राज-हठ व स्त्री सम्बन्धी आकर्षण का सूत्रकार ने सुन्दर चित्रण किया है।

मूल—तएणं तस्स वेहल्लस्स कुमारस्स कूणिएणं रत्ना अभिवखणं-
अभिवखणं सेयणगं गंधहत्थि अट्ठारसबकं च हारं जाएमाणस्स समाणस्स
अयमेयारूवे अज्झत्थिए ४ समुप्पज्जित्था एवं खलु अक्खिविउकामे णं
णिण्हउकामे णं उद्दालेउकामे णं ममं कूणिए सेयणगं गंधहत्थि अट्ठारस-
बकं च हारं तं जाव ममं कूणियं राया (नो जाणइ) ताव (सेयं मे) सेयणगं
गंधहत्थि अट्ठारसबकं च हारं गहाय अंतेउरपरियालसंपरिवुडस्स सभंड-
मत्तोवगरणमायाए चंपाओ नयरीओ पडिनिवखमइ, पडिनिवखमिता
वेसालीए नयरीए अज्जगं चेडयरायं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। एवं
संपेहेइ, संपेहिता कूणियस्स रत्नो अंतराणि जाव पडिजागरमाणे-पडि-
जागरमाणे विहरइ ॥६३॥

छाया—ततः खलु तस्य वेहल्लस्य कुमारस्य कूणिकेन राज्ञा अभीक्ष्णं-अभीक्ष्णं सेचनकं गन्ध-
हस्तिनम् अट्ठादशवक्कं च हारं याचय माणस्य अयं एतद्रूपः अध्यात्मिकः ४ समुत्पन्नः, एवं
खलु आक्षेप्तुकामः खलु, ग्रहीतुकामः खलु आच्छेत्तुकामः खलु मां कूणिको राजा सेचनकं गन्ध-
हस्तिनम् अट्ठादशवक्कं च हारम् तद् यावन्मां कूणिको राजा [नो जानाति] तावत् [श्रेयो मम]
सेचनकं गन्धहस्तिनम् अट्ठादशवक्कं च हारं गृहीत्वान्तःपुरपरिवारसंपरिवृतस्य सभाण्डमत्रोप-
करणमावाय चम्पाया नगर्याः प्रतिनिष्क्रम्य देशात्यां नगर्यामार्यकं चेटकराजमुपसम्पद्य विहर्तुम्।
एवं संप्रेक्ष्य कूणिकस्य राज्ञोऽन्तराणि यावत् प्रतिजाप्रत्-प्रतिजाग्रत् विहरति ॥६३॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, तस्स वेहल्लस्स कुमारस्स—उस वेहल्ल कुमार के,
कूणिएणं रत्ना—कूणिक राजा के द्वारा, अभिवखणं-अभिवखणं—वारम्बार, सेयणगं गंधहत्थि—
सेचनक गंधहस्ती की ओर, अट्ठारसबकं च हारं—अठारह लड़ियों के हार को, जाएमाणस्स—
मांगते हुए, अयमेयारूवे—इस प्रकार का, अज्झत्थिए—आध्यात्मिक (आन्तरिक भाव),
समुप्पज्जित्था—उत्पन्न हुआ, एवं—इस प्रकार, अक्खिविउकामे णं—झूठा दोष लगाने वाला होने
से, णिण्हउकामे णं—ग्रहण करने की इच्छा होने से, उद्दालेउ कामे णं—बलात्कारी की तरह इच्छा
रखने वाला होने से, ममं कूणिए राया—मुझ से कूणिक राजा, सेयणगं गंधहत्थि सेचनक
गन्धहस्ती, अट्ठारसबकं च हारं—अठारह लड़ियों वाला हार, गहाय—ग्रहण कर, अंतेउरपरियाल
संपरिवुडस्स—अन्तःपुर एवं परिवार (दास-दासियों) से घिरा हुआ, सभंडमत्तोवगरणमायाए—
अपने मण्डोपकरण लेकर, चंपाओ नयरीओ—चम्पा नगरी से, पडिनिवखमइ—बाहर निकलता

है और, पडिनिक्खमिन्ता निकल कर, वेसालीए नयरीए—वैशाली नगरी में, अज्जगं चेडयरायं—आर्य चेटक राजा के, उधसंपज्जि ताणं—पास पहुंच करके, विहरिस्सए—विचारण करूं, एवम—इस प्रकार, संपेहेइ संपेहिता—विचार करता है और विचार करके, कूणियस्स रन्तो—कूणिक राजा के, अंतराणि—अन्तर (कमियों) को, जाव—यावत्, पडिजागरनमाणे—पडिजागरमाणे विहरइ—देखता हुआ विचरता है ॥६३॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस वेहल्ल कुमार ने राजा कूणिक के द्वारा बारम्बार सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ियों वाले हार के छीनने के भाव को देखकर उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इन वस्तुओं के ग्रहण करने का कामी होने से, छीनने का कामी होने से, मुझे यह उचित है कि मैं सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ियों वाला हार लेकरके, अन्तःपुर से घिरा हुआ, अपने भाण्डोपकरण आदि लेकर, चम्पा-नगरी से निकलूं और वैशाली नगरी में आर्य चेटक (नाना) के पास चला जाऊं।

वह इस प्रकार विचार करता है और विचार करके राजा कूणिक के अन्तर अर्थात् छिद्रों को देखता हुआ विचरता है।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में वेहल्ल कुमार की सेचनक गंधहस्ती व अठारह लड़ियों वाले हार से प्रति रक्षा की चिन्ता का वर्णन है। वेहल्ल कुमार को राजा कूणिक की शक्ति का अनुभव है, इस लिए वह सोचता है कि चम्पा में रहते हुए मैं इन वस्तुओं की रक्षा नहीं कर सकता। मेरे लिए सपरिवार चम्पा नगरी को त्याग कर वैशाली में अपने नाना आर्य चेटक के पास जाना ठीक रहेगा।

मनुष्य वहीं जाता है जहां उसके धन-धान्य व परिवार की रक्षा हो सके। इससे वेहल्ल की अपने परिवार के प्रति सहज चिन्ता प्रतिध्वनित होती है। हर गृहस्थ को अपने परिवार की रक्षा के मामले में इसी तरह रक्षा की चिन्ता करनी चाहिए।

इस सूत्र से यह भी ध्वनित होता है कि जिस देश में अपने धन-धान्य की रक्षा न होती हो, राजा प्रजा की अभिलाषाओं से अनभिज्ञ हो, वह देश त्याग देना ही उपयुक्त है। वेहल्ल कुमार ऐसे अवसर की तलाश करने लगा कि कब अच्छा अवसर आये और कब वह चम्पा को छोड़ कर, अपने नाना चेटक के पास चला जाये।

प्रस्तुत सूत्र से सिद्ध होता है राजा कूणिक स्वयं गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाला हार नहीं चाहता था, न ही वह अपने आद्यों से युद्ध करना चाहता था, परन्तु प्राचीन काल से त्रिया-हठ की हजारों कथायें भारतीय इतिहास में मिलती हैं। इस त्रिया-हठ के कारण ही मर्यादा पुरुषोत्तम

को राज्य की जगह वनवास मिला । पद्मावती देवी का त्रिया-दूठ रथ-मुसल-संग्राम का कारण बना ।

राजा कोणिक पद्मावती पर पूर्ण रूप से आसक्त था, इसी कारण वह अपनी रानी की बात को टाल न सका । उसने अपनी रानी के कहने पर अपने भाइयों से दोनों वस्तुओं को ले लेने का निश्चय कर लिया ।

मूल—तएणं से वेहल्ले कुमारे अन्नया कयाइं कूणियस्स रन्नो अंतरं जाणइ जाणित्ता, सेयणमं गंधर्हत्थि अट्ठारसबंकं च हारं गहाय अंतेउर-परियालसंपरिवुडे सभंडमत्तोवगरणमायाए चंपाओ नयरीओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव वेसाली नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वेसालीए नयरीए अज्जगं चेडयं रायं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ ॥६४॥

छाया—ततः खलु स वेहल्लः कुमारः अन्यथा कदाचित् कूणिकस्य राज्ञोऽन्तरं जानाति, ज्ञात्वा सेचनकं गन्धहस्तिनमष्टादशवक्त्रं च हारं गृहीत्वा अन्तःपुरपरिवारसंपरिवृतः सभाण्डमत्रोपकरण-मादाय चम्पातो नगरीतः प्रतिनिष्क्रमति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव वैशाली नगरी तत्रैवोपागच्छति, उपा-गत्य वैशाल्यां नगर्यामार्यकं चेटकमुपसंरक्ष्य विहरति ॥ ६४ ॥

पदार्थान्वय.—तएणं—तत्पश्चात्, से वेहल्ले कुमारे—वह वेहल्ल कुमार, अन्नया कयाइ—किसी अन्य समय, कूणिकस्य राज्ञे—राजा कूणिक के, अन्तरं जाणइ—आन्तरिक अर्थात् मानसिक आशय को समझ जाता है, जाणित्ता—और जान कर, सेयणमं गन्धर्हत्थि—सेचनक गन्ध हस्ती, अट्ठारस बंकं च हारं—(और) अठारह लड़ियों वाले हार को, गहाय—लेकर, अंतेउर-परियाल-संपरिवुडे—अपनी रानियों और खज्ज-रत्नादि तथा अपने समस्त कोष तथा दास-दासी आदि सेवक वर्ग को साथ लेकर, (तथा) सभाण्डमत्रोपकरणम्—वर्तन आदि घरेलू सामग्रियों को, गहाय—साथ लेकर, चम्पाओ नयरीओ—चम्पा नामक नगरी से, पडिनिक्खमइ—बाहर निकल जाता है, पडिनिक्खमित्ता—और बाहर निकल कर, जेणेव वेसाली नयरी—जिधर वैशाली नगरी की, तेणेव—उधर हा, उवागच्छइ—चल पड़ता है, उवागच्छित्ता—और चल कर, वेसालीए नयरीए—वैशाली नगरा में, अज्जगं चेडयं—(अपने नाना) आर्य चेटक के, उवसंपज्जित्ता—पास पहुँच कर, णं विहरइ—अपना जीवन-यापन करने लगता है ॥६४॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वेहल्ल कुमार जब किसी समय राजा कूणिक के आन्तरिक आशय को जान जाता है और जानकर सेचनक गन्ध हस्ती और अठारह लड़ियों वाला

हार तथा अपनी रानियों, खड्ग आदि हथियारों, दास-दासियों और रत्न आदि को और गृहोपयोगी समस्त बर्तन आदि लेकर (उपयुक्त अवसर पाते ही) चम्पा नगरी से बाहर निकल जाता है और बाहर निकल कर जिधर वैशाली नगरी थी उधर ही चल पड़ता है और चल कर वैशाली नगरी में जहाँ उसके नाना आर्य चेटक थे उनके पास पहुँचकर अपना जीवन व्यतीत करने लगता है ॥६४॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र से ध्वनित होता है कि मनुष्य को जहाँ कोई व्यक्ति अपना शत्रु जान पड़े और जहाँ अपने को असुरक्षित समझे वहाँ से उसे चल देना चाहिये और किसी ऐसे सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाना चाहिये जहाँ वह निर्भय होकर जीवन व्यतीत कर सके ।

मनुष्य को यथासम्भव ऐसे व्यक्ति के पास जाना चाहिये जो विश्वस्त हो, सबल हो और समय आने पर कुछ सहायता भी कर सके । अतः वेहल्ल कुमार अपने नाना के पास पहुँचा था जो सशक्त राजा थे ॥६४॥

मूल—तएणं से कूणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाने—एव खलु वेहल्ले कुमारे मम असंविदितेणं सेयणं गंधहत्थि अट्ठारसबकं च हारं गहाय अंतोउरपरियालसंपि वुडे जाव अज्जयं चेडयं रायं उवसंपज्जिता णं विहरइ, तं सेयं खलु मम सेयणं गंधहत्थि अट्ठारसबकं च हारं आणेउं दूयं पेसित्तए । एवं संपेहेइ, संपेहित्ता दूयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-
“गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! वेसांलि नयारि, तत्थ णं तुमं मम अज्जं चेडयं रायं करतलं वद्धावेत्ता एवं वयाहि—एवं खलु सामी ! कूणिए राया विग्नवेइ—एस णं वेहल्ले कुमारे कूणियस्स रन्तो असंविदितेणं सेयणं गंधहत्थि अट्ठारसबकं च हारं गहाय इह हव्वमागए, तए णं तुम्हे सामी ! कूणियं रायं अणुगिण्हमाणा सेयणं गंधहत्थि अट्ठारसबकं च हारं कूणियस्स रन्तो पच्चप्पिणह, वेहल्लं कुमारं च पेसेह ॥६५॥

छाया—ततः खलु स कूणिको राजा अस्याः कथाया लब्धार्थः शन्रु 'एवं खलु वेहल्लः कुमारे मम असंविदितेन सेयनकं गन्धहस्तिनमट्ठावशकं च हारं गृहीत्वा अन्तःपुरपरिवारसंपरिवृतो यावद् आर्यकं राजानमुपसंपद्य खलु विहरति, तच्छ्रुया खलु मम सेयनकं गन्धहस्तिनमट्ठावशकं च हारम्

अनेतुं दूत प्रेषायितुम् । एवं संप्रेषते, संप्रेक्ष्य दूतं शब्दयति, शब्दयित्वा एवम्वादीत्—गच्छ खलु त्वं देवाणाम्प्रिय ! वैशालीं नगरीं, तत्र खलु त्वं मम आर्यं चेटकं राजानं करतलं वर्द्धयित्वा एवं वद—‘एवं खलु स्वामिन् ! कूणिको राजा विज्ञापयति—एवं खलु वेहल्लः कुमारः कूणिकस्य राज्ञः असंबिदितेन सेचनकं गन्धहस्तिनमष्टादशवक्त्रं च हारं गृहीत्वा इह हव्यमागतः, ततः खलु यूयं स्वामिन् ! कूणिकं राजानमनुगृह्णन्तः सेचनकं गन्धहस्तिनमष्टादशवक्त्रं च हारं कूणिकस्य राज्ञः प्रत्यर्पयत, वेहल्ल्यं कुमारं च प्रषयत ॥६५॥

पटाश्विन्य—तएणं—तत्पश्चात्, सेकूणिए राया—वह कोणिक राजा, इमोसे कहाए लद्धट्टे समाणे—इस चर्चा के लब्धार्थ होने पर, एवं खलु—निश्चय ही इस प्रकार, वेहल्ले कुमार—वेहल्ल कुमार, ममं—मुझे, असंबिदितेण—बिना बताये ही, सेयणमं गन्ध हस्ति अट्ठारसबकं च हारं सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़िया वाले हार को, गहाय—ग्रहण करके, अंतेउर-परियालसंपरिवुडे—अन्तःपुर के परिवार से घिरा हुआ, जाव—यावत्, अज्जयं चेडयं रायं—नाना आर्य चेटक राजा को, उवसंपज्जित्ताण—शरण ग्रहण करता हुआ, विहरइ—विचरता है, तं सेयं खलु—तो निश्चय ही यही श्रेष्ठ है, ममं सेयणमं गन्धहस्ति—मेरे सेचनक गन्धहस्ती को, च—और, अट्ठारसबकं च हारं—अठारह लड़ियों वाले रत्न हार को वापिस मंगवाने के लिये, दूयं पेसत्तए—दूत भेजना चाहिये, एवं सपेहेइ, सपेहिता—इस प्रकार विचारता है और विचार कर, दूयं सदावेइ, सदावेइत्ता—दूत को बुलाता है और बुलाकर, एवं वयासी—इस प्रकार बोला, गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया—हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ, वेसांलि नयर्णि—वैशाली नगरी को, तत्थ णं—वहां पर, तुमं अज्जं चेडयं रायं—तुम मेरे नाना आर्य चेटक को, करयल वद्धावेत्ता—दोनों हाथ जोड़कर और वधाई देकर, एवं वयासी—इस प्रकार कहना, एवं खलु सामी—हे स्वामी निश्चय ही इस प्रकार, कूणियस्स राया विन्नवेइ—कोणिक राजा विनती करता है कि, एस णं वेहल्ले कुमार—यह वेहल्ल कुमार, कूणियस्स रन्नो—कूणिक राजा को, असंबिदितेण—बिना बताये ही, सेयणगन्धहस्ति अट्ठारसबकं च हारं—सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ियों वाले हार को, गहाय—ग्रहण करके, हव्वामागए—शीघ्र ही यहां आ गया है, तएणं—तो, तुमं सामी—हे स्वामी प्राप, कूणियं रायं राजा कूणिक को, अणुगिग्गमाणा—उस पर अनुग्रह (कृपा) करते हुए, अट्ठारसबकं च हारं—सेचनक गन्धहस्ती को और अठारह लड़ियों के हार को, कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणह—कोणिक राजा को वापिस कर दो, च—और, वेहल्लं कुमारं च पेसह—वेहल्ल कुमार को वापिस भेज दो ॥६५॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् राजा कोणिक को जब यह समाचार ज्ञात हुआ तो उसने विचार किया—इस प्रकार निश्चय ही वेहल्ल कुमार मुझे बिना बताये सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों के हार को लेकर अन्तःपुर के परिवार से घिरा हुआ यावत्

अपने नाना चेटक राजा की शरण ग्रहण करता हुआ विचरता है . मुझे निश्चय ही अब यही उचित है कि सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाले हार को प्राप्त करने के लिए दूत भेजना चाहिए ।

(वह कौणिक) ऐसा विचार करता है, विचार करने के बाद दूत को बुला कर इस प्रकार आज्ञा देता है— “हे देवानुप्रिय ! तुम वैशाली नगरी में जाओ, वहाँ मेरे नाना आर्य चेटक को दोनों हाथ जोड़ कर वधाई देते हुए, इस प्रकार कहना “निश्चय ही कूणिक राजा प्रार्थना करता है कि वेहल्ल कुमार कौणिक राजा को बिना सूचित किये सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाले वक्र हार को ग्रहण करके, शीघ्र ही यहाँ आगया है । हे स्वामी ! आप कूणिक राजा पर अनुग्रह करते हुए सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाला हार राजा कूणिक को वापिस लौटा दें । (इसके साथ) वेहल्ल कुमार को भी वापिस भेज दें ॥६५॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में राजा कौणिक द्वारा अपने नाना राजा चेटक के पास दूत भेजने का वर्णन है । प्राचीन काल से ही दूत का काफी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है । राज कौणिक दूत को बुलाकर समझाता है कि तुम मेरे नाना चेटक के यहाँ वैशाली जाओ । उनसे विनयपूर्वक सेचनक गन्धहस्ती, अठारह लड़ियों वाला रत्न हार और वेहल्ल कुमार की मांग करो । सूत्रकर्त्ता ने यहाँ करयल वद्धावेत्ता पद-प्रयुक्त किया है । यह समग्र सूत्र इस प्रकार जानना चाहिये करयल परिग्रहिया वुसन्हं सरसावत्तं मत्थए अज्जलं कट्ठं जएणं विजएणं वद्धावेइ वद्धावेइत्ता एवं वयासी—अर्थात् शिरसा मस्तकेन प्राप्तम्—स्पृष्टं शिरसि वा आवर्तः इति शिरस्यावर्त्तोऽतस्य । जएणं विजएणं वद्धावेत्ति त्ति जयः—सामर्थ्यो विनयादि विषयो विजयः—स एव विशिष्टतरः प्रचण्ड प्रतिपत्त्यादि विषयः वर्धयति जयते विजयते च वद्धस्व त्वमिदमित्येवमाशिषं प्रयुक्तेस्मेत्स्वर्यः—इसका भाव इस प्रकार है कि दोनों हाथ करवद्ध कर शिर से स्पर्श न करता हुआ, आवर्तन के साथ जय विजय के शब्दों से वधाई देता है । क्योंकि जय शब्द सामान्य विजयों का नाश करने के अर्थ में आता है । विजय प्रचण्ड शत्रुओं पर विजय के स्वर में कहता है । अर्थात् हे स्वामी ! आपकी जय-विजय में बढ़ावा हो, यह आशीर्वाचन है ।

अणुगिण्हयाणं का अर्थ विनयपूर्वक है।

असविदितेन का अर्थ विनय-पूर्वक सूचना है ॥६५॥

मूल—तए णं से दूए कूणिण्णं० करतस० जाव पडिसुणित्ता जेणेव
सए निहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जहा चित्ते जाव वद्धावित्ता

एवं वयासी—एवं खलु सामी ! कूणिए राया विन्नवेइ—एस णं वेहल्ले
कुमारे तहेव भाणियव्वां जाव वेहल्लं कुमारं च पेसेह ॥६६॥

छाया—ततः खलु स दूतः कूणिकेन० कश्चिद० यावत् प्रतिश्रुत्य यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैवो-
पागच्छति, उपागत्य यथा चित्तो यावद् वदंयित्वा एवमवादीत् एवं खलु स्वामिन् ! कूणिको राजा
विज्ञापयति—एवं खलु वेहल्लः कुमारस्तत्रैव भणितव्यं यावद् वेहल्लं कुमारं प्रेषयत ॥६६॥

परार्थावयः—तएणं—तत्पश्चात्, से दूए—वह दूत, कूणिएणं करयल० जाव पडिसुणिता—
कोणिक राजा के समीप दोनों हाथ जोड़कर यावत् उसके कथन को सुन कर, जेणेव सएगहे—जहां
उसका अपना निवास था, तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता—वहां पर आया और आकर यावत्,
जहा चित्तो—जैसे चित्त सारथी ने किया था, जाव—यावत्, बद्धावित्ता—बधाई देकर, एवं वयासी—
इस प्रकार बोला, एवं खलु सामी—इस प्रकार निश्चय ही हे स्वामी, कोणिए राया विन्नवेइ—राजा
कोणिक निवेदन करता है, एस णं वेहल्ले कुमारे—यह वेहल्ल कुमार के सम्बन्ध में, तहेव भाणियव्वां—
इस प्रकार से कहना, जाव—यावत्, वेहल्लं कुमारं पेसह—वेहल्ल कुमार को (मेरे पास) भेज दे ।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह दूत कोणिक राजा के समीप दोनों हाथ जोड़ कर यावत्
उस (कोणिक) के कथन को सुनता है और सुनकर, जहां उसका गृह था, वहां आता
है। वहां से चल कर चित्त सारथी की तरह, (वैशाली पहुंचा और वहां) बधाई देकर
(वैशाली नरेश राजा चेटक से) इस प्रकार बोला—“हे स्वामी निश्चय ही राजा
कोणिक (मेरे स्वामी) ने निवेदन किया है कि आप वेहल्ल कुमार को यावत् सेचनक
हाथी, अठारह लड़ियों वाला हार वापिस भेज दो ॥६६॥

टीका—तब दूत ने कोणिक राजा की बात ध्यान से सुनी तो दूत तैयार होकर, चित्त सारथी
की तरह वैशाली नगरी में राजा चेटक के दरबार में पहुंचा। दूत ने राजा कोणिक के मन की
इच्छा महाराजा चेटक को बताई। सारथी के लिये “जहा चित्तो” पद आया है वृत्तिकार ने इसकी
व्याख्या इस प्रकार की है ।

‘जहाचित्तो’ ति राजप्रशनीये द्वितीयोपाङ्गे यथा श्वेताम्बु नगर्यामिच्छतो नाम दूतः प्रदेशराजा
प्रेषितः, आवस्त्यां नगर्यां जितशत्रु समीपे स्वगृहान्निर्गत्य गतः तथाऽयमपि । कोणिक नामको राजा यथा
एवं वेहल्ल कुमारोऽपि ।

अर्थात् जैसे राय प्रशनीय उपांग में राजा प्रदेशी द्वारा श्वेताम्बिका नगरी से जितशत्रु के पास

श्रावस्ती नगरी में दूत भेजने का वर्णन है यहां वही वर्णन जानना चाहिये ।

इस सूत्र में दूत की विनम्रता, आज्ञा-पालन स्वामी भक्ति व कर्तव्य-परायणता का अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है । दूत वही कहता है जो कोणिक राजा ने आदेश दिया था, दूत की तैयारी के लिये चित्तसारथी का प्रकरण यहां दोहराया गया है ॥६६॥

मूल—तए णं से चेडए राया तं दूयं एवं वयासी—जह चेव णं देवाणु-
प्पिया ! कूणिए राया सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए ममं
नत्तुए तहेव णं वेहल्ले वि कुमारे सेणियस्स रन्नो पुत्ते, चेल्लणाए देवीए
अत्तए मम नत्तुए, सेणिएणं रन्ना जीवांतेणं चेव वेहल्लस्स कुमारस्स
सेयणगे गंधहत्थि अट्ठारसबंके हारे पुव्वदिन्ने, तं जइ णं कूणिए राया
वेहल्लस्स रज्जस्स य रट्ठस्स य जणवयस्स य अद्धं दलयइ तो णं सेयणयं
गंधहत्थि अट्ठारसबंके च हारं कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणामि, वेहल्लं
च कुमारं पेसेमि । तं दूयं सत्तकरोइ संमाणेइ पडिविसज्जेइ ॥६७॥

छाया—ततः खलु स चेटको राजा तं दूतमेवमवादीत् यथैव खलु देवानुप्रिय ! कूणिको राजा
श्रेणिकस्य राज्ञः पुत्रः, चेल्लनायाः देव्या आत्मजः मम नप्तकः, तथैव खलु वेहल्लोऽपि राज्ञः पुत्रः,
चेल्लनाया देव्या आत्मजो, मम नप्तकः । श्रेणिकेन राज्ञा जीवता चैव वेहल्लाया कुमाराय सेचनको
गन्धहस्ती अष्टादशवक्रो हारः पूर्वदिस्तः, तद् यदि खलु कूणिको राजा वेहल्लाया राज्यस्य च राष्ट्रस्य
च जनपदस्य चाद्धं ददाति तदा खलु सेचनकं गन्धहस्तिनम् अष्टादशवक्रं च हारं कूणिकाय राज्ञे
प्रत्यर्पयामि, वेहल्लं च कुमारं प्रेषयामि । तं दूतं सत्करोति सम्मानयति प्रतिविसर्जयति ॥६७॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से चेडए राया—वह चेटक राजा, तं दूयं—उस दूत को,
एवं वयासी—इस प्रकार बोला, जह चेव णं देवाणुप्पिया—जैसे कि हे देवानुप्रिय जिस प्रकार, कूणिए
राया सेणियस्स रन्नो पुत्ते—कोणिक राजा, श्रेणिक राजा का पुत्र है, चेल्लणाए देवीए अत्तए—चेलना
रानीका आत्मज है, ममं नत्तुए—मेरा नाती (दोहता) है, तहेव णं—वैसे ही, वेहल्ले वि कुमारे—
वेहल्ल कुमार भी, सेणियस्स रन्नो पुत्ते—श्रेणिक राजा का पुत्र है, चेल्लणाए देवीए अत्ता—चेलना देवी
का आत्मज है, मम नत्तुए—और मेरा दोहता है । सेणिएणं रन्नो—श्रेणिक राजा ने, जीवांतेणं चेव—
अपने जीवन-काल में ही, वेहल्लस्स कुमारस्स—वेहल्ल कुमार को, सेयणगे गंधहत्थी—सेचनक गन्ध-
हस्ती, अट्ठारसबंके य हारे पुव्वदिन्ने—अठारह लड़ियों वाला वक्र हार पहले दिया था, तं जइ णं—

तो यदि, कृणिए राया—कोणिक राजा, वेहल्लस्स—वेहल्ल कुमार को, रज्जस्स य रट्टस्स य जणव-
यस्सय—राज्य, राष्ट्र और जनपद का, अद्धं दलयइ—आधा भाग दे दे, तो णं अहं—तो मैं, सेयणं
गन्धहत्थि अट्टारसबंकरं हारं च—सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाला वक्र हार, कृणियस्स
रत्तो पच्चणिणामि—कोणिक राजा को लौटा सकता हूं, वेहल्लं च कुमारं—और वेहल्ल कुमार को
भी, पेसेमि—भेजता हूं। ऐसा कह कर, तं दूयं—उस दूत को, सब्बकारेइ संमाणेइ—सत्कार व
सम्मान देता है और, पडिविसज्जेइ—विसर्जन (विदा) करता है ॥६७॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह राजा चेटक उस दूत को इस प्रकार कहने लगा “हे
देवानुप्रिय ! जिस प्रकार राजा कोणिक, राजा श्रेणिक का पुत्र, महारानी चेलना का
आत्मज और मेरा दोहता है उसी तरह वेहल्ल कुमार भी श्रेणिक राजा का पुत्र व रानी
चेलना का आत्मज है और मेरा दोहता है। श्रेणिक राजा ने अपने जीवन-काल में ही
वेहल्ल कुमार को सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाला वक्र हार प्रदान किया था।
अगर राजा कोणिक इन दोनों वस्तुओं को प्राप्त करना चाहता है तो वह वेहल्ल कुमार
को आधा राज्य राष्ट्र और जनपद प्रदान करे। ऐसा करने पर कोणिक को सेचनक
गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाला वक्र हार मैं वापिस कर दूंगा। इसके साथ वेहल्ल
कुमार को भी वापिस भेज दूंगा। इस कथन के बाद वह दूत का सम्मान करता है,
सत्कार करता है और दूत को विसर्जित (वापिस) भेजता है।

टीका—जब दूत ने वैशाली गणराज्य के राजा चेटक से सेचनक हाथी व अठारह लड़ियों
वाला हार और वेहल्ल कुमार की वापसी के बारे में अपने स्वामी राजा कोणिक का संदेश दिया
तो राजा चेटक ने अपनी न्याय-प्रियता, सज्जनता, निडरता का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए, स्पष्ट
वादिता का सहारा लिया। राजा चेटक ने परम्परागत ढंग से दूत सम्बन्धी सभी कर्तव्यों का
पालन किया, दूत का मान-सम्मान भी किया। साथ में यह भी कहलाकर भेजा कि अगर राजा
कोणिक इच्छित वस्तुएं व वेहल्ल कुमार की वापसी चाहता है तो वह अपना आधा राज्य वेहल्ल
कुमार को प्रदान कर दे। वस्तु वही लौटाई जाती है जो दी जाये। जो वस्तु दी ही नहीं गई उसे
वापिस मांगना निरर्थक है। फिर वेहल्ल कुमार ने अपने नाना के यहां इसी लिये शरण ग्रहण की थी
क्योंकि वह जानता था कि मेरे नाना न्याय-प्रिय आदर्शवादी व सत्यवादी राजा हैं। ऐसे गुण व
शक्ति-सम्पन्न राजा की शरण हर ढंग से कल्याणकारी है।

दूत के वेहल्ल कुमार व सेचनक गन्धहस्ती अठारह लड़ियों वाला हार मांगने पर राजा
चेटक ने अपनी न्याय-प्रियता का प्रमाण देते हुए कहा कि मेरे लिये कोणिक और वेहल्ल कुमार

में कोई रिश्ते का का भेद नहीं है। शक्ति के सहारे मैं ये वस्तुएं वापिस नहीं कर सकता। अगर राजा कोणिक अपने राज्य का आधा भाग वेहल्ल कुमार को प्रदान करे तभी यह सब सम्भव है।

प्रस्तुत सूत्र से ये भी पता चलता है कि राजा चेटक के समय राजा श्रेणिक मर चुका था। शास्त्रकार ने स्पष्ट कहलवाया है कि दोनों वस्तुएं राजा श्रेणिक ने वेहल्ल कुमार को अपने जीवन-काल में ही दी थीं। इसलिये इन वस्तुओं की मांग बेकार है। पर उपयुक्त उत्तर राजा कोणिक की भावना के विपरीत था क्योंकि राजा कोणिक तो लोभ में फंसा होने के कारण अपने पराये की पहचान ही खो बैठा था ॥६७॥

उत्थानिका—इसी विषय में आगे क्या हुआ सो कहते हैं—

मूल—तए णं से दूए चेडएणं रन्ना पडिविसज्जिए समाने जेणेव चाउगघंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउगघंटे आसरहं दूरुहइ, दूरुहत्ता वेसांलि नगरि मज्झं—मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता सुहेहि वसहिपायरासेहि जाव वद्धावित्ता एवं वयासी—एवं खलु सामी ! चेडए राया आणवेइ—जह चेव णं कूणिए राया सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए मम नत्तुए, तं चेव भाणियव्वं जाव वेहल्लं च कुमारं पेसेमि । तं न देइ सामी ! चेडए राया सेयणगं गंधहत्तिथ अट्ठारसबं कं च हारं, वेहल्लं नो पेसेइ ॥६८॥

छाया—तत्त खलु स दूतः चेटकेन राज्ञा प्रतिविसर्जितः सन् यत्रैव चतुर्घण्टः अश्वरथस्तत्रैवोपागच्छति, उवागत्य चतुर्घण्टमश्वरथं दूरुहति, दूरुह्य वेशालीं नगरीं मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य शुभेवंसतिप्रातराशौचविद् वर्धयित्वा एवमवादीत् एवं खलु स्वामिन् ! चेटको राजा आज्ञापयति—यथैव खलु कूणिको राजा श्रेणिकस्य राज्ञ पुत्रः, चेल्लनाया देव्या आत्मजः मम नप्तकः, तदेवं भाणितव्यं यावद् वेहल्लं च कुमारं प्रेषयामि । तत्र ददाति खलु स्वामिन् ! चेटको राजा सेचनकं मग्धहस्तिनम् अष्टादशवक्त्रं च हारं वेहल्लं च नो प्रेषयति ॥६८॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से दूए—वह दूत, चेडएणं रन्ना पडिविसज्जिए समाने—राजा चेटक द्वारा विसर्जित होने पर, जेणेव चाउगघंटे आसरहे—जहां पर चार घण्टों वाला अपना अश्वरथ था अर्थात् जिस अश्व-रथ के चारों ओर घंटे बांधे हुए थे, तेणेव—वहां पर, उवागच्छइ—

आता है, उवागच्छिता—आकर, चाउगघण्टं आसरहं दुरुहइ—उस चार घंटों वाले अश्व-रथ पर आरुढ़ होकर, वेसानि नगरि—वैशाली नगरी के, मञ्जमज्जेणं—बीचों-बीच होता हुआ, निगच्छइ—जाता है, निगच्छिता—आकर, सुभेहि वसहीहि—मागं में अच्छे ठिकानों में विश्राम करता हुआ, पायरासेहि—प्रातःकालीन जलपान करके, जाव वद्धावित्ता एवं वयासी—यावत् वधाई देकर, इस प्रकार बोला, एवं छलु सामी—हे स्वामी निश्चय ही, चेडय राया आणवेइ—चेटक राजा इस प्रकार कहता है, जह चेव गं कूणिए राया—जंमे कोणिक राजा, सेणियस्स रओ पुत्ते—श्रेणिक राजा का पुत्र, चेलणाए देवाए अत्तए—चेलना देवी का आत्मज है, मम नुत्तए—मेरा दोहता है, तं चेव भाणियव्वं—इस प्रकार से कहना, जाव—यावत् (अर्थात् वेहल्ल कुमार भी राजा श्रेणिक का पुत्र चेलना देवी का आत्मज और मेरा दोहता है), वेहल्ल च कुमारं पेसेमि—वेहल्ल कुमार को वापिस भेज दूंगा, तं न वेइणं सामी—वस्तुतः हे स्वामी वह नहीं देता, चेडय राया—चेटक राजा, सेयणं गन्धहस्ती अठारह लड़ियों वाला हार, वेहल्ल च नो पेसेइ—अर वेहल्ल कुमार को भी नहीं भेजना चाहता ॥६५॥

मूलार्थ—वह दूत राजा के द्वारा वापिस भेज देने पर जहां दूत का चार घण्टों वाला अश्व-रथ खड़ा था वहां आता है, आकर चतुर्घण्टक अश्वरथ पर आरुढ़ होता है आरुढ़ होकर वैशाली नगरी के बीचों-बीच से होता हुआ बाहर आकर सुखमय स्थानों में विश्राम करता है। प्रातःकाल का अशन करता है (अर्थात् सुबह का अल्पहार करता है) और फिर राजा कोणिक के पास आता है, यावत् वधाई देकर इस प्रकार कहता है—हे स्वामी ! निश्चय ही चेटक राजा इस प्रकार कहता है कि कोणिक राजा श्रेणिक का पुत्र, चेलना देवी का आत्मज व मेरा दोहता है, इसी प्रकार वेहल्ल कुमार भी है यावत् पूर्व कथनानुसार वेहल्ल कुमार को समय आने पर भेज दूंगा। हे स्वामी ! वस्तुतः चेटक राजा सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाला हार और वेहल्ल कुमार को देने के लिये तैयार नहीं ॥६५॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में दूत के वैशाली आगमन का वर्णन है दूत चार घण्टों वाले अश्वरथ पर आरुढ़ होकर गया था, इस सुन्दर रथ के चारों ओर घण्टे लगे हुए थे। दूत रास्ते में सुखमय स्थानों पर ठहरा, अर्थात् वैशाली से लेकर चम्पा नगरी तक उसे कोई असुविधा नहीं हुई। दूत सीधा अपने स्वामी राजा कोणिक के पास पहुंचा। वैशाली नरेश का सेचनक गन्धहस्ती, अठारह लड़ियों वाला हार व वेहल्ल कुमार सम्बन्धी सारा सन्देश सुनाता है। निम्नलिखित सन्देश ही राजा कोणिक के क्रोध का कारण बना है जब दूत राजा चेटक को यह बात बतलाता है।

न देइ णं सामी ! चेइए राया सेयणग गन्धहत्थि अट्ठारसबकं हारं च वेहल्लं न पेसेइ ।
दूत द्वारा प्रयुक्त रथ के बारे में टीकाकार का कथन है ।

‘चाग्घंट’ ति चत्तस्रो घण्टाश्चतसृष्वपि दिक्षु अवलम्बिता यस्य तत् चतुर्घण्टो रथः ।
दूत के सफर के बारे में वृत्तिकार ने कहा है—

सुभोहि वसहोहि पायरासेहि, ति प्रातराशः आदित्योदयादेवाद्यप्रहरद्वयसमयवर्ती भोजनकालः
निवारारश्च—निर्वसनभूमागः तो द्वावपि सुखहेतुकौ न पीडाकारिणौ—अर्थात् उसका सारा सफर
आनन्दमय रहा सुबह का भोजन दूत ने सुखपूर्वक किया । भोजन करने के पश्चात् वह कोणिक
से मिला ।

दूत का सन्देश कोणिक राजा की इच्छा के सर्वथा प्रतिकूल था ॥६८॥

उत्थानिका—तब राजा कोणिक ने फिर क्या किया, अब सूत्रकार इस विषय में कहते हैं—

मूल—तएणं से कूणिए राया दुच्चं पि दूयं सद्दावित्ता एवं वयासी-
गच्छह णं ! तुमं देवाणुप्पिया ! वेसांति नयारिं, तत्थ णं तुमं मम अज्जगं
चेइणं रायं जाव एवं वदाहि—एवं खलु सामी ! कूणिए राया विन्नवेइ-
जाणि काणि रयणाणि समुप्पज्जंति सब्बाणि ताणि रायकुलगामीणि,
सेणियस्स रन्नो रज्जसिंरिं करेमाणस्स पालेमाणस्स दुवे रयणा समुप्पन्ता,
तं जहा—सेयणए गंधहत्थी, अट्ठारसबकं हारे, तण्णं तुब्भे सामी ! राय-
कुलपरंपरागयं ठिइयं अलोवेमाणा सेयणगं गन्धहत्थि अट्ठारसबकं हारं
कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणह, वेहल्लं कुमार पेसेह ।

तएणं से दूए कूणियस्स रन्नो तहेव जाव वद्धावित्ता एवं वयासी-
एवं खलु सामी ! कूणिए राया विन्नवेइ-जाणि काणित्ति जाव वेहल्लं
कुमारं पेसेह ॥६९॥

ध्याया—ततः खलु स कूणिको राजा द्वितीयमपि दूतं शब्दयित्वा एवमवादीत्—गच्छ खलु त्वं
देवानुप्रिय ! बेशाली नगरी, तत्र खलु त्वं मम आर्यकं चेटकं राजानं यावत् एवं वद—एवं खलु स्वामिन् !
कूणिको राजा विज्ञापयति—यानि कानि रत्नानि समुत्पद्यन्ते सर्वाणि तानि राजकुलगामीनि, श्रेणिकस्थ
राज्ञो राज्यभिर्यं कुर्वन्तः पालयतो द्वे रत्ने समुत्पन्ने, तद्यथा—सेचनको गन्धहस्ती, अष्टादशको हारः,

तत्खलु यूयं स्वामिन् ! राजकुलपरम्परागतं स्थितिमलोपयन्तः सेचनकं गन्धहस्तिनम् अष्टावशवक्रं च हारं कूणिकाय राज्ञे प्रत्यर्पयत, वेहल्लं कुमारं प्रेषयत ।

ततः खलु स दूतः कूणिकस्य राजस्तथैव यावद् वर्धयित्वा एवमवादीत्—एवं खलु स्वामिन् ! कूणिको राजा विज्ञापयति—यानिकानीति यावत् वेहल्लं कुमारं प्रेषयत ॥६६॥

पदार्थान्वय—तएण—तत्पश्चात्, से कूणिए राया - कूणिक राजा ने, दुच्च पि द्यं सदा-विता—दूसरे दूत को बुला कर, अपि—संभावना अर्थ में है, एवं वयासी—इस प्रकार कहा, गच्छह णं तुमं देवानुप्पिया - हे देवानुप्रिय तुम जाओ, वेसालि नयारि—वैशाली नगरी को, तत्थ णं तुमं सम अज्जगं—वहाँ तुम मेरे आर्य नाना, चेटकं रायं—चेटक राजा को, जाव—यावत्, एवं वयासी—इस प्रकार कहना, एवं खलु सामी—हे स्वामी निश्चय हो, कूणिए राया विन्नवेइ—कूणिक राजा इस प्रकार कहता है, जाणि काणि रयणाणि—जो कोई भी रत्न, समुप्पज्जन्ति—राज्य में उत्पन्न होते हैं, सब्बाणि ताणि—वे सब, रायकुलगामीणि—राज्य-कुल में ही पहुँचाये जाते हैं, सेणियस्स रन्नो—श्रेणिक राजा के, रज्जसिारि करेमाणस्स—राज्य श्री को करते हुए के, पाले-माणस्स—पालन करते हुए, दूवे रयणा समुप्पज्जा—दो रत्न उत्पन्न हुए, तं जहा—जैसे कि, सेवणए गन्धहस्ती, अठारसबंके हारं—सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाला वक्र हार, तण्णं तुभ्भे सामी—तो आप हे स्वामी, रायकुलपरंपरागत ठिइयं—राज्य कुल की परम्परागत स्थिति को, अलोवेमाणा—लुप्त न करते हुए, सेयणगं गन्धहस्ति अठारसबंके च हारं—सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ियों वाला हार, कुणियस्स रन्नो पच्चप्पिण्ह—राजा कूणिक को वापिस लौटा दो वेहल्ल कुमार पेसेह—और वेहल्ल कुमार को भी वापिस भेज दो ।

तएण से दूए—तदनन्तर वह दूत, कूणियस्स रन्नो—राजा कूणिक का, तहेव जाव वद्धा-विता—उसी प्रकार से वर्धयित्व देकर, एवमवादीत्—इस प्रकार बोला, एवं खलु सामी—इस प्रकार हे स्वामिन् ! कूणिए राया विन्नवेइ—राजा कूणिक आपको सूचित करता है, जाणि काणिति—जैसे भी हो वैसे, वेहल्लं कुमार पेसेह—वेहल्ल कुमार को वापिस लौटा दो ॥६६॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह कूणिक राजा दूसरे दूत को बुलाता है बुलाकर इस प्रकार कहता है—“हे देवानुप्रिय ! तुम मेरे नाना राजा चेटक को यावत् इस प्रकार कहो

हे स्वामी ! निश्चय ही राजा कूणिक इस प्रकार कहता है कि जो कोई रत्न राज्य में उत्पन्न होते हैं वे सब राज कुल में पहुँचाये जाने वाले होते हैं । श्रेणिक राजा के राज्य काल में दो रत्न उत्पन्न हुए थे सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाला हार ।

आप राज्य-कुल परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाला हार राजा कोणिक को वापिस लौटा दो और वेहल्ल कुमार को भी वापिस भेज दो ।

तत्पश्चात् वह दूत राजा कूणिक को पूर्ववत् नमस्कार करके चला गया और वैशाली पहुँच कर राजा चेटक को हाथ जोड़ कर वधाई देता हुआ इस प्रकार बोला—
निश्चय ही हे स्वामी ! राजा कूणिक आपसे निवेदन करता है कि जो भी राज्य के रत्न पदार्थ होते हैं वे राजा के ही होते हैं, अतः आप सेचनक गन्धहस्ती, अष्टादश वक्र हार और वेहल्ल कुमार को राजा कोणिक के पास भेज दो ॥६६॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में राजा कोणिक द्वारा दूसरी बार दूत भेजने का वर्णन है जिसमें पुनः सेचनक गन्धहस्ती अठारह लड़ियों वाला हार व वेहल्ल कुमार की वापसी की मांग दोहराई गई है । साथ में राजा कोणिक ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि जो रत्न किसी भी राजा के राज्य में पैदा होते हैं उनका स्वामी राजा ही होता है । राजा श्रेणिक के राज्यकाल में ये दो रत्न उत्पन्न हुए थे । राजा श्रेणिक के परिवार से सम्बन्धित होने के कारण इन वस्तुओं पर राज-कुल का ही अधिकार है । इस परम्परा का पालन करते हुए आपको ज्यादा आग्रह नहीं करना चाहिये । राजा कूणिक ने अपने मगध साम्राज्य के ग्यारह भाग किये थे । इन दोनों वस्तुओं के भाग नहीं हो सकते थे, अतः ये वस्तुएं राजा कूणिक को वापिस लौटा देनी चाहिए । इसके साथ ही वेहल्ल कुमार को भी वापिस लौटाया जाए । वृत्तिकार ने इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहा है—

राजकुल-परम्परागमं ठिड्यं जलोवेमाणे त्ति—एवं परम्परामलोपयतः अर्थात् राज-कुल की परम्परागत स्थिति को लोप नहीं करना चाहिये ।

राज-कुल की परम्पराओं का पालन करना प्रत्येक राजा का प्रथम कर्तव्य है ॥६६॥

मूल—तएणं से चेडए राया तं दूयं एवं वयासी—जह चेव णं देवानु-
प्पिया ! कूणिए राया सेणियस्स रन्नो पुत्ते, चेल्लणाए देवीए अत्तए जहा
पढमं जाव वेहल्लं च कुमारं पेसेमि, तं दूयं सक्कारेइ संमाणेइ पडि-
विसज्जेइ ॥७०॥

छाया—ततः खलु स चेटको राजा तं दूतमेवमवादीत्—यथा र्वं खलु देवानुप्रिय ! कूणिको
राजा श्रेणिकस्य राज्ञः पुत्रः चेल्लनाया देव्या अत्तमजः, यथा प्रथमं यावद् वेहल्लं च कुमारं प्रेषयामि ।
तं दूतं सत्करोति सम्मानयति प्रतिविसर्जयति ॥७०॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से चेडए राया—वह राजा चेटक, तं दूयं एवं वयासी—उस दूत को इस प्रकार बोला, जह चेव णं देवानुप्पिया—जैसे हे देवानुप्रिय ! निश्चय ही, कूणिए राया सेणियस्स रन्नो पुत्ते कोणिक राजा श्रेणिक का पुत्र है, चेल्लणाए देवीए अत्तए—चेलना देवी का आत्मज है, जहा पढमं—जैसे पहले कहा जा चुका है, जाव—यावत्, वेहल्लं च कुमारं पेसेमि—मैं वेहल्ल कुमार को भेज दूंगा, तं दूयं सक्कारेइ सम्माणेइ—उस दूत का सम्मान सत्कार करता है, पडिविसज्जेइ—और उसे विसर्जित करता है ॥७०॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह राजा चेटक उस दूत को इस प्रकार कहने लगा 'हे देवानुप्रिय ! निश्चय ही राजा कोणिक श्रेणिक राजा का पुत्र और चेलना देवी का आत्मज है, जैसे पहले कहा जा चुका है (उसी प्रकार राजा चेटक ने दूत को उत्तर दिया) यावत् वेहल्ल कुमार को भेजता हूं आदि । वह उस दूत का सत्कार-सम्मान करता है इसके बाद दूत को विदा करता है ॥७०॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में राजा श्रेणिक का दूत वैशाली-सम्राट् चेटक को जो संदेश देता है उसी का उत्तर चेटक राजा दूत को देता है । यह उत्तर वही है जो उसने प्रथम दूत को दिया था । वह यह कि अगर कोणिक राजा सेचनक गंधहस्ती व अठारह लड़ी वाला हाथ चाहता और वेहल्ल कुमार की वापसी चाहता है तो अपना आधा राज्य प्रदान करे तभी उसे ये दोनों वस्तुएं प्राप्त हो सकती हैं ॥७०॥

उत्थानिका—दूत ने आकर राजा कोणिक से जो निवेदन किया अब सूत्रकार इसी विषय में कहते हैं—

मूल—तएणं से दूए जाव कूणियस्स रन्नो वद्धावित्ता एवं वयासी—चेडए राया आणवेइ—जह चेव णं देवानुप्पिया ! कूणिए राया सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए जाव वेहल्लं कुमारं पेसेमि, तं न देइ णं सामी ! चेडए राया सेयणगं गंधहत्थि अट्ठारसबकं च हारं, वेहल्लं कुमारं नो पेसेइ ॥७१॥

छाया—ततः खलु स दूतो यावत् कूणिकं राजानं वर्धयित्वा एवमवादीत्—चेटको राजा आज्ञापयति—यथा चेव खलु देवानुप्रिय ! कूणिको राजा श्रेणिकस्य राज्ञः पुत्रः चेल्लनाया देव्या आत्मजः यावत् वेहल्लं कुमारं प्रेषयामि, तन्न वदाति खलु स्वामिन् ! चेटको राजा सेचनकं गंधहस्तिनम् अष्टादश वक्त्रं च हारं, वेहल्लं कुमारं नो प्रेषयति ॥७१॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से दूए—वह दूत, कूणियस्स रन्नो—कोणिक राजा को, वद्धावेत्ता—वधाई देकर, एवं वयासी—इस प्रकार कहने लगा, चेडए राया—राजा चेटक, आणवेइ—भाव प्रकट करता है कि, जह चेत्र णं देवानुप्पिया—निश्चय ही हे देवानुप्रिय जैसे, कूणिए राया—कोणिक राजा, सेणियस्स रन्नो पुत्ते—श्रेणिक राजा का पुत्र, चेल्लणाए देवीए अत्तए—चेलना देवी का आत्मज है, जाव०—यावत्, वेहल्ल कुमारं पेसेमि—वेहल्ल कुमार को भेजता हूँ, त न वेई णं सामी—तो हे स्वामी ऐसा प्रतीत होता है कि वह नहीं देगा, चेडए राया—चेटक राजा, सेयणगं गन्धहत्थि—सेचनक गन्धहस्ती को और, अट्ठारसबंकं हारं—अठारह लड़ियों वाला हार, वेहल्लं कुमारं नो पेसेइ—वेहल्ल कुमार को भी वापिस नहीं भेजेगा ॥७१॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह दूत कोणिक राजा को जय-विजय के साथ वधाई देकर इस प्रकार कहने लगा—“हे देवानुप्रिय ! निश्चय ही राजा चेटक यह भाव प्रकट करता है कि कोणिक राजा श्रेणिक राजा का पुत्र, चेलना देवी का आत्मज है यावद् मैं वेहल्ल कुमार को भेजदूंगा, तो हे स्वामी ! चेटक राजा सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाले हार को वापिस नहीं करेगा और वेहल्ल कुमार को वापिस नहीं भेजेगा (ऐसा प्रतीत होता है) ॥७१॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में दूत ने वैशाली नरेश द्वारा दिये गए उत्तर का वर्णन अपने स्वामी राजा कोणिक से किया है । दूत का यह उत्तर दूत की निर्भयता का चित्रण करता है ।

उत्थानिका—दूत के उत्तर को सुनकर राजा कोणिक ने क्या किया उसे आगे कहते हैं—

मूल—तएणं से कूणिए राया तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्ठ सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे तच्चं दूयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुमं देवानुप्पिया ! वेसालीए नयरीए चेडगस्स रन्नो वामेणं पाएणं पायपीढं अक्कमाहि, अक्कमिक्का कुंतग्गेणं लेहं पणावेहि, पणावित्ता आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्ठु चेडगं रायं एवं वदाहि—हं भो चेडगराया ! अपत्थियपत्थया ! दुरंत जाव—परिवर्जय्या ! एस णं कूणिए राया आणवेइ—पच्चप्पिणाहि णं कूणियस्स रन्नो सेयणगं गन्धहत्थि अट्ठारसबंकं च हारं वेहल्लं च

कुमार पेसेहि, अहवा जुद्धसज्जा चिट्ठाहि, एस णं कूणिए राया सबले
सवाहणे सखंधावारे णं जुद्धसज्जे इह हव्वमागच्छइ ॥७२॥

छाया—ततः खलु स कूणिको राजा तस्य दूतस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निश्चय आशुरवतः
यावन्मिसिमसी—कुर्वन् तृतीयं दूतं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—गच्छ खलु त्वं देवानुप्रिय !
वैशालीं नगरीं चेडकस्य राज्ञो वामेन पादेन पादपीठमाक्राम, आक्रम्य कुन्ताप्रेण लेखं प्रणायय, प्रणायय
आशुरवतो यावत् मिसिमसीकुर्वन् त्रिधंसिकां भृकुटिं ललाटे संहृत्य चेटकं राजानमेवं वद- हं भो
चेटकराजा ! अप्राथित्यार्थकाः ! दुरन्त—यावत्परिवर्जिताः ! एषः खलु कूणिको राजा आज्ञापयति—
प्रत्यर्पयत खलु कूणिकस्य राज्ञः सेचनकं गन्धहस्तिनमष्टादशवक्त्रं च हारं वेहल्लं च कुमारं प्रेषयत,
अथवा युद्धसज्जां तिष्ठत । एवं खलु कूणिको राजा सबलः सवाहनः सखंधावारः खलु युद्धसज्ज
इह हव्वमागच्छति ॥७२॥

पदार्थावयवः—तएणं—तत्पश्चात्, से कूणिए राया—यह राजा कोणिक, तस्स दूयस्स
अन्तिए—उस दूत के समीप से, एयमद्वं सोच्चा—इस अर्थ को सुनकर, निसम्म—विचार करके,
आसुरत्ते—क्रोधित होकर, जाव—यावत्, मिसिमसेमाणे—क्रोध से आकुल व्याकुल होता हुआ,
तच्चं दूयं सहावेइ—तीसरे दूत को बुलाता है और, सहावित्ता—बुलाकर, एवं वयासि—इस प्रकार
कहने लगा, गच्छ णं तुम देवानुप्रिय—हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ, वैशालीए नगरीए- वैशाली नगरी
में, चेडगस्सरप्पो—वहां चेटक राजा के, वामेण पाएणं—बायें पैर से, पायपीठं—पादपीठ सिंहासन को,
अवकमाहि अवकामित्ता—ठोकर मारना, और ठोकर मार कर, कुंतगणेण लेहं पणावेहि, पणावेहिता—
कुन्ताप्र पर अर्थात् बरछी की नोक से लेख को देना, और देकर, आसुरत्ते—क्रोधित होकर, जाव—
यावत्, मिसिमसेमाणे—दांत पीसते हुए, तिवलियं भिउँडि निडाले साहद्वं—मस्तक पर तीन भृकुटी
चढ़ाकर, चेडग रायं एवं वयासी—चेटक राजा को इस प्रकार कहता, हं भो—अरे ओ, चेडग
राया—चेटक राजा, अपत्थियपयिया—मृत्यु की प्रार्थना करने वाले, दुरन्त—दुष्ट, जाव—यावत्,
परिवज्जिया—लक्ष्मी रहित, एस णं कूणिए राया आणवेइ—कोणिक राजा यह आज्ञा करता है,
पच्चपिणाहि—वापिस लौटा दो, कूणियस्स रन्नो—कोणिक राजा को, सेयणं गन्धहत्थि अट्टारस-
वकं च हारं—सेचनक गंधहस्ती व अठारह लड़ियों वाला हार, वेहल्लं कुमारं पेसेहि—और वेहल्ल
कुमार को वापिस भेज दो, अहवा जुद्ध सज्जे चिट्ठाहि—अन्यथा युद्ध के लिए सुसज्जित होकर
तैयार हो जाओ, एस णं कूणिए राया—यह कोणिक राजा सबले—अत्यन्त बलवान् (हाथियों
सहित) सवाहणे—वाहन सहित अर्थात् पालकी आदि सवारी सहित, सखंधावारे—पंदल सैनिक दल
के साथ पड़ाव करता हुआ, जुद्धसज्जे—युद्ध के लिये तैयार होकर, इह हव्वमागच्छइ—यहां शीघ्र
ही आ रहा है ॥७२॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह राजा कोणिक, उस दूत के पास से इस अर्थ को सुनकर विचार कर आशुरवत् यावत् क्रोध से आकुल-व्याकुल (दांत पीसता) हुआ, तृतीय दूत को बुलाता है, बुलाकर इस प्रकार आज्ञा देता है 'हे देवानुप्रिय ! तुम वैशाली नगरी जाओ वहां चेटक राजा के सिंहासन को बायें पैर से ठोकर मारना, मार कर कुन्ताग्र (बरछी के अग्रभाग से) यह लेख उसे देना, देकर आशुरवत् यावत् आकुल-व्याकुल होना, मस्तक में भृकुटी चढ़ाकर, चेटक राजा को इस प्रकार कहना अरे ओ मृत्यु चाहने वाले लक्ष्मी-रहित चेटक ! कोणिक राजा आज्ञा देता है कि तुम कोणिक राजा को सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ियों वाला हार लौटा दो और वेहल्ल कुमार को वापिस मेज दो । (अथवा) नहीं तो युद्ध के लिए सुसज्जित हो जाओ । वह कोणिक राजा हाथी—घोड़ों पालकी आदि वाहनों और पैदल सेना के साथ पड़ाव डालता हुआ शीघ्र ही यहां आ रहा है ॥७२॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में कोणिक राजा द्वारा अपने तीसरे दूत से वार्तालाप का वर्णन है राजा कोणिक, राजा चेटक के इन्कार करने पर किस तरह क्रोधित होता है, इसका स्पष्ट चित्रण शास्त्रकार ने किया है । राजा कोणिक अपने तीसरे दूत से राजा चेटक को स्पष्ट सूचित करता है कि या तो वह सब वस्तुओं और वेहल्ल कुमार को वापस लौटा दो या फिर युद्ध के लिये तैयार हो जाये ।

प्रस्तुत सूत्र में (हं भो) फटकार के अर्थ में लिया गया है । 'अपत्स्थिय अपत्स्थिया' पद का अर्थ है मृत्यु की आमन्त्रण देने वाला । जिस मृत्यु की कोई इच्छा नहीं रखता उस मृत्यु की इच्छा करने वाला । कुन्ताग्रणं लेहं पणावेहि—इस सूत्र द्वारा कोणिक राजा द्वारा प्रेषित संदेश को बरछे की नोक पर टांग कर प्रस्तुत करने का उल्लेख है । इस पद द्वारा यह सिद्ध होता है कि आर्य लोग लिखने की कला प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के काल से ही जानते थे । इस सूत्र में राजा कोणिक अपने नाना वैशाली नरेश चेटक को युद्ध की धमकी अपमान जनक शब्दों में देता है । इस सूत्र में उस समय की प्राचीन युद्ध-पद्धति का वर्णन किया गया है ।

उत्थानिका—आज्ञा पालक दूत ने फिर क्या किया अब सूत्रकार इसी विषय में कहते हैं ।

मूल—तएणं से दूए करयल० तहेव जाव जेजेव चेडए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता करयल० जाव वद्धावेइ, वद्धावित्ता एवं वयासी एस णं सामी ! ममं विणयपडिवत्ती, इयाणि कूणियस्स रन्तो आणत्तो

चेडगस्स रत्तो वामेणं पाएणं पायपीठं अक्कमइ, अक्कमिप्ता, आसुरुत्ते
कुंतगणेण लेहं पणावेइ तं चेव सबलखंधावारे णं इह हव्वमागच्छइ ॥७३॥

छाया—ततः खलु सः दूतः करतल० तथैव यावद् यत्रैव चेटको राजा तत्रैवोपागच्छति उपागत्य
करतल० यावद् वर्धयति, वर्धयित्वा एवमवादीत्—एषा खलु स्वामिन् ! मम विनयप्रतिप्रति, इदानीं
कूणिकस्य राज्ञः आज्ञप्तिः चेटकस्य राज्ञो वामेन पादेन पादपीठमाक्रामति, आक्राम्य आशुरवतः कुन्ता-
ग्रेण लेखं प्रणाययति तदेव सबलस्कन्धावारः खलु इह हव्वमागच्छ त ॥७३॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से दूए—वह दूत, करयल०—दोनों हाथ जोड़कर,
जाव—यावत्, तहेव—उसी प्रकार, जेणेव चेडए राया—जहां चेटक राजा था, तेणेव उवागच्छइ
उवागच्छइत्ता—वहां आता है और आकर, करयल० जाव वद्धावेत्ता एवं वयासी—दोनों हाथ जोड़
कर वधाई देता हुआ, इस प्रकार बोला, एस णं सामी—हे स्वामी ! यह, मम विणय पडिबत्ती—
यह मेरी विनय प्रतिप्रति है, इयाणि कूणियस्स रत्तो आणत्तो—अब कोणिक राजा की आज्ञा का
पालन करता हूं ऐसा कहकर, चेडगस्स रत्तो चेटक राजा के, वामेणं पाएणं—बायें पैर से,
पायपीठं—पादपीठ सिंहासन को, अक्कमइ—स्पर्श करता है अर्थात् ठोकर मारता है, ठोकर मार
कर, आसुरवत्ते—आशुरवत्त क्रोधित होता हुआ, कुंतगणेण लेहे पणावेइ—कुंतग्र से लेख को देता है,
तं चेव—और इस प्रकार से, सबलखन्धावारेणं—सबल पंदल आदि चतुरंगिणी सेना सहित, इह
हव्वमागच्छइ—यहां शीघ्र आ रहा है ॥७३॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह दूत करतल (दोनों हाथ जोड़कर) यावत् उस प्रकार जहां
चेटक राजा था, वहां आता है, वहां आकर जहां चेटक राजा था वहां आता है आकर
यावत् दोनों हाथ जोड़कर जय-विजय से वधाई देता हुआ इस प्रकार कहने लगा—
'हे स्वामी ! यह तो मेरी विनय भक्ति है । अब राजा कोणिक की आज्ञा का पालन करता
हूं । ऐसा कह कर राजा चेटक के सिंहासन को बाएं पैर से छूता है, छूकर आशुरवत्त
होता हुआ, कुंतग्र से लेख को अर्पण करता है । बाकी उसी प्रकार सबल—पंदल आदि
चतुरंगिणी सेना सहित राजा कोणिक शीघ्र ही यहां आ रहा है ॥७३॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में राजा कोणिक के सन्देश का वर्णन है जिसे राजा चेटक तक दूत
अपने कर्तव्य का पालन करते हुए पहुंचाता है । दूत अपनी ओर से राजा चेटक का सम्मान करता
हुआ वहीं सन्देश देता है जो उसके स्वामी ने उसे देने को कहा है । दूत की कर्तव्य परायणता
निश्चरता, स्वामी भक्ति का स्पष्ट चित्रण इस सूत्र में किया गया है । प्रस्तुत सूत्र से यह भी सिद्ध है

कि दूत को प्राचीन काल से ही अवध्य व सम्मान जनक स्थान मिलता रहा है। दूत मित्र के पास भी जाता है शत्रु के पास भी। हर स्थान पर वह अपने स्वामी का सदेशबाहक बन कर जाता है। राजा चेटक के प्रति दूत का अभद्र व्यवहार उसकी स्वेच्छा से नहीं, वह तो राजाज्ञा का पालन मात्र है ॥७३॥

उत्थानिका—तब चेटक राजा ने दूत से क्या व्यवहार किया, अब सूत्रकार उसका कथन करते हैं।

मूल—तएणं से चेडए राया तस्स दूयस्स अतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते जाव साहट्टु एवं वयासी—न अपिणामि णं कूणियस्स रन्नो सेयणं अट्ठारसवंकं हारं, वेहल्लं च कुमारं नो पेसेमि, एस णं जुद्धसज्जे चिट्ठामि । तं दूयं असक्कारियं असंमाणियं अवहारेणं निच्छुहावेइ ॥७४॥

छाया—ततः खलु स चेटको राजा तस्य दूतस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य आशुरक्तः यावत् संहृत्य एवमवादीत्—नार्पयामि खलु कूणिकस्य राज्ञः सेचनकमष्टादशवक्त्रं हारं वेहल्लं च कुमारं नो प्रेषयामि, एष खलु युद्धसज्जस्तिष्ठामि । तं दूतमसत्कारितमसम्मानितमद्वारेण निष्कासयति ॥७४॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से चेडए राया—वह चेटक राजा, तस्स दूयस्स अतिए—उस दूत के समीप से, एयमट्ठं सोच्चा—इस अर्थ (बात) को सुनकर, निसम्म—विचार कर, आसुरुत्ते—क्रोधित हुआ, जाव साहट्टु—यावत् मस्तक पर तीन भृकुटी चढ़ाता हुआ, एवं वयासी—इस प्रकार बोला, न अपिणामि णं—नहीं अर्पण करता हूँ, कूणियस्स रन्नो—कोणिक राजा को, सेयणं अट्ठारसवंकं हारं—सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाला हार को, वेहल्लं कुमारं नो पेसेमि—वेहल्ल कुमार को भी वापिस नहीं भेजता, एस णं जुद्ध सज्जे चिट्ठामि—परन्तु युद्ध के लिये सुसज्जित होकर आता हूँ ऐसा कहकर, तं दूयं असक्कारियं—उस दूत का असत्कार करता है, असंमाणियं—असम्मान या अपमान करता है, परन्तु, अवहारेणं निच्छुहावेइ—अपद्वार से बाहर निकलवा देता है ॥७४॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह राजा चेटक उस दूत के द्वारा इस अर्थ (बात) को सुनकर, विचार करता है विचार करके क्रोधित होता हुआ यावत् मस्तक पर तीन भृकुटी चढ़ाता हुआ, इस प्रकार कहने लगा—“मैं कोणिक राजा के पास सेचनक गन्धहस्ती अठारह लड़ियों वाला हार व वेहल्ल कुमार को वापिस नहीं भेज सकता। हाँ, मैं युद्ध के लिए सुसज्जित होकर आता हूँ।

उस दूत का वह राजा चेटक असत्कार करता है, असम्मान करता है अपमान करके अपद्वार से बाहिर निकाल देता है, अर्थात् दुर्गन्धी भरे जल मार्ग से दूत को बाहिर निकालता है ।

टोका-- प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि राजा कोणिक के दूत के मुख से संदेश सुनकर, श्रमणोपासक राजा चेटक को भी क्रोध आ गया । उसने राजा कोणिक की युद्ध की चुनौती स्वीकार कर ली । साथ में स्पष्ट कह दिया कि जब तक राजा कोणिक आधा राज्य प्रदान नहीं करता, तब तक मैं सेचनक गन्धहस्ती, अठारह लड़ियों वाला हार व वेहल्ल कुमार किसी कीमत पर वापिस नहीं भेजे जायेंगे । अब उसने दूत को सत्कार—सम्मान न देकर, नगर के अपद्वार से वापिस लौटा दिया । अपद्वार का अर्थ है वह मार्ग, जहां से नगर का दुर्गन्धि भरा जल गुजरता है, राजा चेटक ने युद्ध की चुनौती स्वीकार करके शरणागत की रक्षा का कर्तव्य निभाया इसी कारण से राजा चेटक ने दूत से कहा—

न अप्पिणामि णं कुणियस्सरन्नो सेयणं अट्ठारसवंकं हारं वेहल्लं च कुमारं नो पेसेमि एस । णं जुद्धसज्जे चिट्ठामि—इस वाक्य से चेटक राजा की शूरवीरता ध्वनित होती है । राजा चेटक ने दूत से कहा हे दूत । तू श्रवण्य है इसलिए मैं तुझे नहीं मारुंगा पर अपने स्वामी के पास मेरा संदेश ज्यों का त्यों पहुंचा देना ॥७४॥

उत्थानिका— इसके बाद क्या होता है इसका वर्णन सूत्रकार ने आगे किया है—

मूल—तएणं से कूणिए राया तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म आसुरुत्ते कालादीए दस कुमारे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी- एवं खलु देवाणुप्पिया ! वेहल्ले कुमारे ममं असंविदितेणं सेयणं गन्ध- हत्थि अट्ठारसवंकं हारं अतेउरं सभंडं च गहाय चंपातो पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमिता वेसांलि अज्जगं चेडगरायं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

तएणं मए सेयणगस्स गन्धहत्थिस्स अट्ठारसवंकस्स हारस्स अट्ठाए दूया पेसिया, ते य चेडएण रण्णा इमेणं कारणेणं पडिसेहिया अदुत्तरं च णं ममं तच्चे दूए असक्कारिए, तं अवहारेणं निच्छुहावेइ, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं चेडगस्स रन्नो जूतं गिणिहत्तए ॥७५॥

छाया ततः खलु सकृन् राजा तस्य दूतस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य आशुरक्तः कालादीन् दशकुमारान् शब्दयित्वा एवमवादीत्—एवं खलु देवानुप्रियाः ! वेहल्लः कुमारो मम असंविदितः खलु सेचनकं गन्धहस्तिनम् अष्टादशवक्त्रं हारम् अन्तपुरं सभाण्डं च गृहीत्वा चम्पातो निष्क्रामति, निष्क्रम्य वेशालीम् आर्यकं चेटकराजम् उपसंपद्य विहरति । ततः खलु भया सेचनकस्य गन्धहस्तिनः अष्टादशवक्त्रस्य हारस्य अर्थाय दूताः प्रेषिताः, ते च चेटकेन राज्ञा अनेन कारणेन प्रति-
षिद्धाः, अथोत्तरं च खलु मम तृतीयो दूतः असत्कारितः तं अपद्वारेण निष्कासयति, तच्छ्रेया खलु देवानुप्रियाः ! अस्माकं चेटकस्य राज्ञः युक्तं ग्रहीतुम् ॥७५॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से कूणिण् राया—वह कोणिक राजा, तस्स दूयस्स अन्तिण्—उस दूत के समीप से, एयमदठं सोच्चा—इस अर्थ को सुनकर, निसम्म—विचार कर, आसुरत्ते—आशुरक्त हुए या क्रोधित होकर, कालादीए दस कमारे सद्दावेई, सद्दावेत्ता—कालादि दश कुमारों को बुलाता है बुलाकर, एवं वयासी—इस प्रकार कहने लगा; एवं खलु देवानुप्पिया—इस प्रकार निश्चय ही, हे देवानुप्रिय !, वेहल्ले कुमारे—वेहल्ल कुमार, मम असंविदितेण—मुझे बिना बताये, सेयणं गन्धहत्थि अट्ठारसवक्कं हारं—सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाले हार को लेकर अपने अंतपुर परिवार के साथ, सभंडं च गहाय—अपने साज सामान को साथ लेकर, चम्पाओ निक्खमइ निक्खमिस्सा—चम्पा नगरी से निकल गया है और निकल कर, वेसालि—वेशाली में, यावत्—यावत्, अज्जं चेडगरायं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ—नाना आर्थ चेटक की गरण ले कर विचरता है, तएणं मए—तो इस समाचार को सुनकर मैंने, सेयणं गन्धहत्थिस्स अट्ठारसवक्कंस्स हारस्स अट्ठाए—सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ियों वाले हार के लिए, दूया पेसिया—दो दूत भेजे, ते य—वह, चेडएण रन्ना—चेटक राजा ने, इमेणं कारणेणं—इस कारण से, पडिसेहिस्सा—प्रतिषेध करके वापिस लौटा दिए, अदुत्तरं च णं—इतना ही नहीं, किन्तु अथवा, मम तच्चे दूए—मेरे तीसरे दूत को, असक्कारिणं—सत्कार न देते हुए, असंमाणिणं—असम्मान देते हुए, अपद्वारेणं निच्छुहावेइ—अपद्वार से अर्थात् नगर के दुर्गन्धित छोटे मार्ग से निकलवा दिया, तं सेयं खलु देवानुप्पिया—तो निश्चय ही हे देवानुप्रिय यही श्रेय है, अम्हं—हमें, चेडगस्स रन्नो—चेटक राजा से, जुत्तं गिण्हित्तए—युद्ध के लिए निकलना चाहिए अर्थात् युद्ध के लिए तैयार हो जाना चाहिये ॥७५॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् कोणिक राजा ने उस दूत से इस बात को सुना, फिर विचार किया । यावत् क्रोध में आकुल-व्याकुल होकर काल आदि दश कुमारों को बुला कर इस प्रकार कहने लगा 'हे देवानुप्रिय ! निश्चय ही वेहल्ल कुमार मुझे सूचित किये बिना सेचनक गन्धहस्ती, अठारह लड़ियों वाले हार को, अपने साज-सामान समेत अन्तःपुर के साथ चम्पा नगरी से निकला, निकल कर, वेशाली में यावत् नाना चेटक के आश्रित

होकर विचरता है। इस समाचार के प्राप्त होने पर मैंने सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ियों वाले हार के लिये दो दूत भेजे। उनको चेटक राजा ने प्रतिषेधित कर दिया, केवल इतना ही नहीं, मेरे तीसरे दूत को तिरस्कार करके अपद्वार से बाहर निकलवा दिया, अतः हे देवानुप्रिय ! निश्चय ही हमें चेटक राजा के साथ युद्ध के लिये सुसज्जित होना श्रेयस्कर है ॥७५॥

टीका—तत्पश्चात् कोणिक राजा ने अपने भाइयों को अपने दूत के साथ राजा चेटक द्वारा किये गए व्यवहार का वर्णन किया है। दूत से किये अभद्र व्यवहार को सुनकर कोणिक क्रोधित हो गया था, उसने अपने दस भ्राताओं कालादि को निमन्त्रण दिया। कोणिक राजा ने वेहल्ल कुमार के वेशाली पहुँचने की सूचना दी और साथ में कहा कि वेहल्ल कुमार हमारे राज्य के सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाला हार भी ले गया है। मैंने राजा चेटक को समझाने के लिये दो दूत भेजे, पर राजा चेटक नहीं माना। अतः मैंने तीसरे दूत को भेजा। जिसके साथ चेटक राजा ने अभद्र व्यवहार करते हुए, उसे अपद्वार से बाहर निकलवा दिया, इसलिए हमें युद्ध के लिये तैयार हो जाना चाहिए। राजा कोणिक के इन शब्दों से उस का मनोगत भाव प्रकट होता है।

तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अहं चेडगस्स रत्तो जुहुं पिण्हत्तए—इस संदर्भ में वृत्तिकार का कथन है—ततो यात्रां सह ग्रामयात्रां गृहीतुमुद्यता व्यभिक्ति—यहां कोणिक राजा ने अपने दूत द्वारा राजा चेटक के प्रति किए अभद्र व्यवहार का वर्णन नहीं किया ॥७५॥

मूल—तएणं कालाइया दस कुमारा कूणियस्स रत्तो एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेति ॥७६॥

छाया—ततः खलु कालादिकाः दश कुमाराः कूणिकस्य राज्ञः एतमर्थं विनयेन प्रतिभृण्वन्ति ॥७६॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, कालाइया दस कुमारा—कालादि दश कुमार, कूणियस्स रत्तो—कोणिक राजा के इस अर्थ को अर्थात् आज्ञा को, विणएणं पडिसुणेति—विनयपूर्वक सुनते हैं, अर्थात् स्वीकार करते हैं ॥७६॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वे काल आदि दस कुमार, राजा कोणिक की इस आज्ञा को विनयपूर्वक सुनते हैं अर्थात् स्वीकार करते हैं ॥७६॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में राजा कोणिक द्वारा अपने कालादि दस कुमारों को युद्ध की प्रेरणा देने का वर्णन है। राजा कोणिक की बात को सभी भाई विनय-पूर्वक सुनते हैं, अर्थात् मान लेते हैं, क्योंकि

पडिसुणंति—का अर्थ है स्वीकार करना । उन कुमारों ने अपनी ओर से कुछ नहीं कहा अर्थात् उन भाइयों ने अपनी ओर से राजा कोणिक को न्याय-मार्ग पर लाने की चेष्टा नहीं की ।

उत्थानिका—राजा कोणिक ने इस विषय में जो आगे कथन किया, उसी का सूत्रकार ने कथन किया है—

मूल—तएणं से कूणिए राया कालादीए दस कुमारे एव वयासी-
गच्छह णं तुम्हे देवानुप्पिया ! सएसु सएसु रज्जेसु पत्तेयं पत्तेयं ण्हाया
जाव पायच्छित्ता हत्थिखंधवरगया पत्तेयं-पत्तेयं तिहिं दंतिसहस्सेहिं, एवं
तिहिं रहसहस्सेहिं, तिहिं आससहस्सेहिं, तिहिं मणुस्सकोडीहिं सद्धिं
संपरिवुडा सव्विड्ढीए जाव रवेणं सएंहितो सएंहितो नयरोंहितो पडि-
निक्खमह, पडिनिक्खमित्ता ममं अंतियं पाउम्भवह ॥७७॥

छाया—ततः खलु स कूणिको राजा कालादीन् दश कुमारान् एव वादीत्—गच्छत खलु यूयं
देवानुप्रिया ! स्वकेषु राज्येषु प्रत्येकं प्रत्येकं स्नाता यावत् प्रायश्चित्ताः हस्तिस्कन्धवरगताः प्रत्येकं
प्रत्येकं त्रिभिर्दन्तिसहस्रैः, एवं त्रिभी रथसहस्रैः, त्रिभिरश्वसहस्रैः, तिसृभिर्मनुष्यकोटिभिः सार्द्धं संपरि-
वृता सर्वद्वयं यावद्—रवेण स्वकेभ्यः स्वकेभ्यो नगरेभ्यः प्रतिनिष्क्रामत, प्रतिनिष्क्रम्य ममान्तिकं
प्रादुर्भवत ॥७७॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से कूणिए राया—वह राजा कूणिक, कालाईए दस
कुमारे—कालादि दश कुमारों को, एवं वयासी—इस प्रकार बोला, गच्छह णं तुम्हे देवानुप्पिया—
हे देवानुप्रिय आप जाओ, सएसु सएसु रज्जेसु—अपने-अपने राज्यों में, पत्तेयं पत्तेयं ण्हाया—
प्रत्येक-प्रत्येक स्नान कर, जाव—यावत्, पायच्छित्ता—शुद्ध होकर, हत्थिखन्धवरगया—हस्ति-
स्कन्ध होकर अर्थात् हाथियों पर सवार होकर, पत्तेयं पत्तेयं तिहिं दंतिसहस्सेहिं—प्रत्येक-प्रत्येक
तीन हजार हाथियों के साथ, एवं—इस प्रकार, तिहिं रह सहस्सेहिं—तीन-तीन हजार रथों के
साथ, तिहिं आससहस्सेहिं—तीन-तीन हजार अश्वों के साथ, तिहिं मणुस्स कोडीहिं—तीन-तीन
करोड़ मनुष्यों (सैनिकों) के साथ, संपरिवुडा—संपरिवृत हुए, बिरे हुए, सव्विड्ढीए जाव रवेणं—सर्व
ऋद्धि से युक्त होकर यावत् वाय पंक्तों के विभिन्न शब्दों के साथ, सएंहिता सएंहिता—अपने-अपने,
नयरोंहितो—नगरों से, पडिनिक्खमह पडिनिक्खमइत्ता—निकले और निकल कर, ममं अंतियं पाउ-
म्भवह—मेरे समीप प्रकट हो जाओ, अर्थात् मेरे पास पहुंच जाओ ॥७७॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह राजा कोणिक कालादिक दश कुमारों को इस प्रकार
कहने लगा—“हे देवानुप्रिय ! आप लोग अपने-अपने राज्यों में जाओ, वहां जाकर प्रत्येक

(राजकुमार) स्नानादि करके यावत् शुद्ध होकर; हस्ति-स्कन्ध को प्राप्त होना, अर्थात् हाथियों पर सवार हो जाता प्रत्येक राज कुमार तीन-तीन हजार हाथियों के साथ, तीन-तीन हजार रथों के साथ तीन-तीन हजार घोड़ों के साथ और तीन-तीन करोड़ मनुष्यों (सैनिकों) से परिवृत्त होकर सर्व-श्रद्धा सहित यावत् नाना प्रकार के वाद्य-यन्त्रों के शब्दों के साथ अपने-अपने नगरों से बाहर आओ बाहर आकर मेरे पास पहुंच जाओ ॥७७॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में राजा कोणिक ने हाथी, घोड़ों, रथों व सैनिकों सहित तैयार होकर आने को कहा है। प्रस्तुत सूत्र से युद्ध से पहले की तैयारी का वर्णन भी उल्लिखित होता है कि कैसे प्राचीन राजा हाथी पर बैठकर, विभिन्न वाद्य-यन्त्रों के शब्दों के स्वर गुंजाते हुए युद्ध के मैदान में आया करते थे। यहां कोणिक ने तैयार होकर हाथी पर बैठकर अपने समीप आने की आज्ञा अपने कालादि दस कुमारों को दी है। इस सूत्र से यह भी प्रकट होता है कि प्रत्येक राज-कुमार की अपनी-अपनी सेना होती थी। इस बारे में वृत्तिकार ने स्पष्ट किया है। गच्छत यूयं स्वराज्येषु निजनिजसामग्र्या संनह्य समागच्छत मम समीपे—अर्थात् आप अपने-अपने राज्य में जाओ और अपनी अपनी युद्ध-सामग्री से सज कर मेरे पास पहुंचो ॥७७॥

मूल—तए णं ते कालाईया दस कुमारा कूणियस्स रन्नो एयमर्थं सोच्चा सएसु सएसु रज्जेसु पत्तेयं पत्तेयं ष्हाया जाव तिहिं मणुस्सकोडीहिं सिद्धिं संपरिवुडा सव्विड्ढीए जाव रवेणं सएहितो सएहितो नयरोहितो पडिनिक्खमंति पडिनिक्खमिन्ता जेणेव अंगा जणवए, जेणेव चंपा नयरी जेणेव कूणिए राया तेणैव उवागया, करयल० जाव वद्धावेति ॥७८॥

छाया—ततः खलु ते कालादिका दशकुमाराः कूणिकस्य राज्ञ एतमर्थं श्रुत्वा स्वकेषु स्वकेषु राज्येषु प्रत्येकं प्रत्येकं स्नाताः, यावत् तिसृभिर्मनुष्यकोटिभिः सार्द्धं संपरिवृता यावत् रवेण स्वकेभ्यः स्वकेभ्यो नगरेभ्यः प्रतिनिष्कामन्ति, प्रतिनिष्काम्य यत्रैव अङ्ग जनपदः, यत्रैव चम्पानगरी, यत्रैव चम्पानगरी, यत्रैव कूणिको राजा तत्रैवोपगतः करतल० यावद् वर्धयन्ति ॥७८॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, ते कालाईया दस कुमारा—वे काल आदि दस कुमार, कूणियस्स रन्नो एयमट्ठं सोच्चा—कोणिक राजा के इस अर्थ—आज्ञा को सुनकर, सएसु सएसु रज्जेसु—अपने-अपने राज्य में आए, पत्तेयं पत्तेयं ष्हाया—और आकर प्रत्येक राजकुमार ने स्नान किया, स्नान करके, जाव—यावत्, तिहिं मणुस्सकोडीहिं सिद्धिं—तीन-तीन करोड़ मनुष्यों (सैनिकों) के

साध, संपरिवृडा—संपरिवृत हुए अर्थात् घिरे हुए, सन्धिद्वीप—सर्व ऋद्धियों से युक्त, जाव—यावत्, रवेण—वाद्य-यंत्रों के स्वरों से युक्त होकर, संहितो संहितो नयरेहिन्तो—अपने-अपने नगरों से, पडिनिषखमंति—निकलते हैं और, पडिनिषखमइत्ता—निकल कर, जेणेव अंगा जणवए—जहां अंग जनपद था, जेणेव चंपा नगरी—जहां चम्पा नगरी थी, जेणेव कूणिए राया—जहां राजा कोणिक था, तेणेव उवागया—वहां आए, आकर, जाव—यावत्; करयल० बद्धावैति—दोनों हाथ जोड़ कर जय-विजय शब्दों द्वारा वधाई देते हैं ॥७८॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वे कालादि दश कुमार, राजा कोणिक की आज्ञा को सुनकर अपने-अपने राज्यों में आये । राज्य में आकर प्रत्येक राज कुमार ने स्नान किया । यावत् तीन-तीन हजार हाथियों रथों और तीन करोड़ मनुष्यों (सैनिकों) के साथ संपरिवृत (घिरे) होकर, सर्व ऋद्धि (राज्य वैभव) से युक्त होकर यावत् वाद्य-यंत्रों के शब्दों के साथ अपने-अपने नगरों से निकलते हैं, निकल कर जहां अंग देश की राजधानी चम्पा नगरी थी, वहां कोणिक राजा के पास आते हैं, आकर यावत् दोनों हाथ जोड़कर जय-विजय स्वर से वधाई देते हैं कि महाराज आपकी जय हो ॥७८॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि राजा कोणिक की आज्ञा का पालन करते हुए कालादि दसों भ्राता अपने-अपने नगरों से सैनिक दलबल के साथ अंग देश की राजधानी चम्पा नगरी में आते हैं । प्रस्तुत सूत्र से यह सिद्ध होता है कि मगध देश अलग था, जिस की राजधानी पाटलीपुत्र थी । अंग देश मगध का एक हिस्सा था चम्पा एक प्रमुख नगरी थी । जैन इतिहास की अनेक कथाओं में इसका वर्णन है । इस सूत्र में मगध-साम्राज्य के राजतन्त्र की विशाल सीमा का पता चलता है । प्रत्येक राज कुमार की सैनिक शक्ति, वैभव प्रभुसत्ता का वर्णन भी इस सूत्र से मिलता है । प्राचीन काल में छोटे-छोटे राजा बड़े राजा की आधीनता स्वीकार कर लेते थे । यही बात कोणिक राजा के इतिहास से ज्ञात होती है ॥७८॥

उत्थानिका—तब कोणिक राजा ने क्या किया, अब सूत्रकार इस विषय में कहते हैं—

मूल—तएणं से कूणिए राया कोडुंबियपरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेवकं हत्थिरयणं पडि-कप्पेह, हय-गय-रह-चाउरंगिणि सेणं संनाहेह, ममं एयमाणत्तिथं पच्च-प्पिणह, जाव पच्चप्पिणंति ॥७९॥

ततः खलु स कूणिको राजा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया ! अभिषेकं हस्तिरत्नं प्रतिकल्पयत, हय—गज—रथ—चतुरङ्गिणीं सेनां संनह्यत ममं तामाज्ञां प्रत्यर्पयत यावत् प्रत्यर्पयन्ति ॥७६॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्; से कूणिए राया—वह राजा कोणिक, कौटुम्बिक-पुरिसे सहाबेह सहाबिता—कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है और बुलाकर, एवं वयासी—इस प्रकार कहने लगा, छिप्पामेव भो देवानुप्रिया—हे देवानुप्रिय शीघ्र ही, अभिषेकं हस्तिरत्नं पडिकप्पेह—बैठने योग्य अभिषिक्त हस्ति-रत्न को तैयार करो, हयगयरह चाउरंगिणि सेनं संनाहेह—घोड़े, हाथी, रथ आदि चतुरंगिणी सेना तैयार करो, ममं एयमाणत्तिं पच्चप्पिणह—मेरी इस आज्ञा का पालन करो, जाध पच्चप्पिणन्ति—यावत् वे पुरुष उस कोणिक राजा की आज्ञा को पूरा करते हैं ॥७६॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस राजा कोणिक ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुला कर इस प्रकार आज्ञा प्रदान करते हुए कहने लगा—हे देवानुप्रिय ! शीघ्र ही (मेरे) बैठने योग्य अभिषेक किया हुआ हस्ति-रत्न सुसज्जित (तैयार) करो और इसी तरह अश्व-गज-रथ आदि चार प्रकार की सेना तैयार करो, मेरी आज्ञा पूरी करके मुझे सूचित करो । उसको इस आज्ञा का पालन करते हैं ॥७६॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि राजा कोणिक ने देखा कि उसके दस भाई अपनी अपनी सेना लेकर चम्पा आ गए हैं । तब कोणिक ने अपने सेवकों को आज्ञा दी कि वे भी एक अभिषेक किया हुआ बैठने योग्य हाथी तैयार करें, साथ में चारों प्रकार की सेना को तैयार रहने का आदेश दो । सेवकों ने कोणिक की आज्ञा का पालन किया । हस्तिरत्न का अर्थ है प्रमुख हाथी । इसलिए इसे गज-रत्न भी कहा गया है ।

चतुरंगिणी सेना का वर्णन औपपातिक सूत्र में विस्तार से मिलता है, अतः जिज्ञासुओं को उस सूत्र का स्वाध्याय करना चाहिये ।

उत्थानिका—तत्पश्चात् कोणिक राजा ने क्या किया अब सूत्रकार इस विषय में कहते हैं—

मूल—तएणं से कूणिए राया जेणेव मज्जणधरे तेणेव उवागच्छइ जाव पडिनिगच्छिता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जाव वरवई दुरुद्धे ।

तएणं से कूणिए राया तिहिं दंतिमहस्सेहिं जाव रवेणं चंपं नयारिं
मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कालादीया दस कुमारा
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कालाइएहिं दसहिं कुमारेहिं सद्धि एगओ
मेलायंति ॥८०॥

छाया—ततः खलु स कूणिको राजा यत्रैव मज्जनगृहं तत्रैवोपागच्छति यावत् प्रतिनिर्गत्य
यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला यावत् नरपतिर्दुरुढः ।

ततः खलु स कूणिको राजा त्रिभिर्दन्तिसहस्रैः यावत् चम्पां नगरीं मध्यं—मध्येन निर्गच्छति,
निर्गत्य यत्रैव कालादिकाः दश कुमारास्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य कालादिकैर्दशभिः कुमारैः सार्द्ध-
मेकतो मिलति ॥८०॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से कूणिए राया—वह कोणिक राजा, जेणेव मज्जनघरे—
जहां स्नान-घर था, तेणेव उवागच्छइ—वहां आता है, जाव—यावत् स्नानादि से निवृत्त होकर
पडिनिग्गच्छित्ता—राज महल से निकल कर, जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला—जहां बाह्य उपस्थान
शाला थी, जाव—यावत्, नरवई दुरुढे—नरपति कूणिक अभिषिक्त हस्ति पर बैठ गया ।

तएणं—तत्पश्चात्, से कूणिए राया—वह कोणिक राजा, जाव—यावत्, तिहिं दंति
सहस्सेहिं—तीन हजार हाथियों के साथ, रवेणं—वाद्य-यंत्रों के स्वरो के साथ, चम्पा नयारिं मज्झं-
मज्झेणं—चम्पा नगरी के मध्य-मध्य से होता हुआ, निग्गच्छइ—निकलता है, निग्गच्छित्ता—और
निकल कर, जेणेव कालाईया दस कुमारा—जहां कालादि दश कुमार थे, तेणेव उवागच्छइ—वहां
आता है, उवागच्छित्ता—आकर, कालाइएहिं कुमारेहिं सद्धि एगओ मेलायन्ति—कालादि दश
कुमारों के साथ एकत्रित होता है, अर्थात् सब भाई इकट्ठे मिल जाते हैं ॥८०॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् राजा कोणिक जहां स्नान-घर था वहां आता है, यावत्
स्नानादि क्रियाओं से निवृत्त होकर, राजमहल से निकलता है और निकल कर जहां बाहिर
उपस्थान शाला (राज-सभा) थी वहां आता है । फिर वहां आकर यावत् कोणिक राजा
हाथी पर सवार होता है । फिर कोणिक राजा तीन हजार हाथियों के साथ यावत् वाद्य-
यंत्रों के स्वरो के साथ चंपानगरी के बीचों-बीच होता हुआ आता है, आकर कालादि दश
कुमारों के समूह के साथ एकत्रित होता है, अर्थात् भाइयों के साथ मिल जाता है ॥८०॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में राजा कोणिक की युद्ध सम्बन्धी तैयारी का परम्परागत ढंग से वर्णन है। राजा कोणिक ने पहले स्नान किया, फिर उपस्थान शाला (सभा-मण्डप) में आता है फिर हाथी पर आरुढ़ होकर, वाद्य-यंत्रों व चतुरंगिणी सेना से घिरा हुआ वहां आता है जहां कालादि दश कुमार पड़ाव डाले हुए थे। राजा कोणिक के साथ तीन-तीन हजार घोड़े, हाथी व अश्व थे। इस प्रकार की सैनिक तैयारी को समग्र वर्णन श्रौतपातिक सूत्र में मिलता है ॥८०॥

उत्थानिका—सूत्रकार अब इस विषय में आगे क्या कहते हैं ?

मूल—तएणं से कूणिए राया तेत्तीसाए दन्तिसहस्सेहिं, तेत्तीसाए आससहस्सेहिं, तेत्तीसाए रहसहस्सेहिं, तेत्तीसाए मणुस्सकोडीहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्विद्धीए जाव रवेण सुभेहिं वसहिपायरासेहिं नाइविप्पगिट्ठेहिं अंत-रावासहिं वसमाणे-वसमाणे अंगजणवयस्स मज्झं-मज्झेणं जेणेव विदेहे जणवए जेणेव वेसाली नयरी तेणेव पहारित्थ गमणाए ॥८१॥

छाया—ततः खलु स कूणिको राजा त्रयस्त्रिंशतैः दन्तिसहस्रैः, त्रयस्त्रिंशताः वसहस्रैः, त्रयस्त्रिंशतैः रथसहस्रैः, त्रयस्त्रिंशतैः मनुष्यकोटिभिः सार्द्धं संपरिवृतः सर्वद्वर्षा यावद् रवेण शुभैर्ब-सतिप्रातराशौ —नातिविप्रकृष्टैरन्तरावासैः वसन् वसन् अङ्गजनपदस्य मध्यमध्येन यत्रैव विदेहो जनपदः यत्रैव वेसाली नगरी तत्रैव प्राधारयद् गमनाय ॥८१॥ ।

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से कूणिए राया—वह राजा कोणिक, तेत्तीसाए दन्ति-सहस्सेहिं—३३ हजार हाथियों के साथ, तेत्तीसाए आससहस्सेहिं—तेत्तीस हजार अश्वों के साथ, तेत्तीसाए रहसहस्सेहिं—तेत्तीस हजार रथों, तेत्तीसाए मणुस्सकोडीहिं—तेत्तीस करोड़ मनुष्यों (सैनिकों) सद्धिं—साथ, संपरिवुडे—संपरिवृत हुआ यावत् घिरा हुआ, जाव—यावत्, सव्विद्धीए रवेणं—वाद्य-यंत्रों के स्वर घोष के साथ सर्व ऋद्धि युक्त, सुभेहिं—शुभ बस्तियों में पड़ाव करता हुआ, वसहिपाय-रासेहिं—प्रातःकालीन जल-पान आदि करता हुआ, नाइविप्पगिट्ठेहिं—अधिक न चलते हुए, अन्तरावासैहिं वसमाणे, वसमाणे—रास्ते में पड़ाव डालता हुआ, अंगजणवयस्स मज्झंमज्जेणं—अंग देश के बीचों-बीच, जेणेव विदेह जणवए—जहां विदेह जनपद था, जेणेव वेसाली नयरी—जहां वेसाली नगरी थी, तेणेव पहारित्थ गमणाए—वहां जाने के लिए तैयार हुआ अर्थात् उसने वेसाली नगरी की ओर प्रस्थान किया ॥८१॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् राजा कोणिक ३३ हजार हाथियों ३३ हजार अश्वों, ३३ हजार रथों, ३३ करोड़ सैनिकों से घिरा हुआ यावत् अपनी समस्त ऋद्धि के साथ विभिन्न

वाद्य-यंत्रों के स्वरो सहित, मंगलमय स्थानों पर पड़ाव डालता हुआ निकला, फिर सुबह के भोजन को ग्रहण करता हुआ, अधिक यात्रा न करके मार्ग में पड़ाव डालता हुआ, विश्राम करता हुआ अंग देश के बीचों-बीच होकर, जहां विदेह देश की वैशाली नगरी थी वहां जाने के लिये उसने प्रस्थान किया ॥८१॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में राजा कोणिक का कालादि दश भाइयों व उनकी विशाल सेनाओं के साथ युद्ध में उतरने का वर्णन है। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि राजा कोणिक ने विदेह देश पर सीधा आक्रमण नहीं किया, बल्कि वह आराम से रास्ते में पड़ाव डालता हुआ विदेह देश की राजधानी वैशाली की सीमा पर पहुंचा। उसने आते ही युद्ध प्रारम्भ नहीं किया। प्राचीन काल में निरपराधी लोग युद्ध में न मारे जायें इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था और युद्ध निश्चित मैदानों में ही लड़ा जाता था ॥८१॥

उत्थानिका—जब कोणिक राजा ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया तो वैशाली नरेश चेटक ने क्या किया ? अब इसका वर्णन सूत्रकार प्रस्तुत सूत्र में करते हैं।

मूल—तएणं से चेडए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाने नवमल्लइ-
नवल्लेच्छइ-कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो सद्दावेइ, मद्दावित्ता
एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया ! वेहल्ले कुमारे कूणियस्स रन्नो
असंविदित्ते णं सेयणं गन्धहत्थि अट्ठारसबं कं च हारं गहाय इहं हव्व-
मागए, तए णं कूणिएणं सेयणस्स अट्ठारसबं कस्स य अट्ठाए तओ
दूया पेसिया, ते य मए इमेणं कारणेणं पडिसेहिया ।

तएणं से कूणिए ममं एयमट्ठं अवडिसुणमाणे चाउरंगिणीए सेणाए
सिद्धिं संपरिवुडे जुज्झसज्जे इहं हव्वमागच्छइ, तं किं नु देवाणुप्पिया !
सेयणं अट्ठारसबं कं च कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणामो ? वेहल्लं कुमारं
पेसेमो ? उदाहु जुज्झित्था ॥८२॥

छाया—ततः खलु स चेटको राजा अस्याः कथाया लब्धार्थः सन् नवमल्लकि—नवल्लिच्छवि—
काशी—कौशलकान् अष्टादशापि गण-राजान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—एवं खलु देवानु-
प्रियाः ! वेहल्लः कुमारः कूणिकस्य राज्ञः असंविदितेन सेयनकं गन्धहस्तिनमष्टादशवक्त्रं च हारं गृहीत्वा

इह हव्यमागतः । ततः खलु कूणिकेन सेचकस्य अष्टादशवक्रस्य चार्थाय त्रयो दूताः प्रेषिताः, ते च मयाऽनेन कारणेन प्रतिषिद्धाः । ततः खलु स कूणिको मम एतमर्थमप्रतिशृण्वन् चातुरङ्गिण्या सेनया सार्द्धं संपरिवृतः युद्धसज्ज इह हव्यमागच्छति, तत् किं नु देवानुप्रियाः । सेचनकमष्टादशवक्रं च कूणिकाय राज्ञे प्रत्यर्पयामः, वेहल्लं कुमारं प्रेषयामः ? उताहो युध्यामहे ? ॥८३॥

पदार्थान्वयः—तएण—तत्पश्चात्, से चेडए राया—वह राजा चेटक, इमीसे कहाए लड्डु समाणे—इस कथा (समाचार) के प्राप्त होने पर, नव मल्लई—नव मल्ल जाति के, नव लेच्छई—नव लिच्छवि जाति के, कासीकोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो सट्ठावेइ सट्ठावित्ता—काशी कौशल देशों के अठारह गण-राजाओं अर्थात् गणराज्य-प्रमुखों को बुलवाता है और बुलवाकर, एवं वयासी—इस प्रकार कहता है, एवं खलु देवानुप्पिया—इस प्रकार हे देवानुप्रियो निश्चय ही, वेहल्ले कुभारे—वेहल्ल कुमार, कूणियस्स रन्नो—कोणिक राजा को, असंविदित्ते ण—बिना किसी पूर्व सूचना के, सेयणं अट्ठारसबंकं च हारं गहाय इह हव्यमागए—सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ियों वाला वक्र हार ग्रहण करके शीघ्र ही यहां आ गया है, तएण—तत्पश्चात्, कूणिएण सेयणमस्स अट्ठारसबंकस्स य अट्ठाए—कोणिक राजा ने उस सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ियों के हार को लौटाने केलिये, तओ दूया पेसिया—तीन दूत भेजे, ते य मए इमेणं कारणेणं पडिसेहिया—मैंने इस कारण से उनका प्रतिषेध कर दिया, अर्थात् उन्हें वापिस लौटा दिया ।

तएण—तत्पश्चात्, से कूणिए राया—उस कोणिक राजा ने, ममं एयमट्ठं—मेरे इस अर्थ को, अपडिस्तुणमाणे—स्वीकार न करते हुए (न सुनते हुए), चातुरङ्गिणीए सेणाए सद्धि संपरिवुडे—चतुरङ्गिणी सेना से घिरा हुआ, जद्धसज्जे इह हव्यमागच्छइ—यहां शीघ्र ही युद्ध के लिये सुसज्जित होकर आ रहा है, तं किं नु देवानुप्पिया—तो क्या हे देवानुप्रियो !, सेयणं गंधहत्थि अट्ठारसबंकं हारं च—सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाला हार, कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणामो—कोणिक राजा को वापिस लौटा दूं ? वेहल्लं कुमारं पेसेमो—वेहल्ल कुमार को भी वापिस लौटा दूं, उदाहु जुज्झित्था—अथवा उसके साथ युद्ध करूं ॥८३॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह राजा चेटक यह समाचार प्राप्त होने पर अर्थात् ज्ञात होने पर उसने नव मल्ली, नव लिच्छवि, काशी, कौशल देशों के अठारह राजाओं को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा कि—हे देवानुप्रियो ! इस प्रकार निश्चय हो वेहल्ल कुमार राजा कोणिक को बिना सूचित किए सेचनक गंधहस्ती व अठारह लड़ियों वाले हार के साथ यहां शीघ्रता से आ गया है । तत्पश्चात् कोणिक राजा ने सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाले हार के लिये तीन दूत भेजे । मैंने उनको इस कारण इस

दिया अर्थात् वस्तुएं लौटाने से इन्कार कर दिया । तत्पश्चात् कोणिक राजा मेरे इस अर्थ बात को न स्वीकार करते हुए चतुरंगिणो सेना से संपरिवृत (घिरा हुआ) युद्ध के लिए तैयार होकर यहां शीघ्र आ रहा है । हे देवानुप्रियो ! क्या मैं सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाला हार उसे वापिस लौटा दू ? वेहल्ल कुमार को भी वापिस भेज दू ? अथवा उससे युद्ध करूं ?

टीका—प्रस्तुत सूत्र में बतलाया गया है कि जब वंशाली गणतन्त्र के प्रमुख राजा चेटक को ज्ञात हुआ कि कोणिक अपने दस भाइयों व विशाल सेना के साथ इधर आ रहा है तो उस चेटक राजा ने नवमल्ल—नव लिच्छवि, काशी-कौशल देशों के अठारह गणराजाओं को वंशाली में बुलवाया । प्राचीन काल में छोटे-छोटे राजा मिलकर गण-परिषद् बनाते थे जो युद्ध आदि के समय अपनी-अपनी सेनाओं के साथ आकर युद्ध में भाग लेते थे । राजा चेटक उन सभी राजाओं का प्रमुख था । उसने सभी राजाओं को वस्तु-स्थिति से अवगत कराया । राजा चेटक ने कहा “हे देवानुप्रियो ! वेहल्ल कुमार सपरिवार बिना किसी को बताए सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाला हार लेकर मेरी शरण में आया है । ये वस्तुयें राजा श्रेणिक ने अपने जीवन-काल में ही वेहल्ल कुमार को दी थीं, इसलिए कोणिक राजा का इन पर कोई अधिकार नहीं है । इन वस्तुओं के लिये राजा कोणिक ने तीन दूत भेजे । मैंने इन दूतों की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया । इन बातों-से स्पष्ट होता है कि प्रांतीय गणराज्यों में निर्णय सर्व-सम्मति या बहुमत से किए जाते थे । इन सूत्रों से राजा चेटक की शरणाग्र-रक्षा की भावना भी झलकती है, फिर चेटक राजा उन गणराजाओं से पूछता है कि क्या हमें युद्ध करना उचित है ? या वेहल्ल कुमार सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाले हार की वापिसी उचित है ॥८२॥

उत्थानिका—चेटक राजा को इन गणराजाओं ने क्या उत्तर दिया, अब सूत्रकार इसी विषय में कहते हैं—

मूल—तएणं नवमल्लइ-नवलच्छइ-कासी-कोलसगा अट्ठारस वि गणरायाणो चेडगं रायं एवं वयासी-न एयं सामी ! जत्तं वा पत्तं वा अम्हे कूणिणं रण्णो सद्धिं जुज्झामां कं कूणियस्स रत्तो पच्चप्पिणिज्जइ, वेहल्ल य कुसारे सरणाम्हा पत्तिज्जइ, ते एव मे कूणिं राया चाउ-रंगिणोए सेणाय सद्धिं संपरिवुडे जुज्झसज्जे इहं हव्वमाणच्छइ, तो जं अम्हे कूणिणं रण्णा सद्धिं जुज्झामो ॥८३॥

छाया—ततः खलु नवमल्लकि—नवलेच्छकि—काशी—कौशलका अष्टादशापि गणराजाश्चेटकं राजानमेवमवादिषुः—नैतत् स्वामिन् ! युवतं वा, प्राप्तं वा राजसदृशं वा यत्खलु सेचनकमष्टाशवकं कूणिकाय राज्ञे प्रत्यर्प्यते, वेहल्लश्च कुमारः शरणागतः प्रेष्यते, तत् यदि खलु कूणिको राजा चातुरङ्गिया सेनया सार्द्धं संपरिवृतो युद्धमञ्ज इह हव्यमागच्छति तदा खलु वयं कूणिकेन राजा सार्द्धं युध्यामहे ॥८३॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात् नवमल्लइ-नवलेच्छइ—नव मल्ली व नव लिच्छवि, काशी कोसलगा अठारस वि गणरायाणो—काशी-कौशल के अठारह गणराजा, चेडगं राय एवं वयासी—राजा चेटक से इस प्रकार बोले, न एयं सामी—हे स्वामी ! इस प्रकार न करें, क्योंकि जुत्तं वा पत्तं वा—यह उपयुक्त नहीं, अर्थात् ठीक नहीं है, और न्याय से प्राप्त को लोटाना, रायसरिसं वा—राजा के योग्य नहीं है, जं णं—जो कि आप, सेयणं अठारसबंकं कूणियस्स रत्नो पच्चप्पिणिज्जइ—जैसे कि सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाला हार कोणिक राजा को वापिस लौटा रहे हैं, वेहल्ले य कुमारे सरणागए पेसिज्जइ—शरणागत वेहल्ल कुमार को वापिस भेज रहे हैं, तं जइणं कूणिए राया—तो यदि कोणिक राजा, चातुरङ्गिणीए सेणाए सार्द्धं संपरिवृडे जुज्झसज्जे इहं हव्वमागच्छइ—चतुरङ्गिणी सेना से संपरिवृत होता हुआ युद्ध के लिए सुसज्जित होकर यहां शीघ्र ही आ रहा है, तएणं अम्हे कूणिएणं रत्ना सार्द्धं जुज्झामो—तो हम कोणिक राजा के साथ युद्ध करेंगे ॥८३॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वे नव मल्ल जाति के, नव लिच्छवी जाति के एवं काशी तथा कौशल देश के अठारह गणराज्य चेटक राजा के प्रति इस प्रकार कहने लगे—हे स्वामिन् यह युवत (योग्य) नहीं है, न्याय से प्राप्त को लौटाना उचित नहीं है। यह राजा के योग्य भी नहीं है कि सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ियों के हार को कोणिक राजा को वापिस कर दिया जाये। साथ में शरण में आए हुए वेहल्ल कुमार को वापिस भेज दिया जाये। हे स्वामिन्। यदि कोणिक चतुरङ्गिणी सेना से संपरिवृत हुआ युद्ध के लिये सुसज्जित होकर, शीघ्र ही यहां आ रहा है, तो हम कोणिक राजा के साथ युद्ध करेंगे ॥८३॥

टोका—प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि जब नव मल्ली नव लिच्छवि, काशी-कौशल देशों के अठारह राजाओं ने अपने गण-प्रमुख की बात सुनी, तो आपस में विचार-विमर्श किया। सभी राजा न्याय-प्रिय थे। शरण में आए शरणागत की रक्षा करने व राजा के कर्तव्यों से मल्ली भान्ति अवगत थे। सभी आपसी विमर्श के बाद राजा चेटक के पास आए और आकर निवेदन किया—हे स्वामी ! यह बात उचित नहीं है न ही न्याय से प्राप्त को लौटाना उचित माना जा सकता है क्योंकि गुणवान व्यक्ति अयोग्य कार्य नहीं कर सकता। यह बात न ही राजा के योग्य है कि

शरणागत को शरण न दी जाए। यदि कोणिक युद्ध के लिये आ रहा है तो हम सब युद्ध के लिए तैयार हैं। पर शरणागत को लौटाना किसी भी तरह ठीक नहीं।

प्रस्तुत सूत्र से सिद्ध होता है कि सभी राजा महाराजा चेटक को अपना प्रमुख मानते थे। यह बात उनके द्वारा प्रयुक्त निम्नलिखित शब्दों से सिद्ध हो रही है।

“न एयं सामी ! जुत्तं वा पत्तं वा रायसरिसं वा”

“हे स्वामिन् !” यह सम्बोधन इस बात को सिद्ध करता है। जबकि राजा चेटक उन्हें देवानुप्रिय—शब्द से सम्बोधित करता है। प्रस्तुत सूत्र में सभी राजा अपने स्वामी के प्रति निष्ठा प्रकट करते हैं ॥८३॥

उत्थानिका—उन गण राज्यों को चेटक राजा ने आगे क्या कहा, अब सूत्रकार इस विषय में आगे कहते हैं—

मूल—तए णं से चेडए राया ते नवमल्लइ-नवलेच्छइ-कासी-कोसलगा
अट्ठारस वि गणरायाओ एवं वयासी—जइणं देवानुप्रिया ! तुभे कूणिएणं
रत्ना सद्धि जुज्झइ, तं गच्छह णं देवानुप्रिया ! । सएसु-सएसु-रज्जेसु ण्हाया
जहा कालादीया जाव जएणं विजएणं वद्धावेत्ति ॥८४॥

छाया—ततः खलु सः चेटको राजा तान् नवमल्लकि—नवलेच्छकि—काशी-कौशलकान्
अष्टादशसि गणराजान् एवमवादीत्—यदि खलु देवानुप्रियाः ! यूयं कूणिकेन राजा सार्द्धं युध्यध्वं,
तद् गच्छत खलु देवानुप्रियाः ! स्वकेषु स्वकेषु राज्येषु, स्नाता कालादिका यावद् जयेन विजयेन
वर्द्धयन्ति ॥८४॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से चेडए राया—वह राजा चेटक, नव मल्लई, नव
लेच्छइ, कासी कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाओ एवं वयासी—नवमल्ली, नव लिच्छवी, काशी
कौशल आदि देशों के अठारह गणराजाओं के प्रति इस प्रकार कहने लगा जइ णं देवानुप्रिया—यदि
हे देवानुप्रियो ! तुभे कूणिएणं रत्ना सद्धि जुज्झइ—आप कोणिक राजा के साथ युद्ध करना चाहते
हो, तं गच्छह णं देवानुप्रिया—देवानुप्रियो (आप) जाओ, सएसु सएसु रज्जेसु—अपने अपने
राज्यों में, ण्हाया—स्नानादि क्रियाएँ करके, जहा—जैसे, कालादिया—कालादि दश कुमार
कोणिक पास) आए थे, जाव—यावत्, जएणं विजएणं वद्धावेत्ति—राजा चेटक के समीप जय-विजय
शब्दों से बधाई देते हैं (वैसा आप भी करें) ॥८४॥

सूत्रकार ने वर्णन प्रारम्भ किया—तत्पश्चात् वह राजा चेटक उन नव मल्ली, नव लिच्छवि, काशी कौशल

देशों के अठारह गणराजाओं को इस प्रकार कहने लगा—हे देवानुप्रियो ! आप लोग पहले अपने-अपने राज्यों में जाओ और स्नानादि क्रियायें करो । जैसे कालादि दश कुमार राजा कोणिक के पास आए हैं इसी प्रकार वे राजा लोग चेटक के पास जय - विजय शब्दों के साथ वधाई देते हुई लौट आए ।

टीका—सभी गणराजाओं ने जब युद्ध के प्रति अपनी सहमति प्रदान की तो वंशाली गण-राज्य प्रमुख राजा चेटक ने अपने यहां आए नव मल्ली, नव लिच्छवि काशी-कौशल देशों के अठारह गणराजाओं से कहा “कि आप भी युद्ध की तैयारी करें” सभी राजा अपने अपने प्रदेश में जाते हैं फिर सैनिक दल-बल के साथ राजा चेटक के पास आते हैं । सूत्रकार का कथन है कि इन राजाओं की युद्ध की तैयारी व राजा चेटक के पास आने का वर्णन कालादि दश कुमारों की तरह है जिसका सूत्रकार ने वर्णन पहले कर दिया है ॥८४॥

मूल—तए णं से चेडए राया कोडुम्बियपुरिसे सहावेइ, सहाविता एवं वयासी-अभिसेक्कं जहा कूणिए जाव दुरूढे ॥८५॥

छाया—ततः खलु स चेटको राजा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवाचीत्—अभिषेक्य यथा कूणिको यावद् दुरूढः ॥८५॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से चेडए राया—वह राजा चेटक, कोडुम्बियपुरिसे सहावेई सहाविता—अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है और बुलाकर, एवं वयासी—इस प्रकार कहने लगा, अभिसेक्कं जहा कूणिए जाव दुरूढे—हे देवानुप्रिय अभिषेक युक्त हस्तिरत्न को तैयार करो, जिस प्रकार कोणिक राजा हाथी पर आरूढ़ हुआ, यावत् उसी प्रकार चेटक भी हाथी पर सवार हो गया ॥८५॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह राजा चेटक कौटुम्बिक पुरुषों अर्थात् अपने अधिकारी वर्ग को बुलाकर आज्ञा प्रदान करता है—हे देवानुप्रियो ! अभिषिक्त हाथी लाने की तैयारी करो । (यहां हाथी पर आरूढ़ होने तक का समस्त वर्णन राजा कोणिक की तरह जानना चाहिए), अर्थात् राजा चेटक भी वैसे ही हस्ती-रत्न पर आरूढ़ हुआ ।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में राजा चेटक की युद्ध-स्थल में जाने की तैयारी का वर्णन किया गया है। राजा चेटक युद्ध के योग्य हाथी को तैयार करने की अपने सेवकों को आज्ञा देता है। सेवक आज्ञा का पालन करते हुए हाथी तैयार करके प्रस्तुत करते हैं। राजा चेटक भी राजा कोणिक की तरह उस हाथी पर सवार होता है ॥८५॥

उत्थानिका—अब सूत्रकार पूर्वोक्त विषय में ही पुनः कहते हैं—

मूल-तएणं से चेडए राया तिहि दंतिसहस्सेहि जहा कूणिए जाव
वेसाति नयरि मज्झं-मज्झेणं निगच्छइ निगच्छित्ता जेणेव ते नवमल्लइ-
नवलेच्छइ-कासी-कोसलगा अटठारस वि गणरायाणो तेणेव उवागच्छइ ।

तएणं से चेडए राया सत्तावन्नाए दंतिसहस्सेहिं, सत्तावन्नाए आस-
सहस्सेहिं, सत्तावन्नाए रहसहस्सेहिं सत्तावन्नाए मणुस्सकोडोएहिं सद्धि
संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव रवेणं सुभेहिं वसहिं पायरासेहिं नातिविण्ण-
गिट्ठेहिं अंतरेहिं वसमाणे-वसमाणे विदेहं जणवयं मज्झं-मज्झेणं जेणेव
देसपंतं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता खंधावारनिवेसणं करेइ, कूणियं
रायं पडिवालेमाणे जूज्झ-सज्जे चिट्ठइ ॥८६॥

छाया—ततः खलु स चेदको राया त्रिभिर्दन्तिमस्त्रैर्यथा कणिको याधद् वैशाली नगरीं मध्य-
मध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव ते नवमल्लकी - नवलेच्छकी-काशी-कौशलका अष्टादशपि गणराजा-
स्तत्रैवोपागच्छति ।

ततः खलु स चेदको राजा सप्तपञ्चाशता दन्तिसहस्रं सप्तपञ्चाशता अश्वसहस्रं, सप्त-
पञ्चाशता रथसहस्रं, सप्तपञ्चाशता मनुष्यकोटिभिः सार्द्धं संपरिवृतः सर्वर्द्ध्या यावद् रवेण शुभ्रैर्वा-
सतिप्रातराशेर्नान्तिविप्रकृष्टैरन्तरैर्वसन् वसन् विदेहं जनपदं मध्यं-मध्येन यत्रैव देशप्रान्तस्तत्रैवोपागच्छति,
उपागत्य स्कन्धावारनिवेशनं करोति, कृत्वा कणिकं राजानं प्रतिपालयन् युद्धसज्जस्तिष्ठति ॥८६॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से चेडए राया—वह राजा चेटक, तिहि बन्तिसहस्सेहि—तीन हजार हाथियों के साथ, जहा कृणिए जाव—जैसे कोणिक राजा यावत्, वेसालियरि मज्झं-मज्झेणं निगच्छइ निगच्छित्ता—वैशाली नगरी के बीचों-बीच होता हुआ आता है और आकर; जेणेव ते नव मल्लइ, नव लेच्छइ अट्ठारस वि गणरायाणो—नव मल्ली, नव लिच्छवी और काशी कौशल देशों के अठारह गणराजा थे, तेणेव उवागच्छइ—वहीं पर आता है।

तएणं—तत्पश्चात्, चेडए राया—फिर वह राजा चेटक, सत्तावन्नाएदन्ति-सहस्सेहि सत्ता-
वन्नाए आससहस्सेहि, सत्तावन्नाए रहसहस्सेहि, सत्तावन्नाए मणुस्सकोडीहि सद्धि संपरिवुडे—सत्तावन
हजार हाथियों, सत्तावन हजार घोड़ों, सत्तावन हजार रथों और सत्तावन करोड़ मनुष्यों (सैनिकों)
से घिरा हुआ, सन्निवड्डीए जाव—यावत्, रवेणं—सर्व ऋद्धि-युक्त यावत् वाद्य यंत्रों के स्वरों के
साथ, सुभेहि वसहीहि—शुभ वस्तियों में पड़ाव डालता हुआ, पायरासेहि—प्रातःकालीन जल-
पानादि करता हुआ, नाइविप्पगिट्ठेहि अन्तरेहि वसमाणे वसमाणे—अति लम्बा रास्ता न तह
करता हुआ, मार्ग में पड़ाव डाल कर निवास करता हुआ, विदेहं जणवयं मज्झमज्जेणं—विदेह देश
के बीचों-बीच से होता हुआ, जेणेव देसपन्ते—जहां देश की सीमा थी, तेणेव उवागच्छइ, उवा-
गच्छत्ता—वहां आता है और आकर, खन्धावार - निवेशन करेइ—सेना का पड़ाव डालता देता है
और, कूणियरायं पडिवालेमाणे जुद्धसज्जे चिट्ठइ—और राजा कोणिक की प्रतीक्षा करता हुआ
युद्ध-क्षेत्र में आकर ठहर जाता है ॥८६॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह राजा चेटक तीन हजार हाथियों के साथ, जैसे कोणिक
राजा यावत् चम्पा नगरी के मध्य में से होता हुआ, निकलता है, (वैसे ही यह भी
वंशाली नगरी से निकला) और निकलकर, जहां वे नवमल्ली नवलिच्छवी काशी कौशल
देश के अठारह गण राजा उपस्थित थे वहां आया और वहां आकर वह राजा चेटक
सत्तावन हजार हाथी, सत्तावन हजार घोड़े, सत्तावन हजार रथ, सत्तावन करोड़ मनुष्यों
(सैनिकों) के साथ घिरा हुआ यावत् सर्व ऋद्धि युक्त वाद्य यंत्रों के शब्दों के साथ
शुभ स्थानों पर पड़ाव डालता हुआ प्रातःकालीन भोजन ग्रहण करते हुए लम्बी यात्रा
न करता हुआ विदेह देश के बीचों-बीच से होता हुआ जहां अपने राज्य की सीमा थी,
वहां आता है और वहां आकर सेना का पड़ाव डालता है । अब वह राजा कोणिक की
प्रतीक्षा करता हुआ युद्ध के लिये ठहर जाता है ॥८६॥

टीका—राजा चेटक अपनी सेना के साथ चलता हुआ जहां पर नवमल्ली नव लिच्छवी
अठारह काशी कौशल आदि के अन्य गणराजा थे उनसे आकर मिला । चेटक उनका प्रमुख राजा
था, इसलिए राजा चेटक विशाल सेना के साथ सुसज्जित होकर विदेह देश की सीमा पर आ
पहुंचा और वहां कोणिक राजा की युद्ध के लिये प्रतीक्षा करने लगा ॥८६॥

उत्थानिका—तत्पश्चात् क्या हुआ ? अब सूत्रकार इसी विषय में कहते हैं—

मूल—तएणं से कूणिए राया सन्निवड्डीए जाव रवेणं जेणेव देसपन्ते

तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता चेडयस्स रन्नो जोयणंतरियं खंधावार-
निवेशं करेइ ।

तएणं से दोन्नि वि रायाणो रणभूमिं सज्जावेत्ति, सज्जावित्ता रण-
भूमिं जयंति ॥८७॥

छाया—ततः खलु स कूणिको राजा सर्वद्वर्षा यावद् रवेण यत्रैव देशप्रान्तस्तत्रैवोपागच्छति
उपागत्य चेटकस्य राज्ञो योजनान्तरितं स्कन्धावारनिवेशं करोति ।

ततः खलु तौ द्वावपि राजानौ रणभूमिं सज्जयतः, सज्जयित्वा रणभूमिं यातः ॥८७॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से कूणिए राया—वह राजा कोणिक, सध्विड्डोए जाव
रवेणं—यावत् सर्व ऋद्धि-युक्त एवं वाद्य-यन्त्रों के स्वरो के साथ, जेणेव देसपन्ते तेणेव, उवागच्छइ
उवागच्छिता—जहां मगध देश की सीमा थी वहां वह आया और आकर, चेडयस्स रन्नो जोय-
णन्तरियं—राजा चेटक के एक योजन के अन्तर से, रवन्धावारनिवेशं करेइ—सेना का स्कन्धावार
अर्थात् सैनिक छावनी को ठहराता है ।

तएणं—तत्पश्चात्, ते दोन्नि वि रायाणो रणभूमिं सज्जावेत्ति सज्जावित्ता—वे दोनों राजा
रणभूमि को सजाते हैं अर्थात् व्यूह-रचना करते हैं, और सजा कर, रणभूमिं जयंति—रण भूमि में
जीतने की इच्छा करते हैं ॥८७॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् राजा कोणिक सर्व ऋद्धि-युक्त यावत् वाद्य-यन्त्रों के साथ
जहां मगध देश की सीमा थी वहां आया और आकर राजा चेटक से एक योजन की
दूरी पर अपनी सेना का पड़ाव डाल दिया ।

तत्पश्चात् वे दोनों राजा रणभूमि को शुद्ध करते हैं, अर्थात् झाड़-झंखाड़ साफ कर
युद्ध के योग्य व्यूह बनाते हैं, शुद्ध करके, रण-भूमि में जीतने की इच्छा से आते हैं ॥८७॥

टीका—तब वह राजा कोणिक सर्व राजकीय ऋद्धियों के साथ यावत् वाद्य-यन्त्रों की
ध्वनियों के साथ मगध देश की सीमा पर पहुंचकर राजा चेटक से एक योजन के अन्तर पर स्कन्धा-
वार अर्थात् अपनी सैनिक छावनी डाल देता है । सारांश यह कि उसने राजा चेटक से एक योजन
की दूरी पर अपना स्कन्धावार स्थापित किया । एक योजन के कहने का सारांश यह है कि दोनों
देशों की एक-एक योजन भूमि में युद्ध करने का निश्चय किया गया था और 'देशपत' इस पद से

यह सूचित किया है कि अपने-अपने देश की सीमा पर दोनों राजाओं की सेनाएँ स्थित हो गई थीं। यह योजन-भूमि दोनों पक्षों की ओर से निश्चित की गई होगी। क्योंकि तत्कालीन युद्ध के नियमानुसार जो राजा दूसरे की सीमा में प्रविष्ट होकर युद्ध करते हुए आगे बढ़ जाता था उसे ही विजयी माना जाता था।

प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि दोनों राजाओं की सेना युद्ध-परम्परा के अनुसार युद्ध-भूमि को शुद्ध करती है। जिस प्रकार मत्तल मत्तलयुद्ध के लिये अपना-अपना स्थान (अखाड़ा) शुद्ध करते हैं ठीक उसी प्रकार दोनों राजाओं ने रणभूमि को शुद्ध किया—एक योजन भूमि को ठीक किया—काटे, झाड़ियाँ आदि साफ की गईं। जिससे सेना शीघ्रता से आगे बढ़ सके। इस प्रकार साफ की हुई रण-भूमि में पहुँच कर वे युद्ध के लिये सुसज्जित होने लगे ॥८७॥

उपनिषत्—फिर पूर्वोक्त विषय में कहते हैं—

मूल—तएणं से कूणिए तेत्तीसाए दन्तिसहस्सेहि जाव मणुस्सकोडीहिं गरुलवूहं रइए, रइत्ता गरुलवूहेणं संगामं उवायाए ॥८८॥

छाया—ततः खलु स कूणिकस्त्रयस्त्रिशता दन्तिसहस्रैर्यावन्मनुष्यकोटिभिर्गरुडव्यूहं रचयति, रचयित्वा गरुडव्यूहेन रथमश्वसं संग्राममुपायातः ॥८८॥

पदार्थाश्वयः—तएणं से कूणिए—तत्पश्चात् व राजा कोणिक, तेत्तीसाए दन्तिसहस्सेहिं—तैंतीस हजार हाथियों के सहित, जाव—यावत्, मणुस्सकोडीहिं—एक करोड़ सैनिकों सहित, गरुलवूहेणं—गरुड व्यूह रच कर, रइ-मसल संगामं, उवायाए—रथ मसल संग्राम के लिये ग्रा गया ॥८८॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस राजा कोणिक ने तैंतीस हजार हाथियों एवं तैंतीस-तैंतीस हजार घोड़ों, रथों और कोटि पैदल सैनिकों से युक्त होकर गरुड-व्यूह की रचना की। गरुड-व्यूह की रचना करके वह राजा कोणिक रथ-मश्वल संग्राम की तैयारी में प्रवृत्त हुआ ॥८८॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में राजा कोणिक द्वारा वैशाली के सीमान्त के समीप गरुड-व्यूह की रचना करने का वर्णन है। गरुड-व्यूह का अर्थ है जिस सेना का अग्र भाग विशाल हो, जिससे शत्रु पर प्रभाव पड़ सके वही सेना प्रथम आक्रमण करती है।

रथ मसल संग्राम का विशद वर्णन भगवती सूत्र में आता है। जिज्ञासुओं को उस स्थल का स्वाध्याय करना चाहिये ॥८८॥

उत्थानिका—अब सूत्रकार राजा चेटक की व्यूह-रचना के विषय में कहते हैं—

**मूल—तएणं से चेडए राया सत्तावन्नाए दंतिसहस्सेहि जाव सत्ता-
वन्नाए मणुस्सकोडीहि सगडवूहं रएइ, रइत्ता सगडवूहेणं रहमुसलं संगामं
उवायाए । ८६॥**

छाया—ततः खलु सः चेटको राजा सप्तपञ्चाशद्भिः दन्तिसहस्रेभ्यो सप्तपञ्चाशद्भिः
मनुष्यकोटिभिः शकटव्यूहं रचयति, रचयति शकटव्यूहेन रथमुसलं संग्राममुपायातः ॥ ८६ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से चेडए राया—वह राजा चेटक, सत्तावन्नाए दन्ति-
सहस्सेहि जाव सत्तावन्नाए मणुस्सकोडीहि सगड-वूहं रइए रइत्ता—सत्तावन हजार हाथियों यावत्
सत्तावन करोड़ मनुष्यों से युक्त होकर शकट-व्यूह की रचना करता है, रचना करके, सगडवूहेणं
रहमुसलं संगामं उवायाए—शकट-व्यूह की रचना करके रथ-मुसल संग्राम को लक्ष्य में रख कर युद्ध-
भूमि में आता है ॥ ८६ ॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह राजा चेटक सत्तावन हजार हाथियों और सत्तावन-
सत्तावन हजार घोड़ों और रथों के तथा सत्तावन करोड़ सैनिकों के साथ आकर शकट-
व्यूह की रचना करता है । रचना करके शकट-व्यूह द्वारा रथमुसल संग्राम को लक्ष्य में
रख कर युद्ध-भूमि में उतरता है ॥ ८६ ॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में वैशाली मणराज्य-प्रमुख राजा चेटक द्वारा शकट-व्यूह की रचना
द्वारा रथ-मुसल संग्राम में उतरने का वर्णन है ।

शकट-व्यूह की रचना इस प्रकार होती है—सबसे आगे के हिस्से में ज्यादा शकट, बीच में
इनकी संख्या कम होती जाती है, पिछला भाग में फिर विशाल होता है । यहाँ यह ध्यान रहना
चाहिए कि जहाँ कोणिक ने गरुड-व्यूह की रचना की है वहाँ राजा चेटक ने शकट-व्यूह की रचना
की है । अतः इस सूत्र से सिद्ध होता है कि युद्ध-विशेषज्ञ सेना की तैनाती इस प्रकार करते थे कि शत्रु
का व्यूह-भेदन किया जा सके ॥ ८६ ॥

उत्थानिका—तत्पश्चात् क्या हुआ, अब सूत्रकार इस विषय में कहते हैं—

**मूल—तएणं ते दोण्ह वि राईणं अणीया सन्नद्धा जाव गहियाउहप-
हरणा मंगतिएहिं फलएहिं निक्कट्ठाहिं असोहिं, अंसागएहिं तोणेहिं,**

संजीवेहि धगूहि, समुक्खित्तेहि, सरेहि, समुल्लालिताहि डावाहि, ओसारियाहि उरुघण्टाहि, छिप्पतूरेणं वज्जमाणेणं, महया उक्किट्ठसीहनाय-
बोलकलकलरवेणं समुद्गरवभूयं पिव करेमाणा सव्विड्ढोए जाव रवेणं
हयगया हयगएहि, गयगया गयगएहि, रहगया रहगएहि, पायत्तिया पाय-
त्तिएहि, अन्नमन्नेहि सद्धि सपलग्गा यावि होत्था ॥६०॥

छाया—ततः खलु ते द्वयोरपि राजोरनोके सन्नद्धा यावद्—गृहीतायुधप्रहरणे मङ्गलिकः
फलकैः निष्कासितैरसिभिः, अंशगतैस्तूणैः, सजीवेधनुभिः समुत्क्षिप्तैः शरैः, समुल्लालिताभिः डावाभिः,
अवसारिताभिः उरुघण्टाभिः, क्षिप्रतूरेण वाद्यमानेन महता उत्कृष्टसिहनावबोलकलकलरवेणं समुद्गरव-
भूतमिव कुर्वाणे सर्वैश्चन्द्रिया यावद् रवेण हयगताः हयगतैः, गजगताः गजगतैः, रथगताः रथगतैः, पदा-
तिका पदातिकैः, अन्योन्यैः सार्द्धं संप्रलग्नाश्चाऽप्यभूवन् ॥६०॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पदवात्, ते बोण्हं वि राईणं—उन दोनों राजाओं की, अणोया—
सेनायें, सन्नद्धा—सज कर कवच आदि पहन कर, जाव—यावत्, गहियाउहपहरणा—प्रहारक
आयुध ग्रहण करके उन्होंने, संगतिएहि—ढालों से, फलएहि—फलकादि से, म्यान से बाहिर
निकाली, निकट्टाहि—छोटे आकार के, असीहि—खड्गों से, अंसागएहि—स्कन्ध पर रखे, तोणोहि—
तणीरों से, सजीवोहि—खिची हुई डोरी वाले, धनूहि समुक्खित्तेहि—धनुष को ऊंचा करके फेंके गए
बाणों से, सरेहि समुल्लालियाहि—शिरों को उछालने से, डावाहि ओसारियाहि—बायीं भुजा ऊंची
करके बछीं आदि ऊंची करने से, उरुघण्टाहि छिप्पतूरेणं—हाथी घोड़ों आदि की जंघाओं से जो
घुंघरू बांधे होते हैं उनके स्वर से, वज्जमाणेणं—वाद्य-यन्त्रों की ध्वनियों से, महया—बड़े, उक्किट्ठ-
सीहनाय बोलकलकलरवेणं—उत्कृष्ट सिहनाद के समान, गर्जनाओं से, समुद्गरवभूयं पिव करेमाणा—
समुद्र के समान शब्द करते हुए, सव्विड्ढोए—सर्वैश्चन्द्रि युक्त अर्थात् अनेक विध आभूषण पहने हुए,
जाव—यावत्, रवेणं—वाद्य-यन्त्रों के स्वरों के साथ, हयगया—अश्वों के सवार, हयगएहि—अश्वों
के सवारों के साथ, गयगया गयगएहि—हाथी पर बैठे हुए हाथी पर सवारों के साथ, रहगया
रहगएहि—रथ के सवार रथियों के साथ, पायत्तिया पायत्तिएहि—पैदल सैनिक पैदल सैनिकों के
साथ, अन्नमन्नेहि सद्धि परस्पर, संपलग्गा यावि होत्था—युद्ध करने में जुट गए ॥६०॥

मूलार्थ—तब दोनों राजाओं की सेनायें सजधज कर अर्थात् कवचादि पहन कर आ
गईं, उन्होंने सब तरह के आयुध ग्रहण किये और ढाल बरछी आदि को हाथों में ग्रहण
किया । इस प्रकार फलक आदि से, म्यान से बाहर निकाले छोटे, खड्गों से, स्कन्धों पर

तूणीर रखने से धनुष चढ़ाने से, धनुष की डोरी आदि के खींचने से, और शीशों उछालने से, भुजा आदि के ऊंचा करने से, हाथी घोड़ों आदि की जघांदि में बंधे घण्टा आदि जन्म-ध्वनियां करने से, वाद्य-यन्त्रों के बजने से बहुत ही ऊंचा उत्कृष्ट सिंहनाद यावत् शब्दों की कल-कल ध्वनियों से, समुद्र की भांति शब्द करते हुए, सर्व ऋद्धियों के साथ यावत् वाद्य-यन्त्रों के स्वरो के साथ, घोड़े वाले घोड़े वालों से, हाथी वाले हाथी वालों से, रथों वाले रथ वालों से, पैदल पैदल से परस्पर युद्ध करने लग गए ॥६०॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में दोनों सेनाओं के परस्पर युद्ध का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। दोनों तरफ की चतुरंगिणी सेना मैदान में आ गई। विभिन्न हथियारों से युद्ध होने लगा। युद्ध में उत्साह-वर्धक वाद्य-यन्त्र बजने लगे। इसमें एक बात स्पष्ट की गई है कि रथ वाले सैनिक रथ वालों से लड़ रहे थे, हाथी पर चढ़े, हाथी पर सवार सैनिकों व घोड़ों पर चढ़े घुड़ सवारों से परस्पर युद्ध करने लगे, पैदल सैनिक पैदल से मड़ने लगे।

यहां कुछ शब्द ध्यान देने योग्य हैं—मंगतिएहि फलएहि—इसका अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार किया है—

मंगतिएहि त्ति हस्तपाशितैः, फलकादि भः—फलकादि से हाथ में पाश रूप बनाया हुआ।

इस प्रकार बंशाली के मैदान में परस्पर दोनों सेनाओं में बमासान युद्ध होने लगा ॥६०॥

उत्थानिका—अब सूत्रकार फिर इसी विषय में आगे कहते हैं—

मूल—तएणं ते दोण्ह वि रायाणं अणीया णियगसामीसासणुरत्ता
महतं जणवखयं जणवहं जणप्पमहं जणसंवट्टकप्पं नच्चंतकबंधवारभीमं
रुहिरकहमं करेमाणा अन्नमग्नेणं सद्धिं मुज्झंति ॥६१॥

छाया—ततः खलु ते द्वयोरपि राज्ञोरनीके निजकस्वामिशासनानुरक्ते महान्तं जनक्षयं जनवधं
जनप्रमदं जनसंयतंकल्पं नृपत्यकबंधवारभीमं रुधिरकर्वमं कुर्वाणो अन्योऽन्येन सार्द्धं युध्येते ॥६१॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, णं—वाक्यालंकार, ते दोण्ह वि रायाणं—उन दोनों राजाओं की, अणीया—सेनायें, णियगसामीसासणुरत्ता—अपने-अपने स्वामी के अनुशासन में रहते हुए (वफादारी से), महया—बड़ी संख्या में, जणवखयं—जनों की क्षय कर, जणवहं—जनों का वध कर, जणप्पमहं—जनों का प्रमदन कर उन्हें कुचल, जणसंवट्टकप्पं—जन-संहार के समान, नच्चंतकबंधवारभीमं—शिर के बिना घड़ों के नाचने के कारण भयानक बनी युद्ध भूमि में, रुहिरकहमं करेमाणा—खून से मैदान में कीचड़ से भरते हुए, अन्नमग्नेणं सद्धिं मुज्झंति—परस्पर युद्ध करने लगे ॥६१॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् दोनों राजाओं की सेनायें अपने-अपने स्वामी के अनुशासन में अनुरक्त होकर बहुत से लोगों का क्षय, वध, प्रमर्दन करने लगी जिससे मृतकों के सिरों की बहुत संख्या हो गई । युद्ध-स्थल में सिर के बिना धड़ नाच रहे थे । हाथियों का रूप भयंकर हो गया । मैदान को खून के कीचड़ से भरते हुए योद्धा परस्पर लड़ने लगे ॥९१॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में युद्ध का वर्णन करते हुए बताया गया है कि यह युद्ध कितना भयंकर था । दोनों ओर के सैनिक अपनी-अपनी स्वामी-भक्ति का परिचय देते हुए बहादुरी से अपने प्राणों की अहुतियां देने लगे । इस सूत्र में कुछ शब्द ध्यान देने योग्य हैं—

“नियमसामीप्यसणाणुरत्ता” का अर्थ अपने स्वामी की भक्ति में अनुरक्त हुए—

“जणसंवट्टकप्प” का अर्थ है जिस प्रकार संवर्तक वायु चारों ओर से वस्तु एकत्र करती है इसी प्रकार इस रथ मुशल में संग्राम में सैनिकों के शिर इकट्ठे हो रहे थे । “नचंचंतकबंधवारभीम” अर्थात् सिर के धड़ नाच रहे थे । ॥९१॥

उत्पानिका—अब सूत्रकार काल कुमार के विषय में कहते हैं—

मूल—तएणं से काले कुमारे तिहि दंतिसहस्सेहि जाव मणुस्सकोडीहि गरुलवूहेणं एक्कारसमेणं खंधेणं कूणियरहमुसलं संगामं संगामेमाणे हय-महियजहा भगवया कालीए देवीए परिकहियं जाव जीवियाओ ववरो-बिए ॥९२॥

छाया—ततः खलु स कालः कुमारस्त्रिभिर्दन्तिसहस्रैर्यावन्मनुष्यकोटिभिर्गरुडव्यूहेन एकादशेन स्कन्धेन कूणिकरथमुशलं संग्रामं संग्रामयन् हतमथितयथा भगवता काल्यै देव्यै परिकथितं यावज्जी-विताद् व्यपरोपिताः ॥९२॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से काले कुमारे—वह काल कुमार, तिहि दन्तिसहस्सेहि—तीन हजार हाथियों, जाव—यावत् मणुस्सकोडीहि—करोड़ों सैनिकों को साथ लेकर, गरुल वूहेणं—गरुड़ व्यूह से, एक्कारसमेणं खंधेणं—अपनी सेना के एकादश भाग सहित, कूणिएणं रथा सद्धि—कोणिक राजा के साथ रह कर, रहमुसलं संगामं संगामेमाणे—रथ मुशल संग्राम में संग्राम करता हुआ, हयमहियंजहा—हतमथित हो गया अपना होश-हवास खो बैठा जैसे, कालीए देवीए परिकहियं—काली देवी के प्रति (भगवान) ने कहा, जाव—यावत्, जीवियाओ ववरोबिए—जीवन से व्यतिरिक्त हो गया अर्थात् मारा गया ॥९२॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह काल कुमार अपने तीन हजार हाथियों और करोड़ों सैनिकों से युक्त यावत् गरुड़-व्यूह की रचना करके अपनी सेना के ग्यारहवें भाग सहित, राजा कोणिक के साथ रह कर रथ-मुशल संग्राम में राजा चेटक से युद्ध करते हुए आहत और मथित हुआ, जैसे भगवान महावीर ने काली देवी से कहा था यावत् जीवन से रहित अर्थात् मारा गया ॥९२॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में राजा कोणिक द्वारा चलाए गए रथ-मुशल संग्राम का वर्णन है। इस समय काल कुमार भी तीन हजार हाथियों यावत् तीन करोड़ सैनिकों के साथ राज चेटक के द्वारा मारा गया। चम्पा में विराजित सर्व विवरण काली देवी (श्रेणिक की रानी) को श्रमण भगवान महावीर सुना रहे हैं।

इस स्थान पर कोटि मनुष्यों का उल्लेख है—३३ करोड़ सेना का वर्णन है। राजा चेटक एवं अठारह गणराजाओं की सेना का प्रमाण सत्तावन करोड़ बताया गया है। यहां पर हमारा विचार है कि कोटि एक विशेष संज्ञा होगी जो उस समय सैनिक परिमाण के लिए प्रयुक्त हुआ करती थी।

तपागच्छीय श्वेताम्बर श्री आत्माराम जी महाराज अपने ग्रंथ “जैन तत्त्वादश” के सातवें परिच्छेद सम्यक्त्व के पांच अतिचारों का वर्णन करते हुए प्रथम शंका अतिचार में लिखते हैं—सो जिन-वचन में शंका करनी, क्योंकि जिन-वचन बहुत गम्भीर है और उसका यथार्थ अर्थ कहने वाला इस काल में कोई नहीं है और जो शास्त्र हैं सो अनेक नयात्मक हैं उनकी गिनती तथा संज्ञा विचित्र है। कई एक जगह तो कोटि शब्द करोड़ का वाचक है और किसी जगह रुढ़ वस्तु २० की संख्या का वाचक है। क्योंकि श्री जिनभद्र गणि क्षमा-श्रमण सर्व संघ के समस्त आचार्य संघयण नामा पुस्तक में तथा विशेषणवती ग्रंथ में लिखते हैं कि कोई आचार्य कोड़ी शब्द को एक करोड़ का वाचक नहीं मानते हैं, किन्तु संज्ञांतर मानते हैं, क्योंकि वर्तमान काल में भी बीस को कोड़ी कहते हैं तथा सौराष्ट्र देश में भी पांच आने की कोड़ी है। यह जैसे कोड़ी शब्द में मतान्तर है ऐसे ही शत सहस्र शब्द भी किसी संज्ञा के वाचक होवे तो कुछ दोष नहीं तथा शत्रुञ्जय तीर्थ में जो मुनि मोक्ष गए हैं वहां भी पांच कोड़ी आदि शब्द संज्ञा विशेष में हैं। ऐसे ही ५६ करोड़ यादवों की संख्या कोई संज्ञा विशेष है। कोणिक एवं चेटक राजाओं की सेना में जो कोड़ी शत शतसहस्र शब्द हैं सो संज्ञा विशेष के वाचक हैं। इसलिये सब शब्दों का सर्व जगह एक सरीखा अर्थ मानना युक्त नहीं है। इस कथन में पूज्य श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण पूरे साक्षी देने वाले हैं।

हो सकता है “कोटि” शब्द आज को सैनिक शब्दावली के “कम्पनी” शब्द का बोधक। किसी भी कम्पनी में सैनिकों की संख्या निश्चित नहीं होती। कम्पनी विशिष्ट सैनिक समूह को कहा जाता है। ऐसे ही कोटि में सैनिकों की संख्या निश्चित नहीं होती होगी। फिर भी सत्य अर्थ तो केवली भगवान् को ही ज्ञात होगा ॥९२॥

उत्थानिका—अब सूत्रकार काल कुमार की गति के विषय में कहते हैं—

मूल-तं एयं खलु गोयमा ! काले कुमारे एरिसएहि आरंभेहि जाव
एरिसएणं असुभकडकम्मपढभारेणं कालमासे कालं किच्चा चउत्थीए
पंकप्पभाए पुढवीए हेमाभे नरए नेरइयत्ता उववन्ने ॥६३॥

छाया—तदेतत् खलु गौतम ! कालः कुमारः ईदृशं आरम्भं यावद् ईदृशेन अशुभकृतकर्मप्राग्भावेण
कालं कृत्वा चतुर्थ्यां पञ्चप्रभायां पृथिव्यां हेमाभे नरके नैरयिकतयोपपन्नः ॥६३॥

पदार्थान्वयः—तं एयं खलु गोयमा—हे गौतम निश्चय ही, काले कुमारे एरिसएहि आरम्भेहि
जाव एरिसएणं असुभकडकम्मपढभारेणं—काल कुमार इस प्रकार के आरम्भ से यावत् इस प्रकार
के अशुभ कर्म के प्रभाव से, कालमासे कालं किच्चा—काल मास में काल करके, चउत्थीए पंकप्प-
भाए पुढवीए हेमाभे नरए नेरइयत्ता उववन्ने—चौथी पंकप्रभा पृथ्वी के हेमाभ नामक नरक-आवास
में नारकी रूप में उत्पन्न हुआ ॥६३॥

मूलार्थ—श्रमण भगवान महावीर ने कथन किया कि—“हे गौतम ! काल कुमार
इस प्रकार निश्चय ही आरम्भ यावत् अशुभ कृत्य के कारण, कालमास में काल करके
चौथी पंकप्रभा पृथ्वी के हेमाभ नरकावास में नारकी रूप में उत्पन्न हुआ । ६३॥

टोका—काल कुमार का भविष्य बताते हुए श्रमण भगवान महावीर ने अपने प्रथम शिष्य
गणधर इन्द्रभूति गौतम को बताया कि काल कुमार आरम्भ आदि अशुभ कर्मों के कारण मर कर
चौथी नरक पंकप्रभा में हेमाभ नामक पृथ्वी में नारकी बना है । संसार की झूठी माया के पीछे संघर्ष
का फल यही होता है । संग्राम में प्रायः तीनों योगों से हिंसा होती है, अतः उक्त क्रियाओं के त्याग से
आत्मा को शान्ति की प्राप्ति हो सकती है ॥६३॥

उत्थानिका—अब इसी विषय में आगे कहते हैं और इस सूत्र का उपसंहार करते हैं ।

मूल—काले णं भंते ! कुमारे चउत्थीए पुढवीए अणंतरं उवट्टित्ता
कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ? ।

गोयमा । महाविदेहे वासे जाइ कुलाइं भवन्ति अड्ढाइं जहा दूढ-
पइन्ने जाव सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ जाव अंतं काहिइ । तं एवं खलु जंबू !
समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं निरयावलियाणं पडमस्स अज्झयणस्स
अयमट्ठे पन्नत्ते तिबेमि ॥६४॥

॥ पढमं अज्झयणं समत्तं ॥ १ ॥

छाया—कालः खलु भवन्त ! कुमारश्चतुर्थ्याः पृथिव्या अन्तरमुद्वृत्य कुत्र गमिष्यति ? कुत्रोत्पत्स्यते ?

गीतम ! महाविदेहे वर्षे यानि कुलानि भवन्ति आदधानि यथा दृढप्रतिज्ञो यावत् से स्यति भीतस्यते यावद् अन्तं करिष्यति ।

तदेवं खलु जम्बू ! श्रमणेन भगवता यावत्संप्राप्तेन निरयावलिकानां प्रथमाध्ययनस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः, इति ब्रवीमि ॥६४॥

॥ प्रथममध्ययनं समाप्तम् ॥ १ ॥

पदार्थान्वय—कालेण भन्ते ! कुमारे—हे भगवन काल कुमार, चउत्थीए पृथ्वीए—चौथी पृथ्वी से, अणन्तरं उव्वट्टित्ता कहि गच्छिहिइ—बिना अन्तर नरक से निकल कर कहां पैदा होगा, कहि उव्वज्जिहिइ—कहां उत्पन्न होगा, गोयमा महाविदेह वासे—हे गीतम महाविदेह क्षेत्र में, जाइ कुलाइं भवन्ति—जो कुल हैं, अइढाइ—ऋद्धिमान धन-धान्य से युक्त, जहा—जैसे, विदपइओ—जैसे दृढ प्रतिज्ञ कुमार का वर्णन राज प्रश्नीय में कहा गया है, जाव सिज्जिहिइ वुज्जिहिइ जाव अन्तं काहिइ—यावत् सिद्ध होगा, बुद्ध होगा यावत् सब दुःखों (कर्मों) का अन्त करेगा, तं एवं खलुं जम्बू—तो इस प्रकार निश्चय ही हे जम्बू, समणेण भगवता जाव संपत्तेण—श्रमण भगवान यावत् मोक्ष को प्राप्त, निरयावलियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते—निरयावलिका सूत्र के प्रथम अध्ययन का अर्थ प्रतिपादन किया गया है ॥६४॥

मूलार्थ—(गीतम स्वामी प्रश्न करते हैं) हे भगवन् ! वह काल कुमार चौथी नरक की आयु पूर्ण करके कहां पैदा होगा ? कहां उत्पन्न होगा ? (इस प्रश्न के उत्तर में भगवान महावीर कहते हैं) हे गीतम ! महाविदेह क्षेत्र में ऋद्धिमान यावत् धन-धान्य से युक्त कुल में पैदा होगा, जैसे राजप्रश्नीय सूत्र में दृढप्रतिज्ञ कुमार का वर्णन है वैसे ही इसका वर्णन समझना चाहिए । फिर वह सिद्ध-बुद्ध मुक्त होगा । यावत् सब (कर्मों) का अंत करेगा, (जो जन्म मरण का कारण हैं)

आर्य सुधर्मा अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं “हे जम्बू ! मोक्ष को संप्राप्त श्रमण भगवान ने निरयावलिका सूत्र के प्रथम अध्ययन का यह वर्णन किया है ॥६४॥

टीका—भगवान महावीर ने काल कुमार का मन्त्रिष्य बताते हुए अपने प्रिय शिष्य गणधर इन्द्रभूति को सूचित किया है कि यह काल कुमार चौथी नरक की आयु पूरी करके दृढप्रतिज्ञ की तरह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा । वहीं से यह शेष कर्मों का क्षय कर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होगा ॥६४॥

प्रस्तुत अध्ययन के उपसंहार के रूप में जम्बू स्वामी से उनके पूज्य गुरुदेव श्री सुधर्मा कहते हैं—“जम्बू ! जैसे मैंने निरयावलिका के प्रथम अध्ययन का अर्थ अपने पूज्य शास्ता श्रमण भगवान् महावीर से सुना था वैसे ही तुम्हें बताया है । हम पाठकों की जानकारी के लिये शास्त्रों में वर्णित लोक का स्वरूप संक्षेप में कथन करते हैं, ताकि स्वर्ग-नरक व महाविदेह क्षेत्र का विषय स्पष्ट हो जाए ।

जन्तु धर्म के अनुसार लोक—

लोक-अलोक की सीमा—लोक और अलोक की सीमा निर्धारण करने वाले स्थिर शाश्वत और व्यापक दो तत्त्व हैं—धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय जो इस अखण्ड आकाश को दो भागों में विभाजित करते हैं । ये दोनों जहाँ तक हैं वहाँ तक लोक है और जहाँ इन दोनों का अभाव है, वहाँ अलोक है । धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के अभाव में जीवों और पुद्गलों की गति और स्थिति में सहायता नहीं मिलती । इसलिए जीव और पुद्गल लोक में ही हैं, अलोक में नहीं ।

महान् वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्स्टीन ने भी क्षेत्र—लोक की सीमा इसी से मिलती-जुलती मानी है—“लोक के परिमित होने का कारण यह है कि द्रव्य अथवा शक्ति लोक के बाहर जा नहीं सकती । लोक के बाहर उस शक्ति (धर्मास्तिकाय) का अभाव है जो गति में सहायक होती है ।”



मानव शरीर का आकार

लोक का संस्थान (आकार)—लोक का आकार सुप्रतिष्ठक - संस्थान बताया गया है, अर्थात्—वह नीचे विस्तृत, मध्य में संकीर्ण और ऊपर मृदंगाकार है । तीन शराबों (सकोरों) में से एक शराब औंघा रखा जाए दूसरा सीधा और तीसरा उसी के ऊपर औंघा रखा जाये तो जो आकृति बनती है वही आकृति (त्रिशरावात्-सम्पृष्टाकृतिः) लोक की है । अलोक का आकार मध्य में पोल वाले गीले जैसा है । (चित्र सामने देखें)

अलोक का कोई भी विभाग नहीं है, वह एकाकार है । लोकाकाश तीन भागों में विभक्त है—ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक । तीनों लोकों की कुल लम्बाई १४ रज्जू (राजू) है, जिसमें से सात रज्जू से कुछ कम ऊर्ध्वलोक है, मध्यलोक १००० योजन परिमाण वाला है और अधोलोक सात रज्जू से कुछ अधिक है ।

लोक को इन तीन विभागों में विभक्त कर देने के कारण उन तीनों की पृथक्-पृथक् आकृतियाँ बनती हैं । धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय कहीं पर फैले हुए हैं और कहीं संकुचित हैं । ऊर्ध्वलोक में धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय विस्तृत होते चले गए हैं । इस कारण ऊर्ध्वलोक का आकार मृदंग-सदृश है और मध्यलोक में वे कृश हैं, इसलिए उसका आकार, बिना किनारी वाली झालर के समान है । नीचे की ओर फिर वे विस्तृत होते चले गए हैं । इसलिए अधोलोक का आकार जींघे शराब के जैसा बनता है यह लोकाकाश की ऊँचाई हुई । उसकी मोटाई सात रज्जू है ।

लोक कितना बड़ा है ? लोक की मोटाई भगवान् महावीर ने एक रूपक द्वारा समझाई है—मान लो कि एक देव मेरुपर्वत की चूलिका (चोटी) पर खड़ा है जो एक लाख योजन की ऊँचाई पर है। नीचे चारों दिशाओं में चार दिक्कुमारियाँ हाथ में बलिपिण्ड लिए खड़ी हैं। वे बहिर्मुखी होकर एक साथ उन बलिपिण्डों को फेंकती हैं। देव उन चारों बलिपिण्डों को पृथ्वी पर गिरने से पूर्व ही हाथ से पकड़ लेता है और तत्काल दौड़ता है। ऐसी दिव्य शीघ्रगति से लोक का अन्त पाने के लिए ६ देव पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊँचा और नीची इन छह दिशाओं में चले। ठीक इसी समय एक श्रेष्ठी के घर में एक हजार वर्ष की आयु वाला पुत्र उत्पन्न हुआ। उसकी आयु समाप्त हुई। इसके पश्चात् हजार-हजार वर्ष की आयु वाले उसके बेटे-पोते हुए। इस प्रकार की परम्परा से सात पीढ़ियाँ समाप्त हो गईं। उनके नाम-गोत्र भी मिट गए। तथापि वे देव तब तक चलते ही रहे, फिर भी लोक का अन्त न पा सके। यह ठीक है कि उन शीघ्रगामी देवों ने लोक का अधिकतर भाग तय कर लिया होगा, परन्तु जो भाग शेष रहा वह असंख्यातवां भाग है। इससे यह समझा जा सकता है कि लोक का आयतन कितना बड़ा है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आईन्स्टीन ने लोक का व्यास एक करोड़ असी लाख प्रकाश वर्ष माना है।

लोक के आयतन को पूर्वोक्त रूपक द्वारा समझने के पश्चात् भी गौतम स्वामी की जिज्ञासा पूर्ण रूप से शान्त न हुई। वे सविनय बोले—“भन्ते ! यह लोक कितना बड़ा है ?” गौतम स्वामी के इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् महावीर ने कहा—“गौतम ! यह लोक बहुत बड़ा है। यह पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण तथा ऊर्ध्व और अधो दिशाओं में असंख्यात योजन कोटा कोटी (करोड़ × करोड़) लम्बा चौड़ा है।

ऊर्ध्वलोक-परिचय—मध्यलोक से ६०० योजन ऊपर का भाग ऊर्ध्वलोक कहलाता है। उसमें देवों का निवास है, इसलिए उसे देवलोक या स्वर्गलोक कहते हैं।

देव चार प्रकार के होते हैं—भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। इस ऊर्ध्वलोक में कल्पोपन्न और कल्पातीत, ये दो प्रकार के वैमानिक देव ही रहते हैं। जिन देवलोकों में इन्द्र, सामानिक आदि पद होते हैं, वे देवलोक कल्प के नाम से प्रसिद्ध हैं। कल्पों (बारह देवलोकों) में उत्पन्न देव कल्पोपन्न कहलाते हैं, और कल्पों (बारह देवलोकों) से ऊपर के (नव ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमानवर्ती) देव कल्पातीत कहलाते हैं। कल्पातीत देवों में किसी प्रकार की असमानता नहीं होती। वे सभी इन्द्रवत् होने से अहमिन्द्र कहलाते हैं। किसी कारणवश मनुष्यलोक में जाने का प्रसंग उपस्थित होने पर कल्पोपन्न देव ही आते हैं, कल्पातीत नहीं। अन्तिम देवलोक का नाम सर्वार्थसिद्ध है।

इससे बारह योजन ऊपर सिद्धशिला है, जो ४५ लाख योजन लम्बी और इतनी ही चौड़ी है। इसकी परिधि कुछ अधिक तीन गुणी है। मध्यभाग में इसकी मोटाई आठ योजन है, जो क्रमशः

किनारों की ओर पतली होती हुई अन्त में मक्खो के पंख से भी अधिक पतली हो गई है। इसका आकार खुले हुए छत्र के समान है। शंख, अंकरतन और कुन्दपुष्प के समान स्वभावतः श्वेत, निर्मल, कल्याणकर एवं स्वर्णमयी होने से इसे 'सीता' भी कहते हैं। 'ईषत् प्राग्भारा' नाम से भी यह प्रसिद्ध है। इससे एक योजन प्रमाण ऊपर वाले क्षेत्र को 'लोकान्तभाग' भी कहते हैं। उत्तराख्ययन सूत्र में इस लोकान्त को 'लोकाग्र' भी कहा गया है, क्योंकि वह लोक का अन्त या सिरा है, इसके पश्चात् लोक की सीमा समाप्त हो जाती है। इस एक योजन प्रमाण लोकान्त भाग के ऊपरी कोस के छठे भाग में मुक्त (सिद्ध) आत्माओं का निवास है।

मध्यलोक का परिचय—मध्यलोक को तिर्यक्लोक या मनुष्यलोक भी कहा गया है। यह १८०० योजन प्रमाण है। इस लोक के मध्य में जम्बूद्वीप है और उसे घेरे हुए असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं। ये सभी परस्पर एक दूसरे को वलय (चूड़ी) के आकार में घेरे हुए हैं। इनमें प्रायः पशुओं और वान-व्यन्तर देवों के स्थान हैं। इतने विशाल क्षेत्र में केवल अढ़ाई द्वीपों में ही मनुष्य जाति का निवास है। मनुष्य के साथ-साथ तिर्यञ्चों (ऐसे जीव जिनकी पीठ सदैव आकाश की तरफ रहती है) का भी इसमें निवास पाया जाता है। अढ़ाई द्वीप को 'समय-क्षेत्र' भी कहते हैं। अढ़ाई द्वीपों की रचना एक सरीखी है। अन्तर केवल इतना ही है कि इनका क्षेत्र क्रमशः दुगुना-दुगुना होता चला गया है। पुष्करद्वीप के मध्य में मानुषोत्तर पर्वत आ जाने से मनुष्यक्षेत्र में आधा पुष्करद्वीप ही गिना गया है।

जम्बूद्वीप में सात मुख्य क्षेत्र हैं—भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत। विदेह क्षेत्र के दो अन्य प्रमुख भाग हैं—देवकुरु और उत्तरकुरु। घातकीखण्ड और पुष्कराद्वीप में इन सभी क्षेत्रों की दुगुनी-दुगुनी संख्या है। ये सभी क्षेत्र तीन भागों में विभक्त हैं—कर्मभूमि, अकर्म-भूमि और अन्तरद्वीप।

कर्मभूमिक क्षेत्र वे हैं, जहाँ के निवासी मानव कृषि, वाणिज्य, शिल्पकला आदि कर्मों (पुरुषार्थ) के द्वारा जीवन-यापन करते हैं। कर्मभूमिक क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट पुण्यात्मा और निम्नलिखित पापात्मा दोनों प्रकार के मनुष्य पाए जाते हैं।

कर्मभूमिक क्षेत्र १५ हैं—५ भरत हैं जिनमें से जम्बूद्वीप में एक, घातकीखण्ड में दो और पुष्कराद्वीप में दो हैं। इसी तरह ५ ऐरावत हैं—जम्बूद्वीप में एक, घातकीखण्ड में दो, पुष्कराद्वीप में दो। महाविदेह भी पाँच हैं—एक जम्बूद्वीप में, दो घातकीखण्ड में और दो पुष्कराद्वीप में हैं। यों अढ़ाई द्वीपों में कर्मभूमि के सब क्षेत्र पन्द्रह हैं।

अकर्मभूमिक क्षेत्र वे हैं, जहाँ कृषि आदि कर्म किये बिना अनायास ही भोगोपभोग की सामग्री मिल जाती है। जीवन-निर्वाह के लिये कोई पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता। यहाँ भोगों—भोग्य-सामग्री की प्रचुरता होने से यह भोगभूमि भी कहलाती है। जम्बूद्वीप में एक हैमवत, एक हरिवर्ष एक रम्यकवर्ष, एक हैरण्यवत, एक देवकुरु और एक उत्तरकुरु, यों छह भोगभूमिक क्षेत्र हैं। घातकी-खण्ड और पुष्कराद्वीप में इनके प्रत्येक के दो-दो क्षेत्र होने से दोनों द्वीपों में बारह-बारह क्षेत्र हैं।

इस प्रकार सब मिलकर अकर्मभूमि के ३० क्षेत्र होते हैं ।

अन्तरद्वीप—कर्मभूमि और अकर्मभूमि के अतिरिक्त जो समुद्र के मध्यवर्ती द्वीप बच जाते हैं, वे अन्तरद्वीप कहलाते हैं । जम्बूद्वीप के चारों ओर विस्तृत लवणसमुद्र में हिमवान् पर्वत की दाढ़ाओं (पार्श्व भागों में निकले हुए लम्बे भू-भाग) पर अट्ठाईस अन्तरद्वीप हैं, जो सात चतुष्कों में विद्यमान हैं । इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—

प्रथम चतुष्क—एकोरुक, आभाषिक, लांगूलिक, वैमानिक ।

द्वितीय चतुष्क—हयकर्ण, गजकर्ण, गोकर्ण और शङ्कुलीकर्ण ।

तृतीय चतुष्क—आदर्शमुख, मेघमुख, हयमुख और गजमुख ।

चतुर्थ चतुष्क—अश्वमुख, हस्तिमुख, सिंहमुख और व्याघ्रमुख ।

पंचम चतुष्क—अश्वकर्ण, सिंहकर्ण, गजकर्ण और कर्णप्रावरण ।

षष्ठ चतुष्क—उत्कामुख, विद्युन्मुख, जिह्वामुख और मेघमुख ।

सप्तम चतुष्क—घनदन्त, गूढदन्त, श्रेष्ठदन्त और शुद्धदन्त ।

इसी प्रकार शिखरी पर्वत की दाढ़ाओं पर भी इन्हीं नामों के २८ अन्तर द्वीप हैं । इस तरह सब मिलाकर ५६ अन्तरद्वीप होते हैं । इन अन्तरद्वीपों में मनुष्यों का निवास है ।

आधुनिक विज्ञान ने अतने भूखण्ड का अन्वेषण किया है, वह तो केवल कर्मभूमि के जम्बू-द्वीप स्थित भरतक्षेत्र का छोटा-सा ही भाग है । मध्यलोक तो अकर्मभूमिक और अन्तरद्वीप के क्षेत्रों को मिलाने पर बहुत ही विशाल है, फिर भी ऊर्ध्वलोक और अधोलोक की अपेक्षा इसका क्षेत्रफल अत्यल्प ही माना जायेगा ।

ज्योतिष्क देवलोक—मध्यलोकवर्ती जम्बूद्वीप के सुदर्शनमेरु के समीप समतलभूमि से ७६० योजन ऊपर तारामण्डल है, जहां आधा कोस लम्बे-चोड़े और चौथाई कोस ऊंचे तारा विमान हैं ।

तारामण्डल से १० योजन पर ऊपर एक योजन के ६१वें भाग में से ४८ भाग लम्बा-चोड़ा और २४ भाग ऊंचा, अंकरत्नमय सूर्यदेव का विमान है ।

सूर्यदेव के विमान से ८० योजन ऊपर एक योजन के ६१ भाग में से ५६ भाग लम्बा-चोड़ा और २८ भाग ऊंचा, स्फटिकरत्नमय चन्द्रमा का विमान है ।

चन्द्रविमान से ४ योजन ऊपर नक्षत्र माला है । इनके रत्नमय पंचरंगे विमान एक-एक कोस के लम्बे-चोड़े और आधे-आधे कोस के ऊंचे हैं ।

नक्षत्रमाला से ४ योजन ऊपर ग्रहमाला है । ग्रहों के विमान पंचवर्णी रत्नमय हैं । ये दो-दो कोस लम्बे-चोड़े और एक कोस ऊंचे हैं ।

ग्रहमाला से चार योजन की ऊँचाई पर हरितरत्नमय बुध तारा है। इससे तीन योजन ऊपर स्फटिकरत्नमय शुक्र तारा है। इससे तीन योजन ऊपर पीतरत्नमय बृहस्पति तारा है। इससे तीन योजन ऊपर रत्नरत्नमय मंगल तारा है। इससे तीन योजन ऊपर जम्बूनदमय शनि तारा है।

इस प्रकार सम्पूर्ण ज्योतिष्चक्र मध्यलोक में ही है और समतल भूमि से ७९० योजन की ऊँचाई से आरम्भ होकर ९०० योजन तक अर्थात् ११० योजन में स्थित है। ज्योतिष्क देवों के विमान जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से ११२१ योजन दूर चारों ओर घूमते रहते हैं।

अधोलोक परिचय—मध्यलोक से नीचे का प्रदेश अधोलोक कहलाता है। इसमें सात नरक भूमियाँ हैं जो रत्नप्रभा आदि सात नामों से विस्तृत हैं। इनमें नारक जीव (पापी जीव) रहते हैं। इन सातों भूमियों को लम्बाई-चौड़ाई एक-सी नहीं है। नीचे-नीचे की भूमियाँ ऊपर-ऊपर की भूमियों से उत्तरोत्तर अधिक लम्बी-चौड़ी हैं। ये भूमियाँ एक दूसरी के नीचे हैं, किन्तु परस्पर सटी हुई नहीं हैं। बीच-बीच में अन्तराल (खाली जगह) है। इस अन्तराल में घनोदधि, घनवात और आकाश है। अधोलोक की सात भूमियों के नाम इस प्रकार हैं—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और तमस्तमःप्रभा। इनके नामों के साथ जो प्रभा शब्द जुड़ा हुआ है, वह इनके रंग को अभिव्यक्त करता है।

सात नरक भूमियों की मोटाई इस प्रकार है—

रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन काण्ड हैं—पहला रत्नबहुल खरकाण्ड है, जिसकी ऊपर से नीचे तक की मोटाई १६००० योजन है। उसके नीचे दूसरा काण्ड पंकबहुल है, जिसकी मोटाई ८०००० योजन है और उसके नीचे तृतीय काण्ड जलबहुल है, जिसकी मोटाई ८४००० योजन है। इस प्रकार तीनों काण्डों की कुल मिलाकर मोटाई १,८०००० योजन है।

इसमें ऊपर और नीचे एक-एक हजार योजन छोड़कर बीच में १७८००० योजन का अन्तराल है, जिसमें १३ पाण्डे और १२ आन्तरे हैं। बीच के १० आन्तरों में असुरकुमार आदि दस प्रकार के भवनपतिदेव रहते हैं। प्रत्येक पाण्डे के मध्य में एक हजार योजन की पोलार है जिसमें तीस लाख नरकावास हैं।

दूसरी नरक-पृथ्वी की मोटाई १,३२००० योजन है। तीसरी नरक-पृथ्वी की मोटाई १,२८००० योजन है। चतुर्थ नरकभूमि की मोटाई १,२०००० योजन है, पाँचवीं नरक-भूमि की मोटाई १,१८००० योजन है, छठी नरकभूमि की मोटाई १,१६००० योजन है और सातवीं नरक-पृथ्वी की मोटाई १,०८००० योजन है। सातों नरकों के नीचे जो घनोदधि है उसकी मोटाई भी विभिन्न प्रमाणों में है।

रत्नप्रभा आदि नरक-भूमियों की जितनी-जितनी मोटाई बताई गई है, उस-उस के ऊपर और नीचे के एक-एक हजार योजन भाग को छोड़कर शेष भाग में नरकावास हैं।

इन सातों नरकभूमियों में रहने वाले जीव नारक कहलाते हैं। ज्यों-ज्यों नीचे की नरक-भूमियों में पापी जीव जाते हैं, त्यों-त्यों नारक जीवों में कुरूपता, भयंकरता, बेडौलपन आदि विकार बढ़ते जाते हैं।

नरकभूमियों में तीन प्रकार की वेदनाएं प्रधानरूप से नारकों को होती है—(१) परमाधामिक असुरों (नरकपालों) द्वारा दी जाने वाली वेदनाएं, (२) क्षेत्रकृत—अर्थात्—नरक की भूमियां खून आदि से लथपथ अत्यन्त कीचड़ वाली, अत्यन्त ठण्डी या अत्यन्त गरम होती हैं, इत्यादि कारणों से होने वाली वेदनाएं। (३) नारकी जीवों द्वारा परस्पर एक दूसरे को पहुंचाई जाने वाली वेदनाएं।

परमाधामिक असुर (देव) तीसरे नरक तक ही जाते हैं। उनका स्वभाव अत्यन्त क्रूर होता है। वे सदैव पापकर्मों में रत रहते हैं, दूसरों को कष्ट देने में उन्हें भानन्दानुभव होता है। नारकी जीवों को वे अत्यन्त कष्ट देते हैं। वे उन्हें गरम-गरम शीशा पिलाते हैं, गाड़ियों में जोतते हैं, अतिभार लादते हैं, गर्भ लोह-स्तम्भ का स्पर्श करवाते हैं और काटेदार झाड़ियों पर चढ़ने-उतरने को बाध्य करते हैं।

आगे की चार नरकभूमियों में दो ही प्रकार की वेदनाएं होती हैं, परन्तु पहली से सातवीं नरकभूमि तक उत्तरोत्तर अधिकाधिक वेदनाएँ होती हैं। वे पापी जीव मन ही मन संक्लेश पाते रहते हैं। एक दूसरे को देखते ही उनमें क्रोधाग्नि भड़क उठती है। पूर्वजीवन के वर का स्मरण करके एक दूसरे पर क्रूरतापूर्वक झपट पड़ते हैं। वे अपने ही द्वारा बनाये हुए शस्त्रास्त्रों, या हाथ-पैरों, दांतों आदि से एक दूसरे को क्षत-विक्षत कर डालते हैं। उनका शरीर वैक्रिय होता है जो पारे के समान पूर्ववत् जुड़ जाता है। नरकों में अकाल मृत्यु नहीं होती। जिसका जितना आयुष्य है, उससे पूरा करके ही वे इस शरीर से छुटकारा पा सकते हैं।

संक्षेप में क्षेत्र की दृष्टि से इन तीनों लोकों की रचना पूर्वोक्त प्रकार से बतलाई गई है।

महाविदेह

विदेह क्षेत्र का ही दूसरा नाम महाविदेह है। मेरु पर्वत से पूर्व और पश्चिम में यह क्षेत्र है। इसके बीचों-बीच मेरुपर्वत के आ जाने से इसके दो विभाग हो जाते हैं—पूर्व महाविदेह और पश्चिम महाविदेह। पूर्व महाविदेह के मध्य में सीता नदी और पश्चिम महाविदेह के मध्य में सीतोदा नाम की नदी के आ जाने से एक-एक के फिर दो विभाग हो जाते हैं। इस प्रकार इस क्षेत्र के चार विभाग बन जाते हैं। इन चारों विभागों में आठ-आठ विजय (क्षेत्र-विशेष) हैं। ये $८ \times ४ = ३२$ होने से महाविदेह में ३२ विजय प्रदेश-विशेष पाए जाते हैं। इस क्षेत्र में सदैव चौथे आरे जैसी स्थिति रहती है।

अथ द्वितीयमध्ययनम्

मूल—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं निरयावलियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, दोचवस्स णं भंते अज्झयणस्स निरयावलि-
याणं समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ? एवं खलु जम्बू !
तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था । पुन्नभद्दे चेइए ।
कोणिए राया । पउमावई देवी । तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रत्तो
भज्जा कोणियस्स रत्तो चुल्लमाउया सुकाली नामं देवी होत्था, सुकुमाला
तोसे णं सुकालीए देवीए पुत्ते सुकाले नामं कुमारे होत्था । सुकुमाले ।
तएणं से सुकाले कुमारे अन्नया कयाइ तिहिं दंतिसहस्सेहिं जहा कालो
कुमारो निरवसेसं तं चेव जाव महाविदेहे वासे अंतं काहिइ ॥१॥

॥ बीयं अज्झयणं समत्तं ॥२॥

एवं सेसा वि अट्ठ अज्झयणा नेयव्वा पढमसरिसा, णवरं मायाओ
सरिसणामाओ ॥१०॥ निक्खेवो सव्वेसिं जाणियव्वो तहा ॥

निरयावलियाओ समत्ताओ ।

॥ पढमो वग्गो समत्तो ॥ १ ॥

छाया—यदि खलु भवन्त ! श्रमणेन यावत्-संप्राप्तेन निरयावलिकानां प्रथमस्याध्ययनस्यायमर्थः
प्राप्तः, द्वितीयस्य खलु भवन्त ! अध्ययनस्य निरयालिकानां श्रमणेन भगवता यावत्संप्राप्तेन कोऽर्थः
प्राप्तः ? एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये चम्पा नाम्नी नगरी अभूत् । पूर्णभद्रश्चेत्यः ।
कूणिको राजा । पद्मावती देवी । तत्र खलु चम्पायां नगर्यां श्रेणिकस्य राज्ञो भार्या कूणिकस्य राज्ञः
क्षुल्लमाता सुकाली नाम देव्यभूत् सुकुमारा । तस्याः खलु सुकाल्या देव्याः पुत्रः सुकालो नाम कुमारो-
ऽभूत्, सुकुमारः । ततः खलु स सुकालः कुमारः अन्यथा त्रिभिर्दन्तिसहस्रैर्यथा कालः कुमारः, निरवशेषं
तदेव यावन्महाविदेहे वर्षेऽन्तं करिष्यति ॥१॥

॥ द्वितीयमध्ययनं समाप्तम् ॥ २ ॥

एवं शेषाप्यष्टाध्ययनानि ज्ञातव्यानि प्रथमसदृशानि । नवरं मातरः सदृशानाम्यः ॥ १० ॥
निक्षेपः सर्वेषां भवितव्यस्तथा ॥

निरयावलिकाः समाप्ताः । ॥ प्रथमो वर्गः समाप्तः ॥ १ ॥

पदार्थावयवः—अइ णं भन्ते—हे भगवन् यदि, समणेणं जाव संपत्तेणं—श्रमण भगवान् यावत् मोक्ष को संप्राप्त, निवयावलिघाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते—प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है, दोच्चस्स णं भन्ते—हे भगवान तो दूसरे, अज्झयणस्स निरयावलिघाणं समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते—अध्ययन निरयावलिका का क्या अर्थ श्रमण भगवान यावत् मोक्ष को संप्राप्त ने बताया है ?, एवं खल—इस प्रकार हे जम्बू, तेणं कालेणं तेणं समएणं—उस काल व उस समय में, चम्पा नामं नयरी होत्था—चम्पा नाम की नगरी थी, पुण्णभद्दे चेइए—पूर्ण भद्र नाम का चैत्य था, कोणिए राया—राजा कोणिक था, पउमावइ देवी—उसकी पद्मावती नाम की रानी थी, तत्थ णं—उस, चम्पाए नयरीए सेणियस्स रन्तो—उस चम्पा नगरी में श्रेणिक राजा की, भज्जा—भार्या, कुणियस्स रन्तो चुल्लमाउया—कोणिक राजा की छोटी माता, सुकाली नाम देवी होत्था—सुकाली नाम की देवी (रानी) थी, सुकुमाला—वह सुकोमल थी, सीसे णं—उस, सुकालीए देवीए—सुकाली देवी का पुत्र सुकाल था जो शरीर से सुकोमल था, तएणं—तत्पश्चात्, से सुकाले कुमार—वह सुकाल कुमार, अन्नयां—अन्यथा किसी, कयाइ—कभी अर्थात् किसी समय, तिहिं दन्तिसहस्सेहिं—तीन हजार हाथियों सहित, जहा—जैसे, कालः कुमारः—काल कुमार का वर्णन है, निरवसेसं—निरवशेष (मृत्यु को प्राप्त हुआ), तं चेव—उसी प्रकार का वर्णन जानना चाहिए, जाव—यावत्, महाविदेह वासे—महाविदेह क्षेत्र में पैदा होगी, अन्तं काहिइ—सब दुःखों का अन्त करेगा । वीर्यं अज्झयणं सम्मत्तं—दूसरा अध्ययन समाप्त हुआ ।

एवं—इसी प्रकार, सेसाविअट्ठ अज्झयणं—शेष आठ अध्ययन भी, नेयव्वां—जानने चाहिए, पढमसरिसा—प्रथम अध्ययन की तरह, णवरं—इतना विशेष है, मायाओ सरिसणामओ—उनकी माताओं के नाम उनकी तरह ही थे ॥ ११ ॥

मूलार्थ—आर्य जम्बू कहते हैं—हे भगवन् ! अगर मोक्ष को संप्राप्त श्रमण भगवान ने निरयावलिका सूत्र के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ बताया है, तो हे भगवन् ! उस मोक्ष को संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने निरयावलिका के दूसरे अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादित किया है ?

आर्य सुधर्मा स्वामी कहते हैं—हे जम्बू ! उस काल, उस समय में चम्पा नाम की एक नगरी थी, वहां पूर्ण भद्र नाम का चैत्य था । वहां राजा कोणिक राज्य करता था ।

ससकी पद्मावती नाम की रानी थी । उस चम्पा नगरी में राजा श्रेणिक की भार्या एवं राजा कूणिक की छोटी माता सुकाली देवी थी, जो कि सुकोमल थी । उस सुकाली देवी का पुत्र सुकाल कुमार किसी समय तीन हजार हाथियों (व सेना) के सहित मारा गया । जैसे काल कुमार का भी अन्त हुआ और सुकाल कुमार भी नरक की आयु सम्पूर्ण करके महाविदेह क्षेत्र में पैदा होगा, यावत् सब दुःखों का अन्त करेगा ।

इसी प्रकार शेष आठ अध्ययनों का विषय भी जानना चाहिये । इतना विशेष है कि इन सब राज कुमारों के नाम उनकी माताओं के नामों के अनुसार हैं ॥९५॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में शास्त्रकार ने शेष नौ अध्ययनों का संक्षिप्त वर्णन किया है । साथ में सूचित किया है कि सभी राजकुमार रथ-मुशल संग्राम में काल कुमार की तरह लड़ते हुए मारे गए और नरक गति को प्राप्त हुए ।

सभी राजकुमार मर कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेंगे । वहां से वे सब दुःखों से मुक्त होकर सिद्ध-बुद्ध पद प्राप्त करेंगे । सभी राजकुमारों का वर्णन समान है, अन्तर्गत् केवल माताओं के नामों का है । सभी का पिता राजा श्रेणिक है, सभी कोणिक के भ्राता हैं । प्राचीन काल में पिता की दूसरी पत्नी के लिये सम्मान-जनक छोटी माता पद आया है अतः उसे भी कोणिक की छोटी माता कहा गया है । अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि रथ-मुशल संग्राम किसे कहते हैं । इसका वर्णन भगवती सूत्र के सातवें शतक में प्राप्त होता है ।

लड़ाई में राजा चेटक ने बहादुरी से दशों भाइयों को एक-एक बाण से मार दिया । यह भयंकर स्थिति देख कर राजा कोणिक भयभीत हुआ कि कहीं अपने भाइयों की तरह मैं भी राजा चेटक के हाथों न मारा जाऊं । राजा कोणिक ने अपने पूर्व भव के दो मित्रों को याद किया जो अब शक्रेन्द्र व चमरेन्द्र के रूप में देव-लोक में पैदा हुए थे । उन दोनों देवों की प्राराधना से दोनों देव प्रसन्न हुए वह कोणिक के समीप आए । उन्होंने रथमुशल तथा महाशिला कंटक संग्राम में भाग लिया । जब शक्रेन्द्र ने महाशिला कंटक संग्राम में वैक्रिय किया, तब कोणिक राजा शस्त्रों से सुसज्जित होकर उदाई नामक हस्ति-रत्न पर आरुढ़ हुआ । उस समय शक्रेन्द्र अभेद्य वज्र मय कवच वैक्रिय कर, राजा कोणिक के सम्मुख खड़ा रहा । एक हाथी पर सुरेन्द्र और नरेन्द्र दोनों इन्द्र मिलकर संग्राम करने लगे । उस संग्राम में शक्रेन्द्र ने तूणकाय पत्थर कंकर वैक्रिय किया वह सब महाशिला रूप बन गये । इस तरह इस संग्राम में चौरासी (८४) लाख मनुष्यों की मृत्यु हुई ।

प्रायः सब सैनिक मर कर नरक में उत्पन्न हुए । इस तरह चमरेन्द्र ने तापस के बर्तनों की तरह वैक्रिय करके राजा कोणिक की सहायता की । शक्रेन्द्र, असुरेन्द्र तीनों इन्द्रों ने इस युद्ध में

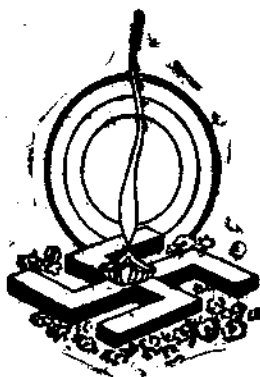
भाग लिया। सारथी के बिना ही खाली रथ चारों तरफ मुसलों को लगाकर छोड़ा गया इससे ६५ लाख मनुष्यों का घात हुआ। उसमें से दस हजार मछली के पेट में उत्पन्न हुए, एक मनुष्य गति में पैदा हुआ और एक देव गति में आया।

वैशाली नगरी में वरुण नामक बाग सारथी का पोता बहुत ऋद्धिबन्त जीवाजीव का ज्ञाता था। क्षमणोपासक था, निरन्तर छठ-छठ व्रत का पारना करते हुए, आत्मा को सयमासंयम से भावित कर रहा था। वह राजा की आज्ञा से षट् व अष्टम तप कर रथ-मुशल संग्राम में आया। उसका नियम था कि वह निरपराधी जीव को नहीं मारेगा। जब दूसरी ओर से बाण मारा गया तब वह संग्राम स्थान में ही देव-गुरु व धर्म की साक्षी से समाधि-मरण को प्राप्त करके सौधर्म देव लोक में उत्पन्न हुआ।

इस देव का अन्य देवों ने स्वर्ग में आगमन महोत्सव मनाया, जिससे देव आपस में कहने लगे जो संग्राम में मरता है वह स्वर्ग में जाता है। उस समय उस वरुण के पौत्र का बाल मित्र भी संग्राम में आया हुआ था। उसको भी बाण लगा ? वह भी अपने मित्र के पास भाकर वैसे ही आसन पर बैठ कर हाथ जोड़कर बोला जो मेरे मित्र ने किया, वह ही मैं करूँ, यह सोचकर उसने मन से पापकारी शक्तियों का त्याग किया। आयुष्य पूर्ण कर मनुष्य के रूप में पैदा हुआ। वहाँ से धर्म आराधना द्वारा महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध-बुद्ध मुक्त होगा।

इस युद्ध में व्यापक स्तर पर जान-माल की भारी क्षति हुई। राजा चेटक आदि अठारह (१८) गणराजाओं की हार हुई। राजा कोणिक जीत गया। इस प्रकार कोणिक द्वारा वैशाली का विनाश हुआ।

—निर्यावतिका प्रथम वर्ग पूर्ण—





कल्पावतंसिका

[द्वितीय-वर्ग]

अथ कल्पावतंसिका नाम द्वितीयो वर्गः

उत्थानिका—

प्रथम वर्ग निरयावलिका का अर्थ सुनने के पश्चात् आर्य जम्बू, अपने गुरुदेव पंचम गणधर श्री सुधर्मा स्वामी से पुनः जिज्ञासा करते हुए, द्वितीय वर्ग कल्पावतंसिका का अर्थ संविनय पूछते हुए कहते हैं—‘हे भगवन् ! मैंने आपके द्वारा वर्णित प्रथम उपाङ्ग निरयावलिका का अर्थ सम्यक् रूप से ग्रहण कर लिया है, अब कृपया मुझे द्वितीय वर्ग कल्पावतंसिका का अर्थ बतलाने का अनुग्रह करें, जो आपने श्रमण भगवान महावीर से श्रवण किया था ।

शिष्य की जिज्ञासा का समाधान आर्य सुधर्मा स्वामी जिस प्रकार करते हैं उसी का कथन इस अध्ययन में किया गया है । इस अध्ययन से यह बात सिद्ध होता है कि जब यह उपाङ्ग आर्य सुधर्मा जी ने सुनाया था उस समय श्रमण भगवान महावीर मोक्ष में पधार चुके थे ।

मूल—जइणं भंते ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं उवंगणं पढ-
मस्स वग्गस्स निरयावलियाणं अयमट्ठे पन्नत्ते, दोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स
कप्पवडिसियाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पन्नत्ता ? ।

एवं खलु जम्बू ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं कप्पवडिसियाणं
दस अज्झयणा पन्नत्ता, तंजहा—१. पउमे, २. महापउमे, ३. भद्दे, ४. सुभद्दे,
५. पउमभद्दे, ६. पउमसेणे, ७. पउमगुम्मे, ८. नलिणिगुम्मे, ९. आणंदे,
१०. नंदणे ॥१॥

छाया—यदि खलु भवन्त ! श्रमणेन भगवता यावत् संप्राप्तेन उपाङ्गानां प्रथमस्य वर्गस्य
निरयावलिकानामयमर्थः प्रज्ञप्तः, द्वितीयस्य खलु भवन्त ! वर्गस्य कल्पावतंसिकानां श्रमणेन यावत्
संप्राप्तेन कति अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि ?

एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन भगवता यावत् संप्राप्तेन कल्पावतंसिकानां दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा—१. पद्यः २. महापद्यः, ३. भद्रः, ४. सुभद्रः, ५. पद्मभद्रः, ६. पद्मसेनः, ७. पद्मगुल्मः, ८. नलिनीगुल्मः ९. आनन्दः, १०. नन्दनः ।

पदार्थान्वयः—जइ णं भंते—हे भगवन् यदि, समणेणं भगवया—श्रमण भगवान् महावीर ने, जाव संपत्तेणं—यावत् मोक्ष को संप्राप्त, उवज्झाणं—उपांगों में प्रथम, निरयावलियाणं अयमट्टे पन्नत्ते—निरयावलिका का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, वोच्चस्स णं भंते वगस्स कप्पवडिसियाणं—हे भगवन् ! तो द्वितीय वर्ग कल्पावतंसिका का, समणे णं जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पन्नत्ता—मोक्ष को संप्राप्त श्रमण भगवान् (महावीर) ने कितने अध्ययन बतलाये हैं ।

एवं खलु जम्बू—इस प्रकार हे जम्बू, समणेणं भगवया—श्रमण भगवान्, जाव संपत्तेणं—यावत् मोक्ष को संप्राप्त ने, कप्पवडिसियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता—कल्पावतंसिका नामक वर्ग के दश अध्ययन प्रतिपादित किए हैं, तं जहा—जैसे, पउमे—पद्य, महापउमे—महापद्य, भदे—भद्र, सुभदे—सुभद्र, पउमभदे—पद्मभद्र, पउमसेणे—पद्मसेन, पउमगुल्म—पद्मगुल्म, नलिनिगुल्मे—नलिनीगुल्म, आणन्दे—आनन्द, (और) नन्दणे—नन्दन ।

मूलार्थ—हे भगवन् ! यदि मोक्ष को संप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने उपाङ्गों में प्रथम निरयावलिका का यह अर्थ प्रतिपादन किया है तो भगवन् ! दूसरे वर्ग कल्पावतंसिका के यावत् मोक्ष को संप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने कितने अध्ययन प्रतिपादित किये हैं ?

हे जम्बू ! मोक्ष को संप्राप्त श्रमण भगवान् ने कल्पावतंसिका नामक दूसरे वर्ग के दस अध्ययन प्रतिपादन किये हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं ।

१. पद्य, २. महापद्य, ३. भद्र, ४. सुभद्र, ५. पद्मभद्र, ६. पद्मसेन, ७. पद्मगुल्म, ८. नलिनी गुल्म, ९. आनन्द, और १०. नन्दन ।

टोका—प्रस्तुत सूत्र में दूसरे वर्ग कल्पावतंसिका के विषय में वर्णन किया गया है । इस वर्ग के दस अध्ययन हैं । आर्य जम्बू के प्रश्न के उत्तर में आर्य गणवर सुधर्मा ने बताया कि इन दस अध्ययनों में आये नाम कल्प देवलोक में उत्पन्न चारित्र-निष्ठ आत्माओं का वर्णन है । यहाँ “समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं” पद से सम्पूर्ण “नमोत्थुणं” का पाठ ग्रहण करना चाहिये ॥१॥

उत्थानिका—अब जम्बू स्वामी प्रथम अध्ययन के विषय में श्री सुधर्मा स्वामी जी से प्रश्न करते हैं—

मूल—जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं कप्पवडिसियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स कप्पवडिसियाणं

भगवया जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्तत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था । पुन्तभद्दे चेइए । कूणिए राया । पउमावई देवी । तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रन्नो भज्जा कूणियस्स रन्नो चुल्लमाउया काली नामं देवी होत्था, सुकुमाल० । तीसेणं कालीए देवीए पुत्ते काले नामं कुमारे होत्था, सुकुमाल० । तस्स णं कालस्स पउमावई नामं देवी होत्था, सोमाल० जाव विहरइ ।

तए णं सा पउमावई देवी अन्नया कयाइं तसि तारिसगंसि वास-
घरंसि अंबिभतरओ सच्चित्तकम्मे जाव सीहं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा ।
एवं जम्मणं जहा महाबलस्स, जाव नामधिज्जं, जम्हाणं अम्हं इमे दारए
कालस्स कुमारस्स पुत्ते पउमावईए देवीए अत्तए तं होउ णं अम्हं इमस्स
दारगस्स नामधिज्जं पउमे, सेसं जहा महाबलस्स अट्ठओ दाओ जाव
उप्पिपासायवरगए विहरइ ॥२॥

ध्याया—यदि खलु भवन्त ! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन कल्पावतंसिकानां वश अध्ययनानि
प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य खलु भवन्त । अध्ययनस्य कल्पावतंसिकानां श्रमणेन भगवता यावत् सम्प्राप्तेन
कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये चम्पा नाम्नी नगरी आसीत् । पूर्णभद्रं
चेत्य, कूणिको राजा, पद्मावती देवी । तत्र खलु चम्पायां नगर्या ओणिकस्य राज्ञो भार्या कूणिकस्य
राज्ञो लघुमाता काली नाम देवी आसीत् । सुकुमारा० । तस्याः खलु देव्याः पुत्रः कालो नाम कुमारः
आसीत् । सुकुमाराः० । तस्य खलु कालस्य कुमारस्य पद्मावती नाम्नी देवी अभवत् । सुकुमारा० यावत्
विहरति ।

ततः खलु सा पद्मावती देवी अन्यथा कदाचित् तावृशे वासगृहे अभ्यन्तरतः सच्चित्तकर्मणि
यावत् सिंहं स्वप्ने दृष्ट्वा खलु प्रतिबुद्धा । एवं जन्म यथा महाबलस्य यावत् नामधेयं, तस्मात् खलु
अस्माकं श्रेयं दारकः कालस्य कुमारस्य पुत्रः पद्मावत्याः देव्या आत्मजः तद् भवतु खलु अस्माकम् अस्य
दारकस्य नामधेयं पद्मः । शेषं यथा महाबलस्य अष्ट दयाः यावत् उपरि प्रासादवरगतो विहरति ॥२॥

पदार्थान्वयः—इदं णं भंते—हे भगवन् ! यदि, समणेणं जाव संपत्तेण—श्रमण भगवान्
महावीर यावत् मोक्ष को संप्राप्त ने, कप्पवडिसियाणं दस अज्झयणा पन्नता—कल्पावतंसिका के
दस अध्ययन प्रतिपादित किए हैं, पढमस्स णं भंते—तो हे भगवन प्रथम, अज्झयणस्स कप्प-

वडिसियाणं समणेणं भगवया जाव के अट्ठे पन्नत्ते—कल्पावतंसिका के (प्रथम) अध्ययन का श्रमण भगवान महावीर यावत् मोक्ष को प्राप्त ने क्या अर्थ प्रतिपादन किया है, एवं खलुं जंबू—इस प्रकार हे जम्बू !, तेणं कालेणं तेणं समएणं—उस काल, उस समय में; चंपा नाम नगरी होत्था—चम्पा नाम की नगरी थी, पुन्नभट्टे चेइए—पूर्ण भद्र नाम का चैत्य था, कूणिए राया—कोणिक नाम का राजा था, पउमावई देवी—पद्मावती नाम की रानी थी, तत्थणं चंपाए नगरीए—उस चम्पा नगरी में, सेणियस्स रत्तो भन्ना कणियस्स रत्तो चुल्लमाया काली नामं देवी होत्था—श्रेणिक राजा की भार्या, कोणिक राजा की छोटी माता काली देवी थी, तीसे णं कालीए देवीए—उस काली देवी का, पुत्ते काले नामं कुमारे हो या—काल कुमार नाम का पुत्र था, सुकुमाले०—जो सुकोमल था, तस्स णं कालस्स पउमावई नाम देवी होत्था—उस काल कुमार की पद्मावती नाम की रानी थी, सोमाला जाव विहरइ—जो कि सुकुमार थी यावत् शान्ति पूर्वक जीवन यापन कर रही थी ।

तए णं—तत्पश्चात्, सा पउमावई देवी—वह पद्मावती, अन्नया कयाइ—अन्य किसी समय, तंसि तारिसगंसि दास घरंसि—उस पुण्य आत्मा के योग्य वासगृह में, अन्निमतरओ—आभ्यन्तर से, सच्चितकम्मे—जो वास गृह सचित्र था, जाव—यावत् सोहं सुमिणे—सिंहस्वप्न में, पासित्ता णं—देख कर; पडिदुद्धा—जागृत हुई, एवं—इस प्रकार, जम्मणं—जन्म, जहा—जैसे, महाबलस्स—महाबल कुमार, जाव—यावत्, नामधिज्जं—नाम करण हुआ था, जम्हाणं—जिससे, अम्ह—हमारा, इमे वारए—यह बालक, काल कुमारस्स—काल कुमार, पुत्ते—हमारा पुत्र है, पउमावईए देवीए अत्तए पद्मावती का आत्मज है, तं—प्रता, होउणं—हो, अम्हं—हमारे, इमस्स वारगस्स—इस बालक का, नामधिज्जं—नाम करण, पउमे—पद्म, सेसं—शेषवर्णन, जहा—जैसे, महाबलस्स—महाबल कुमार का है उसी प्रकार जानना चाहिए, अट्ठाओ दाओ—आठ पत्नियां अर्थात् आठ कन्याओं के साथ विवाह हुआ, जाव—यावत्, उप्पिपासायवरगए—ऊपर प्रभान प्रासाद में रहता हुआ, विहरइ—विचरता है ॥२॥

मूलार्थ—हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान यावत् मोक्ष को संप्राप्त भगवान महावीर ने कल्पावतंसिका के दश अध्ययन प्रतिपादित किए हैं तो हे भगवन् ! मोक्ष को संप्राप्त भगवान महावीर ने कल्पावतंसिका के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—निश्चय ही उस काल उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी, पूर्ण भद्र चैत्य था, कोणिक नाम का राजा राज्य करता था, उसकी पद्मावती नाम की रानी थी । उस चम्पा नगरी में श्रेणिक राजा की भार्या राजा कोणिक की छोटी माता काली नाम की रानी थी जो सुकोमल थी । उस काली देवी के काल कुमार नाम का पुत्र था जो सुकोमल था । उस काल कुमार की पद्मावती नाम

की रानी थी, जो सुकोमल थी एवं शान्ति-पूर्वक जीवन व्यतीत कर रही थी ।

तत्पश्चात् वह पद्मावती देवी किसी समय पुण्यवान प्राणी के योग्य वासगृह में शय्या पर शयन कर गयी थी । वह वासगृह अन्दर से चित्रों से सुसज्जित था यावत् (वह) सिंह के स्वप्न को देखकर जाग उठी । (बालक उत्पन्न हुआ) जिसका जन्म, नामकरण आदि जिस प्रकार महाबल कुमार का हुआ था उसी प्रकार इसका भी जानना चाहिए । यह काल कुमार का पुत्र व पद्मावती का आत्मज है, अतः इस बालक का नाम पदम रखा गया । शेष वर्णन महाबल कुमार की तरह जानना चाहिए, आठ कन्याओं से उसका विवाह हुआ, आठों कन्याओं के परिवारों का दान-दहेज आया, यावत् राज-प्रासाद में बैठ कर सुख भोगता हुआ, विचरता है । शेष वर्णन महाबल कुमार की तरह ही जानना चाहिये । २॥

टोका—प्रस्तुत सूत्र में आर्य सुधर्मा के शिष्य अंतिम केवली जम्बू स्वामी ने दश अध्ययनों में से प्रथम अध्ययन का अर्थ पूछा है । शिष्य की जिज्ञासा को शांत करते हुए गुरुदेव कहते हैं कि प्रथम अध्ययन में काल कुमार का वर्णन है । इसका समस्त वर्णन महाबल कुमार की तरह जानना चाहिये । जैसे पंचम अङ्ग भगवती सूत्र के ग्यारहवें शतक में महाबल कुमार का वर्णन है वैसे ही समस्त अन्तर इतना है कि यहां काल कुमार के पिता श्रेणिक हैं पर कोणिक व काल कुमार की रानियों के नाम एक तरह के हैं । काल कुमार की रानी सिंह का स्वप्न देख कर जागृत होती है । प्राचीन परम्परा है कि शुभ स्वप्न आने पर जागृत रहना अच्छा होता है । यहां राज कुमार पदम के जन्म का वर्णन आया है । जो अपने माता-पिता की तरह सुकोमल एवं सुन्दर है, बड़ा होने पर आठों ही कुमारों की शादी होती है । आठों सुन्दर कन्याएं काफी दहेज लाईं । परन्तु प्राचीन काल में दहेज आज की तरह जरूरी नहीं होता था माता-पिता सभी वस्तुएं पुत्री को स्वेच्छा से भेंट करते थे । जीवन भर स्त्री ही इसकी स्वामिनी होती थी । इसे स्त्री-धन कहा जाता था । महाबल कुमार की तरह इसने भी प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव जी द्वारा प्रतिपादित ७२ कलाएं कलाचार्य से सीखीं । अब ये आठ पत्नियों के साथ सुख से रह रहा है ।

'सोमाला' पद का कई अर्थों में प्रयोग हुआ है, शरीर का सुकोमल, शान्तिपूर्वक जीवन, या सुखमय जीवन गुजारने वाला के रूप में ॥२॥

मूल—सामी समोसरिए परिसा निगगया, कूणिओ निगगए, पउ-
मेवि जहा महब्बले निगगए तहेव अम्मापिइ—आपुच्छणा जाव पव्वइए
अणगारे जाए जाव गुत्ताबंभयारी ॥३॥

छाया—स्वामी समस्तः, परिषद् निर्गता, कूणिको निर्गतः, पद्मोऽपि यथा महाबलो निर्गतस्तथैव अम्बापितृ-आपृच्छना यावत् प्रव्रजितोऽनगारो जातो यावत् गुप्तब्रह्मचारी ॥३॥

पदार्थान्वयः—सामी—स्वामी, समोसरि—पधारे, परिसा निगया—परिषद् दर्शनार्थं निकली, कूणिको निगए—राजा कोणिक भी राज महल से निकला, पउमेवि जहा महाबले निगए तहेव—जैसे महाबल कुमार निकला था वैसे ही पद्मकुमार भी दर्शनार्थं निकला, वैसे ही, अम्बापि—माता-पिता से, आपृच्छना—पूछ कर, जाव पव्वइए—यावत् प्रव्रजित हुए, अनगारे जाए—अनगार हुए, जाव गुत्तब भयरी—यावत् गुप्त ब्रह्मचारी हुए ॥३॥

मूलार्थ—उस नगरी में स्वामी (श्रमण भगवान महावीर पधारे) । धर्म परिषद् निकली । राजा कूणिक भी राजमहल से निकला, पद्म कुमार भी महाबल कुमार की तरह दर्शन करने आया (धर्म-उपदेश सुनकर) माता-पिता की आज्ञा से प्रव्रजित हुए, यावत् गुप्त ब्रह्मचारी अनगार हुए ॥३॥

टीका—श्रमण भगवान महावीर अपना धर्म-उपदेश करति हुए चम्पा नगरी में पधारे । राजा प्रजा भगवान के दर्शन करने व धर्म-उपदेश सुनने आए । पद्म कुमार भी भगवान के दर्शन करने आया । धर्म उपदेश सुन कर वह माता-पिता की आज्ञा से महाबल की तरह ही दीक्षित हो गया । अनगार (साधु) के गुणों से युक्त हो गया, यावत् गुप्त ब्रह्मचारी हो गया ॥३॥

उत्पानिका—सूत्रकार अब पुनः उसी विषय में कहते हैं—

मूल—तएणं से पउमे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जिता बहूहि चउत्थछट्ठट्ठम जाव विहरइ । तएणं से पउमे अणगारे तेणं ओरालेणं जहा मेहो तहेव धम्मजागरिया चिंता एवं जहेव मेहो तहेव समणं भगवं आपुच्छिता विडले जाव पाओवगए समाणे ।

छाया—ततः खलु स पद्मोऽनगारः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य तथा कृपाणां स्थविराणाम् अन्तिके साम्प्रदायिकानि एकाग्रसाङ्गानि बधोते । अघीत्य बहुभिः क्षतुर्ध्वंशटाष्टम० यावद् विहरति । ततः स पद्मोऽनगारो तेन उद्यारेण यथा मेघस्तथैव धर्मजागरिका, चिन्ता, एवं यथैव मेघस्तथैव श्रमणं भगवन्तमापृच्छ्य विपुले यावत् पादपीगतः सन् ॥४॥

पदार्थान्वयः—तएणं से पउमे अणगारे—तत्पश्चात् वह पद्म अनगार, समणस्स भगवओ महावीरस्स—श्रमण भगवान महावीर के, तहा रूखाणं—तथा रूप विद्वान्, थेराणं—स्थविरों के, अतिए—समीप, सा इयमाइयाइं—सामायिक आदि से लेकर, एकारस्स अंज्जाइं—ग्यारह अङ्गों का, अहिज्जइ—अध्ययन करता है, अहिज्जिता—अध्ययन करके, वहाँहि—बहुत से, चउत्थछट्ठम—एक उपवास, दो उपवास, तीन उपवास आदि ग्रहण कर, जाव—यावत् विहरइ—विचरता है, तएणं—तत्पश्चात्, पउमे अणगारे—वह पद्म अनगार, तेणं—उस, उरालेणं—प्रधान तप द्वारा शरीर से, जहा—जैसे, मेहो—मेघ कुमार, तहेव—उसी प्रकार, धम्मजागरिया—धर्म जागरण, चिता—चिन्तन, एवं—इसी प्रकार, जहेव—जैसे, मेहो—मेघ कुमार, तहेव—उसी प्रकार, समणं भगवं—श्रमण भगवान से, आपुच्छिता—पूछ कर, विउले—विपुलगिरि पर चढ़ कर, जाव—यावत्, पाओवगए समाणे—पादोपगमन अनशन कर साधना करने लगा ॥४॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह पद्म अनगार श्रमण भगवान महावीर के तथा रूप श्रमणों के समीप रह कर सामायिक आदि से लेकर एकादश अङ्गों को पढ़ता है, पढ़ कर बहुत बार एक-एक उपवास, दो-दो उपवास, तीन-तीन उपवास आदि से महातप धारण कर विचरता है। तब पद्म अनगार का वह प्रधान तप के करने से शरीर कृश हो गया। जिस प्रकार मेघ कुमार ने धर्म जागरण करते हुए अनशन करने की विचारणा की थी, ठीक उसी प्रकार का विचार कर, पद्म अनगार भगवान महावीर से आज्ञा लेकर विपुलगिरि (राजगृह) पर्वत पर चढ़ कर पादोपगमन अनशन कर साधना करने लगा ॥४॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में राजकुमार पद्म की स्थविरों के पास एकादश अङ्ग पढ़ने की चर्चा है। सामायिक आचारङ्ग सूत्र का ही नाम है। फिर लम्बे समय तक तप करते हुए, धर्म-जागरण करता है। लम्बे समय तक तप करने से जब शरीर कृश हो गया तब वह पद्म अनगार मेघ कुमार की तरह विपुल गिरि पर समाधि-मरण के लिए जाता है। वह पादोपगमन अनशन की आज्ञा भगवान महावीर से लेता है। मेघ-मुनि भी राजा श्रेणिक का पुत्र था। उसका वर्णन श्री ज्ञाताधर्म कथाङ्ग सूत्र में देलना चाहिए।

हस्तलिखित कतिपय प्रतियों में 'समाणे' पद के स्थान पर समणं पद दिया गया है, किन्तु प्रकरण अनुसार 'समाणे' पद ही उपयुक्त है। तथा "धम्म जागरिया चिता" इन दो पदों से यह सूचित किया गया है कि यदि रात्रि में निद्रा खुल जाए, तब धर्म के विषय में चिन्तन करना चाहिए। इसका नाम ही धर्म-जागरणा है। फिर विचार पूर्वक सच्चे धर्म का पालन करना चाहिये। कारण

यह है कि धर्म-जागरणा करने के अतिरिक्त कुछ अन्य जागरण भी हैं जैसे कि कुटुम्ब-जागरिया, अत्य-जागरिया, काम-जागरिया, कलह-जागरिया, विवाद-जागरिया, सक्लेश-जागरिया, मोह-जागरिया आदि अनेक जागरण हैं। इनको छोड़कर धर्म-जागरण ही आत्मा के लिये कल्याणकारी है। इसका कारण यह है कि रात्रि में निद्रा से मुक्त होने पर विचार अवश्य आते हैं। अठारह पापों के अशुभ विचार होते हैं, उन पापों से बचने के लिए शुभ विचार किये जाते हैं। जिन्हें शास्त्रकार ने धर्म जागरणा नाम दिया है। धर्म-जागरण, नित्य जागरण, बुद्ध जागरण प्रबुद्ध जागरण, सुदर्शन जागरण आदि शुभ जागरण हैं ॥४॥

मूल—तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं, बहुपडिपुण्णाइं पंच वासाइं सामन्नपरियाए, मासियाए संलेहणाए सट्ठि भत्ताइं० आणुपुब्बीए कालगए । थेरा ओइन्ना, भगवं गोयमो पुच्छइ, सामी कहेइ जाव सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता आलोइय० उड्ढं चंदिम० सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववन्ने, दो सागराइं ॥५॥

छाया—तथारूपाणां स्थविराणाम् अस्तिके सामायिकाविकानि एकादशाङ्गानि बहुप्रतिपूर्णाणि पञ्च वर्षाणि श्रामण्यपर्यायः। मासिक्या संलेखनया षष्ठि भक्तानि० आनुपूर्व्या कालगतः। स्थविरा अवतीर्णाः, भगवान् गौतमः पुच्छति—स्वामी कथयति यावत् षष्ठि भक्तानि अनशनेन छित्वा आलोचति० ऊर्ध्वं चन्द्रमः० सौधमं कल्पे देवत्वेन उपपन्नः, दो सागरो ॥५॥

पदार्थान्वयः—तहारूवाणं—तथारूप श्रमण, थेराणं—स्थविरों के, अंतिए—समीप, सामाइयमाइयाइं—सामायिक आदि, एक्कारस अंगाइं—एकादश अंगों को पढ़कर, बहुपडिपुण्णाइं—बहुत प्रतिपूर्ण, पञ्चवासाइं—पांच वर्ष, सामणपरियाए—श्रामण्य पर्याय पालकर, मासियाए संलेहणाए—एक मास का अनशन करके, सट्ठि भत्ताइं—साठ भक्त का छेदन कर, आणुपुब्बीए—अनुक्रम से उसने, कालगए—काल किया, थेरा—स्थविर, ओइन्ना—विपुलगिरि पर्वत से उतर आये, भगवं—भगवान्, गौतमं—गौतम ने, पुच्छइ—पूछा, सामी कहेइ—भगवान् महावीर ने उत्तर दिया, जाव—यावत्, सट्ठि भत्ताइं—साठ भक्त, अणसणाए अनशनों का, छेदित्ता—छेदन कर, आलोइय—आलोचना प्रतिक्रमण कर, उड्ढं—ऊँचे, चंदिम०—चन्द्र से, सोहम्मे कप्पे—सौधमं कल्प में, देवत्ताए—देव रूप में, उववन्ने—उत्पन्न हुआ, दो सागराइं—जिसकी स्थिति दो सागरोपम की है ॥५॥

मूलार्थ—पद्य अनगार तथारूप स्थविरों के समीप सामायिक आदि से लेकर ग्यारह अङ्ग शास्त्र पढ़कर बहुत प्रतिपूर्ण पांच वर्ष संयम - पर्याय पाला। फिर एक

मास की संलेखना से साठ भक्तों के अनुक्रम से काल-धर्म को प्राप्त हुआ । स्थविर पर्वत से नीचे उतर आए, उसके भण्ड उपकरण भगवान महावीर को दिखाये । गणधर गौतम ने प्रश्न किया—हे भगवन् ! पद्म अनगार काल करके कहां उत्पन्न हुआ है ? भगवान महावीर ने उत्तर दिया “हे गौतम ! पद्म अनगार अपनी संयम - क्रिया का पूर्णतः पालन कर आलोचना प्रतिक्रमण करके शक्तियों से शुद्ध होकर एक मास की संलेखना से प्रथम देवलोक में दो सागरोपम की स्थिति वाले देव के रूप में उत्पन्न हुआ है ॥५॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में बतलाया गया है कि पद्म अनगार ने तथारूप श्रुतज्ञ स्थविरों के समीप आचाराङ्ग आदि ग्यारह अङ्गों का अध्ययन किया । पांच वर्षों तक साधु-जीवन का पालन किया । एक मास की संलेखना की । साठ (६०) भक्तों का छेदन कर अनुक्रम से काल-धर्म को प्राप्त हुआ । तब स्थविर विपुल गिरि से उतर कर नीचे भगवान के समीप उपस्थित हुए । उन्होंने पद्म अनगार के भण्डोपकरण दिखाकर उसके समाधि-मरण की सूचना दी । गणधर गौतम ने जब पद्म अनगार का भविष्य पूछा, तो श्रमण भगवान ने बताया कि पद्म अनगार यहां से काल करके सौषमं देवलोक में दो सागरोपम की आयु वाला देव बना है । जिस प्रकार मेघ कुमार का वर्णन श्री ज्ञाता-धर्म कथाङ्ग सूत्र में आया है पद्म मुनि का साधनामय जीवन भी वैसा ही जान लेना चाहिए ॥५॥

मूल—से णं भंते पउमे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं पुच्छा,
गोयमा ! महाविदेहे वासे जहा दढपइन्नो जाव अंतं काहिइ । तं एवं
खलु जंब् ! समणेणं जाव संपत्तेणं कप्पवडिसियाणं पढमस्स अज्झयणस्स
अयमट्ठे पन्नत्ते त्तिबेमि ॥६॥

छाया—सः खलु भवन्त ! पद्मो देवस्ततो देवलोकाद् आयुः-क्षयेण पुच्छति, गौतम ! महाविदेहे वर्षे यथा दृढप्रतिज्ञो यावदन्तं करिष्यति । तदेव खलु जम्बू ! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन कल्पावतंसिकानां प्रथमस्याध्ययनस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः, इति ब्रवीमि ॥६॥

पदार्थान्वयः—से णं भंते—हे भगवन् ! वह, पउमे देवे—पद्मदेव, ताओ देव लोगाओ—उस देवलोक से, आउक्खएणं—आयु सय करके, कहां उत्पन्न होगा ?, पुच्छा—इस प्रकार गणधर गौतम ने प्रश्न किया, भगवान के उत्तर दिया, गोयमा—हे गौतम, महाविदेह वासे—महाविदेह क्षेत्र में, जहा—जैसे, दढपइन्नो जाव—दृढ़ प्रतिज्ञा कुमार का वर्णन है यावत् सब दुःखों का अंत

करेगा, तं एवं खलु जंबू—इस प्रकार निश्चय ही हे जम्बू !, समणेण जाव संपत्तेणं—श्रमण भगवान यावत् मोक्ष को सम्प्राप्त ने, कप्पवडिसियाणं—कल्पावतंसिका के, पढ-स्स—प्रथम, अज्झयणस्स—अध्ययन का, अयमट्ठे पन्नत्ते—यह अर्थ प्रतिपादन किया है, तिबेमि—इस प्रकार मैं कहता हूँ ॥६॥

मूलार्थ—हे भगवन् ! वह पद्मदेव, देवलोक की आयु पूर्ण करके कहां उत्पन्न होगा ? इस प्रकार का प्रश्न गौतम स्वामी ने किया । इसके उत्तर में भगवान महावीर ने कहा—“हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में जैसे दृढ़प्रतिज्ञ का वर्णन है यावत् सब दुःखों का अन्त करेगा । (आर्य सुधर्मा कहते हैं) हे जम्बू ! निश्चय ही श्रमण भगवान मोक्ष-संप्राप्त ने कल्पावतंसिका के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है । इस प्रकार मैं कहता हूँ ॥६॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में भगवान महावीर ने सूचित किया है कि पद्म मुनि देवलोक की आयु पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा, वह दृढ़प्रतिज्ञ अनगर को तरह से सिद्ध बुद्ध होकर मोक्ष को प्राप्त करेगा ॥६॥

॥ प्रथम अध्ययन पूर्ण हुआ ॥

अथ द्वितीय अध्ययन

मूल—जइ णं भन्ते ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं कप्पवडिसियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, दोचस्स णं भन्ते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पणत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था, पुन्नभट्ठे चेइए, कूणिए राया, पउमावईदेवी । तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रन्नो भज्जा कूणियस्स रन्नो चुत्तलमाउया सुकाली नामं देवी होत्था । तीसे णं सुकालीए पुत्ती सुकाले नामं कुमारो । तस्स णं सुकालस्स कुमारस्स महापउमा नामं देवी होत्था, सुकुमाला०—

तए णं सा महापउमा देवी अन्नया कयाइं तंसि तारिसगंसि एवं तहेव महापउमे नामं बारए, जाव सिज्झहिइ, नवरं ईसाणे कप्पे उववओ

उक्कोसट्ठिओ । तं एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं० ।
एवं सेसा वि अट्ठ नेयव्वा । मायाओ सरिसनामाओ । कालादीणं दसण्हं
पुत्ताणं आणुपुव्वीए—दोण्हं च पंच चत्तारि, तिण्हं तिण्हं च होति तिन्नेव !
दोण्हं च दोण्णि वासा, सेणिय-नत्तूण परिधाओ ।

उववाओ आणुपुव्वीए, पढमो सोहम्मे वितिओ ईसाणे, तइओ
सणंकुमारे, चउत्थो माहिदे, पंचमओ बंभलोए, छट्ठो लंतए, सत्तमओ
महासुक्के, अट्ठमओ सहस्सारे, नवमओ पाणए, दसमओ अच्चुए ।
सव्वत्थ उक्कोसट्ठिई भाणियव्वा, महाविदेहे सिज्झिहिइ ॥१॥

छाया—यबि खलु भवन्त ! श्रमणेन भगवता यावत् संप्राप्तेन कल्पावर्तसिकानां प्रथमस्या-
ध्ययनस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः, द्वितीयस्य खलु भवन्त ! अध्ययनस्य कोऽर्थः प्रज्ञप्तः । एवं खलु जम्बू !
तस्मिन् काले तस्मिन् समये चम्पा नाम नगरी आसीत्, पूर्णभद्रं चैत्यं, कूणिको राजा, पद्मावती देवी ।
तत्र खलु चम्पायां नगर्यां श्रेणिकस्य राज्ञो भार्या कूणिकस्य राज्ञो लघुमाता सुकाली नाम देवी
आसीत् । तस्याः खलु सुकाल्याः पुत्रः सुकालो नाम कुमारः, तस्य खलु सुकालस्य कुमारस्य महापद्या
नाम देवी आसीत्, सुकुमारा० ।

ततः खलु सा महापद्या देवी अन्यदा कदाचित् तस्मिन् तादृशे एवं तथैव महापद्मो नाम
वारकः, यावत् सेत्स्यति, नवरमीशानकल्पे उपपातः उत्कृष्टस्थितिकः । एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन
भगवता यावत् संप्राप्तेन । एवं शेषाण्यपि अष्टौ ज्ञातव्यानि, मातरः सद्गुणान्मयः कालादीनां दशानां
पुत्राणामानुपूर्व्या—(वत्पर्यायः)—द्वयोश्च पञ्चचत्वारि, त्रयाणां त्रयाणां च भवन्ति त्रीण्येव । द्वयोश्च
द्वे वर्षे, श्रेणिकनप्तृणां पर्यायः ।

उपपातः आनुपूर्व्या—प्रथमः सोधर्मो, द्वितीयः ईशाने, तृतीयः सनत्कुमारे, चतुर्थो माहेन्द्रे,
पञ्चमो ब्रह्मलोके, छट्ठो लातके, सप्तमो महासुक्के, अष्टमः सहस्सारे, नवमो प्राणते, दशमोऽच्युते ।
सर्वत्र उत्कृष्टा स्थितिर्भणितव्या, महाविदेहे सेत्स्यति ॥१॥

पदार्थान्वयः—जइणं भंते—यदि हे भगवन्, समणेणं भगवया—श्रमण भगवान्, जाव—
यावत्, संपत्तेणं—मोक्ष को संप्राप्त ने, कल्पावर्तसियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते—
कल्पावर्तसिका के (द्वितीय वर्ग के) प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, वोच्चस्स णं भंते
अज्झयणस्स के अट्ठे पणत्ते—तो भगवान् ने दूसरे अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है । एवं

खलु जंबू !—इस प्रकार निश्चय ही हे जम्बू !, तेणं कालेणं तेणं समयेणं—उस काल उस समय, चंपा नाम नगरी होत्था—चम्पा नाम की नगरी थी, पुत्रभट्टे चेइए—वहां पूर्ण भद्र नामक चंत्य था, कूणिए राया, पउमावईदेथी—कोणिक राजा था, पद्यावती रानी थी, तत्थ णं चंपाए नयरीए—उस चम्पा नगरी में, सेणियस्स रत्तो भज्जा—श्रेणिक राजा की भार्या, कोणियस्स रत्तो चुल्लमाउया—कोणिक राजा की छोटी माता, सुकाली नामं देवी होत्था—सुकाली नाम की महारानी थी, तीसे णं सुकालीए पुत्ते—उस सुकाली के पुत्र, सुकाल नामं कुमारे—सुकाल नाम का कुमार था, तस्स णं सुकालस्स कुमारस्स—उस सुकुमार सुकाल कुमार के, महापउमा नामं देवी होत्था—महापद्या नाम की देवी थी, सुकुमाला०—जो सुकोमल थी ।

तए णं सा महापउमा देवी—तत्पश्चात् वह महापद्या देवी, अन्नया कयाइ—अन्य किसी समय, तंसि तारिसगंसि—उसके समान शैल्या पर, एवं तहैथ महापउमे नाम दारए—वैसे ही महापद्य नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जाव—यावत्, सिज्झिहिइ—मोक्ष पद प्राप्त करेगा, नवरं ईसाणे कप्पे उववाओ—इतना विशेष है कि उसका ईशान देव-लोक में उत्पत्ति (जन्म) होगा, उक्को-सट्ठिइओ—उत्कृष्ट स्थिति जाननी चाहिए, तं एवं खलु जंबू—इस प्रकार हे जम्बू !, समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं—अमण भगवान यावत् मोक्ष को संप्राप्त ने द्वितीय अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, एवं सेसा वि अट्ठ नेयव्वा—इस प्रकार शेष आठ अध्ययनों के विषय में भी जान लेना चाहिए, मायाओ सरिसनामाओ—सबके नाम माताओं के नामों पर हैं, कालादीणं पुत्ता आणु-पुव्वीए—अनुक्रम से कालादि दसों कुमारों की चारित्र पर्याय इस प्रकार है, दोण्हं च पंच—प्रथम दो की पांच वर्ष, चत्तारि तिण्हं—फिर तीन की चार वर्ष, तिण्हं च होति तिण्णेव—फिर तीन कुमारों की तीन वर्ष, दोण्हं च दोणिण वासा—फिर दो की दो वर्ष, सेणियनत्तूण परियाओ—श्रेणिक राजा के पोत्र का चारित्र पर्याय है ।

उववाओ आणुपुव्वीए—उपपात अनुक्रम से, पढमो सोहम्मो—प्रथम सौधर्म में, वित्तिओ ईसाणे—द्वितीय का ईशान कल्प में, तइओ सणंकमारे—तीसरा सनत कुमार देवलोक में, चउत्थो माहिदे—चतुर्थ माहेन्द्र कल्प देवलोक में, पंचमओ वंभलोए—पांचवां ब्रह्म देवलोक में, छट्ठो लंतए—छठा लांतक कल्प में, सत्तमओ महासुक्के—सातवें का महाशुक्र में, अट्ठमओ सहस्सारे—आठवां सहस्रार देवलोक में, नवमओ पाणए—नौवां प्राणत देवलोक में, दसमओ अच्चुए—दशवां अच्युत देवलोक में उत्पन्न हुआ, सव्वस्स उक्कोसट्ठिइ—सब की उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिए, महाविदेह सिज्झिहिइ भाणियव्वा—और यावत् सब ही महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध गति प्राप्त करेंगे, अर्थात् मोक्ष प्राप्त करके सब दुःखों का अंत करेंगे । कप्पवीडसियाओ वित्तियोगो संमताओ—कल्पावतंसिका नामक शास्त्र द्वितीय वर्ग समाप्त हुआ ॥७॥

मूलार्थ—अब आर्य जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया—हे भगवन् ! अमण भगवान यावत् मोक्ष की संप्राप्त ने अगर कल्पावतंसिका के द्वितीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का

यह अर्थ प्रतिपादन किया है, तो हे भगवन् ! (उन श्रमण भगवान महावीर) ने दूसरे अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? गणधर सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया— हे जम्बू ! उस काल एवं उस समय में चम्पा नाम की एक नगरी थी । (वहाँ) कोणिक नाम का राजा राज्य करता था । उसकी पद्मावती नाम की देवी (महारानी) थी ।

उस चम्पा नगरी में राजा श्रेणिक की भार्या एवं राजा कोणिक की छोटी माता सुकाली नाम की देवी थी । उस सुकाली का पुत्र सुकाल नाम का कुमार था । उस सुकाल कुमार की महापद्मावती नाम की रानी थी जो सुकोमल थी ।

तत्पश्चात् वह महापद्मावती देवी, किसी समय महल में सो रही थी (जैसे कि पहले वर्णन किया जा चुका है) । उसकी कुक्षि से महापद्म नाम का कुमार उत्पन्न हुआ, यावत् वह निर्वाण-पद प्राप्त करेगा । इतना विशेष है कि उसका उपपात (देवलोक में जन्म) होगा और वह ईशान-कल्प नामक देवलोक में उत्कृष्ट स्थिति वाला देव बनेगा । इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर ने यावत् मोक्ष को संप्राप्त ने द्वितीय अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है ।

इस प्रकार शेष आठ अध्ययनों का अर्थ भी जानना चाहिए । सब के नाम माताओं के नामों के सदृश हैं । अनुक्रम से कालादि दसों ही पुत्रों की दीक्षा-पर्याय इस प्रकार है, प्रथम दो की पांच वर्ष, तीन की तीन वर्ष, दो की दो वर्ष । यह सब महाराजा श्रेणिक के पुत्रों की दीक्षा-पर्याय है । अनुक्रम से इन सबका उपपात इस प्रकार हुआ ।

प्रथम का सौधर्भ देवलोक, द्वितीय का ईशान देवलोक, तृतीय का सनत्कुमार देवलोक, चौथे का माहेन्द्र देवलोक, पांचवें का ब्रह्म देवलोक, छठे का लांतक देवलोक, सातवें का महाशुक्र देवलोक, आठवें का सहस्रार देवलोक, नौवें का प्राणत, दसवें का अच्युत देवलोक । सबकी देवलोक में उत्कृष्ट स्थिति जाननी चाहिए यावत् ये सब महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध होंगे ॥६॥

टीका—इस सूत्र में राजा श्रेणिक के पुत्रों का वर्णन है, इन सब राज-कुमारों ने मुनि-जीवन ग्रहण किया, तप किया और देवलोक प्राप्त किया । फिर महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होंगे,

इनकी माताओं के नाम पर ही इनके नाम जानने चाहिये। अन्तर इनके नामों, दीक्षा - पर्यायों व देवलोक के नामों में है। इस अध्ययन से सिद्ध होता है कि सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्र्य व सम्यग् तप की आराधना से श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है। देव-लोक में देव रूप में जन्म, शुभकर्मोदय से ही होता है। महाविदेह क्षेत्र से इन सभी चारित्र्यशील आत्माओं ने मोक्ष पधारना है। सभी अध्ययनों में घटनाक्रम एक तरह का है।

इस प्रकार कल्पावतंसिका नामक द्वितीय वर्ग में निम्नलिखित मुनियों का वर्णन है, काल, सुकाल के पुत्र पद्म—महापद्म अनगर ने पांच वर्ष संयम पालन किया, तदनन्तर सौधर्म नामक प्रथम देवलोक में उत्कृष्ट दो सागरोपम आयु वाला, महापद्म ईशान देवलोक में दो सागरोपम से कुछ अधिक आयु वाला देव बना। महाकाल, कृष्ण और सुकृष्ण के पुत्र भद्र, सुभद्र और पद्म भद्र ने चार वर्ष संयम पर्याय का पालन किया। भद्र मुनि सनत्कुमार नामक तीसरे देवलोक में उत्कृष्ट सात सागरोपम की आयु वाला, सुभद्रमुनि माहेन्द्र नामक चतुर्थ देवलोक में उत्कृष्ट सात सागरोपम और पद्म भद्रमुनि ब्रह्मलोक नामक पांचवें देवलोक में उत्कृष्ट दस सागरोपम की आयु वाला देव बना। महाकृष्ण, रामकृष्ण का पुत्र पद्मसेन पद्मगुल्म मुनि हुए। पद्मसेन मुनि लांतक नामक छठे देवलोक में उत्कृष्ट चौदह सागरोपम की स्थिति वाला देव बना। पद्मगुल्म मुनि महाशुक्र नाम के सातवें देवलोक में सत्रह सागरोपम की आयु वाले देव बने। इन्होंने तीन वर्ष संयम का पालन किया। मलिनी-गुल्म सहस्रार देवलोक में १६ सागरोपम आयु वाले देव बने। पितृ सेन कृष्ण व महासेन कृष्ण के पुत्र आनन्द मुनि व नन्दन मुनि ने दो-दो वर्ष संयम पालन किया। आनन्द मुनि प्राणत नाम के नवमे देवलोक में उत्कृष्ट २० सागरोपम आयु वाला व नन्दन मुनि बारहवें अच्युत देवलोक में २२ सागरोपम स्थिति वाले देव बने ॥६॥

॥ द्वितीय वर्ग समाप्त ॥



पुष्पिता नामक
[तृतीय-वर्ग]

अथ पुष्पिताख्यस्तृतीयो वर्गः

[उत्थानिका—आर्य जम्बू पचम गणधर सुधर्मा स्वामी से निरयावलिका सूत्र के द्वितीय वर्ग का अर्थ ग्रहण करने के पश्चात् इस उपाङ्ग के पुष्पिता नामक तृतीय वर्ग के अर्थ सुनने की जिज्ञासा अपने गुरुदेव से करते हैं। विनीत शिष्य के प्रश्न के उत्तर में आर्य सुधर्मा ने क्या उत्तर दिया, उसी का वर्णन इस अध्ययन में है]

मूल—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं उवंगाणं दोच्चस्स वगस्स कप्पवडिसियाणं अयमट्ठे पन्नत्ते ? । तच्चस्स णं भंते ! वगस्स उवंगाणं पुप्फियाणं के अट्ठे पणत्ते ? । एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं उवंगाणं तच्चस्स वगस्स पुप्फियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता तं जहा—

१. चंदे, २. सूर, ३. सुक्के, ४. बहुपुत्तिय, ५. पुन्ने, ६. माणभद्दे य ।
७. दत्त, ८. सिक्के, ९. वलेया, १०. अणाढिए चेव बोद्धव्वे ॥१॥

छाया—यदि खलु भदन्त ? भ्रमणेन भगवता यावत् संप्राप्तेन उपाङ्गानां द्वितीयस्स वर्गस्य कल्पावतंसिकानायमर्थः प्रज्ञप्तः. तृतीयस्य खलु भदन्त ? वर्गस्य उपाङ्गानां पुष्पितानां कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ?

एवं खलु जम्बू ! भ्रमणेन यावत् संप्राप्तेन उपाङ्गानां तृतीयस्य वर्गस्य पुष्पितानां दशाव्यय-
मानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—चन्द्रः १. सूरः, २. शुक्रः, ३. बहुपुत्रिकः, ४. पूर्णः, ५. भानभद्रश्च । ६. दत्तः
७. शिवः, ८. वलेपकः, ९. अनादृतः, १०. चैव बोद्धव्याः ॥१॥

पदार्थान्वयः—जइणं भंते—यदि हे भगवन्, समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं—भ्रमण भगवान् महावीर यावत् मोक्ष संप्राप्त ने, उवंगाणं दोच्चस्स वगस्स—दूसरे उपाङ्ग के द्वितीय वर्ग, कप्पवडिसियाणं अयमट्ठे पन्नत्ते—कल्पावतंसिका का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, तच्चस्स णं भंते—तो हे भगवन तीसरे, वगस्स उवंगाणं पुप्फियाणं के अट्ठे पणत्ते—वर्ग के उपाङ्ग पुष्पिता का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

एवं खलु जम्बू—इस प्रकार हे जम्बू, समणेणं जाव संपत्तेण—श्रमण भगवान यावत् मोक्ष को सम्प्राप्त ने, उखं गाणं तच्चस्स वर्गस्स—उपाङ्ग के तीसरे वर्ग, पुष्पियाणं—पुष्पिता के, दस अज्झयणा पन्नत्ता—दस अध्ययन प्रतिपादन किये हैं, त जहा—जैसे कि, चंदे, सूर्य, शुक्र, बहुपुत्ति, पुन्ने, माणभद्दे य—चन्द्र, सूर्य, शक्र, बहुपुत्रिका, पूर्ण, मानभद्र, दत्त, शिव, बलेपक, अनादत्त का वर्णन जानना चाहिए।

मूलार्थ—दूसरे वर्ग का अर्थ सुनकर आर्य जम्बू अपने गुरु आर्य सुधर्मा स्वामी से तीसरे वर्ग के बारे में प्रश्न करते हैं—हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान महावीर यावत् मोक्ष को सम्प्राप्त ने द्वितीय वर्ग कल्पावतंसिका का यह अर्थ प्रतिपादन किया है तो तीसरे उपाङ्ग पुष्पिका का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

(आर्य सुधर्मा उत्तर देते हैं) हे जम्बू ! श्रमण भगवान यावत् मोक्ष सम्प्राप्त ने उपाङ्गों में तृतीय वर्ग पुष्पिका के दस अध्ययन प्रतिपादन किये हैं जो इस प्रकार जानने चाहिये—१. चन्द्र, २. सूर्य, ३. शुक्र, ४. बहुपुत्रिका, ५. पूर्ण, ६. मानभद्र, ७. दत्त, ८. शिव ९. बलेपक, १०. अनादत्त ।

टीका—इस सूत्र में कल्पावतंसिका और पुष्पिका का आपसी सम्बन्ध स्थापित किया गया है। तीसरे वर्ग पुष्पिका के भी दस अध्ययन हैं। प्रत्येक अध्ययन का निक्षेप शुरू व अन्त में स्वर्थ जोड़ लेना चाहिए। इस सम्बन्ध में वृत्तिकार का कथन है—अथ तृतीय वर्गोऽपि दशाध्ययनात्मकः निबलेखओत्ति निगमन वाक्यं यथा एवं खलु जम्बू समणेणं भगवया महावीरेण आइगरेण, इत्यादि जाव सिद्धिगइ नामधेयं ठाणं, संवाविउकामेणं तइयस्य वर्गस्स (पढम अज्झ) यणस्स पुष्पियाभिहाणस्स अयमट्ठे पणत्ते, एवमुत्तरेष्वध्ययनेषु सूरशुक्र-बहुपुत्रादिषु निगमनं वाक्यं तत्तदभिभाषेन ।

इसी प्रकार प्रत्येक अध्ययन के साथ सम्बन्ध जोड़ लेना चाहिये। सभी वर्गों के नाम ऊपर लिखे जा चुके हैं।

उत्थानिका—अब सूत्रकार प्रथम अध्ययन का विषय कहते हैं—

मूल—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं पुष्पियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स पुष्पियाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ? ।

एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे, गुणसिलए चेइए, सेणिए राया । तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी

समोसढे, परिसा निग्गया । तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदे जोइसिदे जोइसराया चंदवडिसए विमाणे सभाए सुहम्माए चंदंसि सीहासणंसि चउहि सामाणियसाहस्सोहि जाव विहरइ । इमं च णं केवलकप्पं जंबूद्वीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे-२ पासड, पासिप्ता समणं भगवं महावीरं जहा सूरियाभे आभिओगे देवे सदावित्ता जाव सुरिदाभिगमण-जोगं करेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणइ । सूसरा घंटा, जाव विउव्वणा, नवरं (जाणविमाणं) जोयणसहस्सवित्थिणं अद्धत्तेवट्ठिजोयणसमूसियं, महिदज्झओ पणुवीसं जोयणमूसिओ, सेसं जहा सूरियाभस्स जाव आगओ नट्टविही तहेव पडिगओ । भंते ति भगवं गोयमे समणं भयवं महावीरं, पुच्छा, कूडागारसाला, शरीरं अणुपविट्ठा पुव्वभवो ।

एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नाम नयरी होत्था, कोट्ठए चेइए ! तत्थणं सावत्थीए नयरीए अंगई नाम गाहावई होत्था, अड्ढे जाव अपरिभूए । तएणं से अंगई गाहावई सावत्थीए नथरीए बहूण नयरनिगण० जहा आणंदो ॥१॥

छाया—यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन पुष्पितानां दशध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य खलु भदन्त ! अध्ययनस्य पुष्पितानां श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ?

एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नाम नगरं, गुणशिलं चैव, श्रेणिको राजा । तस्मिन् काले तस्मिन् समये स्वामी समवसूतः । परिषत् निर्गता । तस्मिन् काले तस्मिन् समये चन्द्रो ज्योतिष्केन्द्रा ज्योतीराजः चन्द्रावतंसके विमाने सभायां सुधर्मायां चन्द्रे सिंहाशने चतसृभिः सामानिकसाहस्रीभिः यावद् विहरति । इमं च खलु केवलकप्पं जम्बूद्वीपं द्वीपं विपुलेन अवधिना आभोगयमानः आभोगयमानः पश्यति, दृष्ट्वा श्रमणं भगवन्तं महावीरं सूर्याभिः आभियोग्यान् देवान् शब्दयिषा यावत् सुरेन्द्रादिगमनयोग्यं कृत्वा नामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयति । सुन्धरा घण्टा यावत् विकुर्वणा नवरं (यानविमानं) योजनसहस्रविस्तीर्णम् अर्धत्रिषष्टियोजनसमुच्छ्रितम्, महेंद्रध्वजः पञ्चविंशति-योजनमुच्छ्रितः शेषं यथा सूर्याभस्य यावदागतो नाट्यविधिस्तथैव प्रतिगतः । भदन्त इति भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं पुच्छा, कूटागारशाला, शरीरमनुप्रविष्टा, पूर्वभवः ।

एवं खलु गौतम । तस्मिन् काले तस्मिन् समये 'श्रावस्तिः' नाम नगरी आसीत्, कोष्ठकं चैत्यम् । तत्र खलु श्रावस्त्यां नगर्याम् अङ्गति नामा पाथापतिरासीत् आढ्यो यावदपरिभूतः । ततः खलु सः अङ्गतिर्पाथापतिः श्रावस्त्यां नगर्यां बहूनां नगरनिगमः यथा आत्मन्वः ॥१॥

पदार्थार्थव्ययः—जइ जं भंते—यदि हे भगवन, समणेण जाव संपत्तेण—श्रमण भगवान् यावत् मोक्ष संप्राप्त ने, पुष्पियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता—पुष्पिका के दस अध्ययन प्रतिपादन किये हैं, पढमस्स जं भंते—तो हे भगवन प्रथम, अज्झयणास्स पुष्पियाणं—अध्ययन पुष्पिका के, समणेण जाव संपत्तेण—श्रमण भगवान् यावत् मोक्ष को संप्राप्त ने, के अट्ठे पन्नत्ते—क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

एवं खलु जम्बू—इस प्रकार निश्चय ही हे जम्बू, तेणं कालेणं तेणं समएणं—उस काल उस समय में, रायगिहे नामं नगरे—राजगृह नामक नगर था, गुणसिलए चेइए—गुणशील नामक चैत्य था, सेणिए राया—श्रेणिक राजा था, तेणं कालेणं, तेणं समएणं—उस काल उस समय में, सामी समोसठे—(भगवान् महावीर) स्वामी गुणशील चैत्य में पधारे, परिसा निगगया—परिषद् दर्शनार्थ आई, तेणं कालेणं तेणं समएणं—उस काल उस समय में, चंदे जोइसिंदे—चन्द्र ज्योतिषी देवों का इन्द्र, जोइसराया—ज्योति राजा था, चंदवडिंसिए विमाणे सभाए सुहम्माए—चन्द्रावतंसक विमान की सोधम सभा में, चंदसि सीहासमंसि—चन्द्र नामक सिंहासन पर, चउहिं सामाणियसाहस्तीहिं जाव बिहरइ—चार हजार सामानिक देवों से संपरिवृत (घिरा हुआ) विचरता है, इमं च जं केवलकप्पं जंबूद्वीवं वीवं—उस समय सम्पूर्ण जम्बू द्वीप की, विउलेणं ओहिणा आभोए माणे आभोए—माणे पासइ पासित्ता—विपुल प्रधान अथवा ज्ञान के उपयोग से देखता है और देखकर, समणं भगवं महावीरं—श्रमण भगवान् महावीर को देखकर, जहा सूरियाभे—जैसे सूर्यभदेव ने किया था, यावत् आभिओगे देवे सट्ठावित्ता—आभियोगिक (सेवक) देवों को बुला कर, जाव सुत्तिदाभिममण—जोगं करेत्ता तमाणत्तियं पच्छप्पिणइ—यावत् सुरेन्द्र के जाने योग्य विमान की रचना कर, उसकी आज्ञा का पालन किया अर्थात् चन्द्र देव को सूचित किया कि विमान तैयार है, सुसरा घंटा जाव विउव्वणा—सुध्वर घंटे यावत् सब की विकुर्वणा कर, उनको बताया, नवरं जाण विमाणं, जोयणसहस्सवित्थियणं—इतना विशेष है उस का विमान एक हजार योजन चौड़ा, अट्ठत्तेवट्ठिजोयणसमसियं—और ६२३ योजन ऊंचा था, महिदज्जओ पणवीसं जोयणमसिओ—महेन्द्र ध्वजा २५ योजन ऊंची, सेसं जहा सूरियाभस्स जाव आगओ—शेष सूर्याभ देव के समान यावत् आ गया, नट्टविहि तहेव पडिगओ—उसी तरह नाट्य विधि (नाटक) दिखाकर वापिस स्वस्थान पर चला गया, भंते त्ति भगवं गोयमे—हे भगवन् ! भगवान् गौतम जो ने, समणं भगवं महावीरं पुच्छा—श्रमण भगवान् महावीर से पूछा यावत् प्रश्न किया, कूडागारसाला सरीरं अणुपविट्ठा—कूटागारशाला की तरह वह देव के शरीर में ही अनुपविष्ट हो गई, पुष्पभओ—गौतम स्वामी ने चन्द्रमा का पूर्व भव भगवान् से पूछा, भगवान् ने उत्तर दिया, एवं खलु गोयमा—इस प्रकार हे गौतम, तेणं कालेणं तेणं समएणं—उस काल उस समय में, श्रावस्ती नाम नगरी होत्था—श्रावस्ती नामक की नगरी थी, कोट्टए चेइए—

वहां ईशान कोण में कोष्ठक नामक चैत्य था, तस्थणं सावस्थीए नयरीए—उस श्रावस्ती नगरी में, अंगई नामं गाहावई होत्था—एक अंगति नामक गाथापति था, अड्डे जाव अपरिभूए—वह ऋद्धिवान यावत् अपरिभूत था, तएणं से गाहावई—तत्पश्चात् वह गाथापति, सावस्थीए नयरीए—श्रावस्ती नगरी में, बहूणं नयरनिग—बहुत नगर निगमों में यावत्, जहा आगंदो—जैसे आनन्द था ॥२॥

मूलार्थ—(आर्य जम्बू प्रश्न करते हैं) हे भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् मोक्ष को संप्राप्त ने पुष्पिका नामक वर्ग के यदि १० अध्ययनों का प्रतिपादन किया है । तो हे भगवन् ! श्रमण भगवान् यावत् मोक्ष संप्राप्त ने पुष्पिका के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

(उत्तर में आर्य सुधर्मा स्वामी कहते हैं) हे जंबू ! निश्चय ही उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था उस नगर में गुणशील नामक एक चैत्य था । श्रेणिक नामक राजा वहां राज्य करता था । उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर उस राजगृह नगर के गुणशील चैत्य नाम के उद्यान में पधारे । परिषद दर्शन करने आई अर्थात् परिषद ने भगवान् की पर्युपासना की ।

उस काल उस समय में चन्द्र ज्योतिष्केन्द्र, ज्योतिष्क देवों का राजा था, जो चार हजार सामानिक देवों से संपरिवृत (घिरा) हुआ, सुधर्मा सभा में, चन्द्रावतंसक नामक विमान पर, चन्द्र नामक सिंहासन पर बैठा हुआ यावत् विचरता था । वह अपने विपुल अवधि-ज्ञान की शक्ति से समस्त जम्बू द्वीप को देखता है, देखकर श्रमण भगवान् महावीर को देखते ही जैसे सूर्याभ देव ने किया था, उस प्रकार आभियोगिक देवों को बुलाता है । वे आभियोगिक देव सुरेन्द्र के गमन करने योग्य विमान की विकुर्वणा कर, चन्द्र देव की आज्ञा का पालन कर, उसको (चन्द्र देव को) सूचित करते हैं । फिर पदातिसेनानायक देव ने मुस्वर घंटों को बजाया और विमान की विकुर्वणा की । इतना विशेष है कि उस (चन्द्र) का विमान हजार योजन विस्तार वाला, साढ़े ६२ योजन ऊंचा था । महेन्द्र ध्वजा २५ योजन ऊंची थी । शेष जैसे सूर्याभदेव का वर्णन है, वैसे ही इस (चन्द्र) का है यावत् नाट्य-विधि की । उसे दिखाकर वापिस देवलोक लौट गया ।

हे भगवन् ! (इस वर्णन के अनन्तर) भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर

से प्रश्न किया "हे भगवन् ! वह रचना कहां गई" भगवान् महावीर ने उत्तर दिया "कूटागार शाला के समान ही देव के शरीर में प्रविष्ट हो गई ।" गणधर गौतम ने चन्द्र का पूर्व भव पूछा । भगवान् ने उत्तर दिया—हे गौतम ! उस काल, उस समय में श्रावस्ती नाम की नगरी थी । वहां एक कोष्ठ नाम का चंत्य था वहां अंगति नामक गाथापति रहता था । जो धन धान्य से यावत् पराभव से रहित था वह अंगति गाथापति श्रावस्ती नगरी में बहुत नगर - निगमों में यावत् आनन्द की तरह समृद्धियों से युक्त था ॥२॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र पुष्पिकानामक वर्ग के १० अध्यायनों में से प्रथम का अर्थ आर्य जम्बू की जिज्ञासा का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा सुना रहे हैं । उस काल उस समय राजगृही नगरी में श्रमण भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम धर्म-प्रचार करते हुए पधारे । गुणशील चंत्य में राजा श्रेणिक व समस्त नागरिक प्रभु का धर्म उपदेश सुनने, दशन वन्दन करने आये । उसी सभा में ज्योतिष देवों का इन्द्र चन्द्रमा, अपने चन्द्र सिंहासन पर बैठा अवधिज्ञान के उपयोग से ये सब देखता है । अपने चार हजार सामानिक देवों से घिरा, सुधर्मा सभा के चन्द्रावतंसक विमान में बैठा, अपने आधीन सेवक देवों को बुलाता है, उन्हें सुरेन्द्र के गमन योग्य विमान को विकुर्वणा करने का आदेश देता है सेवक देव एक हजार विस्तार व ६२१/२ योजन ऊंचा विमान तैयार करते हैं और फिर देवों ने सुस्वर घंटा बजा कर अन्य देवों को सूचित किया । १६००० आत्म-रक्षक देवों की विकुर्वणा कर आज्ञा पूरी करके चन्द्रदेव को सूचित करते हैं । चन्द्र देव अपने समस्त परिवार, देव परिवार व समस्त ऋद्धियों का प्रदर्शन करता हुआ, भगवान् महावीर का प्रणाम करने आ रहा है । उसके आगे २५ योजन ऊंचे महेन्द्र ध्वजा चल रही है । चन्द्र देव भगवान् के सामने सूर्याभदेव की तरह नाटक विधि का प्रदर्शन करता है और धर्म-उपदेश सुनने के पश्चात् चला जाता है ।

चन्द्रमा के चले जाने के पश्चात् गणधर गौतम प्रश्न करते हैं कि हे भगवन् ! इस देव ने अपनी ऋद्धि को विस्तृत करके दिखाया, अब यह ऋद्धि कहां चली गई ? फिर शरीर में कैसे प्रविष्ट हो गई ?

भगवान् महावीर ने उत्तर में कूटाकार शाला का दृष्टान्त देकर स्पष्ट किया जैसे किसी उत्सव में फैला जनसमूह वृष्टि के भय से किसी विशाल घर में प्रवेश करता है उसी प्रकार चन्द्रदेव ने अपनी वैक्रिय शक्ति से देवताओं की रचना कर नाटक दिखाया और फिर उसको समेट कर अपने ही देव-शरीर में प्रविष्ट कर लिया ।

केवलकर्म का भाव है अपना कार्य करने में समर्थ, अर्थात् स्व गुण सम्पूर्ण । वृत्तिकाश भी इस प्रकार लिखते हैं—

केवलकल्पति केवलः—परिपूर्णः स चासौ कल्पश्च केवल कल्पः—स्वकार्यकरण समर्थः केवल जेत्यः तं स्वगुणेन संपूर्णमित्यर्थः ।

गौतम का ऐसा प्रश्न सुनकर भगवान ने कहा —हे गौतम ! उस काल उस समय में श्रावस्ती नाम की नगरी थी । उन नगरी में कोष्ठक नामक चर्य था । उस श्रावस्ती नगरी में अङ्गति नामक एक गाथापति था । वह गाथापति बहुत बड़े ऋद्धि आदि से युक्त था, कीर्ति से उज्ज्वल था । उसके पास बहुत से घर, शेर्या, आसन, गाड़ो, घोड़े आदि थे और वह बहुत सा धन तथा बहुत सोना चांदी आदि का लेन-देन करता था । उसके घर में खाने के बाद बहुत सा अन्न-पान आदि खाने पीने का सामान रहता था जो अनाथ-गरीब मनुष्यों को व पशु पक्षियों को दिया जाता था । उसके यहां दास-दासियां बहुत सी थीं और बहुत से गाय, भैंस, भड़ें थीं, तथा वह अपरिभूत-प्रभाव-शाली था ।

‘आढ्य, दीप्ति, और अपरिभूत’ इन तीन विशेषणों से अंगति गाथापति के लिये दीपक का दृष्टान्त दिया जाता है, वह इस प्रकार है—जैसे दीपक, तेल, बत्ती और शिखा (लौ) से युक्त होकर वायु-रहित स्थान में सुरक्षित रहकर प्रकाशित होता है, वैसे ही अंगति गाथापति भी तेल और बत्ती के समान आढ्य तथा अर्थात् ऋद्धि से, शिखा की जगह उदारता गंभीरता आदि से और दीप्ति से युक्त होकर, वायु-रहित स्थान के समान मर्यादा का पालन आदि रूप सदाचार से तथा पराभव-रहितपन से संयुक्त होकर तेजस्विता धारण करता था । अतः आढ्यता दीप्ति और अपरिभूतता, इन तीनों में रहनेवाला हेतुताऽवच्छेदक धर्म एक हो है, इस कारण तृणारणमणि-न्याय से प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम शब्दों में प्रमाणता के समान प्रत्येक (सिर्फ आढ्यता, सिर्फ दीप्ति, या सिर्फ अपरिभूतता) को हेतु नहीं मानना चाहिए ।

जिस प्रकार आनन्द गाथापति धन-धान्य आदि से युक्त वाणिज्य ग्राम में निवास करता था । उसी प्रकार अङ्गति गाथापति भी श्रावस्ती नगरी में निवास करता था । आनन्द का वर्णन श्री उपासक दशाङ्गसूत्र के प्रथम अध्याय में देखना चाहिए ।

वह अङ्गति गाथापति राजा ईश्वर यावत् सार्थवाही के द्वारा बहुत से कार्यों में, कारणों (उपायों) में मन्त्र (मलाह) में, कुटुम्बों में, गृहों में, रहस्यों में, निश्चयों में और व्यवहारों में एक बार पूछा जाता था और वह अपने कुटुम्ब का भी मेधि, प्रमाण, आधार आलम्बन चक्षु, मेघीभूत यावत् समस्त कार्यों को बढ़ाने वाला था । यावत् शब्द से राजा, ईश्वर, तलवार, माण्डविक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी सेनापति और सार्थवाह का ग्रहण होता है । माण्डलिक नरेश को राजा, और ऐश्वर्य वालों को ईश्वर कहते हैं । राजा संतुष्ट होकर जिन्हें पट्टबन्ध देता है, वे राजा के समान पट्टबन्ध से विभूषित लोग तलवार कहलाते हैं । जो वस्ती छिन्न भिन्न हो उसे मण्डव और उसके अधिकारी को माण्डविक कहते हैं । ‘माडबिय’ की छाया यदि ‘माडम्बिक’ की जाय तो माडम्बिक का अर्थ ‘पांच सौ गांवों का स्वामी’ होता है । अथवा ढाई ढाई कोस की दूरी पर जो अलग गांव वसे हो, उनके स्वामी को ‘माडम्बिक’ कहते हैं । जो कुटुम्ब का पालन पोषण करते हैं,

या जिनके द्वारा बहुत से कुटुम्बों का पालन होता है, उन्हें 'कौटुम्बिक' कहते हैं। इस का अर्थ है हाथी और हाथी के बराबर द्रव्य जिसके पास हो उसे 'इभ्य' कहते हैं। जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट के भेद से इभ्य तीन प्रकार के हैं। जो हाथी के बराबर मणि, मुक्ता, प्रवाल (मूंगा) सोना, चादी आदि द्रव्य—राशि के स्वामी हो वे जघन्य इभ्य हैं। जो हाथी के बराबर हीरा और माणिक का राशि के स्वामी हों वे माध्यम इभ्य हैं। जो हाथी के बराबर केवल हों की राशि के स्वामी हों वे उत्कृष्ट इभ्य हैं। लक्ष्मी की जिस पर पूरी-पूरी कृपा हो और उस कृपाकोर के कारण जिनके लाखों के खजाने हों तथा सिर पर उन्हीं को सूचित करने वाले चान्दी का विलक्षण पट्ट शोभायमान हो रहा हो, जो नगर के प्रधान व्यापारी हों, उन्हें श्रेष्ठी कहते हैं।

चतुरङ्गी सेना के स्वामी को सेनापति कहते हैं। जो गणित, धरिम, मेय और परिच्छेद्य रूप खरीदने बेचने के योग्य वस्तुओं को लेकर नफा के लिये देशान्तर जाने वाले को साथ ले जाते हैं, योग (नयी वस्तु की प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्त वस्तु की रक्षा) के द्वारा उनका पालन कहते हैं, गरीबों की भलाई के लिये उन्हें पूँजी देकर व्यापार द्वारा धनवान बनाते हैं उन्हें सार्थवाह कहते हैं। एक, दो, तीन, चार आदि संख्या के हिसाब से जिनका लेन देन होता है, 'गणित' कहते हैं, जैसे—नारियल, सुपारी, केला आदि। तराजू पर तोलकर जिसका लेन-देन हो, उसे 'धरिम' कहते हैं, जैसे धान, जौ, नमक, शक्कर आदि। सरावा छोटे-छोटे बर्तन आदि से नाप कर जिसका लेन-देन होना है, उसे मेय कहते हैं, जैसे—दूध, घी, तेल आदि। सामने कसोटो आदि पर परीक्षा करके जिसका लेन देन होता है, उसे परिच्छेद्य कहते हैं। जैसे मणि, मोती, मूंग, गहना आदि।

वह अङ्गति गाथापति, इन राजा; ईश्वर आदि के द्वारा बहुत से कार्यों में कार्य को सिद्ध करने के उपायों में, कर्तव्य को निश्चित करने के गुप्त विचारों में, बान्धवों में, लज्जा के कारण गुप्त रखे जाने वाले विषयों में, एकान्त में होने वाले कार्यों में, पूर्ण निश्चयों में, व्यवहार के लिये पूछे जाने योग्य कार्यों में, अथवा बान्धवों द्वारा किये गये लोकाचार से विरुद्ध कार्यों के प्रायश्चित्तों (दंडों) में, अर्थात् उल्लिखित सब मामलों में एक बार और बार-बार पूछा जाता था—इन सब बातों में राजा आदि समस्त बड़े-बड़े आदमी अङ्गति की सम्मति लेते थे।

इन सब विशेषणों से सूत्रकार ने यह प्रकट किया है कि अंगति गाथापति को सभी लोग मानते थे, वह अत्यन्त विश्वासपात्र या विशाल बुद्धिशाली था और सबको उचित सम्मति देता था।

धान, जौ, गेहूँ आदि की दायं करने (आटा-दाने-निकालने) के लिये गढ़ा खोदकर एक लकड़ी या बांस का स्तम्भ गाड़ा जाता है। उसके चारों ओर एक पंक्ति में लांक (घान) को कुचलने के लिये बेल घूमते हैं उस स्तम्भ को मेघि-मेढी कहते हैं। बेल आदि उस समय उसी पर निर्भर रहते हैं। यदि वह स्तम्भ न हो तो कोई बेल कहीं चला जाय, कोई कहीं सब व्यवस्था भङ्ग हो जाय। गाथापति अङ्गति अपने कुटुम्ब की मेघि-मेढी के समान थे, अर्थात् कुटुम्ब उन्हीं के सहारे था। वही उसके व्यवस्थापक थे। मूल-पाठ में 'वि' (अपि) शब्द है, उसका तात्पर्य यह है

कि वे केवल कुटुम्ब के ही आश्रय नहीं थे, अपितु समस्त लोगों के भी आश्रय थे, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। आगे जहाँ-जहाँ 'वि' (अपि-भी) आया है वहाँ सर्वत्र यही तात्पर्य समझना चाहिए। अङ्गति गाथापति अपने कुटुम्ब के भी प्राण थे। अर्थात् जैसे प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाण संदेह आदि को दूर करके हेय (त्याग करने योग्य) पदार्थों से निवृत्ति और उपादेय (ग्रहण करने योग्य) पदार्थों को जानते हैं उसी प्रकार अङ्गति भी अपने कुटुम्बियों को बताते थे कि अमुक कार्य करने योग्य है, अमुक कार्य करने योग्य नहीं है, यह पदार्थ ग्राह्य है, यह आग्राह्य है।

तथा अङ्गति गाथापति अपने कुटुम्ब के भी आधार (आश्रय) थे, तथा आलम्बन थे, अर्थात् विपत्ति में पड़ने वाले मनुष्य को रस्सी या स्तम्भ के समान सहारे थे।

अङ्गति अपने कुटुम्ब के चक्षु थे, अर्थात् जैसे चक्षु मार्ग को प्रकाशित करता है वैसे ही अङ्गित कुटुम्बियों के भी समस्त अर्थों के प्रदर्शक (सन्मार्गदर्शक) थे।

दूसरी बार मेष्मिभूत आदि विशेषण स्पष्ट बोध के लिये हैं। "जाव" शब्द से प्रमाणभूत, आधारभूत, आलम्बनभूत, चक्षुभूत, इनका संग्रह होता है। यहाँ स्पष्टता के लिये 'भूत' शब्द अधिक दिया है, इसका तात्पर्य यह है कि अङ्गति गाथापति मेढी अर्थात् मेढी के सदृश थे, प्रमाण अर्थात् प्रमाण के सदृश थे, आधार अर्थात् आधार के सदृश आलम्बन के सदृश थे, चक्षु अर्थात् चक्षु के सदृश थे; अङ्गति समस्त कार्यों के सम्पादन करनेवाले भी थे ॥१॥

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं पासेणं अरहा पुरिसा-दाणीए आदि-
गरे जहा महावीरो, नवस्सेहे सोलसेहिं समणसाहस्सीहिं, अट्ठतीसा
जाव कोट्ठए समीसडे, परिसा निग्गया !

तए णं से अंगइ गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाने हट्ठे जहा
कत्तिओ सेट्ठी तहा निग्गच्छइ जाव पज्जुवासइ, धम्मं सोच्चा निसम्म०
जं नवरं देवाणुप्पिया ! जेट्ठपुत्ते कूडुबे ठावेमि, तए णं अहं देवाणु-
प्पियाणं जाव पव्वयामि, जहा गंगदत्तो तहा पव्वइए जाव गुत्तबंभयारी।

तए णं से अंगई अणगारे पासस्स अरहओ तहारूवाणं थेराणं
अंतिए सामाइय-माइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं
चउत्थ जाव भावेमाणे बहूइं वासाइं सामन्नपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता
अद्धमासियाए संलेहणए तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता विराहिय-

सामन्ने कालमासे कालं किच्चा चंदर्वडिसए विमाणे उववायसभाए देव-
सयणिज्जंसि देवदूसंतरिए चंदे जोइसिदत्ताए उववन्ने ।

तए णं से चंदे जोइसिदे जोइसराया अहुणोववन्ने समाणे पंच
विहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ, तं जहा—आहारपज्जत्तीए शरीर-
पज्जत्तीए इंदियपज्जत्तीए सासोसासपज्जत्तीए भासा मणपज्जत्तीए ।

चंदस्स णं भंते ! जोइसिदस्स जोइसरन्नो केवइयं कालं ठिई
पन्नत्ता ? गोयमा ! पलिओवमं वाससयसहस्समभहियं । एवं खलु गोयमा
चंदस्स जाव जोइसरन्नो सा दिव्वा देविड्ढी० । चंदेणं भंते ! जोइसिदे
जोइसराया ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं ३ चइत्ता किंहि गच्छिहि
गच्छइत्ता ? गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्जिहिइ ५ एवं खलु जम्बू !
समणेणं० निक्खेवओ ॥३॥

॥ पढमं अज्झयणं समत्तं ॥ १ ॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये पार्श्वः खलु अहं पुरुषादानीय आदिकरो यथा महावीरः,
नवहस्तोच्छ्राय षोडशभिः श्रममाह्वीभिः अष्टाविंशद् यावत् कोष्ठके समवसतः, परिषत् निर्गता ।

ततः खलु सः अङ्गतिर्गाथापतिः अस्याः कथाया लक्ष्यार्थः सन् हृष्टो यथा कार्तिकश्रेष्ठी तथा
निर्गच्छति यावत् पर्युपास्ते, धर्मं श्रुत्वा निश्चयः० यत् नवरं देवानुप्रिय ! ज्येष्ठपुत्रं कुटुम्बे स्थापयामि,
ततः खलु अहं देवानुप्रियाणां यावत् प्रव्रजामि गङ्गादत्तस्तथा प्रव्रजितो यावद् गुप्तब्रह्मचारी ।

ततः खलु स अङ्गतिः अनगरः पार्श्वस्य अहंतः तथारूपाणां स्थविराणाम् अस्तिके सामायिका
दीनि एकादशाङ्गानि अधीते, अधीत्य बहुभिरचतुर्थं० यावद् भावयन् बहूनि वर्षाणि भ्रामण्यपर्यायं
पालयति पालयित्वा धर्ममासिकया संलेखनया त्रिस्रद् - भक्तानि अनशनया छित्वा विराधितश्रामण्यः
कालमासे कालं कृत्वा चन्द्रावतंसके विमाने उपपातसभायां देवशयनीये देवदूत्यान्तरिते चन्द्रो ज्योति-
रिन्द्रतया उपपन्नः ।

ततः खलु स चन्द्रो ज्योतिरिन्द्रो ज्योतिराजः अधुनोपपन्नः सन् पंचविधया पर्याप्त्या पर्याप्ति-
भावं गच्छति, तद्वया—आहारपर्याप्त्या शरीरपर्याप्त्या इन्द्रियपर्याप्त्या श्वासोच्छ्वासपर्याप्त्या
भाषामनःपर्याप्त्या ।

चन्द्रस्य खलु भदन्त ! ज्योतिरिन्द्रस्य ज्योतिराजस्य कियत्कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! पत्योपमं वर्षशतसहस्राभ्यधिकम् । एवं खलु गौतम ! चन्द्रस्य यावत् ज्योतिराजस्य सा दिव्या देव-
ऋद्धिः । चन्द्रः खलु भदन्त ! ज्योतिरिन्द्रो ज्योतीराजस्तस्माद्देवलोकादायुःक्षयेण ३ च्युत्वा कुत्र गमिष्यति ? गौतम ! महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति । एवं खलु जम्ब ! श्रमणन निक्षेपकः ॥३॥

॥ इति प्रथमाध्ययनम् ॥

पदार्थान्वयः—तेजं कालेण तेजं समएण—उस काल उस समय, पामेणं अरहा—पाश्वं अहंन्, पुरिसादाणीए आदिकरो—पुरुषों में आदरणीय, अपने समय में चारों तीर्थ के संस्थापक, जहा महावीरो—जैसे भगवान महावीर हैं, नवस्सेहे—नव हाथ शरीर की ऊंचाई वाले, सोलसेहि समणसाहस्सीहि—सोलह हजार श्रमण निर्गन्थों के, अट्ठमीम—अठतीस हजार श्रमणी परिवार के साथ, जाव—यावत्, कोट्ठक समोसढे—कोष्ठक नामक उद्यान में समवसूत हुए, परिसा निगया परिषद् दर्शनार्थ धरों से निकल कर आई ।

तएणं से अंगई गाहावई—तत्पश्चात् वह अंगती गाथापति, इमीसे कहाए लद्धटा—इस कथा को सुन लेने पर, हट्ठे—हृषित हुआ, जहा—जैसे, कत्तिओ सेट्ठी—जैसे कार्तिक सेठ दर्शनार्थ निकला था, तहा निगच्छइ—उसी प्रकार दर्शन करने निकला, जाव—यावत्, पज्जवासइ—उसने पर्यपासना की, धम्मं सोच्चा निसम्मं—धर्मकथा सुनकर, जं नवरं—जो इतना विशेष है, देवानुप्पिया—हे देवानुप्रिय, जेट्ठपुत्ते कडुंवे ठावेमि—बड़े पुत्र को घर का भार सौंप कर, तएणं अहं—तत्पश्चात् मैं, देवानुप्पियाणं जाव पव्वयामि—देवानुप्रिय के पास यावत् प्रव्रजित होता हूँ, जहा गंगवत्तो—जैसे गंगदत्त दीक्षित हुआ था, तहा पव्वइए—ऐसे ही प्रव्रजित हुआ, जाव गुत्तबभयारी—यावत् गुप्त ब्रह्मचारी हुआ ।

तएणं से अंगइ अणगारे—तत्पश्चात् वह अंगती अनगार, पासस्स अरहज्जो—पाश्वनाथ अहंत के पास, तहारुवाणं—तथारूप, थेराणं अंतिए—स्थविर भगवन्तों के समीप, सामाइय-माइयाइं—सामायिक आदि, एक्कारस अंगइं अहिज्जइ—ग्यारह अङ्ग शास्त्रों का अध्ययन करता है, अहिज्जित्ता—अध्ययन करके, बहूहिं चउत्थ—बहुत प्रकार के चतुर्थ भक्त (व्रत), जाव—यावत्, भवेमाणे—बहूईं वासाइं—बहुत वर्षों तक भावित, सामण्णपरियाण पाउणइ—श्रामण्य पर्याय का पालन करता है, पाउणित्ता—पालन करके, अट्ठमासियाए सत्तेहणाए—अर्ध मासिक संलेखना के द्वारा, तीसं भत्ताइं—तीस भक्त, अणसणाए छेवित्ता—अनशन के छेदन करके, विराहियसामण्णे—श्रामण्य पर्याय का विराधक होकर, कालमासे कालं किञ्चा—काल मास में काल करके, चंदवाडिसए विमाणे—चन्द्रावतंसक विमान में, उववाय सभाए—उपपात सभा में, देवसयणिज्जंसि—देव संख्या के उपर, देवदूसंतिए—देवदूष्य नामक वस्त्र के मध्य में, चंदे जोईसिदत्ताए उववन्ने—चन्द्र नामक ज्योतिष देवों के इन्द्र रूप में उत्पन्न हुआ ।

तए णं—तत्पश्चात्, से चंदे—वह चन्द्रमा, जोइसराया ज्योतिष देवों का राजा, अहुणो-
बवन्ने समणे—वर्तमान में ही उत्पन्न हुआ, पांच बिहारे—पांच प्रकार की, पज्जत्तीए—पर्याप्तियों
की, पंजज्जिभाव गच्छइ—पांच प्रकार की पर्याप्ति भाव को प्राप्त हुआ तं तथा—जैसे कि, आहार
पज्जत्तीए—आहार पर्याप्ति, सरीर पज्जत्तीए—शरीर पर्याप्ति, इंदिय पज्जत्तीए—इन्द्रिय पर्याप्ति,
सासोसापज्जत्तीए—श्वासोश्वास पर्याप्ति, भासा मणपज्जत्तीए—भाषा मन पर्याप्ति इन से
पर्याप्ति हुआ ।

चंदस्स णं भंते—भगवन ! चन्द्र की, जोइसिदस्स ज्योतिषइन्द्र की, जोइसरन्तो—ज्योतिराज,
केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता—कितने काल की स्थिति कही गई है, गोयमां—हे गौतम !, पलिओबमं
वाससयसहस्स—महभहिं—एक लाख वर्ष अधिक एक पत्योपम की, एवं खलु गोयमां—इस प्रकार
निश्चय ही हे गौतम, चंदस्स—चन्द्रमा, यावत्—यावत्, जोइसरन्तो ज्योतिष राज ने, सा दिव्वां
देविद्धो—यह दिव्य देवकृति प्राप्त की है, चदेणं भंते—हे भगवन् चन्द्र, जोइसिदे जोइसराया—
ज्योतिष इन्द्र, ज्योतिष राजा, ताओ देव लोगाओ आउक्खएणं—उस देवलोक की आयु क्षय करके,
चइत्ता किं गच्छिहिइ गच्छइत्ता—ज्यवन होकर कहां जाएगा कहां उत्पन्न होगा और उत्पन्न होकर,
गोयमां—हे गौतम, महाविदेहेवासे सिज्जिहिइ महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध गति को जाएगा, एवं
खलु जंबू—इस प्रकार हे जंबू निश्चय ही, समणेणं—श्रमण भगवान यावत् संप्राप्त ने पुष्पिका
के प्रथम अध्ययन यह अर्थ प्रतिपादन किया है, निक्खेववो—सम्पूर्ण हुआ, पढमं अज्झयणं समत्तं—
प्रथम अध्ययन समाप्त हुआ ॥३॥

मूलार्थ—उस काल उस समय में श्री पार्श्व अर्हत् पुरुषों में आदरणीय अपने समय
के चारों तीर्थों के व्यवस्थापक थे, जैसे भगवान महावीर हैं (सर्व वर्णन उसी तरह है)
इतना विशेष है कि उनका शरीर नव हाथ ऊंचा था । उनके सोलह हजार साधु
और अट्ठत्तीस हजार साध्वियों का धर्म-परिवार था यावत् वह कोष्ठक उद्यान से
समवसूत (हुए) पधारे, परिषद् दर्शनार्थ आई । धर्म उपदेश सुना ।

तत्पश्चात् वह अंगती गाथापति, इस कथा के लब्धार्थ होने पर अति प्रसन्न
हुआ । जैसे कार्तिक सेठ का वर्णन है वैसे ही वह भी प्रभु के दर्शनार्थ आया । यावत्
पर्युपासाणा की । धर्म उपदेश सुनकर उस पर विचार किया, विचार करने के पश्चात्
साधु बनने की इच्छा व्यक्त करने लगा । इतना विशेष है । देवानुप्रिय ! बड़े पुत्र को
कुटुम्ब का भार सम्भाला । तत्पश्चात् हे देवानुप्रिय ! (भगवान पार्श्वनाथ के) सान्निध्य
में यावत् दीक्षा ग्रहण करूंगा और दीक्षा ग्रहण की जैसे गंगदत्त का वर्णन है उस
प्रकार अंगती का भी समझ लेना चाहिए ।

तत्पश्चात् वह अंगती अनगार अरिहत्त भगवान् श्री पार्श्वनाथ के तथारूप स्थविरों के पास, आचाराङ्ग आदि एकादश अङ्गों का अध्ययन करता है । अध्ययन करने के पश्चात् वह चतुर्थ भक्त करते हुए यावत् आत्मा को सयमादि से भावित करता है । बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन करता है, पालन करने के पश्चात् अर्ध मास की संलेखना के साथ तीस (३०) भक्तों का छेदन कर श्रामण्य-पर्याय का आराधक बनता है, फिर काल मास में यहां से काल करके चन्द्रावतंस विमान की उपपात सभा में देव-शय्या पर, देवदूष्य वस्त्र के मध्य में चन्द्र ज्योतिष्क इन्द्र रूप में उत्पन्न हुआ है ।

तत्पश्चात् वह चन्द्र ज्योतिष्क इन्द्र, ज्योतिष्क राजा तत्काल उत्पन्न होते ही पांच प्रकार की पर्याप्तियों को प्राप्त हुआ जैसे आहार-पर्याप्ति, शरीर-पर्याप्ति, इन्द्रिय-पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा तथा मन-पर्याप्ति ।

अब गणधर गौतम ने चन्द्र देव का भविष्य पूछने की दृष्टि से कहा—हे भगवन् ! ज्योतिष्क इन्द्र ! ज्योतिष देवों का राजा चन्द्र देव की कितनी स्थिति वर्णन की गई है ?

हे गौतम ! सात वर्ष अधिक पत्योपम की । इस प्रकार निश्चय ही हे गौतम ! ज्योतिष्क राजा यावत् चन्द्रदेव की यह देव-ऋद्धि है ।

गणधर गौतम ने पुनः प्रश्न किया—हे भगवन् चन्द्र ज्योतिष्क राजा ज्योतिष देवों का इन्द्र, इस देवलोक की आयु सम्पूर्ण करके कहां उत्पन्न होगा ?

भगवान् महावीर ने उत्तर दिया—“हे गौतम ! यह भी महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध गति प्राप्ति करेगा ।” गणधर सुधर्मा अपने प्रिय शिष्य आर्य जंबू से कहते हैं—“हे जंबू ! श्रमण भगवान् यावत् मोक्ष संप्राप्त ने पुष्पिका नामक सूत्र के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है ।

प्रथम अध्ययन समाप्त हुआ ॥३॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम अध्ययन का वर्णन करते हुए बताया है कि जब चन्द्र देव अपनी नाट्य-विधि दिखाकर अपनी ऋद्धियां प्रदर्शित कर जाने की तैयारी करने लगा तो उसने समस्त ऋद्धियां अपने शरीर में समेट लीं। भगवान् महावीर ने गणधर गौतम को चन्द्रदेव की इस अपूर्व ऋद्धि का कारण बताया कि किसी समय श्रावस्ती नगरी का अंगी गाय-पति पुरुषादानीय तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ का शिष्य बन गया। साधु बनकर उसने स्थविरों से एकादश अङ्गों का अध्ययन किया। बहुत लम्बे समय तक तप किया। अर्धमास की संलेखना कर संयम का विराधक बना। मर कर यही चन्द्र देव बना है।

पुरसादानीय का अर्थ पुरुषों में आदरणीय है। जैसे कि वृत्तिकार का कथन है—पुरुषरादोयते पुरुषादानीयः नबुस्सेहे इसका अर्थ वृत्तिकार ने नबहस्तोच्छायः नबहस्तोच्छ किया है। गंगदत्त के बारे में वृत्तिकार का कथन है यथा गङ्गवत्तो भगवत्पद्मोक्तः, स हि किपाक फलोवमं मुणिय-विसप-वरवं जसवुण्यसमाणं कुसगंबिदु चंचल जीवियं च नाऊण नधवं, चइत्ता हिरण्ण-विपुल-धनकणग रयणमणि-मोतियसंखसिल्लप वासरत्तरयणमाइयं विच्छउइत्ता दाणं दाइयाणं परिचाइत्ता, आगाराओ अणगारियं पव्वइओ जहा तथा अंगई वि गिहनायगो परिच्छइय सव्व पव्वइओ जाओ य पंच समिओ, तिगुत्तो, अममो अकिचणो गुत्तिदिओ गुत्तबंभयारी इत्येवं यावच्छब्दात् दुष्करम्। विराहिब।

इसका भावार्थ यह है कि मूल गुणों की विराधना न करता हुआ, उत्तर गुणों की विराधना करने से आहारादि की शुद्धि न की गई तथा अभिग्रह आदि का सम्यक् प्रकार से पालन न किया गया।

इन बातों से सिद्ध होता है कि मूल गुणों का सर्वाधिक महत्त्व है। उत्तर गुणों की विराधना से ही चन्द्र देव की उत्पत्ति हुई। पर्याप्तियां पूर्ण होने पर, सब क्रियाएं सूर्याभिदेव की तरह समझनी चाहिये। यह भाषा और मन को पर्याप्ति का एक मानकर पांच पर्याप्तियां बताई हैं। देवताओं को सूत्रकार ने इस प्रकार षट की जगह पांच पर्याप्तियां बताई हैं। चन्द्र देव ज्योतिष्क देवों का इन्द्र है इसका विस्तृत वर्णन चन्द्र-प्रज्ञप्ति व व्याख्या-प्रज्ञप्ति में देखना चाहिये।

उपसंहार में चन्द्र देव की आयु लाख वर्ष अधिक एक पत्योपम बताई गई है। भविष्य में वह महाविदेह के धनाढ्य कुल में जन्म लेकर साधु बनेगा। फिर निर्वाण प्राप्त करेगा।

मूल—जइणं भत्ते ! समणेणं भगवया जाव पुप्फियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते दोच्चस्स णं भत्ते ! अज्झयणस्स पुप्फियाणं समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे, गुणसिल्लए चेइए, सेणिये राया समोसरणं जहा चंदो तथा सूरोज्ज्वि आगओ जाव नट्टविहि उवदंसित्ता

पडिगओ । पुव्वभवपुच्छा, सावत्थी नगरी, सुण्डट्ठे नामं गाहावई होत्था,
अड्ढे, जहेव अंगती जाव विहरति, पासो समोसढे, जहा अंगती तहेव
पव्वइए, तहेव विराहियसामन्ने जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव
अंतं काहिति, एवं खलु जंबू ! समणेणं निवखेवओ ॥२॥

॥ बीयं अज्झयणं समत्तं ॥ २ ॥

छाया.—यदि खलु भवन्त ! श्रमणेन भगवता यावत् पुष्पितानां प्रथमस्य अध्ययनस्य यावत्
अयमर्थः प्रज्ञप्तः द्वितीयस्य खलु भवन्त ! अध्ययनस्य पुष्पितानां श्रमणेन भगवत् यावत् संप्राप्तेन
कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नाम नगरं, गुणशिलकं चेत्यं,
श्रेणिको राजा, समवसरणं यथा चन्द्रः तथा सूर्योऽपि आगतो यावत् नाट्यविधिमुपदर्शयं प्रतिगतः ।
पूर्वभवपुच्छा—श्रावस्ती नगरी सुप्रतिष्ठो नाम गाथागतिरभवत् आढ्यः यथैव अङ्गतिर्यावत् विहरति
पार्श्वः समवसृतः, यथा अङ्गतिस्तथैव प्रव्रजितः तथैव विराधितश्रामण्यो यावत् महाविदेहे वर्षं सेत्स्यति
यावत् अन्तं करिष्यति, एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन० निक्षेपकः ॥२॥

पदार्थान्वयः—जड्ढणं भन्ते—यदि हे भगवन् !, समणेणं भगवता जाव—श्रमण भगवान्
यावत् मोक्ष संप्राप्त ने, पुष्पियाण पढमस्स अज्झयणस्स—पुष्पिका सूत्र के प्रथम अध्ययन का
जाव अयमट्ठे पन्नत्ते—यह अर्थ प्रतिपादन किया है, दोचवस्स ण भन्ते अज्झयणस्स पुष्पियाणं—
दूसरे पुष्पिका अध्ययन का, समणेणं भगवता जाव संपत्तेण—श्रमण भगवान् यावत् संप्राप्त ने,
के अट्ठे पन्नत्ते—क्या अर्थ प्रतिपादन किया है, एवं खलु जंबू—इस प्रकार निश्चय ही हे जंबू !
तेण कालेण तेण समएण—उस काल उस समय में, रायगिहे नामं नयरे—राजगृही नामक नगर था,
गुणसिलए चेहए—गुणशील चेत्यं था, सेणिये राया—श्रेणिक राजा था, समोसरणं—भगवान्
महावीर का समवसरण हुआ अर्थात् धर्म उपदेश हुआ, जहा चंदो—जैसे चन्द्र देव, तथा—वैसे ही,
सूर्योऽव आगओ—सूर्य देव भी दर्शनार्थ आया, जाव नट्टविहि उववसित्ता—उसी प्रकार नाट्य-विधि
दिखा कर, पडिगओ—लोट गया, पुव्वभव पुच्छा—गणधर गौतम ने सूर्य का पूर्व भव पूछा,
सावत्थी नगरी—(भगवान् महावीर ने उत्तर दिया) श्रावस्ती नगरी थी, सुण्डट्ठे नाम गाहावई
होत्था—वहां सुप्रतिष्ठ नाम का गाथापति रहता था, अड्ढे—ऋद्धिमान था, जहेव अंगती—जैसे,
अंगती था, जाव विहरति—वैसे यावत्, विमहरता था, पासो समोसढे—भगवान् पार्श्वनाथ धर्म
परिवार से चिरे पधारे, जहा अंगती तहेव पव्वइए—जैसे अङ्गती प्रव्रजित हुआ था वैसे ही वह भी
मुनि बना, तहेव विराहियसामन्ने—उसी प्रसी प्रकार श्रामण्य भाव का विराधक हुआ, जाव—
यावत्, महाविदेहे वासे—महाविदेह में उत्पन्न होगा, सिज्झिहिति—सिद्ध होगा, जाव अंतं

काहिसि—सब दुःखों का अन्त करेगा, एवं खज्जु जंबू—इस प्रकार निश्चय ही हे जंबू, श्रमण—श्रमण भगवान् ने द्वितीय अध्ययन का अर्थ बताया है, निश्चयेवओ—द्वितीय अध्ययन समाप्त हुआ ॥२॥

मूलार्थ—आर्य जंबू प्रश्न करते हैं—हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् यावत् मोक्ष संप्राप्त ने पुष्पिका के पहले अध्ययन का यह अर्थ कहा है, तो हे भगवन् ! पुष्पिका के दूसरे अध्ययन का श्रमण भगवन् यावत् मोक्ष को संप्राप्त ने क्या अर्थ कहा है ? आर्य-सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—हे जंबू ! उस काल उस समय में राजगृही नामक नगरी थी, गुणशील चैत्य था, श्रेणिक नामक राजा था । वहां भगवान् ग्रामानुग्राम विहार करते हुए पधारे । समवसरण लगा अर्थात् धर्म-उपदेश हुआ । जैसे चन्द्रदेव दर्शन करने आया था, वैसे ही सूर्य देव भी दर्शन करने आया । उसी तरह नाट्य-विधि दिखाकर चला गया । गणधर गौतम ने सूर्य का पूर्वभवं पूछा—

उस काल, उस समय में श्रावस्तो नामक नगरी थी, वहां सुप्रतिष्ठ नामक गाथापति रहता था, जो ऋद्धिमान था, जैसे अंगती का वर्णन किया जा चुका है विचरता था । वहां ग्रामानुग्राम धर्म-प्रचार करते हुए भगवान् पार्श्वनाथ धर्म-परिवार से घिरे हुए पधारे, जैसे अंगती मुनि बना था वैसे वह भी मुनि बना । वह सुप्रतिष्ठ मुनि भी महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा, सिद्ध होगा यावत् सब दुःखों का अन्त करेगा ।

इस प्रकार हे जंबू ! निश्चय ही मोक्ष को संप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने द्वितीय अध्ययन का अर्थ बताया है, यह द्वितीय अध्ययन समाप्त हुआ ॥२॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र के दूसरे अध्ययन में अङ्गति—सूर्यदेव के सपरिवार भगवान् महावीर के दर्शन की घटना का संक्षिप्त विवरण है । साथ में सूर्यदेव के पूर्वभवं का उल्लेख करते हुए, श्रमण भगवान् महावीर कहते हैं यह सूर्य देव अपना देव-आयुष्य पूरा करके सिद्ध-बुद्ध मुक्त होगा । सब दुःखों का अन्त करेगा । सूर्यदेव के बारे में और विवरण प्रज्ञापना सूत्र से जानना चाहिए । वहां स्पष्ट किया गया है कि पिछले जन्म में श्रावस्तो नगरी में सुप्रतिष्ठ ही संयम ग्रहण करके भगवान् पार्श्व-नाथ के सान्निध्य में मुनि बना । संयम पालन करने से यह ज्यातिष्क देवों में सूर्य का इन्द्र यावत् ऋद्धि का स्वामी बना ॥२॥

मू०—जइणं भंते ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं उक्खेवओ भाणियव्वो, रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए, सेणिए राया, सामी समो-सढे, परिसा निग्गया । तेणं कालेणं तेणं समएणं सुक्के महग्गहे सुक्क-वडिसए विमाणे सुक्कंसि सोहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सिहिं जहेव चंदो तहेव आगओ, नट्ट-विहिं उवढंसित्ता पडिगओ । भंते त्ति कूडागारसाला । पुव्वभवपुच्छा ।

एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नामं नयरी होत्था । तत्थ णं वाणारसीए नयरीए सोमिले नामं माहणे परिवसइ, अइढे जाव अपरिभूए रिउव्वेय-जाव सुपरिनिट्ठिए । पासे समोसढे । परिसा पज्जुवासइ ॥३॥

छाया—यदि खलु भवन्त ! श्रमणेन भगवता यावत् सम्प्राप्तेन उत्क्षेपको भणितव्यः । राज-गृहं नगरम् । गुणशिलकं चेत्यम् । श्रेणिको राजा । स्वामी समवसूतः । परिषत् निगता । तस्मिन् काले तस्मिन् समये शुक्रो महाग्रहः । शुक्रावतंसके विमाने शुक्रे सिंहासने चतसृभिः सामानिकसाहस्रीभिः यवैव चन्द्रस्तथैवागतः, नाट्यविधिसुपदम्यं प्रतिगतः । भवन्त ! इति कूटाकारशाला । पूर्वभवपृच्छा ।

एवं खलु गोतम ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये वाराणसी नाम नगरी अभवत् । तत्र खलु वाराणस्यां नगर्यां सोमिलो नाम ब्राह्मणः परिवसति, आढ्यो यावत् अपरिभूत, ऋग्वेद० यावत् सुप्रतिष्ठितः । पार्श्वः समवसूतः । परिषत् पर्युपास्ते ॥३॥

पदार्थान्वयः—जइणं भंते—यदि हे भगवन् समणेणं भगवया जाव—श्रमण भगवान् महावीर यावत्, संपत्तेणं—संप्राप्त ने, उक्खेवओ भाणियव्वो—उत्क्षेप कहना चाहिए, रायगिहे नयरे—राजगृह नगर था, गुणसिलए चेइए—गुणशील चेत्य था, सेणिए राया—श्रेणिक राजा था, सामी समोसढे—स्वामी समवसूत हुए, परिसा निग्गया—परिषद् दर्शनार्थ आई, तेणं कालेणं, तेणं समयणं—उस काल उस समय में, सुक्के—शुक्र, महग्ग हे—महाग्रह, सुक्कवडिसए विमाणे—शुक्रावतंसिक विमान में, सुक्कंसि सोहासणंसि—शुक्र सिंहासन पर, चउहिं सामाणियसाहस्सिहिं—चार हजार सामानिक देवों के साथ, जहेव चंदो तहेव आगओ—जैसे चन्द्र देव आया था वैसे आया, नट्टविहिं उवढंसित्ता पडिगओ—नाट्य विधि दिखाकर वापिस लौट गया, भंते त्ति—हे भगवन् शुक्र देव की ऋद्धि कहां प्रविष्ट हो गई, भगवान् ने उत्तर दिया, कूडागारसाला—कूटागार शाला का दृष्टांत जानना चाहिए, पुव्वभवपुच्छा—हे भगवन् शुक्र महाग्रह का जीव पूर्व भव

कीन था, भगवान ने उत्तर दिया ।

एवं खलु गोयमा—इस प्रकार निश्चय ही हे गौतम, तेजं कालेण तेजं समयण—उस काल उस समय में, वाणारसी नामं नयरो होत्था—वाराणसी नामक नगरी थी, तत्थ ण—उप, वाणारसीए नयरीए—वाराणसी नगरी में, सोमिले नामं माहणे परिवसइ—सोमिल नामक ब्राह्मण रहता था, अडे—ऋद्धि युक्त, जाव—यावत्, अपरिभूए—अपरिभूत था, रिउब्बेय सुपरिनिट्ठिए—ऋग्वेद आदि में सुप्रतिष्ठित था, पासे समोसडे—भगवान पार्श्वनाथ समवसृत हुए, परिसा पज्जुवासइ—परिषद सेवा करने आई ।

मूलार्थ—गणधर सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया “हे जंबू ! मोक्ष को संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने इस प्रकार कहा है। उस काल उस समय एक राजगृह नगर था, गुणशील चैत्य था, श्रेणिक राजा था, वहां श्रमण भगवान महावीर पधारे, समवसरण में धर्म-उपदेश हुआ । परिषद् दर्शनार्थ आई । उस काल उस समय शुक्र नामक महाप्रह शुक्रावतंसक विमान के शुक्र सिंहासन पर, चार हजार सामानिक देवों से घिरा भगवान के दर्शन करने आया यावत् जैसे चन्द्रदेव अनया था । नाट्य-विधि दिखाकर वह भी चला गया ।

हे भगवन् ! शुक्र देव की ऋद्धि कहां चली गई ? उत्तर में भगवान कहते हैं कि इसके लिये यावत् कूटागारशाला का दृष्टान्त जानना चाहिए । शुक्र का पूर्व भव क्या था किस कारण से उसे ऐसी ऋद्धि प्राप्त हुई ? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान महावीर ने कहा—

हे गौतम ! उस काल उस समय में वाराणसी नामक नगरी थी । उस वाराणसी नगरी में सोमिल नामक ब्राह्मण रहता था । जो ऋद्धिवान व संपन्न था । वह ऋग्वेद आदि (चार वेदों, उपनिषद् इतिहास एवं व्याकरण आदि का ज्ञाता था । वहां भगवान श्री पार्श्वनाथ समवसृत हुए । परिषद् सेवा करने लगी ।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में सूर्य व चन्द्रमा के पश्चात् शुक्र महाप्रह के भगवान महावीर के दर्शनार्थ आने का वर्णन है । शुक्र भी अपनी समस्त देवऋद्धि सहित अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित करता है । गणधर गौतम शुक्र का पूर्वभव पूछते हैं उसी के उत्तर में करुणा-सागर प्रभु महावीर बताते हैं कि शुक्र पूर्व भव में वाराणसी का सोमिल ब्राह्मण था वह वेद, उपनिषद्, इतिहास, निघंटु,

व्याकरण आदि विषयों का प्रकाण्ड पंडित था। वह सम्पन्न था उसकी प्रतिष्ठा सारे नगर में थी। इस विषय में वृत्तिकार कहते हैं।

‘रिउव्वेय जाव’ इति ऋग्वेद-यजुर्वेद सामवेदाथर्वणवेदानां इतिहास-पञ्चमानाम् इतिहास प्राण निर्घण्टुषष्ठकानां निर्घण्टु नाम कोशः साङ्गोपाङ्गनामानि अङ्गानि—शिक्षा दीनि उपाङ्गानि तदुक्तप्रपञ्चनपराः प्रबन्धाः सरहस्यानां—एतद्व्यथयुक्तानां धारकः—प्रवर्तकः वारकः—अशुद्ध पाठ निषरक पारगः, पारगामि षडङ्गवित् षष्ठितन्त्रविशारदः शष्टि तन्त्रः कापिलीय शास्त्रं षडङ्गवेदक स्तमेव व्यनक्ति, सङ्ख्याने गणितस्कन्ध शिक्षा कल्पे, शिक्षाया अक्षर स्वरूप निरूपके शास्त्रकल्पे—तथा विद्य समाचार प्रतिपादके व्याकरणे—शब्द लक्षणो छान्दस गद्य-पद्य वचन लक्षण निरूपक प्रतिपादके ज्योतिषाख्ये ज्योतिः शास्त्रे अन्येषु च ब्राह्मणकेषु शास्त्रेषु सुपरितिष्ठितः सोमिल नाम ब्राह्मण। उपरोक्त विषय का इतना तात्पर्य है कि सोमिल ब्राह्मण वैदिक साहित्य का प्रकाण्ड पंडित था।

प्राकृत व्याकरण के बाणारसी का संस्कृत में वाराणसी रूप बन जाता है। प्राकृत व्याकरण में ‘र’ और ण का व्यत्यय किया गया है।

करेणुवाराणस्यो रणो व्यत्ययः । सिद्धोऽयारः॥ ८।८।११६

अनयो रेफणकारयोर्व्यत्ययः स्थिति परिवृत्तिर्भवति । कणेरु । बाणारसी ।

उत्पानिका—अगले सूत्र में सोमिल ब्राह्मण का भगवान् आश्वनाथ के पास जाने का वर्णन किया गया है।

मूल—तएणं तस्स सोमिलस्स माहणस्स इमीसे कहाए लद्धट्ठस्स समाणस्स इमे एयारूवे अज्झत्थिए० जाव समुप्पज्जित्था—एवं खलु पासे अरहा पुरिसादाणीए पुब्बाणुपुण्वि जाव अंबसातवणे विहरइ, तं गच्छामि णं पासस्स अरहओ अंतिए पाउभ्वामि । इमाइं च णं एयारूवाइं हेऊइं जहा पणत्तीए । सोमिलो निर्गओ खंडियविहणो जाव एवं वयासी ॥४॥

छाया—ततः खलु तस्य सोमिलस्य ब्राह्मणस्य कथायाः लब्धार्थस्य सतः अथमेतद्रूपः आध्यात्मिकः ४, यावत् समुपपद्यत—एवं खलु पार्श्वः अहेन् पुरुषावादीयः पूर्वानुपूर्व्या यावत् आश्रयात्—वने विहरति, तद् गच्छामि खलु पार्श्वस्य अहेतोऽन्तिके प्रावुर्भवामि, इमान् च खलु एतद्रूपान् अर्थान् हेतुन् यथा प्रज्ञप्स्याम् । सोमिलो निर्गतः खण्डिकविहीनो यावत् एवमवादीत् ॥४॥

पदान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, तस्स सोमिलस्स माहणस्स—उस सोमिल ब्राह्मण के, इमीसे कहाए—इस कथा (समाचार) के, लद्धट्ठस्स समाणस्स—लब्धार्थ होने पर, इमे एयारूवे—इस प्रकार के, अज्झत्थिए—आध्यात्मिक विचार उत्पन्न हुए, एवं खलु पासे अरहा—इस प्रकार पार्श्वनाथ अहेन्, पुरिसादाणीए—पुरुषों में प्रधान, पुब्बाणुपुण्वि चरमाणे—अनुक्रम से विहार करते हुए,

जाव—यावत्, अंशसालवणे—आम्रशाल वन में, विहरइ—विचरते हैं, तं गच्छामि णं—इसलिए मैं जाता हूँ, पासस्स अरहओ—पार्श्वनाथ अर्हत के, अन्तिए—समीप, पाउवभवामि—उपस्थित होता हूँ, च—फिर, णं—वाक्यालंकार, इमाइं एयाखुइं—इस प्रकार के, अट्ठाइं—अर्थों को हेऊइं—हेतुओं को, जहा पणत्तीए—जैसे व्याख्या प्रज्ञप्ति में वर्णन किया गया है, सोमिलो निग्गओ—सोमिल ब्राह्मण भगवान् पार्श्वनाथ के समीप गया, खण्डिय विट्ठणो—छात्रों से रहित गया, जाव—यावत्, एवं वयासी—इस प्रकार कहने लगा ॥४॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह सोमिल ब्राह्मण के इस कथा (समाचार) को सुनकर यह भाव उत्पन्न हुए । इस प्रकार पार्श्वनाथ अर्हत् पुरुषादानीय अनुक्रम से विहार करते हुए आम्रशाल उद्यान में विचर रहे हैं । मैं पार्श्व अर्हत् के समीप जाता हूँ । इस प्रकार अर्थ और हेतुओं को पूछूंगा । जिस प्रकार व्याख्या-प्रज्ञप्ति में वर्णन किया गया है उसी प्रकार यहां भी जानना चाहिए । वह (सोमिल) छात्रों से रहित भगवान् के समीप आया और इस प्रकार प्रश्न करने लगा ।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में सोमिल ब्राह्मण के भगवान् पार्श्वनाथ के समीप छात्रों से रहित पहुंचने का वर्णन है । भगवान् पार्श्व आम्रशाल उद्यान में पारेव हैं । जब सोमिल ने यह समाचार सुना तो उसके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि मैं क्यों न प्रभु पार्श्व से प्रश्न पूछूं ।

सोमिल ब्राह्मण के प्रश्नों का वर्णन अवधुती सूत्र के अठाहरवें शतक के इसमें उद्देश्य में आया है । सोमिल ब्राह्मण चाहे अपने धर्म का प्रकाण्ड पंडित है पर वह एक जिज्ञासु भी है । क्योंकि जिज्ञासु ही इस प्रकार की प्रवृत्ति के स्वामी होते हैं । जनसाधारण ही वह सब प्रश्न एकान्त में शिष्यों के बिना पूछना चाहता है । ताकि उसकी किसी अज्ञानता का शिष्यों का पता न चल सके । यह प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण है ॥४॥

मूल—जत्ता ते भन्ते ! ? जवजिज्जं च ते ? पृच्छा, सरिसवया. मासा कुलत्था, एगे भवं, जाव संबुद्धे सावगधम्मं पडिवज्जिता पडिगए ॥५॥

छाया—यात्रा ते भवन्त ! ? यापनीयं ते ? पृच्छा सबसवयसः मासा, कुलत्था एको भवान् यावत् संबुद्धः श्रावक धर्मं प्रतिपद्य प्रतिगतः ।

पदार्थान्वयः—जत्ता—यात्रा, ते—क्या, भन्ते—हे भगवन्, जवजिज्जं—यापनीया, च ते—क्या है, पृच्छा—पूछता है, सरिसवया—सामान्य अवस्था वाला और सरसों, मासा—काल उद्दद प्रमाण, एगं भव—(एक भव) संबुद्धे—बोधिसत्त्व प्राप्त कर, सावगधम्मं—श्रावक धर्म का, पडिगए—पालन करने लगा ॥५॥

मूलार्थ— (उस सोमिल ब्राह्मण ने प्रश्न किये) भगवन् ! आपकी यात्रा क्या है ? फिर (सोमिल) सरसों, माष, कुलत्थ आदि भक्ष्य हैं या अभक्ष्य हैं, आदि के विषय में प्रश्न करता है। एक भव में वह संबुद्ध हो कर श्रावक धर्म का पालन करने लगा ॥५॥

टीका— प्रस्तुत सूत्र में (श्री पार्श्वनाथ जी के समकालीन) सोमिल ब्राह्मण के प्रश्नों के नाम दिये गये हैं। साथ में भगवान् पार्श्व नाथ का उपदेश सुनकर सोमिल के श्रावक धर्म ग्रहण करने का वर्णन है।

सोमिल ब्राह्मण (श्री महावीर कालीन ब्राह्मण) के प्रश्नों के उत्तर भगवती सूत्र के अठारहवें शतक के दसवें उद्देशक में इस प्रकार दिये गये हैं। हम यहां उनका सारांश देते हैं :—

प्रश्न—क्या आप यात्रा, यापनीय, अव्यावाध और प्रासुक विहार करते हैं ? आपकी यात्रा आदि क्या है ?

उत्तर— सोमिल ! मैं तप-यम-संयम-स्वाध्याय और ध्यान में रमण करता हूं यही मेरी यात्रा है। इन्द्रिययापनीय, नोइन्द्रिय-यापनीय—पांचों इन्द्रियां मेरे आधीन है और क्रोध, मान आदि कषाय मैंने विच्छिन्न कर दिए हैं, इसलिए वे उदय में नहीं आते। इसलिए मैं इन्द्रिय और नो-इन्द्रिय यापनीय हूं। वात, पित्त, कफ, ये शरीर सम्बन्धी दोष मेरे उपशान्त हैं, वे उदय में आते ही नहीं, इसलिए मुझे अव्यावाध भी है।

मैं आराम, उद्यान, देवकुल, सभास्थल आदि स्थलों पर जहां स्त्री, पशु व नपुंसक का अभाव हो ऐसे निर्दोष स्थान पर आज्ञा ग्रहण कर विहार करता हूं यह मेरा प्रासुक निर्दोष विहार है।

प्रश्न—सरिसवया भक्ष्य है या अभक्ष्य ?

उत्तर—हे सोमिल ! सरिसवया दो प्रकार का है सदृश-वय-समवयस्क व्यक्ति तथा सरसों। सदृशवय तीन प्रकार का है एक साथ जन्मे हुए, एक साथ पालित-पोषित हुए अथवा जो साथ - साथ क्रीड़ा करते हैं। ये तीनों श्रमण निर्यन्थों के लिए अभक्ष्य हैं और धाम्य सरिसव दो प्रकार का है शस्त्रपरिणत और अशस्त्रपरिणत। शस्त्रपरिणत भी दो प्रकार का है एषणीय और अनेषणीय। अनेषणीय अभक्ष्य है। एषणीय भी याचित और अयाचित दो प्रकार का है याचित भक्ष्य है और अयाचित अभक्ष्य है।

प्रश्न—मास भक्ष्य है या अभक्ष्य ?

उत्तर—मास का अर्थ महीना और सोना चांदी मापने का परिणाम मासा भी है ये दोनों तो अभक्ष्य ही हैं माष अर्थात् उड़द जो शस्त्रपरिणत याचित हो वही श्रमणों के लिए भक्ष्य है।

प्रश्न—कुलत्था भक्ष्य है या अभक्ष्य ?

उत्तर—हे सोमिल ! कुलत्था शब्द के दो अर्थ हैं एक है कुलीन स्त्री, दूसरा है धान्य विशेष (कुलत्थ) ।

जो धान्य विशेष शस्त्र-परिणत और याचित है वही भक्षणों के लिये भक्ष्य है शेष अभक्ष्य है ।

प्रश्न—आप एक हैं या अनेक

उत्तर—सोमिल मैं द्रव्य दृष्टि से एक हूँ, ज्ञान-दर्शन रूप दो पर्यायों के प्राधान्य से दो भी हूँ ।

सोमिल उपयोग एवं स्वभाव की दृष्टि से मैं अनेक हूँ !

इस तरह सोमिल ने अव्यय, अवस्थित एवं तीन काल के परिणमन योग्य विषयों पर प्रश्न किये, जिनका समाधान भगवान ने अनेकांत दृष्टिकोण से दिया ।

इन प्रश्नों के उत्तरों से यह सोमिल अत्यधिक प्रभावित हुआ ।

मूल—तएण पासे अरहा अन्नया कयाइं, वाणारसीओ नयरीयो अम्बसालवणाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमिता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥६॥

छाया—ततः खलु पार्श्वं अर्हन् अन्यदा कदाचिद् वाराणसीतः नगरीतः आम्रशालवनात् उद्यानात् प्रतिनिष्क्रमति प्रतिनिष्क्रम्य बाह्यं जनपदविहारं विहरति । ६॥

पदार्थान्वयः—तएण—तत्पश्चात्, पासे णं अरहा—तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ भग्नया कयाई—अन्य किसी समय, वाणरसीओ नयरीओ अम्बसाल वणाओ उज्जाणाओ—वाराणसी नगरी के आम्र-शालवन उद्यान से, पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमिता—बाहर आते हैं और आकर, बहिया—बाह्य जनपदों में, जणवय-विहारं विहरइ—विहार हेतु विचरण करते हैं ॥६॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् भगवान श्री पार्श्वनाथ फिर किसी समय वाराणसी नगरी के आम्रशालवन नामक उद्यान से बाहर आते हैं और फिर अन्य जनपदों में विहार करते हैं, अर्थात् धर्म - प्रचार करते हुए विभिन्न ग्रामों नगरों जनपदों में विचरण करते हैं ॥६॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में तीर्थङ्कर पुरुषादानीय भगवान श्रीपार्श्वनाथ के पुनः वाराणसी नगरी में पधारने का वर्णन है । वे आम्रशालवन उद्यान में ठहरते हैं । फिर ज्ञान, दर्शन चरित्र का उपदेश देकर अन्य जनपदों में भ्रमते हैं ॥६॥

॥ उत्थानिका—उसके बाद क्या हुआ, सूत्रकार अब इस विषय में कहते हैं :—

मूल—तएणं से सोमिले माहणे अण्णया कयाइं असाहुदंसणेण य अप-
ज्जुवास्सयाए य मिच्छत्तपज्जवेहिं परिवड्ढमाणेहिं परिवड्ढमाणेहिं,
सम्मत्तपज्जवेहिं परिहायमाणेहिं परिहायमाणेहिं, विच्छत्तं च पडिवत्ते ।

तए णं तस्स सोमिलस्स माहणस्स अण्णया कयाइं पुव्वरत्तावरत्त-
कालसमयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव
समुपज्जित्था—एव खलु अहं वाणारसीए नयरीए सोमिले नामं माहणे
अच्चंतमाहणकुलप्पसूए । तएणं मए वयाइं चिण्णाइं, वेया य अहीया,
दारा आहूया, पुत्ता जणिया, इड्ढीओ समाणीयाओ, पसुवधा कया, जन्ना
जेट्ठा, दक्खिणा दिन्ना, अतिहि पूजिया, अग्गी हूया, जूपा निक्खिता,
तं सेयं खलु ममं इयाणिं कल्लं जाव जलंते वाणारसीए नयरीए बहिया
बह्वे अंबारामा रोवावित्तए, एवं माउलिगा, बिल्ला, कविट्ठा, चिंचा,
पुप्फारामा रोवावित्तए । एवं संपेहेइ संपेहिता कल्लं जाव जलंते वाणा-
रसीए नयरीए बहिया अंबारामे य जाव पुप्फारामे य रोवावेइ । तएणं
बह्वे अंबारामा य जाव पुप्फारामा य अणुपुव्वेणं सारक्खिज्जमाणा
संगोविज्जमाणा संवड्ढियमाणा आरामा जाया, किण्हा किण्होभासा जाव
रम्मा महामेहनिकुरंबभूया पत्तिया पुप्फिया फलिया हरियगरेरिज्जमाण-
सिरीया अईव अईव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति ॥७॥

छाया—ततः स सोमिलो ब्राह्मणः अन्यदा कदाचित् असाधुवर्शनेन च अपर्युपासनतया च
मिथ्यात्वपर्यवर्धः परिवर्धमानः, सम्यक्त्वपर्यवर्धः परिहीयमानः परिहीयमानं मिथ्या व च
प्रतिपन्नः ।

ततः खलु तस्य सोमिलस्य ब्राह्मणस्य अन्यदा कदाचित् पूर्वरात्रापररत्नकालसमये कुटुम्ब-
जागरिकां जाग्रतोऽयमेतद्रूप आध्यात्मिकः यावत् समुवपद्यत—एवं खलु वाराणस्यां नगरीं सोमिलो
नाम ब्राह्मणोऽत्यन्तब्राह्मणकुलप्रसूतः । ततः खलु मया व्रतानि चीर्णानि, वेदाश्चाधीताः दारा आहूताः,

पुत्रा अनिताः, ऋद्धयः समानीताः, पशुवधाः कृताः, यज्ञा इष्टाः, दक्षिणा दत्ता, अतिथयः पूजिता, अग्नयो हुताः, यथा निक्षिप्ताः, तच्छ्रेयः खलु ममेवानी कल्पे यावत् ज्वलति वाराणस्या नगर्या बहिर्बहून् आश्वारामान् रोपयितुम्, एवं मातुलिङ्गान्, बिल्वान्, कपित्थान्, चिञ्चान्, पुष्पारामान् रोपयितुम् । एवं संप्रेषते, संप्रेक्ष कल्पे यावत् ज्वलति वाराणस्या नगर्या बहिः आश्वारामांश्च रोपयति । ततः खलु बहवः आश्वारामांश्च यावत् पुष्पारामांश्च अनुपूर्वेण संरक्ष्यमाणाः, संगोप्यमानाः, संवर्धयमानाः आश्वारामाः जाताः कृष्णा कृष्णावभासा यावत् रम्याः महामेघनकुरम्बिभूताः पत्रिताः पृष्ठितः कतिता हरितकराराज्यमानश्रीकाः अतीवतीव उपशोभमाना उपशोभमानास्तिष्ठन्ति ॥७॥

पदार्थान्वयः—तएण—तत्पश्चात्, स सोमिले माहणे—वह सोमिल ब्राह्मण, अण्णया कयाइ—अन्य किसी समय, असाहुदंसणेण—असाधु दर्शनों के कारण, य अपज्जुवासणयाए—पर्युपासना न करने पर, य—और, मिच्छत्तपज्जवेहिं परिवद्धमाणोहिं—मिथ्यात्व पर्यायों के बढ़ने के कारण और सम्मत्तपज्जवेहिं परिहायमाणोहिं—सम्यक्त्व-पर्यायों के घटने के कारण, मिच्छत्त च पडिबन्ने—बहु मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया ।

तएण—तत्पश्चात्, तस्स सोमिलस्स माहणस्स—वह सोमिल ब्राह्मण, अण्णया कयाइ—अन्य किसी समय, पुव्वरत्तावरत्तकालसमयस्सि—अर्ध रात्रि के समय कृदुम्बजागरियं जागरमाणस्स—कटुम्ब की चिन्ता में जागरण करते हुए, अयमेयारुवे—इस प्रकार के, अज्जस्सिथिए जाव समुप्पज्जित्था—अध्यात्म विचार उत्पन्न हुए यावत्, एवं खलु अहं—इस प्रकार निश्चय ही मैं, वाणारसीए नयरीए—वाराणसी नगरी में, सोमिले नामं माहणे—सोमिल नामक ब्राह्मण, अच्च-तमाहणकुलप्पसूए—अत्यन्त उत्तम ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ हूँ, तएण—तत्पश्चात्, मए—मैंने, कयाइं चिण्णाइं—व्रत ग्रहण कर उनका आचरण किया, वेयाय अहीया—और वेदों का अध्ययन किया, वारा आहूया—स्त्री से शादी की, पुत्ता अणिया—पुत्र उत्पन्न किए, इहुंओ समानीयाओ—ऋद्धियां इकट्ठी की, पशुवधा कया—पशुओं का वध किया, जन्ना जेट्टा—ज्येष्ठ यज्ञ किये कि, अयात् स्वयं यज्ञ किये, दक्षिणा दिन्ना—ब्राह्मणों को दान दक्षिणा दी, अतिहि पूजिया—प्रतिथियों की पूजा की, अग्गी हूया—अग्नि-होत्र कर्म किया, अम्म निविस्सता—यज्ञ स्तम्भगाढ़ा, तं सेयं—इसलिए श्रेष्ठ है, खलु—निश्चय, मम—मेरे लिये, इयाणि—इस समय, कल्लं जाव जल्लते—प्रभात काल के उदय होने पर, वाणारसीए नयरीए बहिया—वाराणसी नगरी के बाहर, बहवे—बहुत से, अंवारामा—आमों के बाग, रोवावत्तिए—धारोपित किए, एवं—इस प्रकार, माउलिगा—मातुलिग—बिजोरा, बिल्ला—बिल्व, कपिट्ठा—कपित्थ, चिञ्चा—इमली और, पुष्पारामा—फूलों के बाग, रोवावत्तिए—धारोपित किये, एवं संपेहेइ संपेहिता—इस प्रकार विचार करता है, विचार करके, कल्लं जाव जल्लते—कल जावत् प्रातः काल सूर्योदय होने पर, वाणारसीए नयरीए बहिया—वाराणसी नगरी के बाहर, अंवारामे—आमों के बाग, जाव—यावत्, पुष्पारामे—फूलों के बाग, रोवावेइ—धारोपित करवाता है, तएण—तत्पश्चात्, बहवे अंवारामा—बहुत से आमों के बागों, य—और,

जाव—यावत्, पुष्कारामा—पुष्पों के बाग, य—और, अणुपुष्पेण—अनुक्रम से, सारविष्-
ज्जमाणा—जीवादि के भय से रक्षा करते हुए, संगोविज्जमाणा—वायु आदि का भय से रक्षा करते हुए,
संबद्धियमाणा—सिचाई करके संवर्धित करते हुए, आरामा जाया—बाग पैदा हो गए, किण्हा—कृष्ण
वर्ण वाले हुए, किण्हाभासा—काली प्रभा वाले, जाव—यावत्, रम्मा—रमणीक लगने लगे,
महामेहिनिकुरंबभूया—महामेघ के समान काली प्रभा वाले, पत्तिया—पत्तों से युक्त; पुष्फिया—फूलों
से युक्त, फलिया—फलों से युक्त, हरियगरेरिज्जमाणसिरीया—नीले रंग की लक्ष्मी से युक्त, अईव,
अईव—अतीव; उवसोभेमाणा, उवसोभेमाणा—शोभा पा रहे थे शोभा पाते हुए, चिट्ठति—उत्पन्न
हो गए थे ॥७॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह सोमिल ब्राह्मण किसी समय असाधु-दर्शन से और साधुओं
की सम्यक् सेवा न करने के कारण, मिथ्यात्व पर्याय की वृद्धि होने से, सम्यक्त्व पर्याय
के क्षीन हो जाने से मिथ्यात्व अंगीकार कर विचरने लगा ।

तत्पश्चात् वह सोमिल ब्राह्मण एक बार मध्वरात्रि के समय कुटुम्ब - जागरण
करते हुए, इस प्रकार विचार करता है कि “निश्चय ही मैं सोमिल ब्राह्मण, वाराणसी
के सर्वोच्च ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ हूँ ।

तत्पश्चात् मैंने व्रत ग्रहण किये, उनका आचरण किया, वेदों का अध्ययन किया,
शादी करके पत्नी लाया, पुत्र उत्पन्न किये, ऋद्धि प्राप्त की, यज्ञार्थ पशुवध किया,
स्वयं श्रेष्ठ यज्ञ किए, अब मुझे यही श्रेयस्कर है यावत् मैं प्रातःकाल सूर्योदय होते ही
वाराणसी नगरी के बाहर बहुत आमों के बागों को लगाऊँ । इसी प्रकार मातुलिङ्ग—
बिजौरा, बेल, कपित्थ, इमली व पुष्प-उद्यान लगाना मेरे लिए श्रेयस्कर है ।

इस प्रकार विचार कर वह प्रातः यावत् सूर्योदय के समय उठा और उसने वारा-
णसी नगरी के बाहर आमों के बाग यावत् पुष्प-वाटिकायें भगवाईं । फिर बहुत
से आमों के बाग यावत् पुष्पों के बागों की, अनुक्रम से, जीवों के भय से रक्षा
करते हुए, वायु आदि के भय से संगोपन करते हुए, जल आदि की सिचाई की इससे वृक्ष
बढ़ने लगे । बाग कृष्णप्रभा से युक्त रमणीक महामेघ के समान काली प्रभा वाले
पत्तों, पुष्पों से, फलों से, नील वर्ण की प्रभा से अति मनोहर शोभा से युक्त,
अतिउत्तम सुन्दरता को प्राप्त हुए ॥ ७॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में सोमिल ब्राह्मण के मिथ्यात्वी होने का वर्णन है, साथ में यह भी बताया गया है कि मिथ्यात्व के अशुभ परिणाम से वह सम्यक् आचरण वाले साधु पुरुषों से दूर भागने लगा। असंयमियों द्वारा प्ररूपित देव, गुरु व धर्म के स्वरूप में श्रद्धा करने लगा। ज्ञाताधर्म कथाङ्क सूत्र के १३वें अध्ययन में नन्दन मणियार के वर्णन की तरह सोमिल का वर्णन भी जानना चाहिये जिसकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

एक बार श्रमण भगवान महावीर राजगृही नगरी में पधारे। राजा श्रेणिक शाही ठाट-वाट के साथ प्रभु के दर्शन करने आ रहा था उसके हाथी के पैर के नीचे आकर एक मेंढक मर गया।

श्रेणिक को इस बात का बहुत खेद हुआ। भगवान महावीर ने कहा कि श्रेणिक ! वह मेंढक जो तुम्हारे हाथी के पैर के नीचे कुचला गया है वह मेरे दर्शन करने आ रहा था, क्योंकि उस तिर्यक् को जाति-स्मरण ज्ञान हो गया था। पिछले जन्म में यह एक धनाढ्य गाथापति व श्रमणोपासक था। एक बार वह पीषधोपवास कर रहा था। अयानक गर्मी के कारण रात्रि में उसे प्यास सताने लगी। नन्दन मणियार ने निश्चय किया कि सूर्योदय होते ही मैं ऐसे सुन्दर बावड़ी व बाग बनाऊंगा ताकि स्वच्छ ठण्डा पानी मुझे हमेशा मिले। वह मुबह उठा, बाग व बावड़ियां तैयार करवाने लगा। सारी जिदगी धर्म की छोड़कर बाग बावड़ियों के प्रति आसक्त हो गया। इसी कारण मर कर वह बावड़ी में मेंढक के रूप में पैदा हुआ, किन्तु मर कर वह शुभ भावों के कारण देव बना।

सोमिल ने भी इस तरह सम्यक्त्व छोड़ा और मिथ्यात्व ग्रहण किया। वृत्तिकार का इस संदर्भ में कथन है—

असाधुओं के दर्शन, साधुओं के न मिलने, असाधुओं से मिलाप, कदाग्रह एवं साधुओं के दर्शन न होने के कारण मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है।

इसके आगे एक रात्रि सोमिल ब्राह्मण अपने भूतकाल के जीवन, अपने उत्तम वंश, मर्यादाओं आदि का चिंतन करते हुए सोचने लगा कि मैं वाराणसी में वेद-पाठी ब्राह्मण-कुल में पैदा हुआ हूँ। मैंने शादी की, बच्चे पैदा किये। शौच, तप स्वाध्याय आदि ग्रहण किया। यज्ञों में पशु बलि दी। दान दक्षिणा दी और अतिथियों की सेवा की। अब मुझे सांसारिक धर्म की साधना हेतु बहुत से फल, फूलों के बाग लगवाने उचित हैं। प्रस्तुत सूत्र से सिद्ध होता है कि यज्ञ में पशुबलि के लिए यूप स्थापित करने की परम्परा काफी प्राचीन है।

‘अज्झत्थिए जाव’ इस सूत्र के बारे में वृत्तिकार का कथन है।

‘अज्झत्थिए जाव’ ति आध्यात्मिकः आत्मविषयः चिन्तितः—स्मरण रूपः प्रार्थितः मनोगतो, मनःवेद्यं व्रतंते, यो न बहिः प्रकाशितः सङ्कल्पो विकल्पः समुत्पन्न प्रादुर्भूतः ॥७॥

मूल—तएणं तस्स सोमिलस्स माहणस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्ता-
वरत्तकालवयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारुवे अंज्झत्थिए

जाव समुपज्जित्था-एवं खलु अहं वाणारसीए णयरीए सोमिले नामं
 माहणे अच्चंतमाहणकुलप्पसूए । तए णं मए वयाइं चिण्णाइं, जाव जूवा
 णिक्खित्ता, तए णं मए वाणारसीए नयरीए बहिया बहवे अंबारामा
 जाव पुप्फारामा य रोवाविया, तं सेयं खलु ममं इयाणि कल्लं जाव
 जलंते सुबहुं लोहकडाहकडुच्छुयं तंबियं तावसभंडं घडावित्ता विउलं
 असणं पाणं खाइमं साइमं मित्तनाइ० आमंतिता तं मित्तनाइणियग०
 विउलेणं असण० जाव संमाणिता तस्सेव मित्त जाव जेट्ठपुत्तं कुडुंबे
 ठावेत्ता तं मित्तनाइ जाव आपुच्छिता सुबहुं लोहकडाहकडुच्छुयं तंबियं
 तावसभंडं गहाय जे इमे गंगाकूला वाणपत्था तावसा भवंति-तं जहा
 होत्तिया पोत्तिया कोत्तिया जन्नई सड्ढई थालई हुंबउट्ठा दंतुक्खलिया
 उम्मज्जगा संमज्जगा निमज्जगा संपक्खालगा दक्खिणकूला उत्तरकूला
 संखधमा कूलधमा मियलुद्धया हत्थितावसा उट्ठंडा दिसापोक्खिणो वक्क-
 वासिणो बिलवासिणो जलवासिणो रुक्खमूलिया अंबुभक्खिणो वायु-
 भक्खिणो सेवालभक्खिणो मूलाहारा कंदाहारा तयाहारा पत्ताहारा पुप्फा-
 हारा फलाहारा बीयाहारा परिसडियकंदमूलतय-पत्तापुप्फफलाहारा जला-
 भिसेयकडिणगायभूया आयावणाहिं पंचगितावेहिं इंगालसोल्लियं कंदु-
 सोल्लियं पिव अप्पाणं करेमाणा विहरंति । तत्थ णं जे ते दिसापोक्खिया
 तावसा तेसिं अंतिए दिसापोक्खियत्ताए पव्वइत्ताए । पव्वइए वि य णं
 समाणे इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिणिहस्सामि कप्पइ मे जावज्जीवाए
 छट्ठ-छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं दिसाचक्कवालेणं तवोकम्मणेणं उट्ठ बाहाओ
 पगिज्झिय पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स विह-
 रिताएत्ति कट्ठु एवं संपेहेइ, संपेहिता कल्लं जाव जलंते सुबहु लोह
 जाव दिसापोक्खियत्तावसत्ताए पव्वइए । पव्वइए वि य णं समाणे इमं

एयारुवं अभिगहं अभिगिणिहत्ता पढमं छट्टक्खमणं उवसंपज्जित्ताणं०
विहरइ ॥८॥

छाया—ततः खलु तस्य सोमिलस्य ब्राह्मणस्याज्यदा कदाचित् पूर्वरात्रापररात्रकालसमये
कुटुम्बजागरिकां जाग्रतोऽयमेतद्रूप आध्यात्मिकः यावत् समुदपद्यत—एवं सत्त्वहं वाराणस्यां नगर्यां
सोमिलो नाम ब्राह्मणः अत्यन्तब्राह्मणकुलप्रसूतः, ततः खलु मया व्रतानि चीर्णानि यावद् यूपः निक्षिप्तः ।
ततः खलु मया वाराणस्यां नगर्यां बहिर्वहव आन्तरामा यावत् पुष्पारामाश्च रोपितास्तच्छ्रयः
खलु ममेदानीं कल्ये यावज्ज्वलति सुबहुं लोहकटाहकटुच्छकं ताम्रीयं तापसभाण्डं घटयित्वा विपुल-
मशनं पानं खाद्यं स्वाद्यं मित्रं जाति० आसन्त्य तं मित्रं—जाति-निजक० विपुलेन अशन० यावत्
सम्मान्य तस्यैव मित्र० यावत् ज्येष्ठपुत्रं कुटुम्बे स्थापयित्वा तं मित्रजातियावत् आपृच्छ्य सुबहुं लोह-
कटाहकटुच्छकं ताम्रीयं तापसभाण्डकं गृहीत्वा ये इमे गङ्गाकूलाः वानप्रस्थास्तापसः भवन्ति तद्यथा—
होत्रिकाः, पोत्रिकाः, कौत्रिकाः यज्ञयाजिनः, आहूतकिनः, स्थालकिनः—गृहीतभाण्डाः, हुण्डिकाधमणाः,
दन्तोद्वलिकाः, उन्मज्जकाः, सम्मज्जकाः, निमज्जकाः संप्रभालकाः, दक्षिणकूलाः, उत्तरकूलाः, शङ्कुधमाः,
कूलधमाः, मृगलुब्धकाः, हस्तितापसाः, उदूण्डाः, विशाप्रोक्षिणः, वल्कवाससः, विसवासिनः, जलवासिनः,
वृक्षमूलकाः, अम्बुभक्षिणः, वायुभक्षिणः, शैवालभक्षिणः, मूलाहाराः, कन्वाहाराः, त्वगाहाराः, पत्राहाराः,
पुष्पाहाराः, फलाहाराः, बीजाहाराः, परिशदितकन्दमूलत्वक्पृष्ठाहाराः, जलाभिषेककठिन-
गात्रभूताः, स्नातापनाभिः पञ्चाग्नितापः अङ्गारशौल्यकं, कन्दुशौल्यकमिव आत्मानं कुर्वाणा विह-
रन्ति । तत्र खलु ये ते विशाप्रोक्षकास्तापसास्तेषामन्तिके विशाप्रोक्षकतया प्रव्रजितम् । प्रव्रजितोऽपि च
खलु सन् इममेतद्रूपमभिग्रहमभिग्रहीष्यामि—कल्पते मे यावज्जीवं घट-घट्टेनानिक्षिप्तेन विक्षका-
बालेन तपःकर्मणा ऊर्ध्वं बाहू प्रगृह्य प्रगृह्य सूर्याभिमुखस्याऽऽतापनभूम्यामातापयतो विहर्तुम् ।

इति कृत्वा एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य कल्ये यावज्ज्वलति सुबहुं लोह० यावत् विशाप्रोक्षकतापसतया
प्रव्रजितः । प्रव्रजितोऽपि च खलु सन् इममेतद्रूपमभिग्रहमभिग्रह्य प्रथमं घटक्षपणमुपसंपद्य खलु
विहरति ॥८॥

पदार्थान्वयः—तए—उसके अनन्तर, जं—यह प्रत्ययपद है, जो वाक्य की सुन्दरता के लिए
प्रयुक्त किया जाता है, तस्स—उस, सोमिलस्स—सोमिल नामक, माहणस्स—ब्राह्मण के, अणया
कयाइ—किसी अन्य समय, पुवरत्तावरत्तकालसमयंसि—रात्रि के मध्य भाग में, कुटुम्बजागरियं
जागरमाणस्स—कुटुम्ब जागरणा कुटुम्ब के हानि-लाभ का चिन्तन करते हुए, अवमेयारुवे—इस
प्रकार, अज्जसत्थिए—आध्यात्मिक, आत्मा सम्बन्धी, आत्मा या मन से सम्बन्ध रखने वाला,
जाव—यावत् विचार, समुपज्जित्था—उत्पन्न हुआ, खलु—निश्चय ही, एवं—इस प्रकार, अहं—
मैं, सोमिले नामं माहणे—सोमिल नामक ब्राह्मण, वाणारसीए णवरीए—वाराणसी नगरी में,
अच्चंतमाहणकुलज्जसूए—ब्राह्मणों के अत्यन्त उच्च कुल में पैदा हुआ हूँ । तए—तदनन्तर, जं—

वानय-सौन्दर्यार्थक है, मए—मैने, बयाइ—व्रतों का, चिण्णाइ—आराधन किया, जाव—यावत्, जूवा निविखत्ता—यूप—यज्ञस्तम्भ या स्तम्भ-विशेष स्थापित किए, तए—उस के बाद, णं—वाक्य सुन्दरता के लिए है, मए—मैने, वाणारसीए णयरीए—वाराणसी नगर के, बहिया—बाहिर, बहवे—अनेकों, अंबारामा—आमों के बाग, जाव—यावत्, पुष्कारामा य—और फलों के बाग, रोवाविया—लगवाए हैं, तं—सो, खलु—निश्चय ही, ममं सेयं—मेरे लिए यही श्रेष्ठ है, इयाणि—अब, कल्लं—प्रातःकाल ही, जाव—यावत्, जलंते—सूर्य के जाज्वल्यमान होने पर, सुबहुं—बहुत से, लोह-कडाह-कडुच्छयं—लोहे के कडाहे और लोहे की कड़छी-चमची आदि डोई (प्राकृत शब्द-महार्णव कोष), तंबियं—ताम्रिक (परिव्राजकों के पहनने का एक उपकरण); तावस-भंड—तपस्वियों के उपयोग में आने वाले भाण्ड-पात्र, घडावित्ता—बनवा कर, विउलं—विपुल-पर्याप्त, असणं—अशन—अन्न, पाणं—पेय पदार्थ, खाइमं—खादिमं—बादाम और पिस्ते आदि मेवे, साइमं—मुख को स्वादिष्ट बनाने वाले चूर्ण आदि पदार्थ बनवा कर, मित्तं—मित्र, नाइ—समान जाति आदि वाले लोगों को, आमंतिता—आमंत्रित करके, तं मित्ताइणियगं—उन मित्रों, समान जाति वालों तथा निजक-आत्मीय, अपने सम्बन्धी जनों को, विउलेणं—पर्याप्त, असणं—भोजनादि से, जाव संमाणिता—यावत् सम्मानित करके, तस्सेव मित्त जाव—उन मित्र आदि के सामने, जेहुपुत्तं—ज्येष्ठ पुत्र, बडे लडके को, कुडुंवे ठावेत्ता—कुटुम्ब का दायित्व सम्भाल कर, त मित्तनाइ जाव—उन मित्र आदि सम्बन्धियों को, आपुच्छित्ता—पूछ कर, सुबहुं लोह-कडाह-कडुच्छयं—बहुत से लोहे के कडाहे और कड़छियों को, तंबियं—ताम्रकों को, तावसभंडं—तापसों के पात्रों को, गहाय—ग्रहण करके, जे—जो, इमे—ये, गंगाकूला—गंगा के किनारे पर रहने वाले, वाणपत्था तावसा—वानप्रस्थ—वन में रहने वाले तपस्वी, भवति—विराजमान हैं, तंजहा—जैसे कि, होत्तिया—अग्निहोत्री । वानप्रस्थ तापसों का एक वर्ग], पोत्तिया—वस्त्रधारी वानप्रस्थ, कोत्तिया—भूमि पर शयन करने वानप्रस्थ, जन्नई—यज्ञ अर्थात् यज्ञ करने वाले तापस, सडुई—श्राद्ध करने वाले वानप्रस्थ, थालई—पात्र धारण करने वाले वानप्रस्थ, हुंबउट्टा—हुम्बउष्ट [वानप्रस्थ तापसों की एक जाति] दंतुखलिया—दांतों से चबाकर खाने वाले तापस, उम्मज्जगा—उन्मज्जक उन्मज्जन (गोते) लगाकर ही स्नान करने वाले तापस, संमज्जगा—सम्मज्जक बार-बार हाथ से पानी को उछाल कर स्नान करने वाले, निमज्जगा—निमज्जक पानी में डूबकर स्नान करने वाले, संपक्खालगा—संप्रक्षालक—मिट्टी मल कर शरीर का स्नान करने वाले । दक्खिणकूला—गंगा के दक्षिण तट पर रहने वाले, उत्तरकूला—गंगा के उत्तर तट पर रहने वाले, संखधमा—शङ्खधमा—शंख बजा कर भोजन करने वाले, कूलधमा—तट पर स्थित होकर आवाज करते हुए भोजन करनेवाले, मियलुद्धया—मृग को मार कर उसी के मांस से जीवन व्यतीत करने वाले, हस्तितावसा—हस्ति-तापस—हाथी की तरह स्नान करके शरीर पर भस्म आदि लगा कर जीवन विताने वाले, उट्टंडा—उट्टण्ड—डण्डे को ऊंचा उठाकर चलने वाले, दिशापोक्खिणो—दिशाप्रोक्षी—दिशा को जल से सींचकर उस में पुष्प फल आदि चुन कर रखने वाले अथवा, अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार दिशाओं को देखकर तपस्या करने वाले तापस, वक्कवासिणो—

वत्कलवासस—वृक्षों की छाल को धारण करने वाले, बिलवासिणो—बिलवासी—भूमि के नीचे बिल जैसे स्थान में रहने वाले, जलवासिणो—जलवासी—जल में ही रहने वाले, रक्षमूलिया—वृक्षमूलक—वृक्ष के मूल में रहने वाले, अंबुभक्षिणो—केवल जल का सेवन करने वाले, वायुभक्षिणो—वायुभक्षी—केवल वायु का सेवन करने वाले, शेवालभक्षी—केवल शेवाल नामक जलीय घास का सेवन करनेवाले, मूलाहारा—मूलाहार—मूल—जड़ों का सेवन करने वाले, कंवाहारा—कन्द का सेवन करने वाले (गूदेदार बिना रेशे की जड़, जमीकन्द, शकरकन्द, गाजर, लहसुन आदि) का सेवन करने वाले, त्वचाहारा—त्वचाहारा—नीम आदि वृक्षों की त्वचा का सेवन करने वाले, पत्ताहारा—पत्राहार—वृक्षों के पत्तों का सेवन करने वाले, पुष्पाहारा—पुष्पाहारा—गुलाब आदि फूलों का सेवन करने वाले, फलाहारा—फलाहार—केले आदि फलों का सेवन करने वाले, बीजाहारा—बीजाहारा—बीजों का सेवन करने वाले, परिशडिय—कंद-मूल-तप-पत्त-पुष्प-फलाहारा—परिशदित—अर्थात् सड़े हुए कन्द; मूल, त्वचा, पत्र, पुष्प और फलों का सेवन करने वाले, जलाभिसेय—कडिण गायभूया—जलाभिषेक—जल के अभिषेक अर्थात् अधिक सिंचन से जिनका शरीर कठोर हो गया है ऐसे तापस, आयावणाहि पंचगितावेहि—सूर्य की आतापना और पञ्चाग्नि-तप के कारण, इंगालसोल्लिय—अङ्गार-शीत्य अर्थात् अङ्गारों पर रखे शूल से पकाये हुए मांस एवं, कंदुसोल्लिय—कन्दुशीत्य अर्थात् चावल आदि भूतने का पात्र कन्दु होता है उसमें घृत डाल कर शूल पर पकाए गए मांस के, पिव—समान, अप्पाणं करेमाणा—अपने शरीर को कष्ट देते हुए, विहरन्ति—जीवन व्यतीत कर रहे हैं, तत्प—उनमें, जे ते—जो तापस, णं—वाक्य सौन्दर्यार्थक है, विसापोविषया—दिशाप्रोक्षक अर्थात् दिशाएं प्रोक्षित कर जीवन-यात्रा चलानेवाले, तावसा—तापस हैं, तेसि अतिए विसापोविषयत्ताए—उन दिशाप्रोक्षक तापसों के पास अर्थात् दिशाप्रोक्षक के रूप में तापस बनना चाहता हूं, पव्वइत्ताए—प्रव्रजित होने के लिये, पव्वइए वि य णं समाणे—प्रव्रजित हो जाने पर, इमं एयारूवं—मैं इस प्रकार का, अभिगहं अभिगिहिस्सामि—अभिग्रह—प्रतिज्ञा विशेष ग्रहण करूंगा, कप्पई मे जावज्जीवाए—जीवन-पर्यन्त मेरा नियम रहेगा कि मैं, छट्ठं छट्ठेणं—बेले-बेले तपस्या करता रहूँ अणिविखत्तेणं—बिना किसी अन्तर के अर्थात् लगातार, यह तपस्या, विसाचवकवालेणं तवो कम्मेणं—दिक्-चक्रवाल तपस्या करता हुआ, सूरामिमुहस्स—सूर्य की ओर मुख करके, उट्ठं बाहाए पणिज्झियं—सूर्य के सामने भुजाएं उठा-उठा कर, आयावण भूमोए आयावेमाणस्स विहरत्ताए—आतापना भूमि में आतापना ग्रहण करता रहूंगा, ति कट्ठु एवं सपेहेइ—इस प्रकार सोचकर मन में चिन्तन करता है, दिक्चक्रवाल—तपस्या के द्वारा जीवन बिताने का निश्चय कर लेता है, सपेहिता—ऐसा निश्चय कर लेने के अनन्तर, कत्वं जाव जल्लंते—प्रातःकाल यावत् सूर्य के देदीप्यमान होने पर, सुवहु - लोह - जाव - विसापोविषयत्तावसत्ताए—बहुत से लोहे के कड़ाहे यावत् अन्य (पूर्व वर्णित) सामग्री लेकर दिशाप्रोक्षक तापस के पास आकर, पव्वइए—प्रव्रजित हो जाता है, पव्वइए वि य णं समाणे—प्रव्रजित हो जाने के पश्चात्, इमं एयारूवं अभिगहं—इस प्रकार का अभिग्रह (प्रतिज्ञाविशेष), अभिगिहिता—धारण करके,

पदमं छट्पञ्चमाणं—पहला षष्ठक्षपण—दो दिन का उपवास, उबसंपज्जितानं—धारण करके, विहरइ—विहरण करने लगा ॥८॥

मूलार्थ—उसके बाद उस सोमिल ब्राह्मण को किसी अन्य समय रात्रि के मध्य में, कुटुम्ब (की चिन्ता में) जागरण करते हुए उसके मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ “निश्चय ही मैं सोमिल ब्राह्मण वाराणसी नगरी के उच्च ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। तत्पश्चात् मैंने व्रतों का अराधन किया। फिर यूप या यज्ञ-स्तम्भ स्थापित किए, तत्पश्चात् मैंने वाराणसी नगरी के बाहर अनेकों आमों के बाग, फूलों के बाग लगवाए हैं। अब मेरे लिए यही श्रेयस्कारी होगा कि प्रातः सूर्योदय होते ही मुझे बहुत से लोहे के कड़ाहे और कड़छियाँ, ताम्रिक (परिव्राजकों के पहनने का एक उपकरण), तपस्विनों के दैनिक प्रयोग में आने वाले भण्डोपकरण बनवा करके, विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम—चारों प्रकार का भोजन तैयार करवाऊँ और मित्रों और समान कुलवालों को आमन्त्रित करके उन मित्रों एवं समान जाति के लोगों, रिश्तेदारों को पर्याप्त भोजन करवा करके, उनका सम्मान सत्कार करूँ। फिर बड़े पुत्र को घर का दायित्व संभाल कर उन मित्रों एवं सम्बन्धियों से पूछ कर तापस-दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा प्राप्त करूँ। फिर बहुत से कड़ाहों, कड़छियों व ताँबे के बर्तनों को ग्रहण करके, गंगा के किनारे पर रहने वाले वानप्रस्थों के पास जाऊँ।

फिर अग्निहोत्री (वानप्रस्थ तापसों का एक वर्ग) वत्कलधारी वानप्रस्थी, भूमि पर सोने वाले वानप्रस्थ, यज्ञ करने वाले तापस, श्राद्ध करनेवाले वानप्रस्थ, पात्र धारण करने वाले वानप्रस्थ, हुम्बडकण्ट (वानप्रस्थी तापसों की एक जाति) दांतों से चबाकर खाने वाले तापस, गोता लगाकर स्नान करने वाले तापस, बार-बार हाथ से पानी उछाल कर स्नान करने वाले तापस, पानी में डुबकी लगाकर स्नान करने वाले, मिट्टी से शरीर को मल कर स्नान करनेवाले, गंगा के दक्षिण तट पर रहने वाले, गंगा के उत्तरी तट पर रहने वाले, शंख बजाकर भोजन करने वाले, मृग को मार कर उसके मांस से जीवन व्यतीत करनेवाले, हाथी के समान स्नान करके शरीर पर भस्म आदि लगा कर जीवन बिताने वाले, दण्ड को ऊँचा रखकर चलने वाले दिशाओं को जल से सींचकर

उन में फल फूल आदि चुनकर रखने वाले अथवा प्रतिज्ञा के अनुसार दिशाओं को देखकर तपस्या करने वाले, वृक्ष की छाल धारण करने वाले, बिलों में रहने वाले, पानी में रहने वाले वृक्षों के मूल में रहने वाले, केवल जल का सेवन करने वाले, केवल वायु का भक्षण करने वाले, शंवाल एक जलीय विशेष घास खाने वाले, जड़ का सेवन करने वाले, कन्द मूल का सेवन करने वाले; नीम आदि वृक्षों की त्वचा का आहार करने वाले, वृक्षों के पत्तों का भोजन करने वाले, फूलों का भोजन करने वाले, केवल फलाहार करने वाले, बीजों का आहार करने वाले, परिशुद्ध अर्थात् सड़े हुए कन्द मूल, त्वचा पत्र, पुष्प और फलों का आहार करने वाले, जलाभिषेक से जिनका शरीर कठोर हो गया है ऐसे तापस सूर्य की आतापना लेने वाले, अंगारों पर रख कर शूल से पकाये कवाब की ग्रहण करनेवाले, कन्दुशीलक नामक चावल पकाने के पात्र में घृत डाल कर शूल पर बनाये कवाब का भोजन ग्रहण करने वाले, अपने शरीर को कष्ट देकर जो जीवन-यापन कर रहे हैं ऐसे तापसों के पास (वह सोमिल ब्राह्मण आता है और आकर विचार करता है) मैं इन तापसों में जो दिक्षाप्रोक्षक तापस हैं उन दिक्षा-प्रोक्षक तापसों के पास तापस बनना चाहता हूँ। फिर वह दिक्षाप्रोक्षक तापस के पास आकर प्रव्रजित हो जाता है, प्रव्रजित होने के पश्चात् विशेष प्रकार का अभिग्रह धारण करता है, अभिग्रह धारण करके पहला षष्ठ-क्षपण (दो दिन का उपवास) करता हुआ जीवन-यापन करता है।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में सोमिल ब्राह्मण के मिथ्यात्व के उदय के बाद की स्थिति का वर्णन किया गया है, वह किस प्रकार का तापस जीवन ग्रहण करता है कितने प्रकार के तापस होते हैं, इन सभी का विस्तृत वर्णन इस सूत्र में आया है। तापस-परम्परा के प्राचीन इतिहास पर यह सूत्र अच्छा प्रकाश डालता है। तापसों के अनेक भेद बतलाये गए हैं सभी बानप्रस्थी तापस लोग गंगा-तट पर रहते थे। सोमिल ब्राह्मण ने मित्रों एवं रिस्तेदारों की आज्ञा से, पुत्र को घर का उत्तर-दायित्व संभाला, उसने दिक्षाप्रोक्षक तापस परम्परा को चुना। सोमिल ब्राह्मण ने सात्त्विक तापस परम्परा को चुना, किसी मांसाहारी तापस परम्परा को नहीं चुना। इस बात से सिद्ध होता है कि ऋद्धि से समय का भी सम्यक्त्व जीवन में मिथ्यात्व को कैसे दबाये रखता है।

तपस्या के पारणे के लिए तपस्वी अपनी तपोभूमि के चारों ओर फलों का संग्रह करके रखता है। पारणे का समय जाने पर पहले पारणे में पूर्व दिशा में रखे हुए फलों का सेवन करके

पारणा करता है । दूसरे पारणे में दक्षिण दिशा में रखे फलों का आसेवन करता है । तीसरे पारणे में पश्चिम दिशा में और चौथे पारणे में उत्तर दिशा में रखे हुए फलों को ग्रहण करता है । इस पद्धति से जिस तपस्या में पारणा किया जाता है उस तपस्या को दिक्-चक्रवाल तपस्या के नाम से पुकारा जाता है । इस तपस्या में पारणे के समय बलग-अलग दिशाओं का अभिग्रह ग्रहण करना जरूरी होता है । इस प्रकार वह दिक्-चक्रवाल तपस्या करता है ॥८॥

मूल—तएणं से सोमिले माहणे रिसी पढमछट्ठक्खमण पारणंसि
 आयावणभूमोए पच्चोरुहइ, पण्चोरुहिता वागलवत्थ नियत्थे जेणेव सए
 उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता किट्ठिणसंकाइयं गिण्हइ, गिण्हिता
 पुरत्थिमं दिसिं पुक्खेइ, पुक्खिता, पुरत्थिमाए दिसाए सोमे महाराया
 पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सोमिलमाहणरिसिं, जाणि य तत्थ कंदाणि
 य मूलाणि य तयाणि य पत्ताणि य पुप्फाणि य फलाणि य बीयाणि य
 हरियाणि ताणि अणुजायउ-त्ति कट्ठु पुरत्थिमं दिसं पसरई, पसरित्ता
 जाणि य तत्थ कंदाणि य जाव हरियाणि ण ताइं गिण्हइ, गिण्हिता
 किट्ठिणसंकाइयं भरेइ, भरित्ता दब्भे य कुसे य पत्तामोडं च समिहाक-
 ट्ठाणि य गिण्हइ, गिण्हिता जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवा-
 गच्छिता किट्ठिणसंकाइयं ठवेइ, ठवित्ता वेदिं वड्ढइ वड्ढिता उवले-
 वणं संमज्जणं करेइ, करित्ता दब्भकलसहत्थगए जेणेव गंगा महानई तेणेव
 उवागच्छइ, उवागच्छिता गंगं महानई ओगाहइ, ओगाहिता जलमज्जणं
 करेइ, करित्ता जलकिट्ठं करेइ, करित्ता जलाभिसेयं करेइ, करित्ता आयंते
 चोक्खे परमसुइभूए देवपिउकयकज्जे दब्भकलसहत्थगए गंगाओ महानईओ
 पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव सए उडए तेणेव उपागच्छइ, उवागच्छिता
 दब्भेहिं य कुसेहिं य बालुयाए य वेदिं रएइ, रइत्ता सरयं करेइ, करित्ता
 अंगिं पाडेइ, पाडित्ता अंगिं संधुक्खेइ, समिहाकट्ठाइं पक्खिवइ.
 पक्खिवित्ता अंगिं उज्जलेइ, उज्जालित्ता अगिस्स दाहिणे पासं सत्तांगाइं
 समादहे ।

तं जहा—“सकत्थं वक्कलं ठाणं, सिज्जं भंडं कमंडलुं । दंड-दारं
तहप्पाणं, अहं ताइ समादहे ।” महुणा य घएण य तंदुलेहिं य अग्निं
हुणइ, चरुं साहेइ, साहिता बलिवइस्सदेवं करेइ, करित्ता अतिहिपूयं
करेइ, करित्ता तओ पच्छा अप्पणा आहारं आहारेइ ॥६॥

छाया—ततः खलु सोमिलो ब्राह्मण ऋषिः प्रथमषष्ठक्षपणपारणे आतापनभूम्यां प्रत्यवरोहति
प्रत्यवरोह्य बल्कलदस्त्रनिवासितः यत्रैव स्वकं उदजस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य किङ्किणसाङ्कायिकं
गृह्णाति गृहीत्वा पौरस्त्यां दिशं प्रोक्षति, प्रोक्ष्य “पौरस्त्याया दिशः सोमो महाराजः प्रस्थाने प्रस्थितम-
भिरभत् सोमिलब्राह्मणमिषम्, यानि च तत्र कन्दानि च मूलानि च त्वचञ्च पत्राणि च पृष्ठाणि च
फलानि च बीजानि च हरितानि च तानि अनुजानातु,” इति कृत्वा पौरस्त्यां दिशं प्रसरति, प्रसृत्य
यानि च तत्र कन्दानि च यावत् हरितानि च तानि गृह्णाति किङ्किणसाङ्कायिकं भरति, भूत्वा बभ्रैश्च
कुशैश्च पत्रामोढं च समित्काष्ठानि च गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव स्वकं उदजस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य
किङ्किणसाङ्कायिकं स्थापयति, स्थापयित्वा वेदिवर्धयति, वर्धयित्वा उपलेपनसम्प्राप्तं करोति, कृत्वा
दर्भकलशहस्तगतो यत्रैव गङ्गा महानदी तत्रैवोपागच्छति, उपागम्य गंगायां महानद्यां अवगाहते,
अवगाह्य जलमञ्जनं करोति, कृत्वा जलक्रीडां करोति, कृत्वा जलाभिषेकं करोति, कृत्वा आचान्तः
स्वच्छः परमशुचिभूतः देवपितृकृतकार्यः, दर्भकलशहस्तगतो गङ्गातो महानदीतः प्रत्यवतरति,
प्रत्यवतीर्य यत्रैव स्वकं उदजस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य बभ्रैश्च कुशैश्च बालुकया च वेदिं रचयति,
रचयित्वा शरकं करोति, कृत्वा अरणिं करोति, कृत्वा शरकेणार्णि मथ्नाति, मथित्वा अग्निं पातयति,
पातयित्वा अग्निं संधुभ्नते संधुक्ष्य समित्काष्ठानि प्रक्षिपति, प्रक्षिप्य अग्निमुज्ज्वालयति, उज्ज्वालय,
अग्नेर्देक्षिणे पार्श्वे सप्ताङ्गानि समादधति, तद्यथा १ “सकत्थं २ बल्कलं, ३ स्थानं, ४ शय्याभाण्डं,
५ कमण्डलुम्, ६ दारुवण्डं, ७ तथाऽऽश्वानम्, अथ तानि समादधोत ।

ततो मधुना घृतेन च तण्डुलैश्चाग्निं जुहोति; चरुं साधयति । साधयित्वा बलिबैश्वदेवं करोति,
कृत्वाऽतिथिपूजां करोति, कृत्वा ततः पश्चात् आत्मना आहारमाहारयति ॥६॥

पदार्थान्वयः—तएणं से सोमिले माहणे रिसी—तत्पश्चात् वह सोमिल ब्राह्मण ऋषि, षष्ठमं
छट्मुखमण पारणसि—प्रथम षष्ठ भक्त के पारणे के दिन, आयावणभूमौ—आतापना भूमि से,
पच्चोरुहइ, पच्चोरुहिता—उतरता है, उतर कर, बागलवत्थ नियत्थे—बल्कल अर्थात् वृक्ष की
छाल के वस्त्र पहनकर, जेणेव सए—जहां उसकी अपनी, उडए—झोंपड़ी थी, तेणेव—वहां, उवा-
गच्छइ उवागच्छित्ता—आता है, आकर, किङ्किणसाङ्कायं गिणहइ—वह बांस की बनी कांवड़ ग्रहण
करता है, गिणहिता—ग्रहण करके, पुरत्थिमं दिंसि—पूर्व दिशा में, पुक्खेइ, पुक्खित्ता—जल सौचता

है और सींच कर (प्रार्थना करता है), पुरस्थिमाए दिसाए—पूर्व दिशा के, सोमे महाराया—सोम महाराज, पत्थणे पत्थियं—वह सोम नामक दिक्पाल के मार्ग में चलते हुए मेरी, अभिरवखेउ—रक्षा करें, सोमिल माहण रिसि—सोमिल ब्राह्मण की इस प्रकार बार-बार प्रार्थना कर, जाणि य तत्थ—और वहां पूर्व दिशा में जो भी, कंदाणि य—कंद, मूलाणि य—मूल, तथाणि य—त्वचा (वृक्षों की छाल), पत्ताणि य—पत्र, पुष्पाणि य—पुष्प, बोयाणि य—बीज, हरियाणि—हरी घास आदि थे, ताणि—उनको, गिण्हइ गिण्हत्ता—ग्रहण करने की आज्ञा लेता है और आज्ञा लेकर जो उस दिशा में तृण आदि पदार्थ थे उनसे भ्रपने, किट्ठिसंकाइयं भरइ भरित्ता बांस की कांवड़ भरता है और भर कर, वम्भेय—दूब, कुसेय—कुशा, पत्तामोडं च - पत्रामोड़ समिहा-कट्ठाणि य गिण्हइ, गिण्हत्ता—समिधा रूप काष्ठ ग्रहण करता है, ग्रहण करके, जेणेव सए उडए—जहां उसकी अपनी झोपड़ी थी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता—वहां आता है और आकर किट्ठि-णसंकाइयं ठवेइ, ठवित्ता—बांस की कांवड़ को नीचे रखता है और रखकर, वेदि वड्डइ वड्डित्ता - वेदी बनाता है और बना कर, उबलेण संमज्जण करेइ, करित्ता—गोबर का लेप करता है संमार्जन करता है और करने के पश्चात्, बम्भकलसहत्थगए—हाथ में दूब और कलश को लेकर, जेणेव गंगा महानई—जहां गंगा महानदी थी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता—वहां आता है और आकर, गंग महानई ओगाहइ, ओगहत्ता—गंगा महानदी में प्रवेश करता है, करने के पश्चात्, जेलमज्जणं करेइ, करित्ता—जल में स्नान करता है और स्नान करके, जलकिडुं करेइ, करित्ता—जल-क्रीड़ा करता है और करने के पश्चात्, जलाभिसेयं करेइ करित्ता—जलाभिषेक करता है और करके, आयंते चोवले परमसुइभूए—आचमन आदि करके परम शुचिभूत होकर, देवपितृकयकज्जे—देव-पितृ कार्य करता है, बम्भकलसहत्थगए—कुशा और कलश हाथ में ग्रहण कर, गंगाओ महानईओ पच्चत्तरइ, पच्चत्तरित्ता—गंगा महानदी से बाहर निकला और निकल कर, जेणेव सए उडए—जहां उसकी झोपड़ी थी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता—वहां आता है और आकर, वम्भेहि य - दूब, कुसेहि य—कुशा, बालुयाए य—(और) बालुका से, वेदि रएइ, रइत्ता—वेदी की रचना करता है और रचना करने के पश्चात्, सरयं करेइ करित्ता—सरक (अग्नि उत्पन्न करने का काष्ठ) को घिसता है घिसने के पश्चात्, अग्नि करेइ—अग्नि उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है, करित्ता—प्रयत्न करके, सरएणं अरणि महेइ—सरक से अग्नि मन्थन करता है, अग्नि पाडेइ,—अग्नि कुण्ड में डालता है, पातयित्ता—डाल कर, अग्नि संघ्वखेइ—अग्नि जलाता है और जला कर, समिहाकट्ठाइं पविखवइ, पविखवित्ता—उस अग्नि में समिधा रूप लकड़ियां डालता है और डाल कर, अग्नि उज्जालेइ, उज्जालित्ता—अग्नि को जाज्वल्यमान करता है और जाज्वल्यमान करके, अग्निस्स दहिणे पासं—अग्नि की दाहिनी ओर, सत्तांगाई समावहे—सात अङ्ग—वस्तुओं को स्थापित करता है।

तं जहा—जैसे कि, सकत्थं अवकलं—सकथ और बलकल, ठाणं—स्थान, सिज्जं भंडं कमंडलुं—शेय्या, बर्तन और कमंडलु, दंड-दारं—दण्ड दार, तहण्णं—स्वयं को, अहं ताइं समावहे—

प्रब उन्हें रखता है । इन सात अङ्गों को स्थापित करने के पश्चात्, महृणा य घृण य—मधु और घृत से, तंदुलेहि य अग्नि हृणइ—तंदुलों से अग्नि में होम करता है, चरु साहेइ—चरु से बलि देता है, साहिता—बलि देकर, बलिवइस्सदेवं करेइ 'करिता—बलि से वंश्वदेव की पूजा करता है और पूजा करके, अतिहिपूयं करेइ, करिता—अतिधि-पूजन करता है और करके, तओ पच्छा अप्पणा जाहारं आहारेइ—तत्पश्चात् स्वयं भोजन करता है ॥६॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह सोमिल ब्राह्मण ऋषि प्रथम बेले के पारणे के दिन आता-पना भूमि से नीचे उतरता है उतर कर बलकल वस्त्र धारण करता है, धारण करके जहां उस की अपनी झोंपड़ी थी वहां आता है, आकर बांस की कांबड़ (वंहगी) को ग्रहण करता है ग्रहण करके पूर्व दिशा की ओर जल छिड़कता है । पूर्व दिशा में जो सोम महाराज है वह सोम नामक दिक्पाल मार्ग में चलते हुए लोमिल ब्राह्मण ऋषि की रक्षा करें, इस प्रकार की प्रार्थना करता है, प्रार्थना करक वह जो पूर्व दिशा में कंद, मूल, त्वचा, पत्र, पुष्प, बीज, हरित घास है उनको ग्रहण करने की आज्ञा लेता है, आज्ञा लेकर वह पूर्व दिशा के तृणादि पदार्थ अपनी बांस की कांबड़ में भरता है । भरकर दाभ कुश, पत्रामोड़ समिधा रूप काष्ठ ग्रहण करके जहां उसकी झोंपड़ी थी वहां आता है आकर बांस की कांबड़ यथास्थान रख देता है, फिर बेदिका बनाता है वेदी बना कर उसको गोबर आदि से लीपता है और संमार्जन करता है । फिर यह जल छिड़कता है जिस छिड़क कर हाथ में कुशा और कलश लेकर जहां गंगा महानदी थी, वहां आया । आकर उसगे गंगा नदी में स्नान के लिए प्रवेश किया । (स्नान के समय वह) जल-क्रीड़ा करता है, जलाभिषेक करता है, आचमन करता है फिर परम शुचि-भूत अर्थात् पवित्र हो कर देवों और पितरों के निमित्त तर्पण आदि करता है, हाथ में कलश और दूब रखता हुआ गंगा नदी से बाहर आया । बाहर आकर वह अपनी झोंपड़ी के पास पहुंचा । वहां पहुंच कर उसने दर्भ कुशा व बालु से वेदिका का निर्माण किया । सरक लिया, अरणि ली, सरक और अरणि का मंथन किया । मंथन करके उसमें से आग उत्पन्न करता है, फिर अग्नि को जलाता है जला कर, उसमें समिधा रूप काष्ठादि का प्रक्षेप किया, अग्नि के देदीप्यमान होने पर अग्नि की दक्षिण दिशा की ओर सात वस्तुएं स्थापित कर दीं । ये सात वस्तुयें इस प्रकार हैं—

१. सक्थ, २. बल्कल, ३. स्थान, ४. शैत्या-भाण्ड, ५. कमंडलु, ६. दण्ड-दारु, ७. और स्वयं इन सातों वस्तुओं को स्थापित कर उसने मधु-घृत और चावलों से हवन किया। चरु से बलि प्रदान की। बलि से वैश्वानर की पूजा की और फिर अतिथि-पूजा करता है उसके बाद वह स्वयं भोजन करता है।

टीका—प्रस्तुत प्रकरण में सोमिल ब्रह्मर्षि द्वारा तापसों के उपकरणों सहित पूर्वं दिशा के स्वामी सोमदेव की पूजा का वर्णन विधि-सहित किया गया है। साथ में अतिथि-पूजा एवं वैश्वानर देव को बलि देने का कथन है।

प्रस्तुत सूत्र में सोमिल के पारणे का बिस्तार से वर्णन है। वृत्तिकार ने निम्नलिखित शब्दों के अर्थ इस प्रकार किये हैं—

उडए त्ति—उटजः—तापसाश्चमगृहं—अर्थात् तापसों के रहने की कुटिया।

किट्ठिसंकाइयं त्ति—वंशमय तापस-भाजन विशेष तत्तश्च तस्य संकायिकं—“भारोद्वहन-यन्त्रम् किट्ठिसंकायिकम्”—अर्थात् बांस की लकड़ी से बने एक भाजन-विशेष (बंहगी) को किट्ठिण और शेष भाण्डोपकरण को “संकाइ” कहते हैं।

पस्थाणे पत्थियं त्ति—प्रस्थाने परलोक साधन-मार्गे प्रस्थितं प्रवृत्तं फलाद्याहरणार्थं गमने वा प्रवृत्तम्—परलोक-साधना के मार्ग पर चलते हुए अथवा फलादि लाने के लिये गमन करते हुए।

दर्भ और कुशा में अन्तर इतना ही है कि दर्भ समूल होती है और कुशा मूल-रहित होती है।

वेदि बड्ढेइ बड्ढित्ता —वेदिका देवाचन-स्थानम् वर्धनी बहुकारिका तां प्रयुक्ते इति वर्धयति प्रमार्जयति इत्यर्थः—पूजा के स्थान को झाड़ू से स्वच्छ किया।

चरुं साहेइ—बलि वइस्स देवं करोति त्ति—चरुः भाजन-विशेष, तत्र पच्यमानं द्रव्यमपि चरेत्तत् चरुबलिमित्यर्थः साधयति, बलि वइस्सदेवं त्ति—बलिना वैश्वानरं पूजयति, इत्यर्थः चरु एक भाजन का नाम है, उसमें जो पकाया जाए उसे भी चरु ही कहते हैं, अर्थात् चरु बलि का दूसरा नाम है, वह उसको तैयार करता है फिर पकाकर वैश्वानर की पूजा करता है।

देव-पिठ-कयकज्जेत्ति—देवानां पितॄणां कयकज्जं—कृतकार्यं—जलाञ्जलि-दानेन—अर्थात् देव और पितरों के निमित्त अंजलि से जल-दान किया।

स्थान—शब्द से ज्योति-स्थान व पात्र-स्थान जानना चाहिये।

उबलेवणं—से गोबर का लेप और “जायते” से जलद्वारा कूड़ा-करकट को दूर करना जानना चाहिये।

चोषले—शब्द से अशुचि द्रव्य दूर करना है ।

अतिथि-पूजा से आगन्तुओं का आदर सत्कार है ।

पत्तामोडं—अर्थात् तरुशाखा मोडित पत्राणि । शब्द से वनस्पति अथवा वृक्ष की शाखा के पत्तों का तोड़ना जानना चाहिये ।

सक्य—यह संन्यासियों का एक विशेष उपकरण जानना चाहिये ।

शय्या-भाण्ड—शब्द से शय्या उपकरण जानने चाहिये ।

उत्थानिका—अब सूत्रकार द्वितीय षष्ठक्षपण के विषय में कहते हैं—

मूल—तए णं से सोमिले महाणरिसी दोच्चंसि छट्ठखमणपारण-
गंसि तं चेव सव्वं भाणियव्व, जाव आहारं आहारेइ, नवरं इमं नाणत्तं—
दाहिणाए दिसाए जमे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सोमिलं
माहणरिसिं जाणि य तत्थ कंदाणि य जाव अणुजाणउ त्ति कट्ठु दाहिणं
विसिं पसरइ । एवं पच्चत्थिमे वरुणे महाराया जाव पच्चत्थिमं विसिं
पसरइ । उत्तरेणं वेसमणे महाराया जाव उत्तरं विसिं पसरइ । पुव्व-
विसागमेणं चत्तारि बिदिसाओ भाणियव्वाओ जाव आहारं आहारेइ ॥१०

छाया—ततः खलु स सोमिलो ब्राह्मणश्चिद्वितीये षष्ठक्षपणपारणके तदेव सर्वं भणितव्यं
यावद् आहारमाहारयति । नवरभिदं नानात्वम्—दक्षिणस्यां दिशि यमो महाराजः प्रस्थाने प्रस्थित-
मभिरक्षतु सोमिलं ब्रह्मर्षि, ये च तत्र कन्दाश्च यावद् अनुजानातु, इति कृत्वा दक्षिणां दिशं प्रसरति ।
एवं पश्चिमे खलु वरुणो महाराजो यावत् पश्चिमां दिशं प्रसरति । उत्तरे खलु वैश्रमणो महाराजो यावद्
उत्तरां दिशं प्रसरति । पूर्वदिग्गमेन चतस्रो विदिशो भणियव्या यावद् आहारमाहारयति ॥१०॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, सोमिले माहण रिसी—सोमिल नामक ब्रह्मर्षि, दोच्चंसि
छट्ठखमण पारणंसि—दूसरे षष्ठ क्षपण के पारणे में, तं चेव सव्वं भाणियव्वं—पहले के समान सब
कहना चाहिये, जाव०—यावत्, आहारं आहारेइ—आहार ग्रहण किया, नवरं इमं नाणत्तं—
इतना विशेष है, दाहिणाए दिसाए—दक्षिण दिशा के, जमे महाराया—महाराज यम से,
पत्थाणे पत्थियं—प्रस्थान मार्ग में चलते हुए (प्रार्थना करता है कि वे), अभिरक्खउ—रक्षा करें,
सोमिलं माहणरिसिं—सोमिल ब्रह्मर्षि की, जाणि य तत्थ कंदाणि—जो वहाँ कन्द आदि हैं,

जाव०—यावत्, अणुजाणउ—उनको ग्रहण करने की आज्ञा प्रदान करें; ति कट्टु—ऐसी प्रार्थना करके, बाहिणं दिसी पसरइ—वह दक्षिण दिशा की ओर चला गया ।

एवं पच्चत्थिमे ण—इस प्रकार पश्चिम दिशा में, वरुणे महाराया—महाराज वरुण की आज्ञा आदि लेकर, जाव०—यावत्, पच्चत्थिमं दिसि पसरइ—पश्चिम दिशा में चला गया ।

उत्तरेण—उत्तर दिशा में, वेसमणे महाराया—महाराज वैश्रमण की आज्ञा आदि ग्रहण कर, जाव०—यावत्, उत्तरं दिसि पसरइ—उत्तर दिशा की ओर चल पड़ा ।

पुव्वदिसा गमेण—पूर्व दिशा में गमन की तरह, चत्तारि विदिसाओ—चारों विदिशाओं के सम्बन्ध में भी, भाणियच्चाओ—कहना चाहिये, जाव०—यावत्, आहारं आहारेइ—जब तक कि आहार ग्रहण करता है ॥१०॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस सोमिल ब्राह्मण ने दूसरे षष्ठ्यमण व्रत के पारणे के लिये जो कुछ किया वह पहले किए हुए वर्णन जैसा जानना चाहिये । यहां इतना ही विशेष ज्ञातव्य है कि इस बार सोमिल ब्राह्मण दक्षिण दिशा की ओर मुख करके महाराज यम से प्रार्थना करता है कि मार्ग में चलते हुए सोमिल ब्राह्मण की रक्षा करें । ऐसी प्रार्थना करके वह दक्षिण दिशा की ओर चल देता है ।

इसी प्रकार वह पश्चिम दिशा में महाराज वरुण की प्रार्थना करके चला गया ।

उत्तर दिशा में वह महाराज वैश्रमण की प्रार्थना करके चला गया ।

पूर्व दिशा की भांति चारों दिशाओं के स्वामियों की आज्ञा लेकर उसने स्वयं भोजन किया ॥१०॥

टोका—प्रस्तुत सूत्र में सोमिल नामक ब्राह्मण द्वारा विभिन्न दिशाओं के लोकपालों से ग्रहण की गई प्रार्थना एवं आज्ञा का वर्णन है । वह दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में जाकर अपनी तपस्या को पूर्ण कर पारणा करता है ।

दक्षिण दिशा के दिग्पाल यम, पश्चिम दिशा के वरुण और उत्तर दिशा के दिग्पाल वैश्रमण माने गए हैं । वह उन दिशाओं के दिग्पालों से कन्द-मूल आदि ग्रहण करने की आज्ञा लेता है । सभी कृत्य वह प्रत्येक दिशा में एक समान करता है, अन्तर दिशाओं और लोकपालों का है, उसके धर्मकृत्यों में कोई अन्तर नहीं पड़ा ॥१०॥

उत्थानिका—सूत्रकार अब सोमिल बाह्यण के अन्य कृत्यों का वर्णन करते हैं—

मूल—तए णं तस्स सोमिलमाहणरिसिस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्ता-
वरत्ताकालसमयंसि अपिच्चजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवं अज्झ-
त्थिए जाव समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं वाणारसीए नयरीए सोमिले
नामं माहणरिसी अच्चंतमाहणकुलप्पसूए, तएणं मए वयाइं चिण्णाइं
जाव जूवा निक्खित्ता । तएणं मए वाणारसीए जाव पुप्फारामा य जाव
रोविआ । तएणं मए सुबहु लोहं जाव घडावित्ता जाव जेट्ठपुत्तं कुट्टुंवे
ठावित्ता जाव जेट्ठपुत्तं आपुच्छित्ता सुबहु लोहं जाव गहाय मुंडे जाव
पव्वइए वि य णं समाणे छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरामि, तं सेयं खलु मम
इयाणि कल्लं पाउ जाव जलंते बह्वे तावसे दिट्ठा-भट्ठे य पुव्वसंगइए
य परियाय - संगइए य आपुच्छित्ता आसमसंसियाणि य बहूइं सत्तसयाइं
अणुमाणइत्ता वागलवत्थनियत्थस्स किट्ठिणसंकाइयगहियसभंडोवगरणस्स
कट्ठमुद्दाए मुहं बंधिता उत्तरदिसाए उत्तराभिमुहस्स महपत्थाणं पत्था-
वेत्ताए । एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जाव जलंते बह्वे तावसे य
दिट्ठा-भट्ठे य पुव्वसंगइए य तं चैव जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ,
बंधित्ता अयमेयारूवं अभिगहं अभिगिण्हइ, जत्थेव णं अहं जलंसि वा
एवं थलंसि वा दुग्गंसि वा निन्नंसि वा पव्वयंसि वा विसमंसि वा गड्डाए
वा दरीए वा पक्खलिज्ज वा पवडिज्ज वा, नो ललु मे कप्पइ पच्चु-
ट्ठित्तए त्ति कट्ठु अयमेयारूवं अभिगहं अभिगिण्हइ, अभिगिण्हित्ता
उत्तराए दिसाए उत्तराभिमुहमहपत्थाणं पत्थिए से सोमिले माहणरिसी
पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागए असो-
गवरपायवस्स अहे किट्ठिणसंकाइयं ठवेइ, ठवित्ता वेदि वड्ढइ, वड्ढित्ता
उवलेवणसंमज्जणं करेइ, करित्ता दब्भकलसहत्थगए जेणेव गंगा महानई
जहा सिवो जाव गंगाओ महानईओ पच्चुत्तरइ पच्चुत्तरित्ता जेणेव

असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता दभ्मेहिं य कुसेहिं य
 वालुयाए य वेदिं रएइ, रइत्ता सरगं करेइ, करित्ता जाव बलिवइस्सदेवं
 करेइ, करित्ता कट्ठमुद्दाए मुहं बंधेइ, तुसिणीए संचिट्ठइ ॥११॥

छाया—ततः खलु तस्य सोमिलब्रह्मर्षेरन्यदा कदाचित् पूर्वरात्रापररात्रकालसमये अनिय-
 जागरिकां जाग्रतोऽयमेतद्रूप आध्यात्मिको यावत् समुदपद्यत, एवं खलु अहं वाराणस्यां नगर्यां सोमिलो
 नाम ब्राह्मणऋषिरत्यन्तब्राह्मणकूलप्रसूतः, ततः खलु मया व्रतानि चीर्णानि यावत् यथाः निश्चिन्ताः,
 ततः खलु मया वाराणस्यां यावत् पुष्पारामाश्रमं यावद् रोपिताः, ततः खलु मया मुबहूलोहं यावद्
 षड्यित्वा यावत् ज्येष्ठपुत्रं कुटुम्बे स्थापयित्वा यावद् ज्येष्ठपुत्रमापृच्छय सबहूलोहं यावद्
 गृहीत्वा मुण्डो यावत् प्रव्रजितोऽपि च खलु सन् षष्ठषष्ठेन यावत् विहरामि, तच्छ्रेयः खलु ममेदानीं
 कल्पे प्रादुर्यावज्ज्वलति बहून् तापसान् दृष्ट-भ्रष्टांश्च पूर्वसङ्गतिकांश्च पर्यायसंगतिकांश्च आपृच्छय
 आश्रमसञ्चितानि च बहूनि सत्त्वशतानि अनुमान्य वत्कलवस्त्रनिवासितस्य किटिणसंकाधिकगृहीत-
 सभाण्डोपकरणस्य काष्ठमुद्राया मुखं बध्वा उत्तरदिशि उत्तराभिमुखस्य महाप्रस्थानं प्रस्थापयितुम्,
 एवं संप्रेक्ष्य कल्पे यावत् ज्वलति बहून् तापसांश्च दृष्ट-भ्रष्टांश्च पूर्वसङ्गतिकांश्च तदेव यावत्
 काष्ठमुद्रया मुखं बध्नाति, बध्वा इममेतद्रूपमभिग्रहमभिगृह्णाति—यत्रैव खलु अहं जले वा, एवं स्थले
 वा दुर्गे वा निम्ने वा पर्वते वा विषमे वा गर्ते वा दर्या वा प्रखलेयं वा प्रपतेयं वा नो खलु मे कल्पते
 प्रत्युत्थानं, इति कृत्वा इममेतद्रूपमभिग्रहमभिगृह्णाति, उत्तरस्यां दिशि उत्तराभिमुखमहाप्रस्थानं
 प्रस्थितः । स सोमिलो ब्रह्मर्षिः पूर्वापराल्लकालसमये यत्रैव प्रशोकवरपादपस्तत्रैवोपागतः । अशोकवर-
 पादपस्याधः किटिणसंकाधिकं स्थापयति, स्थापयित्वा वेदिं वर्धयति, वर्धयित्वा उपलेपनसम्माजंनं,
 करोति, कृत्वा दर्भकलशहस्तगतो यत्रैव गङ्गा महानदी यथा शिषो यावद् गङ्गातो महानदीतः
 प्रत्युत्तरति, प्रत्युत्तोर्ये यत्रैव अशोकवरपादपस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य दभंश्च कुशंश्च बालुकया
 च वेदिं रचयति रचयित्वा शरकं करोति, कृत्वा यावद् बलिवैश्वदेवं करोति, कृत्वा काष्ठमुद्रया मुखं
 बध्नाति तूष्णीकः संतिष्ठते ॥११॥

पदार्थान्वयः—तएण—तत्पश्चात्, तस्स सोमिल माहणरिसिस्स—उस सोमिल ब्रह्मर्षि के मनमें,
 अणया कयाइ—एक बार, पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयसि—पूर्व रात्रि और अपर रात्रि के बीच के
 समय में अर्थात् अर्ध रात्रि में, अणिच्चजागरियं जागरमाणस्स—अनित्य भावना में लीन होकर
 जागते हुए, अयमेयारूवे—इस प्रकार का, अज्झत्थिए—आध्यात्मिक संकल्प, जाव—यावत्,
 समुज्जित्या—उत्पन्न हुआ, एवं खलु—इस प्रकार निश्चय ही, अहं—मैं, चाणारसीए नयरोए—
 वाराणसी नगरी में; सोमिलनामं माहणरिसी—सोमिल नामक ब्राह्मण ऋषि, अच्चन्त-
 माहणकुसव्वसूए—अत्यन्त उत्तम ब्राह्मण-कुल में पैदा हुआ हूँ, तएवं मए—तत्पश्चात् मैंने,

वयाहं चिण्णाई—व्रतों का आचरण किया, जाव०—यावत्, जूवा निबिखता—यज्ञ-स्तम्भ स्थापित किये, तएणं मए—तत्पश्चात्, वाणारसीए—वाराणसी नगर के बाहर, जाव०—यावत्, पुष्फारामा य जाव रोविया—पुष्पों फलों के बाग आदि लगवाए, तएणं—तत्पश्चात्, मए—मैंने, सुबहु० लोह घड़ावित्ता—बहुत से लोहे के कड़ाहे कड़लियाँ आदि बनवा कर, जाव०—यावत्, जेटुपुत्तं—अपने बड़े पुत्र को, कुटुम्बे ठावित्ता—कुटुम्ब का भार सौंप कर, जाव०—यावत्, जेट-पुत्तं आपुच्छित्ता—बड़े पुत्र से पूछ कर, सुबहु लोह० जाव० गहाय—बहुत से लोहे के भाण्डोपकरण ग्रहण कर, मुण्डे जाव पव्वइए—मुण्डित होकर प्रव्रजित हो गया, चि य णं समणे—और प्रव्रजित हो जाने पर, छट्टं—छट्टेणं—षष्ठ भक्त उपवास तप करता हुआ, जाव विहरामि—विचरण करता हूँ। तं सेयं खलु—अतः मेरे लिये यही श्रेयस्कर है, मम इयाणि—कि मुझे अब, कल्लं पाउ—कल प्रातःकाल ही, जाव जलन्ते—सूर्य के निकलने पर, बहवे तावसे—बहुत से तापसों को दिट्ठा भट्टे—जिन्हें मैंने आंखों से दूर होते देखा है, य पव्वसंगइए—जो दीक्षा से पूर्व के मेरे मित्र हैं, य परिणाय संगइए—एवं दीक्षा—काल से बाद भी मेरे मित्र रह चुके हैं, आपुच्छित्ता—उन सबसे पूछ कर, आसम संसियाणि—और आश्रम में ठहरे हुए, य बहूहि—जो बहुत से, सत्त-सयाई—सैकड़ों की तादाद में हैं, अणुमाणइत्ता—उन सबका आदर-सम्मान करके, वागलवत्थ नियत्थस्स—बल्कल वस्त्र धारण करके, किट्ठिणसंकाइय गहिय-सभंडोवगरणस्स—अपनी वंहगी में रखे हुए अनेकविध भण्डोपकरण लेकर, कट्ठमुद्दाए—काष्ठ की मुद्रा से, मुहं बंधित्ता—मुख को बांध कर, उत्तर विसाए—उत्तर दिशा में, उत्तराभिमहस्स—उत्तर दिशा की ओर मुख करके, महापत्थाणं पत्थवेत्तए—महापथ अर्थात् मृत्यु मार्ग पर चलता रहूँ। एवं संपेहेइ—इस प्रकार विचार करता है (और), संपेहित्ता—विचार करके कल्लं जाव जलन्ते—प्रातःकाल सूर्योदय होते ही, बहवे तावसे य—बहुत से तापसों को जिन्हें पहले दिट्ठा-भट्टे य—जो आंखों से दूर हो चुके थे, पव्वसंगइए—जो पहले साथ-साथ रह चुके थे, तं जेव—उन सबको, जाव०—जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, कट्ठ मुद्दाए मुहं बंधाई—काष्ठ की मुद्रा से अपना मुंह बांध लेता है, बंधित्ता—और मुख को बांध कर, अयमेयारुब्बं—इस प्रकार का, अभिगहं अभिगिण्हइ—अभिग्रह धारण करता है, जत्थेव णं—जहां कहीं भी, अहं—मैं, जलंसि—जल में, वा एवं यलंसि—अथवा शुष्क भूमि पर, वा दुम्मंसि—अथवा किसी भी दुर्गम प्रदेश में, वा निअंसि—किसी निम्न स्थान पर, पठवयंसि वा—किसी पर्वत पर, विममंसि वा—विषम मार्ग पर, गड्डाए वा—किसी गड्ढे में, दरीए वा—किसी पर्वत की दरार में, पव्वखलिज्ज वा पडविज्ज वा—फिमल कर गिर जाऊं तो, नो खल मे कप्पइ पक्कट्ठित्ताए—मेरे लिये वहां से उठना उचित न होगा त्ति कट्ठ—ऐसा निश्चय करके अयमेयारुब्बं—इस प्रकार का, अभिगहं अभिगिण्हइ—अभिग्रह धारण कर लेता है, अभिगिण्हित्ता—ऐसा अभिग्रह धारण करके, उत्तराए विसाए—उत्तर दिशा में, उत्तराभिमुहमहपत्थाणं पत्थिए—उत्तराभिमुख होकर महापथ (मृत्यु-मार्ग) पर चल पड़ा, से सोमिले माहण रिसी—वह सोमिल नामक ब्राह्मण-ऋषि, पुव्वावरण्हकाल समयंसि—

दिन के तीसरे प्रहर में, यत्रैव असोगवरपायवे—जहां पर अशोक नामक श्रेष्ठ वृक्ष था, तेणेव उवागए—वहीं पर आ गया, असोगवरपायवस्स अहे—उस सुन्दर अशोक वृक्ष के नीचे, किट्ठिण-संकाइयं—अपनी बंहगी को, ठवेइ—रख देता है, ठवित्ता वेदि वड्ढइ—वेदिका बनवाता है, वड्ढित्ता उवलेवण संउच्चणं करेइ—उपलेखन एवं संमार्जन करता है, करित्ता—और करके, दग्ग-कलस-हत्थ गए—दूब और कलश आदि हाथ में लेकर, जेणेव गंगा महानई—जहां गंगा महानदी थी, जहा सिबो—और शिवराज ऋषि के समान, जाव०—यावत्, गंगाओ महानईओ—महानदी गंगा में, पच्चुत्तरइ—स्नानादिके लिये प्रवेश करता है, पच्चुत्तरित्ता—और प्रवेश करके, जेणेव असोगवरपायवे—जहां पर अशोक नामक वृक्ष था, तेणेव उवागच्छइ—वहीं पर आता है, उवागच्छित्ता—और वहां आकर, दग्गेहिं य कुसेहिं य बालुयाए—दर्भ कुशा और बालुका से, वेदि रएइ—वेदिका की रचना करता है, रइत्ता सरणं करेइ—सरण और अरणि से आग्नमन्थन करता है, करित्ता जाव० बलिवइस्स देवं करेइ—और अग्नि मन्थन करके बलिवेशबदेव करता है, करित्ता कट्ठमहाए मुहं बंधेइ—और फिर काष्ठ की मुद्रा से अपना मुंह बांधता है, तुत्तिणीए सविट्ठइ—और मौन धारण करके बैठ जाता है ॥११॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस लोमिल ब्राह्मण ऋषि के हृदय में एक बार अर्धरात्रि के समय अनित्यता का विचार उत्पन्न हुआ और वह जागने लगा, जागते हुए उसके मन में इस प्रकार का आध्यात्मिक (आन्तरिक) संकल्प उत्पन्न हुआ, मैं वाराणसी नगरी में सोमिल नामक ब्राह्मण अत्यन्त महान् कुल में उत्पन्न हुआ हूं। मैंने अनेक प्रकार के व्रतों का आचरण किया है और अनेक यज्ञ-स्तम्भ स्थापित किए हैं। तत्पश्चात् वाराणसी नगरी के बाहर मैंने अनेक फूलों फलों आदि के वाग लगवाए हैं। और फिर मैंने बहुत से लोहे के कड़ाहे और कड़छियां आदि बनवाये और फिर अपने बड़े पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंप कर और उस ज्येष्ठ पुत्र से पूछ कर बहुत से लोहे आदि के भाण्डोपकरणों का निर्माण करवाया और स्वयं मुण्डित होकर प्रव्रजित हो गया। प्रव्रजित होकर षष्ठ-भक्त अर्थात् बेले-बेले तप करते हुए विचरण करने लगा। इसलिये अब मेरे लिये यही श्रेयस्कर है कि कल प्रातःकाल सूर्योदय होते ही जो बहुत से तापस अब मेरी दृष्टि से ओझल हो चुके हैं, अथवा पहले मेरे संगी-साथी रह चुके हैं उन सबसे परामर्श करके तथा अपने आश्रम में रह रहे संकड़ों प्राणियों को सन्मानित करके बलकलवस्त्र-धारी बनकर बंहगी में अनेक भाण्डोपकरणों को लेकर तथा काष्ठ-मुद्रा से अपना मुंह बांधकर उत्तराभिमुख होकर उत्तर दिशा की ओर महापथ (मृत्यु-

मार्ग में) प्रस्थान करूं। वह इस प्रकार विचार करता है और विचार करके दूसरे दिन सूर्योदय होने पर उन सब तापसों को जो उसकी नजरों से दूर हो चुके थे, जो पहले साथ-साथ रह चुके थे उनसे परामर्श करके काष्ठ मुद्रा से अपना मुंह बांधकर वह इस प्रकार का अभिग्रह धारण कर लेता है कि मैं जहां पर भी होऊंगा—जल में, थल में, किसी कठिन मार्ग में, किसी निम्न स्थान पर किसी पर्वत पर किसी विषम मार्ग में, किसी गड्ढे में, पर्वत की दरार में कहीं पर भी फिसल जाऊं अथवा गिर पड़ू तो मेरे लिये यही उचित होगा कि मैं वहां से उठूं नहीं। इस प्रकार वह ऐसा अभिग्रह धारण कर लेता है और अभिग्रह धारण करके उत्तराभिमुख होकर उत्तर दिशा में महापथ अर्थात् मृत्यु-मार्ग पर चल पड़ता है। अब वह सोमिल ब्रह्मर्षि दिन के अन्तिम प्रहर में जहां पर एक उत्तम जाति का अशोक वृक्ष था वहीं पर आ पहुंचा और उस श्रेष्ठ अशोक वृक्ष के नीचे उसने अपनी बंहगी रख दी और रख कर एक वेदिका बनाई, उस वेदिका में उपलेपण-संमार्जन किया और ऐसा करके हाथ में दूब और कलश लेकर जहां पर महानदी गंगा थी वहां शिव राज ऋषि के समान वह गंगा नदी में स्नानार्थ उतरा और उतर कर स्नानादि से निवृत्त हुआ और जहां अशोक वृक्ष था वहां पर आ गया। आकर दूब कुशा और बालुका से उसने वेदिका बनाई और बना कर सरक और अरणि से अग्नि-मन्थन किया तथा अग्नि-मन्थन करके बलिवैश्वदेव करता है, और फिर काष्ठ-मुद्रा से अपना मुंह बांध लेता है और मौन धारण करके बैठ जाता है ॥११॥

टीका—सूत्रकार के कुछ शब्द वृत्तिकार के मन में विचारणीय हैं—कट्टमुद्राए बंधिता—काष्ठमुद्रा मुंह पर मौनवृत्ति के चिन्ह के रूप में बांधी जाती थी। वृत्तिकार इस विषय में पुनः लिखते हैं—कट्टमुद्राए मुंह बंधिता—यथा काष्ठमयी पुत्तलिका न भाषते एवं सोऽपि मौनावलम्बी भविष्यति। यद्वा मुखन्धाच्छादकं काष्ठखण्डमुभयपार्श्वे छिद्रद्वय-प्रेषितं दोरकान्वितं मुखबन्धनं, काष्ठमुद्रया मुखं बध्नाति—मुख-विवर के ढकने के लिये काष्ठ-खण्ड के दोनों ओर छिद्र किए और दोनों छिद्रों में धागा डाल कर मुख पर बांधा। इसी काष्ठ-खण्ड को “काष्ठमुद्रा” कहा जाता है।

महापत्याणं पत्थावेत्ताए—यह पद मृत्यु की अपेक्षा रखकर दिया गया है। वृत्तिकार ने इस संदर्भ में कथन किया है कि महाप्रस्थानं पदं इति मरण कालः ततः प्रस्थितः।

“शिव” शब्द का भाव यह कि जैसे शिव राजर्षि ने किया था अर्थात् वह राज्य त्याग कर तापस बना था । सोमिल ने भी वंसा ही किया । राजा शिव भगवान् महावीर का उपदेश सुनकर श्रमण बन गया था । इसका वर्णन भगवती सूत्र के ग्यारहवें शतक में प्राप्त होता है ।

मूल—तएणं तस्स सोमिलमाहणरिसिस्स पुव्वरत्तावरत्ता - काल समयंसि एगे देवे अंतियं पाउब्भूए । तएण से देवे सोमिलं माहणं एवं वयासी—हं भो सोमिलमाहणा ! पव्वइया ! दुप्पव्वइयंते । तएणं से सोमिले तस्स देवस्स दोच्चंपि तच्चंपि एयमट्ठं नो आढाइ नो परिजाणइ जाव तुसिणीए संचिट्ठइ । तएणं से देवे सोमिलेणं माहणरिसिणा अणाढाइ-उज्जमाणे जामेव दिंसि पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए । तएणं से सोमिले कल्लं जाव जलंते वागलवत्थनियत्थे किट्ठिणसंकाइयं गहाय गहियभंडो-वगरणे कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, बंधित्ता उत्तराभिम्हे संपत्थिए । तएणं से सोमिले विइयदिसम्मि पच्छावरण्हकालसमयंसि जेणेव सत्तावन्ने तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सत्तावण्णस्स अहे किट्ठिण—संकाइयं ठवेइ, ठवित्ता वेइं वड्ढेइ, वड्ढित्ता जहा असोगवरपायवे जाव अरिंण हुणइ कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, तुसिणीए संचिट्ठइ ॥१२॥

छाया—ततः खलु तस्य सोमिलस्य ब्राह्मणश्रुतेः पूर्वरात्रापररात्रकालसमये एको देवोऽन्तिकं प्रादुर्भूतः । ततः खलु स देवः सोमिलं ब्राह्मणमेवमवादीत्—हे भो सोमिलब्राह्मण ! प्रव्रजित ! बुधप्रव्रजितं ते । ततः खलु सः सोमिलस्तस्य देवस्य द्वितीयमपि तृतीयमपि एतमर्थं नो आद्रियते नो परिजानाति यावत् तूष्णीकः संतिष्ठते । ततः खलु स देवः सोमिलेन ब्राह्मणविणा अनाद्रियमाण यस्या दिशः प्रादुर्भूतस्तामेव दिशं प्रतिगतः । संसः खलु स सोमिलः कल्पे यावत् ज्वलति वल्कलवस्त्रेनिवसितः किट्ठिणसंकायिकं गृहीत्वा गृहीतभाण्डोपकरणः काष्ठमुद्रया मुखं बध्नाति, बद्ध्वा उत्तराभिमुखः संप्रस्थितः ।

ततः खलु स सोमिलो द्वितीयदिवसे पश्चादपररात्रकालसमये यत्रैव सप्तपर्णः तत्रैवोपा-गच्छति, उपागत्य सप्तपर्णस्य अधः किट्ठिणसंकायिकं स्थापयति, स्थापयित्वा वेदिं बध्नीयति, बध्नीयित्वा यथा अशोकशरपादये यावत् अग्निं जुहोति, काष्ठमुद्रया मुखं बध्नाति, तूष्णीकः संतिष्ठते ॥१२॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, तस्स सोमिलमाहणरिसिस्स—उस सोमिल नामक ब्राह्मण ऋषि के, पुव्वरत्तावरत्तकाल समयंसि—पूर्व और अपर रात्रि के मध्य भाग में—अर्थात् मध्य

रात्रि के समय, एगे देवे—एक देवता, अन्तियं—उसके समक्ष, पाउम्भूए—प्रकट हुआ । तएण से देवे—तब उस देवता ने, सोमिल माहणं—सोमिल नामक ब्राह्मण से, एवं अयासी—इस प्रकार कहा, हं भो सोमिल माहणा ! पव्वइया—हे प्रव्रजित सोमिल ब्राह्मण, दुष्पव्वइयं ते—तेरी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है । तएण से सोमिले—तब वह सोमिल ब्राह्मण, तस्स देवस्स—उस देवता के द्वारा, दोच्चं पि तच्चं पि—दो तीन बार कहे जाने पर भी, एयमट्ठं—उसकी बात का, नो आढाइ नो परिजाणइ—न तो उसकी बात का आदर करता है और न ही उसकी बात पर कोई ध्यान देता है, जाव०—यावत्, तुत्तिणीए संचिट्ठइ—अपितु मोन धारण करके अपने स्थान पर ही बैठा रहता है । तएण से देवे—तब वह देवता, माहणरिसिणा—ब्राह्मण ऋषि द्वारा, अणाढाइज्जमाणे—तिरस्कृत होकर, जामेवदिंस पाउम्भूए—जिस दिशा में प्रकट हुआ था, तामेव विंस पडिगए—उसी दिशा में लौट गया ।

तएण से सोमिले—तदनन्तर वह सोमिल, कस्सं जाव जसंते—दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय होते ही, बागलवत्थ-नियन्थे—बल्कलवस्त्र धारण किए हुए, किट्ठिणसंकाइयं गहाय—अपनी बंहगी को उठा कर, गहियभंडोवगरणे—और अपने भाण्डोपकरण लेकर, कट्ठमुद्दाए मुहं बंधई—काष्ठ मुद्रा से अपना मुख बांध लेता है, (और) बांध कर, उत्तराभिमुहे संपत्थिए—उत्तर की तरफ मुंह करके चल देता है, तएण से सोमिले—तत्पश्चात् वह सोमिल, बिइयविसम्मि—दूसरे दिन, पच्छावरल्लुकाल समयंसि—अपराह्णकाल के अन्तिम प्रहर में, जेणेषं सत्तवन्ने—जहां सप्तपर्ण नामक वृक्ष था, तेणेव उवागच्छइ—वहां पर आ जाता है, (और), उवागच्छित्ता—वहां आकर, सत्तवणस्स अहे—उस सप्त पर्ण वृक्ष के नीचे, किट्ठिणसंकाइयं ठवेइ—अपनी बंहगी को रख देता है, ठवित्ता—और रख कर, वेइं षड्ढइ—वेदी की रचना करता है, वड्डित्ता—और वेदिका की रचना करके, जहा असोगवरपायवे—जैसे पहले अशोक वृक्ष के नीचे, जाव—यावत् अर्थात् पूर्ववत् स्नानादि करके, अग्नि हुणइ—अग्नि में हवन करता है, कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ—काष्ठ मुद्रा से अपना मुंह बांध लेता है, तुत्तिणीए संचिट्ठइ—और मोन होकर वहीं बैठ जाता है ॥१२॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस सोमिल नामक ब्राह्मण ऋषि के सामने अर्धरात्रि एक देव प्रकट हुआ और उस देवता ने उस सोमिल नामक ब्राह्मण से इस प्रकार कहा—हे प्रव्रजित सोमिल ब्राह्मण ! तेरे द्वारा धारण की गई प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है । किन्तु सोमिल ब्राह्मण ने उस देवता के द्वारा दो-तीन बार कहने पर भी उसकी बात का कोई सम्मान नहीं किया और न ही उसकी ओर कोई ध्यान दिया, अपितु चुपचाप अपने ही स्थान पर बैठा रहा । तत्पश्चात् वह देवता सोमिल ब्राह्मण ऋषि द्वारा तिरस्कृत होकर जिस दिशा में प्रकट हुआ था उसी दिशा में लौट गया ।

तत्पश्चात् वह सोमिल दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय होते ही बल्कल वस्त्र धारण करके आनी बह्नी (काँवड़) एवं अपने भाण्डोपकरण आदि लेकर काष्ठमुद्रा से अपना मुँह बांध लेता है और मुख को बांध कर उत्तर की ओर मुख करके वहाँ से चल देता है । तब वह सोमिल दूसरे दिन सूर्यास्त से कुछ पूर्व ही वहाँ पर सप्तपर्ण नामक एक वृक्ष या वहीँ पर पहुँच जाता है और पहुँच कर सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे अपनी बह्नी रख देता है और रखकर वेदिका का निर्याण करता है और निर्माण करके जैसे पहले दिन अशोक वृक्ष के नीचे पूर्ववत् स्नानादि करके अग्नि में हवन करता है और पुनः अपने मुख पर काष्ठ-मुद्रा बांधकर मौन धारण करके बैठ जाता है ॥१२॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में सभी व्याख्येय प्रकरण अत्यन्त सरल हैं ।

उत्तर दिशा में सोमिल सप्तपर्ण वृक्ष के सीचे विश्राम एवं अपने हवन कृत्य करता है यही विशेष है ॥१२॥

मूल—तए णं तस्स सोमिलस्स पुव्वरत्तावरत्ताकालसमयंसि एगे देवे अंतियं पाउम्भूए । तएणं से देवे अंतलिक्खपडिवन्ने जहा असोगवरपायवे जाव पडिगए । तएणं से सोमिले कल्लं जाव जलंते वागलवत्थनियत्थे किठिणसंकाइयं गिण्हइ, गिण्हइत्ता वट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, उत्तरदिशाए उत्तराभिमुहे संपत्थिए ॥१३॥

छाया—ततः खलु तस्य सोमिलस्य पूर्वरात्रापररात्रकालसमये एको देवोऽन्तिकं प्रादुर्भूतः । ततः खलु स देवोऽन्तरिक्षप्रतिपन्नः यथा अशोकवरपादये यावत् प्रतिगतः । तत खलु स सोमिलः कल्पे यावत् ज्वलति बल्कलवस्त्रनिवासितः किठिणसाङ्गयिकं गृह्णाति, गृहीत्वा काष्ठमुद्रया मुखं बध्नाति, बद्ध्वा उत्तराभिमुखः संप्रस्थितः ॥१३॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, तस्स सोमिलस्स—उस सोमिल ब्राह्मण के, पुव्वरत्ता-वरत्ता कालसमयंसि—अपराह्णकाल अर्थात् दिन के अन्तिम प्रहर में, एगे देवे—एक देवता, अंतियं पाउम्भूए—सामने प्रकट हुआ, तएणं से देवे—तब वह देवता, अंतलिक्ख-पडिवन्ने—आकाश में लड़े लड़े ही, जहा असोगवरपायवे—और जैसे अशोक वृक्ष के नीचे उसने पहले कहा था वैसे ही कह कर, जाव पडिगए—(सोमिल द्वारा उपेक्षा करने पर वह) लौट गया था, वैसे ही लौट गया ।

तएण से सोमिले—तत्पश्चात् वह सोमिल, कल्ल जाव जलंते—दूसरे दिन सूर्योदय होने पर, बागलवत्थ नियत्थे—वल्कल वस्त्र धारण करके, किट्ठिसंकाइयं गल्लइ—अपनी बंहगी उठा लेता है (और, गणिहत्ता—उठाकर, कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ—काष्ठ-मुद्रा से अपना मुह बांधकर, उत्तरदिसाए उत्तराभि मुहे संपत्थिए—उत्तर दिशा की ओर मुख करके उत्तर दिशा में चल दिया ॥१३॥

मूलार्थ—तदनन्तर उस सोमिल के सामने सूर्यास्त से कुछ ही पूर्व एक देवता प्रकट हुआ। तब वह देवता अन्तरिक्ष में ही खड़े-खड़े जैसे अशोकवृक्ष के नीचे बोला था (वैसे ही बोला और) तिरस्कृत होकर जिधर से आया था उधर ही लौट गया। तत्पश्चात् वह सोमिल दूसरे दिन प्रातःकाल के समय सूर्योदय होते ही वल्कल वस्त्र धारण कर अपनी बंहगी उठाता है और उठा कर काष्ठमुद्रा से अपना मुख बांध लेता है और उत्तराभि मुख होकर उत्तर दिशा में ही चल देता है ॥१३॥

टीका—सम्पूर्ण वर्णन अत्यन्त सरल है ॥१३॥

मूल—तएणं से सोमिले तइयदिवसम्मि पच्छावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता असोगवरपाय-वस्स अहे किट्ठिसंकाइयं ठवेइ, वेइं वड्ढेइ जाव गंगं महानइं पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरिता जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता वेइं रएइ जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, बंधिता तुसिणीए संचिट्ठइ। तएणं तस्स सोमिलस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एगे देवे अंतियं पाउण्णू तं चेव भणइ जाव पडिगए। तएणं से सोमिले जाव जलंते वागलवत्थनियत्थे किट्ठिसंकाइयं जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधिता उत्तराए दिसाए उत्तराभि-मुहे संपत्थिए ॥१४॥

छाया—ततः खलु स सोमिलस्तृतीयदिवसे पश्चादपराल्पकालसमये यत्रैवाशोकवरपादपस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य अशोकवरपादस्पाधः किट्ठिसाङ्कायिकं स्थापयति, वेदिं बध्नेयति, यावद् गङ्गां महानदीं प्रत्युत्तरति, प्रत्युत्तरितं यत्रैवाशोकवरपादपस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य वेदिं रचयति, यावत्

काष्ठमुद्रया मुखं बध्नाति, तूष्णीकः संतिष्ठते ततः खलु तस्य सोमिलस्य पूर्वरात्रापररात्रे काले एको देवोऽन्तिकं प्रादुर्भूतः तदेव भणति यावत् प्रतिगतः । ततः खलु स सोमिलो यावत् उदलति बल्कल-वस्त्रनिवसितः किंठिणसाङ्कायिक यावत् काष्ठमुद्रया मुखं बध्नाति बद्ध्वा उत्तरस्यां दिशि उत्तराभिमुखं सम्प्रस्थितः ॥१४॥

०दार्थावयः—तएण—तत्पश्चात्, से सोमिले—वह सोमिल, तद्वयदिवसस्मि—तीसरे दिन, पच्छावरणकाल समयसि—दिन के चौथे प्रहर में, जेणेव असोगवरपायवे—जहां पर अशोक नामक वृक्ष था, तेणेव उवागच्छइ—वहीं पर आ जाता है, उवागच्छिता—वहां आकर, असोग-वरपायवस्स अहे—उस अशोक वृक्ष के नीचे, किंठिण - संकाइयं—अपनी बहंगी को, ठवेइ—रख देता है वेइ वड्डेइ—वेदो बनाता है, जाव—पहले की तरह सभी धार्मिक अनुष्ठान करके, गंगं महानदीं पच्छुत्तरइ—गंगा महानदी में स्नान करके बाहर आता है, पच्छुत्तरिता—और बाहर आकर, जेणेव असोग वरपायवे—जहां वह अत्युत्तम अशोक नामक वृक्ष था, तेणेव उवागच्छइ—वहीं पर आ जाता है, उवागच्छिता—वहां आकर, वेइ रएइ—वेदिका का निर्माण करता है, जाव—और अग्निहोत्र आदि करके, कट्टमुद्दाए म्हुं बंधइ—काष्ठ की मुद्रा से अपना मुंह बांध लेता है, बधित्ता—और बांध कर, तुंसिणीए संचिट्ठइ—मौन धारण करके बैठ जाता है।

तएण—तत्पश्चात् तस्य सोमिलस्स—उस सोमिल नामक ब्राह्मण के, पुष्करत्तावरत्तकाले—आधी रात के समय, एगे देवे—एक देवता, अतिय पाउब्भूए—उसके समीप आकर प्रकट हुआ, तं चेव भणइ जाव०—उसने पुनः उससे पहले की तरह ही कहा, पडिगए—और पहले की तरह ही लौट गया, तएण—तत्पश्चात्, से सोमिले—वह सोमिल, जाव जलंते—प्रातःकाल सूर्योदय होने पर, वागलवत्थ-नियत्थे—बल्कल वस्त्र पहन कर, किंठिण - संकाइयं—अपनी बहंगी (कांबड़) को उठाकर, कट्ट मुद्दाए म्हुं बंधित्ता—काष्ठ की मुद्रा से मुंह को बांधकर, उत्तराए दिसाए—उत्तर दिशा में, उत्तरामि म्हे—उत्तराभिमुख होकर, संपत्थिए—उसने प्रस्थान कर दिया ॥१४॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह सोमिल नामक ब्राह्मण सायंकाल के समय जहां पर अशोक नामक वृक्ष था वहां पर पहुंच जाता है, पहुंच कर उस अशोक वृक्ष के नीचे अपनी बहंगी (कांबड़) को रख देता है और एक वेदिका का निर्माण करता है, फिर अपनी आस्था के अनुरूप धार्मिक कृत्य करके गंगा महानदी में स्नान करके बाहर आता है और आकर जहां पर अशोक वृक्ष था पुनः वहीं लौट आता है और लौट कर वेदिका का निर्माण कर अग्निहोत्रादि कर्म करता है तथा काष्ठमुद्रा से अपना मुंह बांध कर मौन धारण करके बैठ जाता है।

तत्पश्चात् उस सोमिल ब्राह्मण के समक्ष अर्ध-रात्रि में एक देव प्रकट होकर पूर्व-

वत् “तेरी यह प्रवज्या दुःप्रवज्या है” कह कर जहाँ से आया था वहीं लौट जाता है । तदनन्तर वह सोमिल प्रातःकाल सूर्योदय होने पर बल्कल वस्त्र धारण करता है अपनी काँवड़ उठाता है और काष्ठमुद्रा से अपना मुँह बाँधकर उत्तराभिमुख होकर उत्तर दिशा में ही चल देता है ॥१४॥

टोका—सोमिल उत्तर दिशा में आगे ही आगे बढ़ रहा था । दूसरे दिन उस यात्रा में वह सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे ठहरा था, तीसरे दिन के विश्राम में वह अशोक वृक्ष के नीचे ठहरा है ।

काष्ठ-मुद्रा से मुँह बाँधकर चलने की बात का स्पष्टीकरण पहले किया जा चुका है । अब पुनः वह उत्तर दिशा में ही चला । देव ने इस बार भी उसकी प्रवज्या को दुःप्रवज्या बतलाया किन्तु देव-वचनों की उपेक्षा करके वह अपने अपनाये हुए मार्ग पर ही चलता रहा ॥१४॥

मूल—तएणं से सोमिले चउत्थे दिवसे पच्छावरण्हकालसमयंसि जेणेव बडपायवे तेणेव उवागए, बडपायवस्स अहे किट्ठिसंकाइयं ठवेइ, ठवित्ता वेइ वड्ढेइ, उवलेवण संमज्जणं करेइ जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, तुसिणीए संचिट्ठइ । तइणं तस्स सोमिलस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एगे देवे अंतियं पाउब्भूए तं चेव भणइ जाव पडिगए । तएणं से सोमिले जाव जलंते वागलवत्थनियत्थे किट्ठिसंकाइयं जाव कट्ठमुद्दाए मुहं दंधइ, बंधित्ता उत्तराए दिसाए उत्तराभिमुहे संपत्थिए ॥१५॥

छाया—ततः खलु स सोमिलः चतुर्थे दिवसे पश्चादपराह्णकालसमये यत्रैव बटपादस्तत्रैवोपागतः बटपादपस्याधः किट्ठिसाङ्कायिकं स्थापयति, स्थापयित्वा वेदि वर्धयति, उपलेपनसंमार्जनं करोति, काष्ठ-मुद्रया मुखं बध्नाति तूष्णीकः संतिष्ठते । ततः खलु तस्य सोमिलस्य पूर्वरात्रापररात्रकाले एको देवोऽन्तिकं प्रादुर्भूतः । तदेव भणति यावत् प्रतिगतः । ततः खलु स सोमिलो यावज्ज्वलति बल्कलवस्त्रनिवसितः किट्ठिसाङ्कायिकं यावत् काष्ठमुद्रया मुखं बध्नाति बद्ध्वा उत्तरस्यां विशि उत्तराभिमुखः संप्रस्थितः ॥१५॥

पदार्थान्वयः—तएणं से सोमिले—तत्पश्चात् वह सोमिल, चउत्थे दिवसे—चौथे दिन, पच्छावरण्ह-काल-समयंसि—दिन के अन्तिम प्रहर में (सायं काल के समय), जेणेव बडपायवे—जहाँ पर एक बड़गद का वृक्ष था, तेणेव उवागए—वहीं पर आ पहुँचा, बडपायवस्स अहे—उस

बड़गद के पेड़ के नीचे, किदिणसंकाइयं ठवेइ—अपनी कांवड़ रख देता है, ठवित्ता—और रख कर, वेइ वड्डेइ—वेदी बनाता है, उवलेवण-संमज्जणं करेइ—गोबर आदि से लीपता है और जलादि छिड़क कर स्थान को शुद्ध करता है, जाव०—अन्य धार्मिक कृत्य करके, कट्ठमुद्दाए—काष्ठ की मूद्रा से अपना मुंह बांध कर मौन होकर बैठ जाता है, तएणं तस्स सोमिलस्स—तदनन्तर उस सोमिल के, अंतियं—समक्ष, पुव्वरत्तावरत्त काले—अर्ध रात्रि के समय, एगे देवे—एक देवता, पाउड्ढए—प्रकट हुआ, तं चेव भणइ—उसने फिर पहले की तरह ही कहा, जाव—कि तेरी यह प्रवज्या दुष्प्रवज्या है, पडिगए—और यह कह कर वह वापिस लौट गया, तएणं से सोमिले—तत्पश्चात् वह सोमिल, जाव जलंते—प्रातःकाल सूर्योदय होते ही, वागलवत्थ-नियत्थे—बल्कल वस्त्र धारण करके, किदिणसंकाइयं जाव०—कांवड़ उठा कर, कट्ठमुद्दाए मुंह बंधइ—काष्ठ की मूद्रा से मुंह बांध लेता है और बांध कर, उत्तराभिमुहे—उत्तर की ओर मुख करके, उत्तराए दिसाए—पुनः उत्तरदिशा में ही, संपत्थिए—प्रस्थान कर देता है ॥१५॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह सोमिल चौथे दिन सायंकाल के समय जहां पर एक बड़गद का वृक्ष था वहीं पर आ पहुंचा, और बड़गद वृक्ष के नीचे अपनी कांवड़ रख देता है और रखकर वेदी बनाता है, वेदी के स्थान को गोबर आदि से लीप कर सिंचित करता है और अपनी पूर्व आस्था के अनुरूप धर्म-कृत्य करता है, फिर काष्ठमूद्रा से अपना मुख बांध कर मौन धारण करके बैठ जाता है तदनन्तर उस सोमिल के समक्ष अर्धरात्रि के समय एक देवता आकर प्रकट होता है और पहले की तरह "तेरी प्रवज्या दुष्प्रवज्या है" कह कर जहां से आता है वहीं लौट जाता है। उसके बाद सोमिल प्रातःकाल सूर्योदय होते ही बल्कल वस्त्र धारण कर अपनी कांवड़ उठाता है और काष्ठमूद्रा से अपना मुंह बांधकर उत्तराभिमुख होकर उत्तर दिशा में ही पुनः प्रस्थान कर देता है ॥१५॥

टीका—सोमिल उत्तरदिशा में ही निरन्तर बढ़ रहा है। चौथे दिन वह बड़गद के वृक्ष के नीचे विश्राम करता है।

ज्ञात होता है वेदि वड्डेइ—का भाव वेदिका का स्थान निश्चित कर उसे लेपन आदि द्वारा शुद्ध बनाता है और "वेदि रएइ"—से ज्ञात होता है कि वह स्नानादि से निवृत्त होकर वेदिका को विश्राम के योग्य बना लेता है।

काष्ठमुद्दा से मुख बांधने का भाव पहले स्पष्ट किया जा चुका है ॥१५॥

मूल—तएणं से सोमिले पंचमदिवसम्मि पच्छावरण्हकालसमयंसि जेणेव उंबरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उंबरपायवस्स अहे किट्ठिसंकाइयं ठवेइ, वेइ वड्ढेइ जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ जाव तुसिणीए संचिट्ठइ ।

छाया—ततः खलु स सोमिलः पञ्चमदिवसे पश्चादपराल्पकालसमये यत्रैव उदुम्बरपादप-
स्तत्रैवपागच्छति, उदुम्बरपादस्पाधः किट्ठिसाङ्कायिकं स्थापयति, वेदिं वर्धयति यावत् काष्ठमुद्रया
मुखं बध्नाति यावत् तूष्णीकः संतिष्ठते ॥१६॥

पदार्थान्वयः—तएणं से सोमिले—तदनन्तर वह सोमिल, पंचम दिवसम्मि—यात्रा करते हुए
पांचवें दिन, पच्छावरण्ह कालसमयंसि—दिन के चतुर्थ प्रहर अर्थात् सायंकाल के समय, जेणेव
उंबर-पायवे—जहां पर उदुम्बर अर्थात् एक गूलर का वृक्ष था, तेणेव उवागच्छइ—वहीं पर आता है,
उंबर पायवस्स—और उस गूलर के वृक्ष के नीचे अपनी कांवड़ रख देता है और रखकर, वेदि वड्ढेइ—
वेदिका का निर्माण करता है, जाव—और पूर्ववत् स्नानादि से निवृत्त होकर, कट्ठमुद्दाए मुहं
बंधइ—काष्ठ की मुद्रा से अपना मुख बांधकर पूर्ववत् मौन धारण करके बैठ जाता है ॥१६॥

मूलार्थ—अपनी यात्रा के पांचवें दिन सायंकाल के समय सोमिल जहां पर
एक गूलर का वृक्ष था वहां पहुंच जाता है और पहुंच कर गूलर के नीचे अपनी
कांवड़ रखकर एक वेदिका का निर्माण करता है और फिर अपने समस्त धार्मिक कृत्यों
से निवृत्त होकर काष्ठ-मुद्रा से अपना मुह बांधकर मौन धारण करके बैठ जाता है ॥१६॥

टीका—इस सूत्र में संक्षेप शैली का प्रयोग करते हुए सूत्रकार ने कुछ शब्दों में ही वह सब
कुछ कह दिया है जो वे कहना चाहते हैं ।

पांचवें दिन उसका विश्राम-स्थल गूलर का वृक्ष रहा, यही विशेष है ॥१६॥

मूल—तएणं तस्स सोमिलमाहुणस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एगे देवे
जाव एवं वयासी—हं भो सोमिल ! पव्वइया । दुप्पव्वइयं ते पढमं भणइ
तहेव तुसिणीए संचिट्ठइ । देवो दोच्चंपि तच्चंपि वदइ सोमिला ! पव्व-
इया दुप्पव्वइयं ते । तएणं से सोमिले तएणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं

वृत्ते समाने तं देवं एवं वयासी—कहणं देवानुप्पिया ! मम दुप्पव्वइयं ? ।

॥१७॥

छाया—ततः खलु तस्य सोमिलब्राह्मणस्य पूर्वरात्रापररात्रकाले एको देवः यावत् एवम-
वादीत्—हं भो सोमिल ! प्रव्रजित ! दुष्प्रव्रजितं ते, प्रथमं भणति तथैव तूष्णीकः संतिष्ठते ! देवो द्वितीय-
मपि तृतीयमपि वदति सोमिल ! प्रव्रजित ! दुष्प्रव्रजितं ते ततः खलु स सोमिलस्तेन देवेन द्वितीयमपि
तृतीयमप्येवमुक्तः सन् तं देवमेवमवादीत्—कथं खलु देवानुप्रिय ! मम दुष्प्रव्रजितम् ॥१७॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, तस्स सोमिल माहणस्स—उस सोमिल नामक ब्राह्मण
ऋषि के समक्ष, पुष्करतावरत्तकाले—अर्ध रात्रि के समय, एगे देवे—एक देवता, जाव—प्रकट
हुआ और, एवं वयासी—इस प्रकार बोला, हं भो सोमिल ! पव्वइया !—हे प्रव्रजित सोमिल,
दुप्पव्वइयं ते—तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है, पढमं भणइ—ऐसा उसने पहली बार कहा
(किन्तु यह सुनकर भी वह सोमिल), तहेव तुमिणीए सच्चिद्वइ—पहले की तरह ही मौन धारण
करके बैठा रहा, देवो वोच्चंपि तच्चंपि वदइ—तब उस देवता ने दूसरी और तीसरी बार भी यही
कहा, सोमिल ! पव्वइया दुप्पव्वइयं ते—सोमिल तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है, तएण से सोमिले—
तब उस सोमिल ने, तेणं देवेणं—उस देवता के द्वारा, दोच्चंपि तच्चंपि—दूसरी और तीसरी बार
भी, एवं वृत्ते समाने—ऐसा कहने पर, तं देवं—उस देवता से, एवं वयासी—इस प्रकार कहा,
कहणं देवानुप्पिया मम दुप्पव्वइयं—यह मेरी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या क्यों है ? ॥१७॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस सोमिल नामक ब्राह्मण ऋषि के समक्ष आधी रात के
समय एक देवता प्रकट हुआ और उससे कहने लगा—हे प्रव्रजित सोमिल ! तेरी यह
प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है । उसके पहली बार ऐसा कहने पर सोमिल पहले की तरह ही
मौन धारण करके बैठा रहा, किन्तु उस देवता ने दूसरी और तीसरी बार भी यही
कहा—सोमिल ! तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है ।

तब सोमिल ने उस देवता के द्वारा दूसरी बार और तीसरी बार भी उसकी
प्रव्रज्या को दुष्प्रव्रज्या बतलाने पर उस देवता से कहा—हे देवानुप्रिय यह मेरी प्रव्रज्या
दुष्प्रव्रज्या कैसे है ? क्यों है ? ॥१७॥

मूल—तएणं से देवे सोमिलं माहणं एवं वयासी—एवं खलु देवानु-
प्पिया ! तुमं पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतियं पंचाणुव्वए सत्त

सिक्खावए सावगधम्मं पडिवन्ने, तएणं तव अण्णया कयाइ असाहुदंसणेण पुव्वरत्ता० कुटुम्ब० जाव पुव्वचिन्तियं देवो उच्चारइ जाव जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता किट्ठिणसंकाइय जाव तुसिणीए संचिट्ठइ । तएणं पुव्वरत्तावरत्तकाले तव अतिय पाउव्वमामि हं भो सोमिला ! पव्वइया ! दुप्पव्वइयं ते तह चेव देवो नियवयणं भणइ जाव पंचमदिवसम्मि पच्छावरण्हकालसमयसि जेणेव उंबरवरपायवे तेणेव उवागए किट्ठिणसंकाइयं ठवेसि, वेइं वड्ढेसि, उवलेवणं संमज्जणं करेसि, करित्ता कट्ठमुद्दाए मुहं बंधेसि, बंधित्ता तुसिणीए संचिट्ठसि, तं च त्रं देवानुप्पिया ! तव पव्वइयं दुप्पव्वइयं ॥१८॥

छाया — ततः खलु स देवः सोमिलं ब्राह्मणमेवमवादीत्—एवं खलु देवानुप्रिय ! त्वं पार्श्व-
स्थाहंतः पुरुषादानीयस्थान्तिकं पञ्चाणुव्रतानि सप्तशिक्षाव्रतानि द्वादशविधं श्रावकधर्मः प्रतिपन्नः, ततः
खलु तवाऽन्यदा कदाचित् असाधुदर्शनेन पूर्वरात्रा० कुटुम्ब० यावत् पूर्वचिन्तितं देव उच्चारयति
यावत् यत्रंवाऽशोकवरपादपस्तत्रंबोपागच्छसि, उपागम्य किट्ठिणसाङ्कायिकं यावत् तूष्णीकः संतिष्ठसे
ततः पूर्वरात्रापररात्रकाले तवान्तिकं प्रादुर्भवामि—हं भो सोमिल ! प्रव्रजित ! दुष्प्रव्रजितं ते तथैव
देवो निजवचनं भणति यावत् पञ्चमदिवसे पश्चादपराल्पकालसमये यत्रैव उदुम्बरपादपस्तत्रंबोपागतः
किट्ठिणसाङ्कायिकं स्थापयसि, वेदीं वर्धयसि, उपलेपनं संमार्जनं करोषि, कृत्वा काष्ठमुद्रया मुखं बध्नासि,
बद्ध्वा तूष्णीकः संतिष्ठसे, तदेवं खलु देवानुप्रिय ! तव प्रव्रजितं दुष्प्रव्रजितम् ॥१८॥

पदार्थान्वयः—तएणं से देवे—तदनन्तर वह देव, सोमिलं माहणं—उस सोमिल ब्राह्मण में,
एवं वयासी—इस प्रकार बोला, एवं खलु देवानुप्पिया—हे देवानुप्रिय ! तुम पासस्स अरहओ
पुरिसावाणीयस्स—तुमने मुमुक्षु जनों द्वारा सेवित अहंत् भगवान श्री पार्श्वनाथ के, अन्तिथं—पास
पहुंच कर, पंचाणुव्वए—पांच अणुव्रत, सत्त सिक्खावए—सात शिक्षा व्रत, दुवाल्स बिहे सावग-
धम्मं—इस प्रकार बारह प्रकार के श्रावक धर्म को, पडिवन्ने—ग्रहण किया था, तएणं तव अन्नया
कयाइ—तदनन्तर तुमने एक बार, असाहुदंसणेण—असाधुओं का दर्शन करने पर, पुव्वरत्ता०
कुटुम्ब जाव०—अर्ध रात्रि के समय अपने कुटुम्ब के विषय में सोचते हुए तुमने विचार किया कि
“मैं गंगा-तट पर तपस्या करनेवाले दिशाप्रोक्षक तापसों के पास जाऊँ और दिशा-प्रोक्षक तापस
बनूँ, पुव्वचिन्तियं देवो उच्चारेइ—सोमिल ब्राह्मण के द्वारा पूर्व चिन्तित विचारों को देवता ने
उससे कहा, (और देवता ने यह भी कहा कि), जाव जेणेव असोगवर पायवे उवागच्छसि—फिर दिशा-

प्रोक्षक तापस बन कर जहाँ अशोक नामक वृक्ष था वहाँ पहुँचे, उवागच्छिता—वहाँ पहुँच कर, किट्टिणसंकाइयं जाव—अपनी कांवड़ रख कर अपने सभी धर्म-कृत्य किये, तुसिणीए संचिट्टुइ—(मेरे द्वारा प्रतिबोध देने पर भी उसे अनसुना करके) तुम चुप-चाप बैठे रहे, तएणं—तत्पश्चात्, पुव्वरत्ता-वरत्तकाले—इस प्रकार चार बार अर्धरात्रि के समय, तव अन्तियं पाउम्भस्मि—तुम्हारे सामने आकर प्रकट हुआ, (और तुम्हें समझाया कि), हं भो सोमिता—हे प्रव्रजित सोमिल, दुप्पव्वइयं ते—तुम्हारी यह प्रवज्या दुष्प्रवज्या है, तह चेव देवो नियवयणं भणइ जाव—पुनः उस देवता ने अपने वचन दोहराने हुए उससे कहा, पंचम दिवसस्मि—आज पाँचवें दिन, पच्छावरणह-काल-समयसि—सायंकाल के समय, जेणेव उंबरवरपायवे—जहाँ यह उदुम्बर वृक्ष था, तेणेव उवागए—वहाँ पर भी आ पहुँचा हूँ, किट्टिण संकाइयं ठवेसि—यहाँ तुमने अपनी कांवड़ रखी, वेइ बड्डेस—वेदी बनाई, उवलेवणं संमज्जणं करेसि—उसे गोबर आदि से लीपा, संमाज्जनं किया, करित्ता कट्टमुद्दाए मुहं बंधेसि—काष्ठ-मुद्रा से तुमने अपना मुँह बांधा, बंधित्ता—(और) बांधकर, तुसिणीए—मौन धारण करके, संचिट्टुसि—बैठ गए हो, तं चेवं खलु देवानुप्पिया—(किन्तु हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार निश्चय ही, तव पव्वइयं—तुम्हारी यह प्रवज्या, दुप्पव्वइया—दुष्प्रवज्या है ॥ १८ ॥

मूलार्थ—तदनन्तर वह देवता सोमिल ब्राह्मण से इस प्रकार बोला—हे देवानुप्रिय (पहले तुमने) सर्व-जन-सेव्य भगवान् श्री पार्श्वनाथ जी से पाँच महाव्रतों और सात शिक्षा व्रतों इस प्रकार बारह प्रकार के श्रावक धर्म को स्वीकार किया था। फिर कुछ समय बाद असाधु-दर्शन (सम्पर्क) के कारण अर्धरात्रि के समय अपने कुटुम्ब की चिन्ता करते हुए तुमने सोचा कि मैं दिशा-प्रोक्षक वानप्रस्थ बन जाऊँ। इस प्रकार तुम दुष्प्रवज्या के मार्ग पर चलते हुए दिशा-प्रोक्षक वानप्रस्थ बन गए। उस देव ने उसने फिर कहा—फिर तुम चलते-चलते जहाँ एक अशोक वृक्ष था वहाँ पहुँचे और वहाँ आकर तुमने अपनी कांवड़ रख कर वे कृत्य किए जिन्हें तुम धर्म मानते थे। धर्म-कृत्य करके मौन धारण करके बैठ गए। तब एक दिन मैं पुनः अर्धरात्रि के समय तुम्हारे सामने प्रकट हुआ और तुम्हें सावधान करते हुए कहा “हे सोमिल—इस प्रकार तुम्हारी प्रवज्या दुष्प्रवज्या है। देव ने उसे फिर से अपने वचन कहे कि आज पुनः पाँचवें दिन सायंकाल के समय जहाँ उदुम्बर का वृक्ष है तुम वहाँ पहुँचे और उसके नीचे आकर अपनी कांवड़ रखी, वेदिका बनाई और उसे गोबर आदि से लीपकर वहाँ जल छिड़का और जल आदि सींच कर काष्ठ-मुद्रा से अपना मुँह बांध कर बैठ गए,

इस प्रकार हे देवानुप्रिय ! तुम्हारी यह प्रवज्या दुष्प्रवज्या है ॥१८॥

टीका—प्रस्तुत पाठ में जाव० शब्द का बहुत अधिक प्रयोग करके शास्त्रकार ने पुनरावृत्ति दोष न होने देने का प्रयास किया है। हमने मूलाथ में “जाव” से गृहीत बातों को ग्रहण करके पूर्वापर को मिलाने का कुछ प्रयास किया है।

वेदं बद्धेसि—का अर्थ पूजास्थान की सीमार्यें बांधकर उस पूजा-स्थान को निश्चित करना है, निश्चित होने के बाद ही उपलेपन समार्जन होता है।

सोमिल चार दिनों तक देव के वचनों की उपेक्षा करता रहा, किन्तु देव ने अपने प्रयास में ढील नहीं आने दी, अतः पांचवीं बार वह सोमिल को समझाने के प्रयास में सफल हो ही गया ॥१८॥

मूल—तएणं से सोमिले तं देवं एवं वयासी—कहण्णं देवानुप्पिया ! मम सुप्पव्वइयं ? तएणं से देवे सोमिलं एवं वयासी, जइणं तुम देवाणुप्पिया ! इयाणि पुव्वपडिक्खणाइं पंच अणुव्वयाइं सत्तसिक्खावयाइं सममेव उवसंपज्जित्ताणं विहरसि, तेणं तुज्झ इदाणि सुप्पव्वइयं भविज्जा तइणं से देवे सोमिलं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसि पाउब्भए जाव पडिगए ॥१९॥

छाया—ततः खलु स सोमिसस्तं देवमेवमवादीत्—कथं खलु देवानुप्रिय ! मम सुप्रव्रजितं ? ततः खलु स देवः सोमिलमेवमवादीत्—यदि खलु त्वं देवानुप्रिय ! इदानीं पूर्वप्रतिपक्षानि सप्तशिक्षाव्रतानि स्वयमेव उपसंपन्नं खलु विहरसि तर्हि खलु त्वेदानीं सुप्रव्रजितं भवेत्। ततः खलु स देवः सोमिलं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्विता यस्या दिशः प्रादुर्भूतः यावत् प्रतिगतः ॥१९॥

पदार्थान्वयः—तएणं से सोमिले—तदनन्तर वह सोमिल ब्राह्मण, तं देवं एवं वयासी—उस देव से इस प्रकार बोला, कहण्णं देवानुप्पिया-मम सुप्पव्वइयं—हे देवानुप्रिय ! अब आप ही बतलायें कि मेरी प्रवज्या सुप्रवज्या कैसे हो सकती है ? तएणं से देवे—तब वह देवता, सोमिलं एवं वयासी—सोमिल से इस प्रकार बोला, जइणं तुम देवाणुप्पिया—हे देवानुप्रिय ! यदि तुम, इयाणि पुव्वपडिक्खणाइं—अब भी (भगवान् पार्श्वनाथ से) ग्रहण किए हुए, पंच अणुव्वयाइं—पाँच अणुव्रतों, सत्तसिक्खावयाइं—(और) सात शिक्षा व्रतों को, सममेव उवसंपज्जित्ताणं—स्वयं ही (पुनः) ग्रहण करके, विहरसि—जीवन-यात्रा पर चलोगे, तेणं तुज्झ इदाणि—तब तेरी प्रवज्या अब भी सुप्पव्वइयं—सुप्रवज्या, भविज्जा—हो सकती है, तइणं से देवे—तब वह देवता, सोमिलं वंदइ नमंसइ—(सोमिल द्वारा उसके कथन के अनुरूप बारह व्रतों का पालन करते हुए विचरने लगा, यह

देखकर वह देवता सोमिल को वन्दना-नमस्कार करता है, वन्दिता नमसिस्ता—वन्दना नमस्कार करके, जामेव दिसि पाउबभूए—जिस दिशा में प्रकट हुआ था, जाव पडिगए—उसी दिशा में लौट गया ॥ १६ ॥

मूलार्थ—तदनन्तर वह सोमिल ब्राह्मण उस देव से इस प्रछार बो ला—हेदेवानु-प्रिय (अब आप ही बतलायें कि मेरी प्रव्रज्या सुप्रव्रज्या कैसे हो सकती है ? तब उस देवता ने उस सोमिल से इस प्रकार कहा—“हे देवानुप्रिय ! यदि तुम अब भी भगवान श्री पार्श्वनाथ जी से ग्रहण किये हुए पांच अणुव्रतों और सात शिक्षाव्रतों को ग्रहण करके अपनी जीवन-यात्रा पर चलोंगे तो तुम्हारी प्रव्रज्या अब भी सुप्रव्रज्या हो सकती है । (सोमिल ने देवता के कथनानुसार श्रावक के बारह व्रत धारण कर लिये) तब उस देवता ने सोमिल को वन्दना नमस्कार किया और वन्दना नमस्कार करके वह जिस दिशा में प्रकट हुआ था (अर्थात् दिशा से आया था) उसी दिशा में लौट गया ॥ १९ ॥

टीका—समस्त प्रकरण सरल है । समास शैली के कारण कुछ शब्दों का अध्याहार कर लेना चाहिये ॥ १६ ॥

मूल—तएणं से सोमिले माहणरिसी तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे पव्वपडिवन्नाइ पंच अणुव्वयाइ सयमेव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ॥ २० ॥

छाया—ततः खलु सोमिलो ब्राह्मणः ऋषिस्तेन देवेन एवमुक्तः सन् पूर्वप्रतिपन्नानि पञ्चाणु-व्रतानि स्वयमेव उपसंपद्य खलु विहरति ॥ २० ॥

पदार्थान्वयः—तएणं से सोमिले माहण रिसी—तत्पश्चात् वह सोमिल नामक ब्रह्मर्षि, तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे—उस देव के द्वारा पूर्वोक्त वचन कहने पर, पव्वपडिवन्नाइ—पहले ग्रहण किये हुए, पंच अणुव्वयाइ—पांच अणुव्रतों (और सात शिक्षा व्रतों को), सयमेव—स्वयं ही (स्वेच्छा से), उवसंपज्जित्ताणं विहरइ—स्वीकार कर जीवन-यात्रा व्यतीत करने लगा ॥ १६ ॥

मूलार्थ तत्पश्चात् वह सोमिल नामक ब्रह्मर्षि उस देव के द्वारा पूर्वोक्त वचन कहने पर पहले भगवान श्री पार्श्वनाथ जी से गृहीत पांच अणु-व्रतों का स्वयं ही पालन करते हुए अपनी जीवन-यात्रा पर चलने लगा ॥ २० ॥

टीका—“पंच अणुव्वयाइ” इस शब्द के बाद “सत्ता सिक्खा-वयाई” इस शब्द का अध्याहार कर लेना चाहिये, क्योंकि पूर्व सूत्र में “बुद्धालविहं” शब्द द्वारा बारह व्रतों का संकेत पहले ही किया जा चुका है ॥ २० ॥

मूल—तएणं से सोमिले बहूहि चउत्थ छट्ठम जाव मासद्धमास-
खमणेहि विचित्रोहि तवोवहाणेहि अप्पाणं भावेमाणे बहूइं वासाइं
समणोवासगपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता, अद्धमासियाए संलेहणाए
अत्ताणं झूसेइ, झूसित्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता तस्स
ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते विराहियसम्मत्ते कालमासे कालं किच्चा
सुक्कवडिसए विमाणे उववायमभाए देवसयणिज्जंसि जावतोगाहणाए
सुक्कमहग्गहत्ताए उववन्ने । तएणं से सुक्के महग्गए अहुणोववन्ने समाणे
जाव भासामणपज्जत्तीए० ॥२१॥

छाया—ततः खलु स सोमिलो बहुभिरचतुर्थषष्ठ्यष्टमयावन्मासाद्धमासक्षणैर्विचित्रैस्तप उप-
धानैरात्मन भाषयन् बहूनि वर्षाणि श्रमणोपासकपर्यायं पालयति, पालयित्वा अर्धमासिकया संलेखनया
आत्मानं जोषयति, जोषयित्वा त्रिशद् भक्तानि अनशनेन छित्त्वा तस्य स्थानस्यानालोचिताऽप्रतिक्रान्ता
विराघितसम्यक्त्वः कासमासे कालं कृत्वा शुक्रावतंसके विमाने उपपातसभायां देवशयनीये यावताऽव-
गाहनया शुक्रमहाप्रहतया उपपन्नः । ततः खलु स शुक्रो महाग्रहः अधुनोपपन्नः सन् यावद् भाषामनः-
पर्याप्त्या० ॥२१॥

पदार्थान्वयः—तएणं से सोमिले—तत्पश्चात् वह सोमिल, बहूहि चउत्थं-छट्ठम जाव मासद्ध-
मासखमणेहि—बहुत से—चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम आदि और आधे मास (१५ दिन) और मासखमण रूप,
विचित्रोहि तवोवहाणेहि—नाना प्रकार के तप उपधानों द्वारा, अप्पाणं भावेमाणे—अपने आपको
भावित करता हुआ (अर्थात् बेले, तेले आदि से लेकर अर्ध मास और एक मास आदि की तपस्या
करता हुआ), बहूइं वासाइं—बहुत वर्षों तक, समणोवासग-परियागं पाउणइ—श्रमणोपासक
पर्याय का पालन करता रहा (अर्थात् श्रमणोपासकचर्या का पालन करता रहा), पाउणित्ता—और
पालन करके, अद्ध-मासियाए संलेहणाए—१५ दिन की संलेखना द्वारा, अत्ताणं झूसेइ—अपने आपको
लगाए रखता है, झूसित्ता—इस प्रकार अपने आपको (तप में) लगा कर, तीसं भत्ताइं अणसणाए—
तीस भक्त (आहार) का त्याग करता है, छेदित्ताए—और त्याग करके, तस्स ठाणस्स—अपने पूर्व
कृत पाप स्थानों की, अणालोइयपडिक्कंते—आलोचना एवं प्रतिक्रमण किए बिना, विराहिय
सम्मत्ते—सम्यक्त्व की विराधना के कारण, कालमासे कालं किच्चा—कालमास में काल करके
(अर्थात् मृत्यु समय आने पर), सुक्क-वडिसए विमाणे—शुक्रावतंसक नाम के विमान में, उववाय-
सभाए—उपपात सभा में (देवों के उत्पत्ति स्थान में), देवसयणिज्जंस्सि—देव-शयनीय शय्या में,
जावते गाहणाए—श्रमणोपेत अवगाहना से, सुक्क-महग्गहत्ताए—शुक्रमहाग्रह के रूप में, उववन्ने—

उत्पन्न हुआ, तएणं से सुक्के महग्गहे—तदनन्तर शुक्रमहाग्रह के रूप में उत्पन्न होकर, जाव भासामण पज्जत्तीए—भाषा पर्याप्ति मनःपर्याप्ति आदि पाँचों प्रकार की पर्याप्तियों से परिपूर्ण हो गया ॥२१॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह सोमिल नामक ब्राह्मण बहुत से चतुर्थ पष्ठ अष्टम आदि एवं अर्धमास (१५ दिन) और मास खमण रूप नाना प्रकार के तप उपधानों द्वारा अपने आपको भावित करता हुआ (अर्थात् वेले तेले आदि से लेकर मासखमण आदि की तपस्या में लीन रहते हुए), श्रमणोपासक की जीवन-चर्या का पालन करता रहा और पालन करते हुए उसने अपने आप को तपस्या में लगाए रखा और ऐसा करके तीस समय के भोजन का त्याग करके (आधे महीने तक भोजन छोड़कर) १५ दिन की संलेखना में अपने आपको लगाए रखता है। किन्तु अपने पूर्व कृत पापों की आलोचना एवं प्रतिक्रमण किए बिना ही सम्यक्त्व की विराधना के कारण मृत्यु-समय आने पर मर कर शुक्रावर्तसक नाम के देव-विमान की उपपात सभा(देवों के उत्पत्ति-स्थान में) देव-शय्या पर प्रमाणोपेत अवगाहना से शुक्रग्रह के रूप में उत्पन्न हुआ और शुक्रग्रह के रूप में उत्पन्न होते ही भाषा-पर्याप्ति मनः-पर्याप्ति आदि सर्वविध पर्याप्तियों से वह परिपूर्ण हो गया ॥२१॥

टीका—देवों की उत्पत्ति गर्भ से नहीं होती, वे उपपात (जन्म-स्थान) में रखी देवों की शय्या पर उत्पन्न होते हैं, अतः वह शुक्रग्रह के रूप में देव-शय्या पर उत्पन्न हुआ।

‘अवगाहना’ का अर्थ है शरीर का प्रमाण। उत्पत्ति के समय देवों का शरीर प्रमाण अंगुल के आसन्नतर्वाँ भाग से लेकर अधिक से अधिक सात हाथ परिमाण वाला होता है। ‘जावतेगाहणाय’ का भाव यही है कि वह प्रमाणोपेत शरीर से उत्पन्न हुआ।

भासामण-पज्जत्तीए—सभी प्राणी जन्म के समय तक अपर्याप्त दशा (अपूर्ण दशा) में उत्पन्न होते हैं, उत्पत्ति के बाद वह प्राकृतिक रूप से स्वतः ही छहों पर्याप्तियाँ प्राप्त कर लेता है, जैसे कि—आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा-पर्याप्ति, मनः पर्याप्ति। आत्मा के संयोग से तेजस और कामंज शरीर द्वारा ग्रहण किया गया उपर्युक्त छे प्रकार की गोदुर्गलिक शक्तियों का जो संचय होता है वही पर्याप्ति कहलाता है ॥२१॥

मूल—एवं खलु गोयमा ! सुक्केणं महग्गहेणं सा दिग्वा जाव अभि-
समन्तागया, एगं पलिओवमं ठिई । सुक्के णं भंते ! महग्गहे तओ देव-

लोगाओ आउक्खएणं ३ कहिं गच्छिहिइ ? गोयमा ! महाविदेहे वासे
सिज्झिहिइ ५ । एवं खलु जंबू ! समणेणं निक्खेवओ ॥२२॥

॥ तदयं अज्झयणं समत्तं ॥ ३ ॥

छाया—एवं खलु गौतम ! शुक्रेण महाग्रहेण सा दिव्या यावत् अभिसमन्वागता । एकं पत्योप रं
स्थितिः । शुक्रेः खलु भवन्त ! महाग्रहस्ततो देवल्लोकात् आयुःक्षयेण ३ कुत्र गमिष्यति, ? गौतम !
महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति ५ ! एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन० निक्षेपकः ॥२२॥

॥ इति पुष्पिताया तृतीयमध्ययनं समाप्तम् ॥

पदार्थान्वयः—एवं खलु गोयमा—इस प्रकार हे गौतम ! सुक्केणं महाग्रहेण—उस शुक्रे नामक
महाग्रह ने, सा दिव्या—वह दिव्य, जाव अभिसमन्नागया—सभी प्रकार की देव-समृद्धि को
प्राप्त किया । एवं पलिओवमठिई—शुक्रे महाग्रह की स्थिति एक पत्योपम की है । सुक्केणं भते
महाग्रहे—भगवन् ! वह शुक्रे महाग्रह, तओ देवल्लोगाओ—उस देवल्लोक से, आउक्खएणं—आयु
पूर्ण होने पर, कहिं गच्छिहिइ—देवल्लोक से च्यव कर कहां जाएगा ?, गोयमा ! महाविदेहेवासे—
यह शुक्रे महाग्रह विदेह क्षेत्र में जन्म लेकर, सिज्झिहिइ—यावत् सिद्ध होगा, एवं खलु जम्बू !—
(सुधर्मा स्वामी कहते हैं) इस प्रकार हे जम्बू ! समणेणं निक्खेवओ—श्रमण भगवान् महावीर ने)
पुष्पिता के इस तृतीय अध्ययन में) यह निरूपण किया है ॥२२॥

मूलार्थ—इस प्रकार हे गौतम ! उस शुक्रे नामक महाग्रह ने वह दिव्य सभी प्रकार
की देव-समृद्धि प्राप्त की । शुक्रे महाग्रह की स्थिति एक पत्योपम की है ।

(गौतम पूछते हैं) यह शुक्रे महाग्रह उस देव-लोक से आयु पूर्ण होने पर देवल्लोक
से च्यव कर कहां जाएगा ?

गौतम ! यह शुक्रे महाग्रह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर यावत् सिद्ध होगा ।

सुधर्मा स्वामी कहते हैं इस प्रकार हे जम्बू ! प्रभु महावीर ने पुष्पिता के तृतीय
अध्ययन में यह निरूपण किया है ॥२२॥

टीका—आउक्खएणं के आगे जो ३ का अंक है वह आयु, भव और स्थिति का परिचायक
है अर्थात् आयुभवा और स्थिति को पूर्ण कर ।

“सिज्झिहिइ” पद के आगे ५ का अंक है उसका अभिप्राय यह है कि वह १. प्राण त्याग
करेगा, २. सिद्ध होगा, ३. बुद्ध होगा, ४. मुक्त होगा और ५. सब सभी दुःखों का अन्त करेगा ॥२२॥

॥ पुष्पिता का तृतीय अध्ययन पूर्ण ॥



अथ बहुपुत्रिकाख्यः
(चतुर्थो-वर्गः)

अथ बहुपुत्रिकाख्यं चतुर्थमध्ययनम्

(बहुपुत्रिका नामक चतुर्थ अध्ययन)

॥ १ ॥

मूल—जइणं भंते ! उक्खेवओ । एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं, तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे, गुणसिलए चेइए, सेणिए राया, सामी समोसढे, परिसा निग्गया । तेणं कालेणं तेणं समएणं बहुपुत्तिया देवो सोहम्मे कप्पे बहुपुत्तिए विमाणे सभाए सुहम्माए बहुपुत्तियंसि सीहासणंसि चउर्हि सामाणियसाहस्सीहि चउर्हि महत्तरियाहि जहा सूरियाभे भुंजमाणी विहरइ । .

इमं च णं केवलकप्पं जंबूदीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणी आभोएमाणी पासइ, पासित्ता समणं भगवं महावीरं जहा सूरियाभो जाव णमंसित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहा सन्निसन्ना । आभियोगा जहा सूरियाभस्स, सूसरा घंटा, आभिओगियं देवं सद्दावेइ जाणविमाणं जोयणसहस्सवित्थिण्णं, जाणविमाणवण्णओ, जाव उत्तरित्थेणं निज्जाणमग्गेणं जोयणसाहस्सिएहि विग्गहेहि आगया जहा सूरियाभे । धम्मकहा समत्ता ॥ १ ॥

छाया—यदि खलु भवन्त ! उत्क्षेपकः । एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नाम नगरं, गुणशिलकं चैत्यं, श्रेणिको राजा, स्वामी समवसुतः । परिषद् निर्गता । तस्मिन् काले तस्मिन् समये बहुपुत्रिका देवी सौधर्मे कल्पे बहुपुत्रिके विमाने सभायां सुधर्मायां बहुपुत्रिके सिंहासने चतसृभिः सामानिकसाहस्रीभिः चतसृभिः महत्तरिकाभिः यथा सूर्याभो यावद् भुञ्जमाणा विहरति, ।

इमं च खलु केवलकल्पं जम्बूद्वीपं विपुलेन अवधिता आभोगयन्ती आभोगयन्ती पश्यति, दृष्ट्वा श्रमणं भगवन्तं महावीरं यथासूर्याभो यावद् नमस्यित्वा सिंहासनवरे पौरस्त्याऽभिमुखी संनिवृण्णा । अभियोगा यथा सूर्याभस्य सुस्वरा घण्टा आभियोगिकं देवं शब्दयति यानविमानं योजन-सहस्रविस्तीर्णं, यानविमानवर्णकः, यावत् उत्तरीयेण निर्याणमार्गेण योजनसाहस्रिकः विग्रहैरागता यथा सूर्याभः । धर्मकथा समाप्ता ॥१॥

पदार्थान्वयः—जइ णं भंते—यदि हे भगवन्, उक्खेवओ—उत्क्षेपक, एवं—इस प्रकार, खलु जंबू—हे जम्बू, तेणं कालेण, तेणं समएण—उस काल, उस समय में, रायगिहे नयरे—राज-गृह नगर में, गुणसिलए चेइए—गुणशील चैत्य था (वहाँ), सेणिए राया—राजा श्रेणिक था, सामो समोसहे—भगवान महावीर पधार, परिसा निग्गया—परिषद् धर्मदेशना सुनने आई । तेणं कालेण, तेणं समयेण—उस काल उस समय में, बहुपुत्तिया देवो—बहुपुत्रिका देवी, सोहम्मे कप्पे—सौधर्म कल्प में, बहुपुत्तिए विमाणे—बहुपुत्रिका विमान की, सभाए सुहम्माए—सुधर्म सभा में, बहु-पुत्तियंसि सीहासणंसि—बहुपुत्रिका सिंहासन पर विराजित, चउहि सामाणियसाहस्सीहि—चार हजार सामानिक देवियों तथा, चउहि महत्तरियाहि—चार महत्तरिका देवियों के साथ, जहा सूरियाभे—सूर्याभ देव के समान, जाव—यावत्, भुंजमाणो विहरइ—भोगोपभोगों को भोगतो हुई विचर रहो थी ॥

इमं च णं—इस, केवलकल्पं—अपने गुणों से युक्त, जंबूद्वीपं—जम्बूद्वीप नामक, द्वीप—द्वीप को, विपुलेण ओहिणा—अपने विशाल श्रवण ज्ञान द्वारा, आभोएमाणी, आभोएमाणी पासइ—उपयोग लगा कर देख रही थी इस प्रकार, समणं भगवं महावीरं श्रमण भगवान महा-वीर को देखा, जहा सूरियाभे—जैसे सूर्याभ देव ने, जाव—यावत्, णमसित्ता—सात आठ हाथ आगे होकर नमस्कार किया, सीहासणवरंसि—फिर सिंहासन के ऊपर, पुरस्त्याभिमुहे—पूर्व की ओर मुख करके, सत्तिस्सत्ता—बैठ गई, आभियोगा जहा सूरियाभस्स—सूर्याभदेव की तरह आभियोगिक देव ने जाना, सुसरा घंटा—सुस्वर नामक घंटा बजाया और आभियोगिक देव—अपने आभियोगिक देव को, सहावेइ—बुलाया, जोजणसहस्स विस्तिण्णं—हजार योजन के विस्तार का, जाण विमाणं—विमान बनाने की आज्ञा प्रदान की, जाणविमाणवण्णओ—यान विमान का वर्णन जान लेना, जाव—यावत्, उत्तरिल्लेणं निज्जाणमग्गेण—उत्तर की ओर जाने वाले मार्ग से, जोजणसाहस्सिएहि विग्रहेहि—एक हजार योजन का शरीर धारण करके, आगया—भगवान महावीर के समीप आई, जहा सूरियाभे—जैसे सूर्याभदेव, धम्मकहा समाप्ता—धर्म-कथा समाप्त हुई ॥१॥

मूलार्थ—तोसरे अध्ययन का अर्थ सुनने के पश्चात् आर्य जम्बू अपने गुरु आर्य सुधर्मा से चौथे अध्ययन का अर्थ पूछते हैं । शिष्य की जिज्ञासा को शान्त करते हुए गुरु आर्य सुधर्मा कहते हैं :—

हे जम्बू ! भगवान ने इस अध्ययन का अर्थ इस प्रकार कहा है—“उस काल, उस समय में राजगृही नगरी थी, वहां गुणशील चैत्य था, वहां राजा श्रेणिक राज्य करता था । उस नगर में स्वामी (भगवान महावीर) पधारे । परिषद धर्मदे-शना सुनने आई ।

उस काल, उस समय में बहुपुत्रिका देवी सौधर्म कल्प के बहुपुत्रिका विमान की, सुधर्म सभा में बहुपुत्रिका सिंहासन पर विराजित हुई । चार हजार सामानिक देवियों और चार हजार महत्तरिकाओं के साथ; सूर्याभि देव की तरह भोग-उपभोग करती विचर रही थी ।

वह अपने इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को अपने विशाल अवधि-ज्ञान द्वारा (उपयोग लगाकर) देख रही थी । उसने अपने ज्ञान के बल से श्रमण भगवान महावीर को देखा । जैसे सूर्याभिदेव ने देखा था । बहुपुत्रिकादेवी ने सात आठ कदम आगे आकर (श्रमण भगवान महावीर के चरणों में) नमस्कार किया और वह अपने सिंहासन पर पूर्व की ओर मुख करके बैठ गई । सूर्याभि देव की तरह आभियोगिक देव को उसने बुलवाया और उसने आकर सुस्वर नामक घंटा बजाकर आभियोगिक देवों को बुलाया । बुलाकर एक हजार योजन विस्तार वाला और साढ़े बासठ योजन ऊंचा विमान बनाने की आज्ञा दी । यह वर्णन सूर्याभि देव की तरह जान लेना चाहिए ।

वह उत्तर दिशा की ओर जाने वाले मार्ग से हजार योजन का शरीर धारण कर श्रमण भगवान महावीर के समीप आई । जैसे सूर्याभि देव आया था । इस प्रकार धर्मकथा समाप्त हुई, अर्थात् जनता ने धर्म-कथा सुनने के बाद सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र्य को ग्रहण किया ॥ १॥

टोका—प्रस्तुत सूत्र में बहुपुत्रिका देवी के प्रभु महावीर के दर्शनार्थ समोसरण में आने का वर्णन सूर्याभिदेव कुमार की तरह है । बहुपुत्रिका देवी ने भी अपने सामानिक देवों को हजार योजन लम्बा वासठ योजन ऊंचा विमान बनाने की आज्ञा दी । फिर देवी अपने विमान में देव परिवार से युक्त होकर आई ।

यहां ‘उक्खेवओ’ पद का अर्थ प्रारम्भ का वाक्य है जो पुष्पिका नामक सूत्र के चौथे अध्ययन में आया है । चउहि सामाणिय साहस्सोहि—पद से सिद्ध होता है देवियों का स्व शासन होने पर भी उनके मन्त्री रूप सामानिक देव भी होते हैं ।

‘चउहि महत्तरियाहि’ पद से सिद्ध होता है कि बहुपुत्रिका देवी की चार महत्तरिका देवियाँ थीं जो बहुपुत्रिका देवी को हर समय न्याय की शिक्षा देती थीं ।

विउलेहि ओहिणा—इत्यादि सूत्र विपुल अवधि ज्ञान का सूचक है, इस ज्ञान के द्वारा दूर के पदार्थ देखे जा सकते हैं । धम्मकहा के लिए औपपातिक सूत्र और सुस्वर घंटा के लिए जम्बूद्वीप प्रशस्ति सूत्र का स्वाध्याय करना चाहिए ॥१॥

उत्थानिका—उसके बाद बहुपुत्रिका देवी ने क्या किया, इसी का वर्णन सूत्रकार ने किया है ।

मूल-तएणं सा बहुपुत्तिया देवी दाहिणं भुयं पसारेइ देवकुमाराणां अट्ठसयं, देवकुमारियाण य वामाओ भुयाओ अट्ठसयं, तयाणंतरं च णं बह्वे दारगा दारियाओ य डिभए य डिभियाओ य विउव्वइ, नट्टविहिं जहा सूरियाओ उवदंसित्ता पडिगया । भन्तेत्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, कूडागारसाला० । बहुपुत्तियाए णं भन्ते ! देवीए सा दिव्वा देविड्ढी पुच्छा जाव अभिसमण्णागया । एवं पृष्ठे सति भगवान् आह एवं खलु इत्यादि ॥२॥

छाया—ततः खलु सा बहुपुत्रिकादेवी दक्षिणं भुजं प्रसारयति देवकुमारानामष्टशतम् देवकुमारिकाणां च वामतो भ्रजतोऽष्टशतम् तदनन्तरं च खलु बहून् दारकांश्च दारिकाश्च डिम्भकांश्च डिम्भिकाश्च विकुरुते, नाट्यविधिं यथा सूर्याभः, उपदर्श्य प्रतिगता । भवन्त ! इति, भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, कूटागार शाला० । बहुपुत्रिकया खलु भदन्त ! देव्या सा दिव्या देवद्विः पृष्ठा यावत् अभिसमन्वागता ॥ २ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, सा बहुपुत्तिया देवी—उस बहुपुत्रिका देवी ने, दाहिणं भुयं दक्षिण भुजा को, पसारेइ—लम्बा किया, देवकुमाराणां अट्ठसयं—उस के बाद एक सौ आठ देवों की विकुर्वणा को किया, देव कुमारियाण य वामाओ भुयाओ अट्ठसयं—बाईं भुजा पर एक सौ आठ देव कुमारियों की विकुर्वणा की, तयाणंतरं च णं—तदनन्तर, बह्वे दारगा या दारियाओ—बहुत से दारक (आठ वर्ष की आयु वाले) और दारिकाओं की, डिभए य—और डिम्भों (आठ वर्ष से अधिक आयु वाले) की, डिभियाओ यं—और डिभिकाओं की, विउव्वइ—विकुर्वणा की, जहा सूरियाओ—सूर्याभ देव की तरह, नट्टविहिं—नाट्य-विधि, उवदंसित्ता—दिखा कर, पडिगया—चली गई । भगवं गोयमे—भगवान् गौतम ने, समणं भगवं महावीरं—

श्रमण भगवान् महावीर को, वन्दइ नमंसइ—वन्दना नमस्कार करके पूछा, भंते त्ति—हे भगवन् वह नाट्य-रचना कहां समा गई ? भगवान् ने, कूडागारशाला—कूटागार शाला का दृष्टांत सुनाया, उन्होंने पुनः प्रश्न किया, भंते—हे भगवन्, बहुपुत्तिपाए णं देवीए—बहुपुत्रिका देवी ने, सा—वह, दिव्वा—दिव्य, वेविइढी—देव-ऋद्धि, जाव अभिसमण्णागया—किस प्रकार प्राप्त की ? ॥२॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् बहुपुत्रिका देवी ने अपनी दाईं भुजा को लम्बा किया और उस पर एक सौ आठ देव-कुमारों की विकुर्वणा करके दिखाई । इसी प्रकार बाईं भुजा पर एक सौ आठ देव-कुमारियों की विकुर्वणा करके दिखाई । फिर बहुत से आठ वर्ष के बालक एवं बालिकाओं की विकुर्वणा करके दिखाई । इस प्रकार बहुत से डिम्भों व डिम्भिकाओं की विकुर्वणा करके दिखाई सूर्याभि देव की तरह नाट्य-विधि सम्पन्न करके वह चली गई ।

श्री गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना नमस्कार करके प्रश्न किया “हे भगवन् ! वह नाट्य-विधि रचना कहां समा गई ?” भगवान् ने कूटागार शाला का दृष्टान्त सुनाया । उन्होंने पुनः प्रश्न किया कि उस बहुपुत्रिकादेवी ने वह ऋद्धि किस प्रकार प्राप्त की ? ॥२॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में बहुपुत्रिका द्वारा भगवान् महावीर के समवसरण में नाट्य-विधि दिखाने का विस्तृत वर्णन है । बहुपुत्रिका द्वारा अपनी देव-शक्ति से अपने हाथ पर एक सौ आठ देवकुमारों और एक सौ आठ देव कुमारियों के निर्माण करने का वर्णन है । डिम्भए व दारगाए ये दोनों शब्द बालक के वाचक हैं । श्री गौतम स्वामी जी ने बहुपुत्रिका को देव-ऋद्धियां प्राप्त होने का कारण पूछा है ॥२॥

उत्थानिका—गणधर गौतम के प्रश्न का श्रमण भगवान् महावीर ओ समाधान करते हैं उसी का उल्लेख शास्त्रकार ने प्रस्तुत सूत्र में किया है :—

मूल—एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं, तेणं समएणं वाणारसी नामं नयरी, अंबसालवणे चेइए । तत्थ णं वाणारसीए नयरीए भद्दे नामं सत्थवाहे होत्था, अड्ढे अपरिभूए । तस्स णं भद्दस्स य सुभद्दा नामं भारिया सुकुमाला० बंझा अवियाउरी जाणुकोप्परमाता यावि होत्था । तए णं तीसे सुभद्दाए सत्थवाहीए अन्नया कयाइं पुव्वत्तावरत्तकाले

कुडुंबजागरियं जागरमाणीए इमेयारूवे जाव संकप्पे समुप्पजित्था—एवं
खलु अहं भद्देणं सत्थवाहेणं सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी
विहरामि, नो चेव णं अहं दारगं वा पयामि, त धन्नाओ णं ताओ
अम्मगाओ जाव सुलद्धे णं तासिं अम्मगाणं मण्यजम्मजीवियफले, जासिं
मन्ने नियक्खिंसंभूयगाइं थणदुद्धलुद्धगाइं महुरसमुल्लावगाणि मंजुल
(मम्मण) प्पजंपियाणि थणमूलकक्खदेसभागं अभिसरमाणगाणि पण्हयंति,
पुणो य कोमल-कमलो वमेहिं हत्थेहिं गिण्हिरुणं उच्छंगनिवेसियाणि
देति, समुल्लावए सुमहुरे पुणो पुणो मम्मण (मंजुल) प्पभणिए अहं णं
अधण्णा अपुण्णा अकयपुण्णा एत्तो एगमवि न पत्ता ओह्य० जाव
झियाइ ॥३॥

छाया—एवं खलु गौतम ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये वाराणसी नाम नगरी, अन्नशालवनं
चैत्यम् । तत्र खलु वाराणस्यां नगर्यां भद्रो नाम सार्थवाहोऽभवत् । आद्योऽपरिभूतः । तस्य खलु भद्रस्य
च सुभद्रा नाम भार्या सुकुमारपाणिपादा वन्ध्या अविजन्मिणी जानकूपरमाता चापि अभवत् । ततः
खलु तस्याः सुभद्रायाः सार्थवाहिकायाः अग्न्या कदाचित् पूर्वरात्रापररात्रकाले कुटुम्बजागरिकां
जाग्रत्या अयमेतद्रूपो यावत् संकल्पः समुपपद्यत—एवं खलु अहं भद्रेण सार्थवाहेन सार्द्धं विप्लान्
भोगभोगान् भुञ्जाना विहरामि, नो चेव खलु अहं दारकं वा दारिकां व प्रजनयामि, तव धन्याः खलु
ताः अम्बिकाः (मातरो) यावत् सुलब्धं खलु तासाम् अम्बिकानां (मातृणां) मनुजजन्मजीवित - फलम्,
यासां मन्थे निजकुक्षिसंभूतकाः स्तनदुग्धलुब्धकाः मधुरसमुल्लापकाः मंजुल (मम्मण) प्रजल्पिताः
स्तनमूलकक्षदेशभागम् अभिसरन्तः प्रवृत्तिं । पुनश्च कोमलकमलोपमाभ्यां हस्ताभ्यां गृहीत्वा
उत्सङ्गनिवेष्टिताः (सन्तः) ददति समुल्लापकान् सुमधुरान् पुनः पुनर्मम्मण (मंजुल) प्रभणितान्, अहं
खलु अधन्या अपुण्या अकृतपुण्या (अस्मि यदहं) एतत् (एतेषां मध्यात्) एकमपि न प्राप्ताः (एवं)
अपहतमनः—संकल्पा यावत् ध्यायति ॥३॥

पदार्थान्वयः—एवं खलु गोयना—इस प्रकार है गौतम, तेजं कालेणं तेजं समएण—उस काल
उस समय, वाणारसी नामं नयरी—वाराणसी नामक नगरी थी, अन्नशाल-
वन नामक चैत्य था, तत्थ णं वाणारसीए नयरीए—उस वाराणसी नगरी में, भद्दे नामं सत्थवाहे
होत्था—भद्र नामक सार्थवाह रहता था, अद्धे अपरिभूए—जो धन-धान्य से युक्त व प्रतिष्ठित था,
तस्स णं—उस, भद्दस्स य सुभद्दा नामं भारिया—उस भद्रवाह की सुभद्रा नाम की भार्या थी,

सुकुमाला०—सुकोमल थी, किन्तु वंशा—बांझ थी, अविद्याउरी—संतान उत्पन्न करने के अयोग्य थी, जानुकूपरमाता—खाली गोद वाली अर्थात् जानु की ही माता, याचि होत्था—थी, तएणं—तत्पश्चात्, तीसे सुभद्राए सत्यबाहीए—उस सुभद्रा सार्थवाही को, अन्नया कयाइ—अन्य किसी दिन, पवरत्तावरत्तकाले—अर्धरात्रि के समय में, कुडुंबजागरियं—कुटुम्ब जागरण के समय, इमेयारूवे—इस प्रकार का, जाव—यावत्, संकप्पे—संकल्प, समुप्पजिन्धा—उत्पन्न हुआ, एवं खल्—निश्चय ही, अहं—मैं, भद्देण सत्यबाहेण सद्धि—भद्र सार्थवाह के साथ, विउलाइं—विप्ल, भोगभोगाइं—भोगों उपभोगों को, भुंजमाणो—भोगती हुई, विहरामि—विचर रही हूं, नो चेव णं—इस पर भी, अहं दारणं व दारियं वा न पयामि—मैंने किसी बालक व बालिका को उत्पन्न नहीं किया, तं घन्नाओ णं अम्मगाओ—वे माताएं धन्य हैं, जाव—यावत्, सुलद्धे—सुलभ हैं, णं तासि अम्मगाणं—उन माताओं ने ही, मणूयजम्मजोवियफले—मनुष्य-जन्म का फल पाया है, जासि—जिन्होंने, मझे निपकुच्छि-सभूयगाइं—ग्रपनी कुक्षि से उत्पन्न हुई संतान को, थणदुद्धलुद्धगाइं—स्तनपान की इच्छा है, महर-समुल्लाज्जाणि—उन बच्चों के मधुर स्वर सुनती हैं, मंजुल (मम्मण) जंपियाणि—उन बच्चों के मनोहर वाक्य सुनती हैं और, थणमूलकवख्खदेसभागं—उन बच्चों को अपने स्तनमूल में उठा-उठा कर अर्थात् छाती से लगाकर, अभिसरमाणगाणि पण्हयंति—घूमती हैं, पुणो य—तथा, कोमलकमलोवमेहि हत्थेहि—कमल तुल्य कोमल हाथों से, गिण्हऊणं—ग्रहण कर, उच्छगनिवेसियाणि—अपनी गोद में बिठाती हैं, देति—देती हैं, समुल्लावए—समुल्लाप—मोठे बच्चों से, सुमहुरे—मोठे, पुणो पुणो—बार बार, मम्मणप्पभाणिए—मनोहर लोरियां बच्चों को देती हैं, अहं णं—मैं, अवण्णा—अधन्य, अपुण्णा—पुण्यहीन, अकयपुण्णा—पूर्व जन्म के पुण्य उपार्जन से रहित हूं, और एत्तो एगमवि—एक भी सन्तति को, न पत्ता—नहीं प्राप्त किया, ओह्य०—नजर झुका कर, जाव—यावत्, दिय्याइ—आत ध्यान अर्थात् दुःख भरा जीवन यापन करने लगी ॥३॥

मूलार्थ—भगवान् महावीर ने बताया कि इस प्रकार, हे गौतम ! उस काल, उस समय में वाराणसी नाम का एक नगरी थी, वहां आम्रशालवन नामक चंत्य था, उस वाराणसी नगरी में भद्र नाम का एक सार्थवाह रहता था, जिसकी सुभद्रा नामक भार्या थी। वह सुकोमल थी; किन्तु वह बांझ थी, संतान उत्पन्न करने के अयोग्य थी, उसकी गोद खाली थी, वह जानुकूपरमाता थी अर्थात् सोते समय उसके उदर के साथ जानु ही होता था, कोई बालक नहीं, तत्पश्चात् किसी दिन अर्धरात्रि के समय, कुटुम्ब जागरण करते हुए, उसके पन में इस प्रकार के विचार उत्पन्न हुए मैं (वर्षों से) निश्चय ही भद्र सार्थवाह के साथ विपुल भोगों-उपभोगों का सेवन करते हुए जीवन-यापन कर रही हूं, परन्तु मेरे घर में एक भी बालक या बालिका का जन्म नहीं हुआ। वे माताएं धन्य हैं, सुलभ हैं। उन माताओं ने ही मनुष्य-जन्म का फल पाया है, जिन्होंने अपनी कुक्षि से

संतान उत्पन्न की है, संतान को दूध पिलाया है, अपने बच्चों के मधुर स्वर सुने हैं, मनोहर वाक्य सुने हैं, बच्चों को छाती से लगा कर घुमाती हैं; फिर बच्चों के कमल तुल्य कोमल हाथों को पकड़ कर बच्चे को गोदो में बिठाती हैं, अपने मीठे मीठे वचनों व समुल्लासों के साथ बार-बार मनोहर लोरियां देती हैं ।

अहो ! मैं कितनी अधन्य हूं, पुण्यहीन हूं, पूर्व जन्मों के शुभ कामों के पुण्य से रहित हूं कि मेरी एक भी संतान नहीं है ।

इस प्रकार (वह) नजर झुका (शोष निवा कर) यावत् आर्तध्यान करती है, दुःख भरा जीवन-यापन करती है ॥३॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में मां की संतान के प्रति ममता का मनोवैज्ञानिक ढंग से वर्णन किया गया है । सुभद्रा हर बांझ स्त्री का प्रतिनिधित्व कर रही है । सांसारिक मनुष्य पुत्र-प्राप्ति को ही सुख का मार्ग मानते हैं, क्योंकि वे मानते हैं कि पुत्र ही वंश-परम्परा का प्रतिनिधि है । इसीलिये सुभद्रा बहुत दुःखी है, क्योंकि वह बांझ है, संतान उत्पन्न करने के अयोग्य है । यह सूत्र माता की संतान के प्रति सहज चिन्ता का चित्रण भी करता है ।

वंशा अवियाउरी जानुकोप्परमाया याबि होस्था—वह सुभद्रा केवल बन्ध्या ही न थी, यदि कोई संतान पैदा भी हो जाती तो वह मृतक होती थी, इस कारण वह सुभद्रा संतान-हीन ही थी । रात्रि को सोते समय उसके उदर के साथ केवल जानु का ही स्पर्श होता था, न कि बच्चे का । इस लिए उसे “जानुकूपर माता” कहा गया है ।

प्रस्तुत सूत्र में सुभद्रा उन माताओं के सुख का चिन्तन कर रही है जो बच्चों को दूध पिलाती हैं, गोद में उठा कर छाती से लगाती हैं, मीठे वचनों से उन्हें लोरियां देती हैं । दूसरी बात यह है कि किसी पूर्व कृत अशुभ कर्म के कारण उसे बच्चे का मुंह देखना नसीब नहीं हुआ । इस सूत्र में सुभद्रा अपने आप को कोसती है ।

बांझ का अर्थ वृत्तिकार ने इस प्रकार किया है ।

‘वंशा’ ति अपत्यकलणलाभे अया निष्फला अवियाउरि ति प्रसवान्तरमपत्यमरणो वापि फलतो बन्ध्या भवति, अत उच्यते—अवियाउरि ति अजिजन शीलाऽपत्यानाम् तदेवाहं ।

उत्थानिकाः—अब आगे नगरी में सुव्रता आर्या के आगमन का वर्णन व सुभद्रा द्वारा साध्वी जीवन ग्रहण करने का उल्लेख शास्त्रकार ने विस्तार पूर्वक किया है—

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं सुव्वयाओ णं अज्जाओ इरिया-समियाओ भासासमियाओ एसणासमियाओ आयाणभंडमत्तनिवखेवणास-

मियाओ उच्चारपासवणखेलजत्लसिघाणपारिट्ठावणासमियाओ मणु-
गुत्तोओ वयगुत्तीओ कायगुत्तीओ गुत्तिदियाओ गुत्तबंभयारिणीओ बहु-
स्सुयाओ बहुपरिवाराओ पुव्वाणुपुव्वि चरमाणीओ गामाणुगामं दूइज्ज-
माणीओ जेणेव वाणारसी नयरी तेणेव उवागया, उवागच्छिता अहा-
पडिरू । ओगगहं ओगिणिहत्ताणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणीओ
विहरंति ।

तएणं तासि सुव्वयाणं अज्जाणं एगे संघाडए वाणारसीनयरीए
उच्चनीयमज्झिमाइ कुलाइं घरसमुदाणस्स भिव्वायरियाए अडमाणे
भइस्स सत्थवाहस्स गिहं अणुपविट्ठे ।

तएणं सुभद्धा सत्थवाही तओ अज्जाओ एज्जमाणीओ पासइ,
पासित्ता हट्ठ जाव खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठ
पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता विउलेणं
असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभित्ता एवं वयासी—एवं खलु अहं
अज्जाओ ! भइएणं सत्थवाहेणं सद्धि विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी
विहरामि, नो चेव णं अहं दारगं दारियं वा पयामि, तं धन्नाओ णं
ताओ अम्मगाओ जाव एत्तो वगमवि न पत्ता, तं तुब्भे अज्जाओ ! बहु-
णायाओ बहुपट्ठियाओ बहूणि गासागरनगरं जाव सण्णिवेसाइं आहिंइह,
बहूणं राईसरतलवर जाव सत्थवाहप्पभिईणं गिहाइं अणुपविमह, अत्थि
से केइ कहिं चि विज्जापओए वा मंतप्पओए वा वमणं वा विरेयणं वा
वत्थिकम्मं वा ओसहे वा भेसज्जे वा उवलद्धे, जेणं अहं दारगं वा
दारियं वा पयाएज्जा ॥४॥

छाया—तस्मिन् काले, तस्मिन् समे सुव्रताः खलु आर्याः ईर्यासमिताः, भाषासमिताः,
एषणासमिताः, आदानभाण्ड्यान्निक्षेपणासमिताः, उच्चारप्रखणश्लेष्मजत्लसिघाणपरिट्ठापना-

समिताः, मनोगुप्तिकाः, वचोगुप्तिकाः, कायगुप्तिकाः, गुप्तेन्द्रियाः, गुप्तब्रह्मचारिण्यः, बहुश्रुताः, बहुपरिवाराः पूर्वान्पूर्वं चरन्त्यः ग्रामानुग्रामं द्रवन्त्यः यत्रैव वाराणसी नगरी तत्रैवोपागमाः, उपागत्य यथाप्रतिरूपम् अवग्रहं अवगृह्य संयमेन तपसा अश्रमानं भावयन्त्यो विहरन्ति ।

ततः खलु तासां सत्रपानामार्याणाम् एकः सङ्घाटको वाराणसीनगर्यां उच्चनीचमध्यमानि कुलानि गृह्यम्दानस्य भिक्षाचर्यायै अटन् भद्रस्य सार्थवाहस्य गृहमनुप्रविष्टाः ।

ततः खलु सुभद्रा सार्थवाही ता आर्याः एजमानाः पश्यति, दृष्ट्वा हृष्टा यावत् क्षिप्रमेव आसनात् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय सप्ताष्टपदानि अनुगच्छति, अनुगत्य वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा विपुलेन अशनपानखाद्यस्वाद्येन प्रतिलभ्य एवमवादीत्—एवं खलु अहम् आर्या ! भद्रेण सार्थवाहेन सार्द्धं विपुलान् भोगभोगान् भुञ्जाना विहरामि, नो चेव खलु अहं दारकं दारिकां वा प्रजनयामि, तद् धन्याः खलु ताः अम्बिकाः (मातरः) यावत्—एततः (अहं) एकमपि न प्राप्ता, तद् यूयम् आर्या ! बहुजाव्यः बहुपठिताः बहूनां ग्रामऽऽकरनगरं यावत् सन्निवेशान् अहिण्डध्वे बहूनां राजेश्वरतल्लवरं यावत् सार्थवाहप्रभृतीनां गृहान् अनुप्रविशथ, अस्ति स कश्चित् क्वचित् विद्याप्रयोगो वा मन्त्रप्रयोगो वा वनं वा विरेचनं वा औषधं वा श्रेष्ठ्यं वा उपलब्धं येनाहं दारकं वा दारिकां वा प्रजनयामि ॥४॥

पदार्थान्वयः—तेणं कालेणं, तेणं समएणं—उस काल, उस समय में, अज्जाओ सुव्वयाओ णं - सुव्वता नामक आर्या अर्थात् साध्वी, इरियासमियाओ—ईर्या समिति- भासासमियाओ—भाषा समिति, एणणासमियाओ—एषणा समिति, आयाणमंडमत्तनिकखेवणासमियाओ—आदान-भण्डा-मन्त्रनिश्चयेण नामक समिति, उच्चारपासवणखेलजल्लसिघाणपारिट्टावणसमियाओ—उच्चार प्रस्ववण श्लेषसिघाण परिष्ठापनासमिति, मणगुत्तीओ—मन-गुप्ति, वयगुत्तीओ—वचन गुप्ति, काय-गुत्तीओ—काया गुप्ति, गुत्तिन्दियाओ—प्रत्येक इन्द्रिय पर नियन्त्रण रखनेवाली, गुत्तवंभयारिणीओ—गुप्त ब्रह्मचारी, अर्थात् इन्द्रियों को गुप्त रखने वाली, जिससे ब्रह्मचर्य का ठीक ढंग से पालन हो सके; बहुस्सुयाओ—बहुश्रुता, बहुपरिवाराओ—बहुत शिष्य परिवार वाली, पुव्वानुपुव्वि—क्रम पूर्वक, चरमाणीओ—विचरती हुई, ग्रामानुग्रामं—ग्रामानुग्राम, दूहज्जमाणीओ—भ्रमण करती हुई, जेणेव—जहां, वाराणसी—वाराणसी, नयरो—नगरी थी, तेणेव उवागया—वहाँ आई, उवागच्छिता—आकर, अहापडिख्वं—विधि-पूर्वक, ओगगहं ओगिणिहत्ताणं—शैठ्या आदि उपकरण ग्रहण करने की आज्ञा लेकर, संजमेणं तवसा—संयम और तप से अपनी आत्मा को पवित्र करती हुई, विहरन्ति—विचरती थी ।

तएणं—तत्पश्चात्, तासि सुव्वयाणं अज्जाणं—उस सुभद्रा आर्या का, एणे संघाडए—एक सिघाड़ा अर्थात् दो साध्वियों का समूह, वाराणसी नयरो—वाराणसी नगरी के, उच्चनीच-मज्झमाइं कुलाइं—उच्च, नीच, मध्यम कुलों के, घरसमुदाणस्स—घरों के समूह में, भिक्षा-परियाए—भिक्षा के लिए, अडमाणे—विचरण करते हुए, भद्रस्स सार्थवाहस्स—भद्रसार्थवाह के, गिहं—घर में, अनुपविट्ठे—प्रवेश किया ।

तएण—तत्पश्चात्, सुभद्रा सत्थवाही—सुभद्रा सार्थवाही, तओ अज्जाओ—उन साध्वियों (आर्याओं) को, एज्जमाणीओ—आते हुए, पासइ पासित्ता—देखा और देखकर, हट्टु—प्रसन्न किया, जाव—यावत्, खिप्पामेव—शीघ्र ही, असणाओ—आसनों से, अम्मट्ठेइ अम्मठ्ठित्ता—हो उठी और उठ कर, सत्ताट्ठपयाइ—सात आठ कदम आगे होकर, अणुगच्छइ लेने आई और, अणुगच्छित्ता—और अन्दर बुलाकर, वंदइ नमसइ—वन्दन नमस्कार करती है, वंदित्ता नमसित्ता—वन्दन नमस्कार करने के पश्चात्, विउलेण—विपुल, असणपाणखाइमसाइमेण—अशन-पान स्वादिम व खादिम चारों प्रकार का भोजन, पडिलाभित्ता—उनको देने का लाभ लेकर, एवं वयासी—इस प्रकार कहने लगी, एवं खलु—इस प्रकार निश्चय ही, अहं—मैं, अज्जाओ—साध्वियों, भदेण सत्थवाहेण—भद्रसार्थवाह के, सद्धि—साथ, विउलाइ भोगभोगाइ—विपुल भोग उपभोग भोगती हुई, विहरामि—विचर रही हूँ, नो चेव णं—फिर भी अभी तक, णं अहं—मैं, बारगं वारियं वा—पुत्र या पुत्री, ना पयामि—पैदा नहीं कर सकी, तं—अतः, घम्माओ—घन्य हैं वे, तओ अम्मगाओ—जो बच्चों की माताएं हैं, जाव—यावत्, एसो एगमवि—किन्तु मैं एक भी बच्चे को, न पत्ता—पैदा न कर सकी, तं तुम्हे अज्जाओ—हे साध्वियो मैं आप से प्रार्थना करती हूँ कि आप, बहुणायाओ—बहुत जान वान हो, बहुपढियाओ—बहुत पढ़ी लिखी हो, बहूणि गामागरनयरं—बहुत से ग्राम नगरों में भ्रमण, जाव—यावत्, सणिवेसाइ—सन्निवेशों, आहिडह—विचरती हो, बहूणं राइसरतलवर जाव सत्थवाहप्पभिईणं—बहुत से राजाओं, तलवर, सेठों यावत् सार्थवाहों के, गिहाइ—घरों में, अणुपविसह—प्रवेश करती हो, अत्थि से केइ—क्या कोई, कीहि चि—किसी भी जगह, विज्जापओए वा—विद्या प्रयोग से, मंतप्पओए वा—मंत्र प्रयोग से, वमणं वा विरेयणं वा वत्थिकम्मं वा—वमन, विरेचन, वस्तिकर्म तथा, ओसहे वा भेसज्जे वा—औषधि भेषज, उवल्लहे—उपलब्ध की है, जेण—जिसके प्रयोग से, अहं—मैं, बारगं वा वारियं वा पयाएज्जा—लड़का व लड़की उत्पन्न कर सकूँ ॥४॥

मूलार्थ—उस काल उस समय में आर्या (साध्वी) सुव्रता ईया-भाषा-एषणा, आदान भण्डमात्रनिक्षेप-उच्चार प्रस्रवण श्लेष्मसिंघाण परिष्ठापना आदि समितियों से युक्त, मन-गुप्ति, वचन-गुप्ति, व काय-गुप्ति से युक्त; इन्द्रियों को वश में रखने वाली गुप्त ब्रह्मचारिणी, बहुश्रुता; अपनी बहुत सी शिष्याओं के धर्म परिवार के साथ, गांव-गांव में धर्म-प्रचार करती हुई जहां वाराणसी नगरी थी वहां पधारी, आकर विधिपूर्वक स्वामी की आज्ञा से स्थान व शैय्या आदि उपकरण ग्रहण किये । फिर संयम व तप से अपनी आत्मा को पवित्र किया ।

तत्पश्चात् आर्या सुव्रता की साध्वियो का एक संघाड़ा भिक्षा के लिये वाराणसी

के उच्च नीच-मध्यम कुलों में गवेषणा करता हुआ भिक्षा के लिये भद्रसार्थवाह के घर पहुँचा ।

तत्पश्चात् सुभद्रा सार्थवाही उन साध्वियों को देखकर बहुत प्रसन्न हुई । अपना आसन छोड़ कर वह उन्हें लेने के लिये सात-आठ कदम आगे आई । वन्दन नमस्कार किया वन्दन नमस्कार करने के पश्चात् विपुल (लेने योग्य विशाल) अशन-पान-खादिम-स्वादिम चारों प्रकार का भोजन देकर लाभान्वित हुई । भोजन देने के पश्चात् वह साध्वियों से इस प्रकार प्रार्थना करने लगी । हे आर्याओ ! मैं भद्रसार्थवाह के साथ विपुल भोग उपभोग भोगती हुई आनन्द से जीवन-यापन कर रही हूँ किन्तु मेरे एक भी बालक या बालिका उत्पन्न नहीं हुआ । वे माताएँ धन्य हैं जो किसी बच्चे को उत्पन्न करती हैं, हे आर्याओ ! आप तो बहुत ज्ञान वाली हैं, आपने बहुत कुछ पढ़ा लिखा है बहुत से ग्राम, नगर, आकराव सन्निवेश भ्रूमे हैं; बहुत से राजा, सलवर-सेठ और सार्थवाहों के यहां (घरों में) आप आती-जाती रहती हैं । क्या कोई ऐसी विद्या है ? कोई मन्त्र प्रयोग है ? वसुन, विरेचन या बस्तिकर्म आदि क्रिया है ? औषध-भेषज उपलब्ध है, जिसके प्रयोग से मैं बालक या बालिका को जन्म देने के योग्य हो सकूँ ॥४॥

टीका—प्रस्तुत सूत्रों में माता की संतान के प्रति सहज चिन्ता का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है । साथ में साध्वी सुव्रता के वाराणसी में आगमन का वर्णन है, साध्वी सुव्रता साधु-जीधम के पाँच महाश्रतों से युक्त है, पाँच समितियों व तीन गुणितियों से युक्त है वह स्वामी की आज्ञा से धार्मिक उपकरण लेकर ठहरती हैं । उन साध्वियों का विशाल शिष्या-परिवार है, साध्वी सुव्रता के ज्ञान व श्रुत की चर्चा देश-देशान्तरों तक फैली हुई है । सम्भवतः इसी कारण उनका विहार क्षेत्र भी विशाल है । उन साध्वियों में से दो साध्वियाँ अपनी गुरुणी की आज्ञा से वाराणसी के उच्च-नीच व मध्यम कुलों आदि अज्ञात कुलों में भिक्षा के लिए भ्रम रही हैं, क्योंकि सधु हर घर से भिक्षा नहीं ले सकता उसे भिक्षा सधु दोष काम-कद लेती है ।

उन साध्वियों से वह सुभद्रा अपनी मनो-व्यथा वर्णन करती है कि कोई विद्या, मन्त्र, यन्त्र, औषधि भस्म ऐसी बताओ जिससे मेरे भी संतान उत्पन्न हो जाए । संतान न होने के कारण सुभद्रा स्वयं को हीन मान रही है । इसी हीन भावना के आधीन होकर उसने अपनी सारी जीवन-माथा साध्वियों के सामने अपनी स्थिति स्पष्ट की लंगता, है सुभद्रा हर समय संतान की चिन्ता में डूबी रहती थी ।

कुल समुदाणिस्स भिक्खायरियाए गृहेषु सुदानं भिक्षाटनं गृह समुदानं भिक्षं तद्धि भिक्षटनम्—
अर्थात् साधु को उच्च, नीच, मध्यम, अमीर, गरीब सभी के यहाँ बिना कुत्र पूछे जाना चाहिए ।

सिंघाड़े पक्ष से साध्वीसंघाटक का अर्थ है कि भिक्षा के लिए कम से कम दो साध्वियों
अवश्य जाए, जैसे सूत्रकृतांग सूत्र में षट् साधुओं के तीन सिंघाटक माने गए हैं ।

यद्यपि संतान प्राप्ति पूर्व कर्मों के पुण्य से उत्पन्न होती है, फिर भी सूत्रकृतांग सूत्र के
द्वितीय स्कन्ध में गवभाकरे अर्थात् गर्भ धारण विद्या का उल्लेख है, जिसके द्वारा गर्भ धारण किया
जा सकता था । सत्तट्ठपयाइ—इस सूत्र से गुरु-भक्ति का दिग्दर्शन कराया गया है ।

उत्थानिका—तब उन साध्वियों के सिंघाड़े ने क्या उत्तर दिया, उस उत्तर के सुझाव से जो
सुभद्रा सार्थवाही के मन में परिवर्तन हुआ उसी का वर्णन सूत्रकार आगे
करते हैं ।

मूल—तएणं तओ अज्जाओ सुभद्दं सत्थवाहि एवं वयासो—अम्हे णं
देवाणुप्पिए ! समणीओ निग्गंथीओ इरियासमियाओ जाव गुत्तबंभयारीओ
नो खलु कप्पइ अम्हं एयमट्ठं कण्णेहिं वि णिसामित्ताए, किमंग ! पुण
उद्दिसित्ताए वा समायरित्ताए वा, अम्हे णं देवाणुप्पिये ! णवरं तव
विचित्तं केवलपण्णत्तं धम्मं परिकहेमो ॥५॥

छाया—ततः खलु ता आदिकाः सुभद्रां सार्थवाहीमेवमवादिषुः—वयं खलु देवानुप्रिये ! श्रमण्यो
निग्रन्थिण्यः ईर्ष्यासमिता यावत् गुप्तब्रह्मचारिण्यः, नो खलु कल्पते अस्माकम् एतमर्थं कर्णाभ्यामपि
निशामयितुं किमङ्ग ! पुनरुपदेष्टुं वा समाचरितुं वा, वयं खलु देवानुप्रिये ! नवरं तव विचित्रं केवलि-
प्रज्ञप्तं धर्मं परिकथयामः ॥५॥

वार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, ताओ अज्जाओ—वे आर्याए, सुभद्दं सत्थवाहि—सुभद्रा-
सार्थवाही से, एवं वयासो—इस प्रकार कहने लगीं, अम्हे णं देवाणुप्पिए—हे देवानुप्रिये हम,
समणीओ निग्गंथीओ—श्रमणी हैं निग्रन्थनी है, इरियासमियाओ—ईर्ष्या-समिति की पालन करने
वाली है, जाव गुत्तबंभयारीओ—यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी हैं, नो खलु कप्पइ—नहीं कल्पता,
अम्हं—हमें, एयमट्ठं—इस प्रकार की बात, कण्णेहिं वि णिसामित्ताए—कानों से सुनना भी,
किमंग पुण—तब फिर, उद्दिसित्ताए वा समायरित्ताए वा—उपदेश करने के लिये और आचरण

करने के लिये, अम्हे णं—हम लोग, देवानुप्पिये—हे देवानुप्रिये, णवरं—हां इतना कह सकती हैं, तव—तुम्हारे लिये, विचित्तं केवलपणत्तं धम्मं—अपूर्व केवली प्ररूपित धर्म को, परिकहेमो—कह सुन सकती हैं ॥५॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वे साध्वियां सुभद्रा सार्थवाही से इस प्रकार कहने लगीं हे देवानुप्रिये ! हम श्रमणी हैं, निर्ग्रन्थनी हैं, ईर्ष्या आदि समितियां यावत् तीन गुप्तियों (मन, वचन, काया) द्वारा ब्रह्मचर्य आदि पांच महाव्रतों का पालन करती हैं, हमें इस प्रकार का कथन कानों से सुनना भी नहीं कल्पता, अर्थात् हमारे लिए यह बात सुनना पाप है, फिर ऐसी बात का कहना व करना तो एक तरफ रहा ।

हे देवानुप्रिये ! हम आपको केवली प्ररूपित धर्म जो कि अपूर्व है, सुना सकती हैं ॥५॥

टीका—प्रस्तुत सूत्रों में बताया गया है कि जब साध्वियों ने भद्रा सेठानी की बातें सुनीं तो उन्होंने जैन धर्म के साधु-जीवन का सार उसे समझाया कि जैन साधु साध्वी पांच महाव्रत, पांच समितियों व तीन गुप्तियों का कठोरता से पालन करते हैं । उन्हें इस तरह की सांसारिक बातों से कुछ लेना-देना नहीं । वे तो वीतराग सर्वज्ञ केवलियों द्वारा प्ररूपित शाश्वत धर्म सुना सकती हैं, जिसे सुनकर इहलोक और परलोक में कल्याण होता है । साध्वियों के धर्म-उपदेश से सुभद्रा, उन साध्वियों के पास जीव अजीव की ज्ञाना, बारह व्रतों श्राविका बन गई । सुभद्रा को साध्वियों ने कहा शुभ कार्य में प्रमाद ना करो । एक रात्रि कुटुम्ब जागरण के समय उसके मन में यह विचार आया कि मुझे ॥५॥

मूल—तएणं सुभद्रा सत्थवाही तासिं अज्जणं अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा ताओ अज्जाओ निखुत्तो वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—सद्दहामिणं अज्जाओ ! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामिणं रोएमिणं अज्जाओ ! निग्गंथं पावयणं ! एवमेयं, तहमेयं, अवितहमेयं, जाव सावगधम्मं पडिवज्जए । अहासुहं देवानुप्पिए ! मा पडिबंघं करेह । तएणं सा सुभद्रा सत्थवाही तासिं अज्जाणं अंतिए जाव पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता ताओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ पडिविसज्जइ ॥६॥

छाया—ततः खलु सुभद्रा सार्थवाही तासामार्याणामन्तिके धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टा सा आर्यास्त्रिकृत्वा बन्धते नमस्यति बन्धित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्—श्रद्धामि खलु आर्याः ! निग्रन्थ प्रवचनं, प्रयेमि खलु, रोचयामि खलु आर्याः ! निग्रन्थं प्रवचनम् एवमेतत्, तथ्यमेतत्, अवितथ्यमेतत्, यावत् श्रावकधर्मं प्रतिपद्ये ।

यथासुखं देवानुप्रिये ! मा प्रतिबन्धं कुरु । ततः खलु सा सुभद्रा सार्थवाही तासामार्याणामन्तिके यावत् प्रतिपद्यते, प्रतिपद्य ता आर्याः बन्धते नमस्यति प्रतिविसर्जयति ॥६॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, सुभद्रा सत्यवाही—सुभद्रा सार्थवाही, तासि—उन, अज्जाणं—आर्याओं के, अंतिए धम्मं सोच्छा निसम्म—धर्म सुनती है और सुन कर, हृदतुष्टा—बहुत प्रसन्न होती है, ताओ अज्जाओ—उन आर्याओं को, तिखुत्तो—तीन बार, बंधइ नमंसइ—बन्धना नमस्कार करती है, बंधित्ता नमंसित्ता—वन्दन नमस्कार करने के बाद, एवं वयासी—इस प्रकार बोली, सद्दहामि ण अज्जाओ—हे आर्याओं मैं श्रद्धा करती हूं, निग्रन्थं—निग्रन्थ प्रवचन पर, पत्तिमामि णं—प्रतीति करती हूं रोएमिणं—रुचि करती हूं, निग्रन्थं पावयणं—निग्रन्थ प्रवचन पर, एवमेयं—जैसे कहा है, तहमेयं—वैसा ही सत्य है, अवितहमेयं—यह यथार्थ है, जाव—यावत् सावगधम्मं पडिबज्जए—कि मैं श्राविका धर्म को ग्रहण करना चाहती हूं ।

अहाहं देवानुप्रिये—हे देवानुप्रिये ! जैसे आप को सुख हो, मा पडिबन्धं करेइ—प्रमाद मत करो, तएणं—तत्पश्चात्, सा सुभद्रा सत्यवाही—वह सुभद्रा सार्थवाही, तासि अज्जाणं—उन आर्याओं के, अंतिए—समीप, जाव—यावत्, पडिबज्जइ—श्रावक धर्म को स्वीकार करती है, पडिबज्जित्ता—स्वीकार करके, ताओ अज्जाओ—उन साध्वियों को, बंधइ नमंसइ—वन्दन नमस्कार करके, पडिविसज्जइ—वापिस लौट गई ॥६॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह सुभद्रा सार्थवाही उन साध्वियों से केवली (अर्हंत) धर्म सुनकर तथा विचार कर उन्हें वन्दना नमस्कार करती हुई इस प्रकार कहने लगी.—हे साध्वियों ! मैं निग्रन्थ-प्रवचन में श्रद्धा करती हूं, प्रतीति करती हूं, रुचि करती हूं; वैसा आपने कथन किया है वह (तथ्य है) वैसा ही है, सर्वथा सत्य है, इसमें चरा सा भी असत्य नहीं है, यावत् मैं श्राविका-धर्म को स्वीकार करना चाहती हूं ।

साध्वियों ने कहाः—जैसे आपकी आत्मा को सुख हो, वैसा करो, पर अच्छे कार्य में प्रमाद नहीं करना चाहिए । तत्पश्चात् वह सुभद्रा सार्थवाही उन आर्याओं (साध्वियों) के समीप श्रावक-धर्म ग्रहण करती है, यावत् ग्रहण करने के पश्चात् उन्हें

वन्दना नमस्कार करके लौट जाती है । (तब से वह) श्रमणोपासिका का जीवन व्यतीत करने लगती है ॥७॥

मूल--तएणं सुभद्दा सत्थवाही समणोवासिया जाया जाव विहरइ । तएणं तीसे सुभद्दाए समणोवासियाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्त-कालसमए कुटुंबजागरियं जागरमाणीए समाणीए अयमेयारूवे अज्झ-त्थिए जाव संकप्पे समुपज्जित्था—एवं खलु अहं भद्देणं सत्थवाहेण सद्धिं विउलाइ भोगभोगाइं भुञ्जमाणी जाव विहरामि, नो चेव अहं दारगं वा दारियं वा पयामि, तं सेयं खलु ममं कल्ल पाउप्पभायाए जाव जलते भद्दस्स आपुच्छित्ता सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए अज्जा भविस्सा अगाराओ जाव पव्वइत्तए, एवं संपेहेइ, संपेहित्ता, कल्ल जेणेव भद्दे सत्थवाहे तेणेव उवागया, करतल०—जाव एवं वयासी—एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं सद्धिं बहूइं वासाइं विउलाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणी जाव विहरामि, नो चेव णं दारगं वा दारियं वा पयामि ! तं इच्छामि णं देवाणु-प्पिया ! तुब्भेहिं अबभणुण्णाया समाणी सुव्वयाणं जाव अज्जाणं पव्व-इत्तए ॥७॥

छाया—ततः खलु सुभद्रा सार्थवाही श्रमणोपासिका जाता यावद् विहरति । ततः खलु तस्याः सुभद्रायाः श्रमणोपासिकाया अन्यथा कदाचित् पूर्वरात्रापर-रात्रिकाले कुटुम्बजागरिकां जाग्रत्या सत्याः अयमेतद्रूपो—आध्यात्मिकः यावत् संकल्पः समुपपद्यते—एवं खलु अहं भद्रेण सार्थवाहेन सद्धिं विप्लान् भोगभोगान् भुञ्जमाना यावद् विहरामि, नोचैव खलु अहं दारकं वा दारिकां वा प्रजनयामि, तत् श्रेयः खलु मम कल्ये प्रादुर्यावत् ज्वलति भद्रमापृच्छय सुव्रतानामार्याणामस्तिके आर्या भूत्वा अगाराद् यावत् प्रव्रजितुम् । एवं संप्रेक्षते संप्रेक्ष्य कल्ये यत्रैव भद्रः सार्थवाहस्तत्रैवोपागता, करतल०—यावत् एवमवादीत्—एवं खलु अहं देवानुप्रियाः ! युष्माभिः सद्धिं बहूनि वर्षाणि विप्लान् भोगभोगान् भुञ्जाना यावद् विहरामि, नो चैव खलु दारकं वा दारिका वा प्रजनयामि, तत् इच्छामि खलु देवानुप्रियाः ! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती सुव्रतानामार्याणामस्तिके यवत् प्रव्रजितुम् ॥७॥

पदार्थव्ययः—तएणं—तत्पश्चात्, सुभद्दा सत्थवाही समणोवासिया जाया—सुभद्रा सार्थवाही

श्रमणोपासिका बन कर, जाव—यावत्, विहरइ—विचरण करने लगी, तएणं—तत्पश्चात्, तोमे सुभद्दाए समणोवासियाए—उस सुभद्रा श्रमणोपासिका को, अण्णया कयाइ—अन्न किसी समय, पुव्वरत्तावरत्ताकालसमए—मध्य रात्रि में, कुटुम्बजागरियं जागरमाणोए समाणोए—कुटुम्ब जागरण करते हुए, अयमेयाख्वे अञ्जणिए—इस प्रकार के विचार उत्पन्न हुए, जाव—यावत्, संकप्पे समुपज्जित्था—संकल्प उत्पन्न हुआ, एवं खलु—निश्चय ही, अहं—मैं, भद्देणं सत्थवाहेणं सद्धि—भद्र सार्थवाह के साथ विउत्ताइं भोगभोगाइं—विपुल भोग-उभोग भोगती हुई, जाव—यावत्, विहरामि—विचर रही हूँ, नो चेव णं अहं दारगं व दारियं व पयामि—मेरे यहां कोई भी बालक व बालिका का जन्म नहीं हुआ, तं सेयं खलु—इसलिए मुझे उचित है कि, ममं कलं पाउप्पभायाए—कल दिन होते ही, जाव—यावत् जलंते—सूर्योदय के समय, भद्दस—भद्र सार्थवाह को, आपुच्छिता-पूछ कर, सुव्वयाणं अज्जाणं—सुव्रता आर्या के, अंतिए—समीप, अज्जा भवित्ता अगाराओ—आर्या बनकर अनगर होने के हेतु, जाव पव्वइत्ताए—याव प्रवज्या ग्रहण करूँ, एवं सपेहेइ सपेहिता—इस प्रकार विचार किया और विचार करके, जेणेव भद्दे सत्थवाहे—जहां भद्र सार्थवाह था, तेणेव उवागया—वह वहां आई, कसल जाव०—हाथ जोड़कर यावत्, एवं वयासी—इस प्रकार कहने लगी, एवं खलु—इस प्रकार निश्चय ही, अहं देवानुप्पिया—हे देवानुप्रिय मुझे, तुम्हेहि सद्धि—तुम्हारे साथ, बहूइं वासाइं—बहुत वर्षों से, विउत्ताइ भोग भोगभोगाइं भुज्जमाणो जाव—विपुल भोग भोगती हुई यावत्, विहरामि—रह रही हूँ, नो चेव णं दारगं वा दारियं वा पयामि—मेरे वहां कोई बालक या बालिका का जन्म नहीं हुआ, तं—इसलिए, इच्छामि णं—मेरी इच्छा है, देवानुप्पिया—हे देवानुप्रिय, तुम्हेहि—आप से, अज्जभणुण्णाया समाणो—आज्ञा पाकर, सुव्वयाणं अज्जाणं जाव पव्वइत्ताए—सुव्रता आर्य के पास प्रवज्या ग्रहण कर लूँ ॥७॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस सुभद्रा श्रमणोपासिका को किसी दिन अर्ध-रात्रि के समय कुटुम्ब जागरण करते हुए इस प्रकार आध्यात्मिक संकल्प पैदा हुआ कि (मुझे इस प्रकार भद्र सार्थवाह के साथ विपुल भोगोपभोग भोगते काफी समय व्यतीत हो गया है, फिर भी मेरे कोई लड़का व लड़की उत्पन्न नहीं हुआ, इसलिए मुझे यही उचित है कि प्रातः सूर्योदय होते ही कल मैं भद्र सार्थवाह की आज्ञा लेकर साध्वी सुव्रता के समीप जाकर आर्या (साध्वी) बन जाऊँ, अर्थात् दीक्षा अंगीकार कर लूँ ।

इस प्रकार विचार करके प्रातः ही, जहां भद्र सार्थवाह था वहां आई और दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार विनय करने लगी—हे देवानुप्रिय ! आपके साथ विपुल भोग भोगते हुए, मुझे लम्बा समय व्यतीत हो गया है, फिर भी मेरे यहां एक भी बालक या बालिका उत्पन्न नहीं हुआ । हे देवानुप्रिय ! मेरी इच्छा है कि आपकी आज्ञा लेकर

मैं सुव्रता आर्या के चरणों में दीक्षा अंगीकार करूं ॥७॥

टीका—सुभद्रा यह सोचने लगी कि संसार के भोग भोगते हुए लम्बा समय गुजर चुका है मेरे कोई सन्तान उत्पन्न नहीं हुई, मैं कल प्रातः ही अपने पति से आज्ञा लेकर साध्वी सुव्रता जी के पास पाँच महाव्रतों को धारण करूंगी। अगली सुबह वह अपने पति के पास आई, उसने पति को नमस्कार किया फिर अपने मनोगत भाव इस प्रकार प्रकट किये—हे देवानुप्रिय ! मुझे आपके साथ विपुल भोग उपभोग भोगते लम्बा समय व्यतीत हो गया है किन्तु मेरे यहां एक भी बालक व बालिका उत्पन्न नहीं हुई। इसलिये मैं आपकी आज्ञा से साध्वी बनना चाहती हूं। सुभद्र सेठ ने अपनी पत्नी को बहुत तर्क, वितर्क, प्रलोभनों द्वारा सांसारिक सुखों का वास्ता दिया, पर सुभद्रा अपने निश्चय पर अडिग रही। लम्बी वार्तालाप के बाद भद्र सेठ की आज्ञा न चाहते हुए भी आज्ञा देनी पड़ी। प्रस्तुत सूत्र में सुभद्रा सेठानी की गुण ग्रहता, विनम्रता, शालीनता, एवं शिष्टाचार का दिग्दर्शन कराया गया है। साथ में उसकी दीक्षा का कारण उसका वांछन है जिससे दुःखी होकर एक माता होने के नाते उसे सारे सुख बेकार लगते हैं ॥६॥

इस सूत्र से यह सिद्ध होता है कि धर्म सुनने से साभ हो सकता है। धर्म (धार्मिक विचार) सुनकर जीव निर्ग्रन्थ-प्रवचन के प्रति श्रद्धावान हो जाता है। कहा भी है—

जीवदया सच्चवयणं परधनवज्जणं सुसौलं य क्षंतिय पंचिदिय निग्रहा य धम्मस्स मूलाइ ।
अर्थात्—जीवदया, सत्य वचन, पराएधन का त्याग ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग, क्षमा व पंचेन्द्रिय निग्रह ही धर्म का मूल है। ये धर्म-प्राप्ति के श्रद्धा-वाचक शब्द हैं।

एव मेयं, तहमेयं, अवितहमेयं, असंदिद्धमेयं—अर्थात् जो आप (साध्वियों) ने कहा है वह यथार्थ है, सत्य है, शंका रहित है, पूर्ण तथ्य है। धम्मं सोच्छा निसम्म—धर्म को सुनकर हर्ष हुआ अर्थात् धर्म सुन कर विचार उत्पन्न होता है।

पति-पत्नी के परस्पर वार्तालाप में "देवानुप्पिया" शब्द का प्रयोग किया गया है। यह शब्द प्रत्येक व्यक्ति द्वारा ग्रहण करने योग्य है। 'देवानुप्रिय' शब्द जैन शास्त्रों में सामान्य जन से लेकर तीर्थङ्कर तक प्रयुक्त हुआ है ॥७॥

मूल—तएणं से भद्दे सत्थवाहे सुभद्दं सत्थवाहीं एवं वयासी—मा णं तुमं देवानुप्पिए ! इवाणि मुंडा जाव पव्वयाहि, भुंजाहि ताव देवानुप्पिए ! मए सद्धिं विउलाइं भोगभोगइं, ततो पच्छा भुत्तभोइ सुव्वयाणं अज्जाणं जाव पव्वयाहि । तएणं सुभद्दा सत्थवाही भद्दस्स० एययट्ठ नो आढाइ नो परिजाणइ दोच्चं पि तच्चं पि भद्दा सत्थवाही एवं

वयासि—इच्छामि णं देवानुप्पिया ! तुम्हें दे देवमणुगनाया समानी जाव पवइत्तए ! तए णं से भद्दे सत्थवाहे जाहे नो संचाएइ बहूहि आघायणाहिय एवं पन्नवणाय सन्नवणाहिय विणवणाहिय आघवित्तए वा जाव विणवित्तए वा ताहे अकामए चेव सुभद्दाए निक्खमणं अणुमणित्था ॥८॥

छाया—ततः खलु स भद्रः सार्थवाहः सुभद्रां सार्थवाहीं एवमवादीत्—मा खल त्वं देवानुप्रिये ! इदानीं मुञ्छा यावत् प्रव्रज । भृङ्क्ष्व तावद् देवानुप्रिये ! मया सार्द्धं विपुलान् भोगभोगान् ततः पश्चात् भुक्तभोगिनी (सती) सुव्रतानामार्याणामस्तिके यावत् प्रव्रज । ततः खलु सुभद्रा सार्थवाही भद्रस्य० एतमर्थं नो आद्रियते नो परिजानाति द्वितीयमपि तृतीयमपि भद्रा सार्थवाही एवमवादीत्—इच्छामि खलु देवानुप्रिया ! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती यावत् प्रव्रजितुम् । ततः खलु स भद्रः सार्थवाहो यवा नो शक्नोति—बह्वीभिराख्यापनाभिश्च एवं प्रज्ञापनाभिश्च संज्ञापनाभिश्च, विज्ञापनाभिश्च, आख्यापयितुम् वा, यावत् विज्ञापयितुं वा, तदा अकामतश्चेव सुभद्रा । निष्क्रमणमन्वमन्यत ॥८॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से भद्दे—वह भद्र, सत्थवाहे—सार्थवाह, सुभद्दं सत्थवाही—सुभद्रा सार्थवाही से, एवं—इस प्रकार, वयासी—कहने लगा, मा णं तुम देवानुप्पिया—हे देवानुप्रिये तुम मत ग्रहण करो, इदानीं मुञ्छा—तुम मुण्डित, जाव—यावत्, पवइयाहि—प्रव्रजित होना, भुंजाहि ताव—तब तक, देवानुप्पिए—देवानुप्रिये, मए—मेरे, सद्धि—साथ, बिउलाइं भोगभोगाइं—विपुल भोग उपभोग कर, ततो पच्छा—तत्पश्चात्, भुत्तभोइ—भुक्त भोगी होकर, सुववयाणं अज्जाणं जाव पवइयाहि—सुव्रता आर्या के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण कर लेना, तएणं—तत्पश्चात्; सुभद्रा सत्थवाही—सुभद्रा सार्थवाही, भद्दस—भद्र की, एयमद्धं—इस बात को सुनकर, नो आवाइ—उसे न आदर दिया, नो परिजानइ—न ही अच्छा समझा, दोच्छं पि—दो बार, तच्छं पि—तीन बार, भद्दा सत्थवाही—भद्रा सार्थवाही, एवं वयासी—इस प्रकार कहने लगी, इच्छामि णं देवानुप्पिया—हे देवानुप्रिय मेरी इच्छा है कि, तुम्हें—आप से, अडभणुगनाया समानी—आज्ञा पाकर, जाव—यावत्, पवइत्तए—दीक्षा स्वीकार करूं, तएणं—तत्पश्चात् से भद्दे सत्थवाहे—वह भद्र सार्थवाह, जाहे—जब, नो संचाएइ—असमर्थ रहा, बहूहि—बहुत से, आघयणाहिय—सामान्य वचनों से, एवं—और, पन्नवणाय—विशेष वचनों से, सन्नवणाहिय—प्रलोभनों से, विणवणाहिय—प्रेमपूर्वक वचनों से, आघवित्तए वा जाव विणवित्तए वा—प्रलोभन देने से, प्रेम पूर्वक समझाने से, ताहे—तब, अकामए चेव—इच्छा न होने पर भी, सुभद्दाए निक्खमणं—उसने सुभद्रा को दीक्षित होने की कर दी, अणुमणित्था—भद्रासार्थवाह ने अपनी पत्नी सुभद्रा सार्थवाही को आज्ञा प्रदान कर दी ॥८॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् (सुभद्रा की बात को सुन कर) भद्र सार्थवाह इस प्रकार कहने लगा 'हे देवानुप्रिये ! इस समय तुम मण्डित यावत् साध्वी मत बनो. अपितु पहले की तरह मेरे साथ विपुल भोग उपभोग भोगो । फिर भुक्तभोगी होकर सूत्रता आर्या के समीप जाकर यावत् दीक्षित हो जाना । ऐसी बात सुनकर भद्रा सार्थवाही ने उन वचनों को अच्छा नहीं माना । भद्रसार्थवाह को दो तीन बार इस प्रकार कहा— 'हे देवानुप्रिय ! मैं आपकी आज्ञा से दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूँ । तत्पश्चात् जब सुभद्र सार्थवाह विशेष वचनों, प्रलोभनों, स्नेह वाक्यों से समझाने में असमर्थ रहा, तब इच्छा न होते हुए भी उसने सुभद्रा को दीक्षा लेने की आज्ञा प्रदान कर दी ॥८॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र द्वारा भद्र सेठ के पत्नी के प्रति स्नेह का भी पता चलता है । तभी तो वह न चाहते हुए भी उसे दीक्षा की आज्ञा दे देता है । सुभद्रा सार्थवाही को दो-तीन बार ऐसा कहना पड़ता है । भद्र सेठ की उदासी उसके राग का प्रतीक है ।

इस सूत्र से यह भी सिद्ध होता है कि वैरागी को उसके घर वाले या संरक्षक अनुकूल या प्रतिकूल वचनों से समझा बुझा तो सकते हैं, पर ऐसे कार्य में वैरागी आत्मा से मारपीट अच्छी नहीं होती । क्योंकि मारपीट से मन के विचारों पर कोई असर नहीं पड़ता । वैरागी का कर्तव्य है कि वह भी अपने माता, पिता, संरक्षकों और निकट सम्बन्धियों की आज्ञा लेकर साधु-जीवन ग्रहण करे, घर से पलायन न करे ॥८॥

मूल—तएणं से भद्दे सत्थवाहे विउलं असणं ४ उवक्खडांवेइ, मित्त-
नाइ जाव आमंतेइ, पच्छा भोयणवेलाए जाव मित्तनाइ० सक्कारेइ
सम्माणेइ, सुभद्दं सत्थवाहिं ण्हायं जाव पायच्छित्तं सव्वालंकारविभूसियं
पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरुहेइ । तओ सा सुभद्दा सत्थवाही मित्तनाइ
जाव संबंघिसंपरिवुडा सव्विड्ढीए जाव रवेणं वाणारसीनयरीए मज्झं
मज्झेणं जेणेव सुवयाणं अज्जाण उवस्सए तेणेव उवागच्छइ, उवा-
गच्छित्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं ठवेइ, सुभद्दं सत्थवाहिं सीयाओ
पच्चोरुहेइ ॥९॥

छाया—ततः खलु स भद्रः सार्थवाहो विपुलम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यम् उपस्कारयति मित्र-
ज्ञातिं यावदामन्त्रयति । ततः पश्चात् भोजनवेलायां यावत् मित्रज्ञातिः सत्करोति सम्मानयति,
सुभद्रा सार्थवाही स्नातां यावत् कृतप्रायश्चित्तां सर्वालङ्कारविभूषितां पुरुषसहस्रवाहिनीं शिविकां
दूरोहयति । ततः सा सुभद्रा सार्थवाही मित्रज्ञातिः यावत् सम्बन्धिसंपरिवृता सर्वश्रद्धया यावत्
रथेण वाराणसीनगरां मध्यध्येन यत्रैव सुव्रतानां आर्याणामुपाश्रयस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य पुरुष-
सहस्रवाहिनीं शिविकां स्थापयति, सुभद्रा सार्थवाही शिविकातः प्रत्यवरोहति ॥६॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, से भद्रे सत्यवाहे—उस भद्र सार्थवाह ने, बिउलं असणं ४—
चार प्रकार का अशन आदि विपुल भोजन, उवक्खडावेइ—तैयार करवाया, मित्तनाइ—मित्रों व
रिश्तेदारों, जाव—यावत्, आमन्तेइ—आमन्त्रित किया, पच्छा भोयणवेलाए—फिर भोजन के
पश्चात्, सत्कारेइ सम्मानेइ—उनका सत्कार सम्मान किया, सुभद् सत्यवाहि—तब सुभद्रा
सार्थवाही को, ण्हायं जाव पायच्छित्तं सव्वालंकारविभूषितं—स्नान करवाया प्रायश्चित् आदि
करवाया (मंगल कार्य करवाये) फिर सब वस्त्र अलंकारों से विभूषित कर, पुरिससहस्रवाहिणि
सीयं—हजारों पुरुषों द्वारा उठाने योग्य शिविका (पालकी) पर, दुरूहेइ—बिठाया, तओ—तब,
सा सुभद्रा सत्यवाही—वह सुभद्रा सार्थवाही, मित्तनाइ—मित्रों व रिश्तेदारों से, जाव—यावत्,
संबन्धिसंपरिवुडा—सम्बन्धियों से घिरी हुई, सव्विड्ढीए—सर्व श्रद्धा से युक्त, जात्ता—यावत्,
रथेण—वेग पूर्वक, वाणारसीनयरीए—वाराणसी नगरी के, मज्झं मज्जेण—बीचों बीच होती हुई,
जेण्हे—जहां, सुव्वयाणं अज्जाणं—सुव्रता आर्या थी, उवस्सए—उपाश्रय था, तेण्हे उपागच्छइ—
वहां आई और, उपागच्छता—आकर, पुरिससहस्रवाहिणि सीयं ठवेइ—हजारों पुरुषों द्वारा
उठाई जाने के योग्य शिविका को नीचे रखवाया, पच्छोच्छेइ—और वह स्वयं नीचे उतर गई ॥६॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस भद्र सार्थवाह ने विपुल अशन आदि चार प्रकार का
भोजन तैयार करवाया । फिर मित्रों व रिश्तेदारों को भोजन के लिए आमन्त्रित
किया । भोजन कराने के पश्चात् सभी का सम्मान-सत्कार किया । फिर सुभद्रा सार्थ-
वाही को स्नान करवाया गया । प्रायश्चित् आदि करवाया गया फिर उसे (सुभद्रा
सार्थवाही को) वस्त्रों-अलंकारों व आभूषणों से सुसज्जित करके; हजार पुरुषों द्वारा उठाने
योग्य पालकी में बिठाया । तब वह सुभद्रा सार्थवाही मित्रों व रिश्तेदारों से घिरी,
सर्व श्रद्धा से युक्त होकर वेगपूर्वक चलती हुई और वाराणसी नगरी के बीचों-बीच
होती हुई जहां सुव्रता आर्या का उपाश्रय था वहां पहुंची और पहुंच कर हजारों पुरुषों
द्वारा उठाई गई पालकी को नीचे रखवाया और स्वयं उससे नीचे उतरी ॥६॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में सुभद्रा सार्थवाही का अपने पति से वार्तालाप व दीक्षा प्रसंग का विस्तृत वर्णन है । पति ने दीक्षा की आज्ञा प्रदान कर दी । उस समय की परम्परा अनुसार भद्र सार्थवाह ने अपने रिश्तेदारों व मित्रों को इकट्ठा किया और उन्हें भोजन करवाया । फिर उनका सम्मान सत्कार किया । अपनी पत्नी सुभद्रा को स्नान करवाया, वस्त्र आभूषणों से उसे अलंकृत किया । फिर एक हजार मनुष्यों के उठाने योग्य सुन्दर शिबिका पर सुभद्रा सवार हुई । वाराणसी नगरी के बीचों बीच बड़े ठाट के साथ होती हुई साध्वी सुव्रता के उपाश्रय के समीप पहुँची । पालकी को नीचे रखा गया और वह स्वयं नीचे उतर गई । ६॥

तएणं भद्रे सत्थवाहे सुभद्वं सत्थवाहिं पुरओ काउं जेणेव सुव्वया
अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता सुव्वयाओ अज्जाओ वंदइ
नमंसइ, वंदित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवानुप्पिया ! सुभद्वं सत्थ
वाही मम भारिया इट्ठा कंता जाव मा णं वाइया पित्तिया सिमिया
सन्निवाइया विविहा रोगातंका फुसंतु, एसणं देवानुप्पिया ! संसारभउ-
व्विग्गा, भीया जम्मणमरणाणं, देवानुप्पियाणं अंतिए मंडा भवित्ता जाव
पव्वयाइ, तं एयं अहं देवानुप्पियाणं सीसिणीभिव्वं दलयाणि, पडिच्छंतु
णं देवानुप्पिया ! सीसिणीभिव्वं । अहासुहं देवानुप्पिया ! मा पडिबंघं । १०।

ततः खलु भद्रः सार्थवाहः सुभद्रां सार्थवाहीं पुरतः कृत्वा यत्रैव सुव्रता आर्याः तत्रैवोपागच्छति, उपाश्रय सुव्रता आर्या बन्धते नमस्यति, वन्दित्वा एवमवादीत्—एवं खलु देवानुप्रियाः ! सुभद्रा सार्थ-
वाही मम भार्या इष्टा कान्ता यावत् मा खलु वातिकाः पंसिकाः श्लेष्मिकाः सान्निपातिका विविधाः
रोगातज्ज्वाः स्पृशन्तु, एषा खलु देवानुप्रिया ! संसारभयोद्विग्ना, भीता जन्ममरणाभ्यां, देवानुप्रिया-
णामन्तिके मुण्डा भूत्वा यावत् प्रव्रजति ! तद् एतामहं देवानुप्रियाभ्यो वदामि, प्रतीच्छन्तु ॥ खलु देवानु-
प्रियाः ! शिष्याभिक्षाम् । यथासुखं देवानुप्रियाः मा प्रतिबन्धम् ॥ १०॥

पदार्थावयवः—तएणं—तत्पश्चात्, भद्रे सत्थवाहे—भद्र सार्थवाह ने, सुभद्वं सत्थवाहिं—
भद्रा सार्थवाही को, पुरओ काउं—आगे किया, जेणेव—जहाँ, सुव्वया अज्जा—सुव्रता आर्या थी,
तेणेव—वहाँ पर, उवागच्छइ उवागच्छिता—आए और आकर, सुव्वयाओ अज्जाओ—सुव्रता
आर्या को, वंदइ नमंसइ—वन्दन नमस्कार किया, वंदित्ता नमंसित्ता—वन्दन नमस्कार करने के
पश्चात् एवं वयासी—इस प्रकार कहा, एणं खलु—इस प्रकार निश्चय ही, देवानुप्पिया—हे देवानु-
प्रिय, सुभद्रा सत्थवाही—यह सुभद्रा सार्थवाही, मम भारिया—मेरी पत्नी है मुझे, इट्ठा—इष्ट है,

कंता—प्रिय है, जाव मा थं—यावत् न, वाइया—वात, पित्तिया—पित्त, सिंभिया—कफ, सन्निपात—सन्निपात, विविहा—विविध, रोगातका—रोगों की पीड़ा, फुसंतु—सताए, इस बात का ध्यान रखा है कि, एसणं—इस प्रकार, देवानुप्पिया—हे देवानुप्रिये, संसारभउविग्गा—सांसारिक भय से, भीया—डरी हुई है, जम्मणमरणाणं—जन्म-मरण के दुःखों से, देवानुप्पियाणं—हे देवानुप्रिये, अत्तिए—यह आपके समीप, मुंडा भवित्ता—मुण्डित होकर, जाव—यावत्, पव्वयाइ—प्रवज्या ग्रहण करना चाहती है, तं एयं—इसलिए, अहं—मैं, देवानुप्पियाणं—देवानुप्रिये, सोसिणीभिव्खं—शिष्या की भिक्षा, इलयाणि—आपको देता हूं, पडिच्छतु णं—आप इसे स्वीकार करें, देवानुप्पिया—हे देवानुप्रिये, सोसिणीभिव्खं—इस शिष्या की भिक्षा के रूप में स्वीकार करें, अहासुहं देवानुप्पिया—हे देवानुप्रिय जैसी आप की आत्मा को सुख हा वैसा करो, मा पडिबधं—शुभ-काम में विलम्ब नहीं करना चाहिये ॥१०॥

मूलार्थ—पालकी से उतरते ही, भद्र सार्थवाह ने सुभद्रा सार्थवाही को आगे किया । वे (सभी) वहां पहुंचे जहां सुव्रता आर्या विराजमान थी । सुव्रता आर्या को वन्दन नमस्कार करने के पश्चात् भद्र सार्थवाह इस प्रकार कहने लगा - “हे देवानुप्रिये ! सुभद्रा सार्थवाही मेरी धर्मपत्नी है जो मुझे इष्ट है, प्रिय है यावत् मैंने इसका वात, पित्त, कफ, सन्निपात आदि विविध रोगों से सुरक्षित रखने का ध्यान रखा है, अर्थात् रोगों से इसकी रक्षा की है । अब यह संसार के भय से जन्म-मरण के दुःखों से डरी हुई है । हे देवानुप्रिये ! इस यह सुभद्रा सार्थवाही आप के समीप मुण्डित होकर प्रवज्या ग्रहण करना चाहती है, अतः हे देवानुप्रिये ! मैं आपको सुभद्रा सार्थवाही को शिष्या के रूप में भिक्षा के रूप में प्रदान करता हूं । हे देवानुप्रिये ! आप इस भिक्षा को स्वीकार करें ।

तब आर्या सुव्रता ने कहा - हे देवानुप्रिय ! जैसे आप की आत्मा को सुख हो वैसे करो, पर शुभ काम में विलम्ब अच्छा नहीं ॥ १०॥

टीका—जब सुभद्रा पालकी से उतरी तो भद्र सार्थवाह ने सुभद्रा को आगे किया, आप पीछे-पीछे साध्वी जी के चरणों में पहुंचा । वन्दना नमस्कार करने के पश्चात् भद्र सार्थवाह ने स्वयं साध्वी सुव्रता से प्रार्थना की, कि मेरी प्रिय पत्नी सुभद्रा मुझे बहुत प्रिय है पर यह जन्म-मरण रूपी दुःख की परम्परा का अन्त करने के लिए श्रमणी बनना चाहती है । मैं आपको इसे भिक्षा के रूप में भेंट करता हूं । कृपया इसे शिष्या बना कर अनुग्रहीत करें । “ऐसे वचन सुनकर साध्वी सुव्रता ने कहा”—हे देवानुप्रिय ! जैसे आपकी आत्मा को सुख हो वैसे करो ।

दीक्षा को आज्ञा यही पति से ली गई है, जब पत्नी को वैराग्य भाव उत्पन्न हो जाए, तब पति की आज्ञा से स्त्री को दीक्षा धारण करनी चाहिये। इस सूत्र में सुभद्रा सार्थवाही की वैराग्य-भावना का वर्णन किया गया है और शिष्य को भिक्षा रूप कहा गया है। पत्नी को अन्य धार्मिक कार्यों में भी पति की आज्ञा लेनी चाहिये। पति का भी यह कर्तव्य है कि वह पत्नी को हर प्रकार से समझा-बुझा कर अच्छे काम की आज्ञा प्रदान करे। इस सूत्र में पति-पत्नी के कर्तव्यों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। भद्र सार्थवाह के शब्द उसके कर्तव्य की साक्षी हैं :—

एवं खलु देवाणुप्पिया - सुभद्रा सत्थवाही ममं भारिया इट्ठा, कंता, जाव मा णं वातिया, पित्तिया, सिप्पिया, सन्निवाइया, विविहा रोगातंका फुसंतु—अर्थात् हे देवानुप्रिये ! मुझे अपनी पत्नी प्यारी है मैंने इसकी बात, पित्त, कफ, सन्निपात के विभिन्न रोगों से रक्षा की है। इस बात से भद्र सेठ का पवित्र स्नेह व कर्तव्य - परायणता झलकती है। सारा समारोह साध्वी सुव्रता के उपाश्रय में सम्पन्न हुआ। प्राचीन काल में भी सधु साध्वियों के ठहरने के स्थान को 'उपाश्रय' कहा जाता था। भगवती सूत्र के आठवें शतक में लिखा है। समणोवस्सए—अर्थात् श्रमणों का उपाश्रय यह संज्ञा स्वयं समझ लेनी चाहिये ॥१०॥

उत्थानिका :—सुभद्रा सार्थवाही ने सुव्रता आर्या के सम्मुख दीक्षा से पूर्व जो कार्य किया, उसका वर्णन सूत्रकार ने किया है—

मूल—तएणं सा सुभद्रा सत्थवाही तुट्ठा सुव्वयाहिं अज्जाहिं एवं वुत्ता समाणी हट्ठं सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता, सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता जेणेव सुव्वयाओ अज्जाओ तेणेव उवा-गच्छइ, उवागच्छित्ता सुव्वयाओ अज्जाओ तिव्वुत्तो आयाहिणपयाहि-णेणं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—आलित्तेणं ! भन्ते ! जहा देवाणंदा तहा पव्वइया जाव अज्जा जाया जाव गुत्त बंभयारिणी ॥११॥

छाया—ततः खलु सा सुभद्रा सार्थवाही सुव्रताभिरार्याभिरवमुक्ता सती स्वयमेव आभरणमाल्यालङ्कारमवमुञ्चति, अवमुच्य स्वयमेव पञ्चमुट्टिकं लोचं करोति, कृत्वा यत्रैव सुव्रता आर्या तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सुव्रता आर्यास्त्विच्छ्रित्वा आदक्षिणप्रदणिणेन वदन्ते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा, एवमवाबोत्—आदीप्तः खलु भदन्त ! यथा देवानग्वा तथा प्रव्रजिता यावत् आर्या जाता यावद् गुप्तब्रह्मचारिणी ॥११॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, सा सुभद्रा सत्थवाही—उस सुभद्रा सार्थवाही ने, तुट्ठा—प्रसन्न होकर, सुव्वयाहिं अज्जाहिं—सुव्रता आर्या द्वारा, एवं वुत्ता समाणी—इस प्रकार कहने पर,

हृदा—प्रसन्न हुई तथा, समयेव—स्वयं ही, आभरणमलालंकारं ओमुयइ—आभरणों अलंकारों का त्याग करती है, ओमुइत्ता—और त्याग कर, समयेव—स्वयं ही, पंचमुट्ठयं लोयं करेइ—पांच मुष्टि लोच करती है, करित्ता—लोच करने के पश्चात्, जेणेव—जहां पर, सुव्वयाओ अज्जाओ—सुव्रता आर्या थी, तेणेव उवागच्छइ—वहीं आती है, उवागच्छित्ता—वहां आकर, सुव्वयाओ अज्जाओ—सुव्रता आर्या को, तिखुत्ते—तीन बार, आयाहिणपयाहिणेणं—प्रदक्षिणा करती हुई, वंदइ नमसइ—वन्दना-नमस्कार करती है, वंदित्ता नमसित्ता—वन्दन नमस्कार करने के पश्चात्, एवं वयासी—इस प्रकार कहने लगी, आलित्तेणं भन्ते—हे गुरुणी जी ! यह संसार जन्म-मरण की आग में जल रहा है, जहा—जैसे, देवाणंदा—देवानंदा ब्राह्मणी (भगवती सूत्र के अनुसार वर्णन जानना चाहिये), तहा—वैसे ही, पव्वइया—प्रवज्या ग्रहण करती है, अर्थात् साध्वी बन गई, जाव—यावत्, अज्जा—आर्या, जाया—बन गई, जाव—यावत्, गुत्ता बंभयारिणी—गुप्त ब्रह्मचारिणी हो गई ॥११॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह सुभद्रा सार्थवाही साध्वी सुव्रता के ऐसा कहने पर प्रसन्न हुई जोर उसने स्वयं ही गृहस्थ वेश के वस्त्रों अलंकारों को उतार दिया । अपने हाथों से स्वयेव ही पंचमुष्टि लोच किया । लोच करने के पश्चात् जहां सुव्रता आर्या थी वहां आती है आकर सुव्रता आर्या की तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दना नमस्कार करती है । और फिर इस प्रकार कहने लगी 'संसार में आग लगी है संसार दुःखों की आग से जल रहा है' जैसे देवानंदा ब्राह्मणी ने प्रवज्या ग्रहण की थी वैसे उस सुभद्रा सार्थवाही ने भी दीक्षा ग्रहण करना । वह भी यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी हो गई ॥११॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में सुभद्रा सार्थवाही द्वारा दीक्षा लेने का वर्णन है । यह वर्णन भगवती सूत्र में वर्णित देवानंद ब्राह्मणी की तरह है । इस सूत्र में सुभद्रा की वैराग्य भावना का दिग्दर्शन कराया गया है । साथ में बताया गया है कि सुभद्रा ने स्वयं ही पंचमुष्टि लोच किया । फिर उसने अपनी गुरुणी आर्या सुव्रता से पंच महाव्रत धारण किये ॥११॥

उत्थानिकाः—दीक्षा ग्रहण करने के बाद क्या हुआ ? अब इस का वर्णन सूत्रकार ने किया है ।

मूल—तएणं सा सुभद्रा अज्जा अन्नया कयाइ बहुजणस्स चेडुरुवे संमुच्छिया जाव अज्झोववण्णा अब्भंगणं च उव्वट्ठणं फासुयपाणं च अलत्तगं च कंकणाणि य अंजणं च वण्णगं च चुण्णगं च खेल्लगाणि य

खज्जलगाणि य खीरं च पुष्पाणि य गवेसइ, बहुजनस्स दारए वा दारियाए वा कुमारे य कुमारियाए य डिभए य डिभियाओ य अप्पेगइ-याओ अब्भंगेइ, अप्पेगइयाओ उव्वट्ठेइ, एवं अप्पेगइयाओ फासुयपाण-एणं ण्हावेइ, अप्पेगइयाणं पाए रयइ, अप्पेगइयाणं उट्ठे रयइ, अप्पेगइ-याणं अच्छीणि अंजेइ, अप्पेगइयाणं उसुए करेइ, अप्पेगइयाणं तिलए करेइ, अप्पेगइयाओ दिगिंदलए करेइ, अप्पेगइयाणं पंतियाओ करेइ, अप्पेगइयाइं छिज्जाइ करेइ, अप्पेगइया वन्नएणं समालभइ, अप्पेगइया च्चन्नएणं समालभइ, अप्पेगइयाणं खेलणगाइं दलयइ, अप्पेगइयाणं खज्जलगाइं दलयइ, अप्पेगइयाओ खीरभोजनं भुंजावेइ, अप्पेगइयाणं पुष्पाइं ओमुयइ, अप्पेगइयाओ पाएसु ठवेइ, अप्पेगइयाओ जंघासु करेइ, एवं ऊरसु, उच्छंगे, कढीए, पिट्ठे, उरसि, खधे, सीसे य करतलपुडेणं गहाय हलउलेमाणी-हलउलेमाणी आगायमाणी-आगायमाणी परिगाय-परिगाय पुत्तपिवासं च धूयपिवासं च नत्तुयपिवासं च नत्तिपिवासं च पच्चणुभवमाणी विहरइ ॥१२॥

छाया—ततः खलु सा सुभद्रा आर्या अन्यदा कदाचित् बहुजनस्य चेटरूपे समूच्छिता यावद् अध्युपपन्ना अभ्यञ्जनं च उद्वर्तनं च प्रासुकपानं च असक्तकं च कङ्कुणानि च अञ्जनं च वर्णकं च चूर्णकं खेलकानि च खज्जलकानि च क्षीरं च पुष्पाणि च गवेषयति, गवेषयित्वा बहुजनस्य दारकान् दारिकाः व कुमारान् च कुमारिकाश्च डिम्भाश्च डिम्भिकाश्च अप्येककान् अभ्यङ्गयति अप्येककान् उद्वर्तयति, एवम् अप्येककान् प्रासुकपानकेन स्नपयति, अप्येककानां पादौ रञ्जयति, अप्येककानाम् ओष्ठौ रञ्जयति, अप्येककानाम् अक्षिणी अञ्जयति अप्येककानाम् इष्णुकान् करोति, अप्येककानां तिलकान् करोति, अप्येककान् दिलिन्दलके करोति, अप्येककानां पङ्क्तयोः करोति, अप्येककान् छेद्यान् (छिल्लान्) करोति, अप्येककान् वर्णकेन समालभते, अप्येककान् चूर्णकेन समालभते, अप्येककेभ्यः खेल-कानि ददाति, अप्येककेभ्यः खज्जलकानि ददाति, अप्येककान् क्षीरभोजनं भोजयति, अप्येककानां पुष्पाणि अवमुञ्चति, अप्येककान् पादयोः स्थापयति, अप्येककान् जङ्गयोः करोति, एवं ऊर्वोः, उत्सङ्गे, कट्यां पृष्ठे, उरसि, स्कन्धे, शीर्षे च करतलपुटेन गृहीत्वा हलउल्लयन्ती २ आगायन्ती २ परिगा-यन्ती २ पुत्रपिपासां च दुहितृपिपासां च नप्तृकपिपासां च नप्त्रीपिपासां च प्रत्यनुभवन्ती विहरति ॥१२॥

पदार्थावयवः—तएणं—तत्पश्चात् सा सुभद्रा अज्जा—उस सुभद्रा आर्या को, अन्नया कयाइ—अन्य किसी समय, बहुजणस्स—बहुत लोगों के, चेडुरुवे—बालकों पर, संमुच्छया—मूर्छा—आसक्ति भाव वाली, जाव—यावत्, अज्झोववण्णा—अतीव आसक्त हो गई, बालकों के निमित्त, अवसंगं च—मालिश के लिये तेल आदि, उव्वट्टणं च—उद्धर्तन, फासुयपाणं च—प्रासुक जल, अलत्तगं च—अलतक, कंकणाणि य—कंगन, अंजणं च—अंजन, वण्णगं च—चन्दन आदि, चुण्णगं च—चूर्णक, खेत्तलगाणि य—खिलौने, खज्जल्लगाणि य—खाद्य पदार्थ खाजा आदि, खीरं च—क्षीर, पुक्काणि य—पुष्पों का, गवेसइ—गृहस्थों के घरों से गवेषणा करती है और, गवेसित्ता—गवेषणा करके, बहुजणस्स दारए वा—बहुत लोगों के बालकों को, दारिया व—बालिकाओं को, कुमारे य—कुमारों को, कुमारियाए य—कुमारियों को, डिभए य—छोटे बच्चों, डिभियाओ य—बच्चियों, अप्पेगइयाओ—उन् में से किसी को, अब्भगेइ—हाथ - पांव दवाती है, अप्पेगइयाओ उव्वट्टे इ—किसी के बटना मलता है, एवं—इस प्रकार, अप्पेगइयाओ फासुयपाणएणं—किसी को प्रासुक जल से, प्हावेइ—स्नान कराती है, अप्पेगइयाणं पाए रयइ—किसी के पैरों पर रंग चढ़ाती है, अप्पेगइयाणं उट्टे रयइ—किसी के ओष्ठ रंगती है, अप्पेगइयाणं अच्छीणि अंजेइ—किसी की आंखों में अञ्जन लगाती है, अप्पेगइयाणं उसुए करेइ—किसी के मस्तक पर बाण के आकार का तिलक लगाती है, अप्पेगइयाणं तिलए करेइ—किसी के माथे पर तिलक लगाती है, अप्पेगइयाओ विंगिदलए करेइ—किसी को हिंडोले में बिठलाती है, अप्पेगइयाणं पत्तियाओ करेइ—किन्हीं को पंक्ति में बैठाती है, अप्पेगइयाइं छिज्जाइं करेइ—किसी को अलग-अलग बिठलाती है, अप्पेगइय वन्नएणं समालभइ—किसी को वर्णक विशेष प्रकार के चन्दन का लेप करती है, अप्पेगइया चुन्नएणं समालभइ—किसी को चूर्ण का लेप करती है, अप्पेगइयाणं खेत्तलगाइं दलयइ—किसी को खिलौने गुड़िया आदि देती है, अप्पेगइयाणं खज्जल्लगाइं दलयइ—किसी को खाजा आदि खाद्य पदार्थ देती है, अप्पेगइयाओ खीरभोयणं भुंजावेइ—किसी को क्षीर का भोजन कराती है, अप्पेगइयाणं पुक्काइं ओमुयइ—किसी पर फूल फेंकती है, अप्पेगइयाओ पाएसु ठवेइ—किसी को अपने दोनों पांवों पर बिठलाती है, अप्पेगइयाओ जंघासु करेइ—किसी को अपनी जंघाओं पर बिठलाती है, एवं—इस प्रकार, ऊरुसु—गोडे पर, उच्छंगे—गोद में, कट्ठीए—कटि पर, पिट्टे—पीठ पर, उरसि—छाती पर, खंधे—कन्धे पर, सीसे य—सिर पर बिठलाती है; करत्तलपुडेणं—दोनों हाथों से, गहाय—उठा कर, हलउलेमाणी—हलउलेमाणी—हुलराती हुई, आगाय-माणी—आगायमाणी—बार-बार गाती है, परिगायमाणी—परिगायमाणी—ऊँचेस्वर से गाती है—लोरियां देती है, पुत्तपिवासं च—अपनी पुत्र की प्यास को, धूयपिवासं च—पुत्री की पिपासा को, नत्तुयपिवासं च—दोहते की इच्छा को एवं, नत्तिपिवासं च—दोहती की प्यास को, पच्च-गुहभवमाणी—प्रत्यक्ष अनुभव करती हुई, विहरइ—विचरण करने लगी ॥१२॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह सुभद्रा आर्या (साध्वी), किसी अन्य समय, बहुत लोगों के

बालक, बालिकाओं के प्रति मूर्च्छित भाव से आसक्त हो गई । वह बालकों को बाहर से, भिक्षा रूप में लाये हुए उबटन आदि लगाकर प्रासुक जल से स्नान कराने लगी । वह अलता, अजन; वर्णक, चूर्णक, खिलौनों व खाद्य पदार्थों खीर और पुष्पों की गृहस्थों के घरों में गवेषणा करती है, करने के पश्चात् बहुत से लोगों के बालक, बालिकाओं, कुमार; कुमारियों, डिम्भो; लोटे बच्चे बच्चियों में से किसी के हाथ पांव दबानी है, किसी के उबटन लगाती है इसी तरह किसी बालक बालिका को प्रासुक जल से स्नान कराती है किसी बालक के पांव पर रंग चढ़ाती है, किसी बालक के होंठ रंगता है, किसी बालक की आंख में अंजन डालता है, किसी बालक को इधुक बाण के आकार का तिलक लगाती है किसी किसी बालक के मस्तक पर तिलक लगाती है । किसी बालक को खेलने के लिए गुड़िया देती है; किसी बालक को बालकों की पक्ति में बिठलाती है; किसी बालक को चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों का लेप करती है; किसी बालक को चूर्णक का लेप करती है, किसी बालक को खेलने के लिए खिलौने देती है, किसी बालक को खाद्य पदार्थ (खाजा) देती है किसी बालक को खाने के लिए खीर देती है; किसी बालक पर फूल फेंकता है, किसी बालक को अपने दोनों पांवों पर बिठलाती है, किसी बालक को जंघाओं पर बिठलाती है, किसी बालक को उदर स्थल पर, किसी को गोद में ग्रहण करती है, किसी बालक को कटि प्रदेश से ग्रहण करती है, किसी बालक को पीट पर बिठलाती है, किसी बालक को छाती पर बिठलाती है, किसी बालक को कन्धे पर बिठलाती है, किसी बालक को सिर पर बिठलाती है किसी बालक को दोनों हाथों से पकड़ कर गीत गाती है वह किसी बालक बालक के लिये लोरियां गाती है इस प्रकार वह (सुभद्रा आर्या) अपनी पुत्र-पिपासा, पुत्री-पिपासा, पौत्र-पौत्री पिपासा, एवं दोहते दोहतियों की प्यास का प्रत्यक्ष अनुभव करती हुई जीवन यापन करने लगी है ॥१२॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि सुभद्रा आर्या ने पंच महाव्रत ग्रहण कर साध्वी जीवन अंगीकार तो कर लिया, पर उसकी माता बनने की अभिलाषा फिर भी जीवित रही । वह किसी भी तरह अपने मन को वीतराग प्ररूपित धर्म की ओर न लगा सकी । ममता के वश वह अन्य लोगों के बच्चे व बच्चियों को माता जैसा लाड़ दुलार देने लगी । वह गृहस्थों के बच्चों में सभी सांसारिक नाते रिश्ते देखने लगी । इस तरह सुभद्रा भाव दृष्टि से उन बच्चों पर आसक्त हो गई ।

सूत्रकर्ता ने "गवेसइ" पद से सिद्ध किया है कि वह साध्वी-जीवन के विपरीत क्रियों में अकेली करती थी। फासुवराणं—पद से यह बताया गया है कि वह बालक बालिकाओं को प्रासुक जल से स्नान कराती थी। पुष्पाइ ओमुई—सूत्र से पुष्ट होता है कि वह सचित पुष्पों से नहीं, बल्कि कागज के फूलों से बच्चों का मनोरंजन करती थी। ऐसे वनावटी पुष्प सुगन्धित पदार्थ लगा कर तैयार किये जाते थे। क्योंकि ओमुई—पद इसी आर संकेत करता है। करतलपुडेण गहाय हलउल-साणी—पद से माता और पुत्र का स्वाभाविक स्नेह सिद्ध किया गया है।

प्रस्तुत सूत्र में सुभद्रा आर्या की मनःस्थिति का स्पष्ट चित्रण किया गया है कि एक वांझ स्त्री बच्चे के लिए किस तरह लालायित रहती है ? साध्वी बनकर भी वह ममता नहीं त्याग सकी। इस सूत्र के माध्यम से साध्वियों को राग-द्वेष से बचे रहने का निर्देश किया गया है ॥१२॥

उत्थानिका :—जब सुभद्रा आर्या इस प्रकार की क्रियाएँ करने लग गईं तो अन्य साध्वियों ने सुभद्रा आर्या को क्या कहा ? सुभद्रा ने जो किया उसका वर्णन प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने किया है :—

मूल—तएणं ताओ सुवयाओ अज्जाओ सुभदे अज्जं एवं वयासी—
अम्हे णं देवाणुप्पिए ! समणीओ निग्गंथीओ इरियासमियाओ जाव गुत्त-
बंभयारिणीओ नो खलु अम्हं कप्पइ जातककम्मं करित्तए, तुमं च णं
देवाणुप्पिया ! बहुजणस्स चेडरूवेसु मुच्छिया जाव अज्झोववन्ता जाव
नत्तिपिवासं वा पच्चणुब्भवमाणी विहरसि, तं णं तुमं देवाणुप्पिया एयस्स
ठाणस्स आलोएहि जाव पायच्छित्तं पडिवज्जाहि । तएणं सा सुभद्दा
अज्जा सुवयाणं अज्जाणं एयमट्ठं नो आढाइ नो परिजाणइ, अणाढाय-
माणी अपरिजाणमाणी विहरइ ॥१३॥

छाया—ततः खलु ता सुवता आर्या सुभद्रामायमेवमवाचीत्—वयं खलु देवानुप्रिये ! अमर्ष्यो
निर्ग्रन्थः इर्यासमिता यावद् गुत्तब्रह्मचारिण्यो नो खलु अस्माकं कल्पते जातकर्म कर्तुम्, त्वं च खलु
देवानुप्रिये ! बहुजनस्य चेटरूपेषु मुच्छिता यावत् अद्युपपन्ता अद्यज्जनं च यावत् नष्ट्रीविपासां वा
प्रत्यनुभवन्ती विहरसि, तत् खलु देवानुप्रिये ! एतस्य स्थानस्य आलोचय यावत् प्रायश्चित्तं प्रतिपश्यस्व ।
ततः खलु सा सुभद्रा आर्या सुवतानामार्याणामेतमर्थं नो आद्रियते नो परिजानाति, अनाद्रियमाणा
नपरिजानन्ती विहरति ॥१३॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, ताओ सुव्वयाओ अज्जाओ—उस सुव्रता आर्या ने, सुभद्दे अज्जं—सुभद्रा आर्या को, एवं वयासी—इस प्रकार कहा, देवानुप्पिए—हे देवानुप्रिये ! अम्हे णं—हम, समणीओ निर्गन्थीओ—श्रमणियों निर्ग्रन्थनियों हैं, इरियासमियाओ जाव गुत्तवंभ-यारिणीओ—इर्या समिति से युक्त गुप्तब्रह्मचारिणी हैं, अम्हे—हमें, जातककम्मं करित्तए—बच्चों के पालन-पोषण व खिलाने का कार्य, नो खलु—बिल्कुल नहीं, कप्पइ—कल्पते, तुम च ण—और तुम, देवानुप्पिए—हे देवानुप्रिये, बहुजणस्स चेडरूवेसु—बहुत लोगों के बच्चों में, मुच्छिया जाव अज्झोववन्ना—मूर्च्छित यावत् आसक्त हो और, अम्भगणं जाव नत्तिपिवासं व—अभ्यगन आदि क्रिया करती हुई पुत्र पुत्रियों, दोहते दोहतियों, पौत्र पौत्रियों की इच्छा का यावत्, पच्चणुम्भव-वाणी विहरसि—प्रत्यक्ष अनुभव करती हुई विचर रही हो, तं णं—अतः, तुम—तुम्हें, देवानु-प्पिया—हे देवानुप्रिये ! एयस्स ठाणस्स—उस दोष युक्त स्थान की, आलोएहि—आलोचना करो, जाव—यात्, प्रायश्चित्तं—प्रायश्चित्त करो, पड्विज्जाहि—ग्रहण करो, तएणं—तत्पश्चात्, सा सुभद्दा अज्जा—उस सुभद्रा आर्या ने, सुव्वयाणं अज्जाणं—सुव्रता आर्या के एयम्ढं—इस अर्थ बात का, नो आढाइ, नो परिजाणइ—कोई आदर सम्मान नहीं किया और न ही कोई महत्त्व दिया, अणादायमाणी अपरिजाणमाणी विहरइ—इस गुरुणी की शिक्षा का आदर न करती हुई न उसे अच्छा समझती हुई विचरने लगती है ॥१३॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह सुव्रता आर्या, सुभद्रा आर्या के प्रति इस प्रकार कहने लगी—हे देवानुप्रिये ! हम श्रमणी हैं निर्ग्रन्थनी हैं, इर्या-समिति से युक्त यावत् ब्रह्म-चारिणी हैं । हम लोगों को इस प्रकार लोगों के बच्चों को खिलाना आदि कार्य करने नहीं कल्पते । तुम लोगों के बच्चों में मूर्च्छित भाव यावत् अत्यंत आसक्त बन कर उनकी अभ्यगन आदि क्रियाएं करती हो, प्रत्यक्ष से पुत्र आदि की प्यास अनुभव करती हुई विचर रही हो, अतः हे देवानुप्रिये ! तुम इस दोष-युक्त स्थान की आलोचना करो यावत् प्रायश्चित्त ग्रहण करो । ऐसा सुनकर सुभद्रा आर्या ने सुव्रता आर्या के कथन का न तो कोई आदर किया न ही उसे अच्छा समझा । इस प्रकार आदर-सत्कार न करती हुई और न अच्छा समझती हुई विचरने लगी ॥१३॥

टीक—प्रसुत सूत्र में आर्या सुव्रता ने अपनी शिष्या सुभद्रा को अपना कर्तव्य पहचानने की शिक्षा दी है, कि हम जैन साध्वियां हैं, रागद्वेष से दूर हैं, गुप्त ब्रह्मचारिणी हैं, हम लोगों को बच्चों के इस प्रकार के जातक-कर्म करने शोभा नहीं देते । इस प्रकार का मूर्च्छा भाव आत्मा के लिये घातक है, तुम्हें इस कृत्य की आलोचना करके प्रायश्चित्त ग्रहण करना चाहिए । वांस्तव में यह

शिक्षाग्रहण करने योग्य थी, पर सुभद्रा आर्या बच्चों की लीलाओं में इतनी खो चुकी थी कि उसने गुरुणी की आत्म-शुद्धि की बात न मानी । जिस प्रकार रोगी कुपथ्य की ओर ध्यान नहीं देता वही हालत सुभद्रा की थी । उसने गुरुणी के कथन को सुना-अनसुना कर दिया ॥१३॥

उत्थानिका—जब शिक्षा देने पर भी सुभद्रा साध्वी पर कोई प्रभाव न पड़ा तब क्या हुआ ?
अब उसी के विषय में सूत्रकार कहते हैं :—

मूल—तएणं ताओ समणीओ निग्गंथीओ भुभद्दं अज्जं हीलेंति निंदन्ति
खिसन्ति गरहन्ति अभिक्खणं अभिक्खणं एयमट्ठं निवारेंति । तएणं तीसे
सुभद्दाए अज्जाए समणीहि निग्गंथीहि हीलिज्जमाणीए जाव अभिक्खणं
अभिक्खणं एयमट्ठं निवारिज्जमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव
समुपज्जित्था—जयाणं अहं अगारवासं वसामि तयाणं अहं अप्पवसा जप्प-
भिइं च णं अहं मुंडा भविता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्ता, तप्पभिइं
च णं अहं परवसा, पुट्ठि च समणीओ निग्गंथीओ आढेंति परिजाणेंति,
इणाणि नो आढाइंति नो परिजाणंति, तं सेयं खलु मे कल्लं जाव जलंते
सुव्वयाणं अज्जाणं अंतियाओ पडिनिक्खमिता पाडियक्कं उवस्सयं
उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए । एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जाव जलंते
सुव्वयाणं अज्जाणं अंतियाओ पडिनिक्खमेइ, पडिनिक्खमिता पाडियक्कं
उवस्सयं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ । तएणं सा सुभद्दा अज्जा अज्जाहिं
अणोहट्ठिया अणिवारिया सच्छंदमई बहुजणस्स चेडरूवेसु मच्छित्ता जाव
अब्भंगणं जाव नत्तिपिवासं च पच्चणुब्भवमाणी विहरइ ॥१४॥

छाया—ततः खलु ताः श्रमण्यो निर्ग्रन्थ्यः सुभद्रामार्या होलन्ति निन्दन्ति खिसन्ति गरहन्ते
अभीक्ष्णम् २ एतमर्थं निवारयन्ति । ततः खलु तस्याः सुभद्राया आर्यायाः श्रमणीभिर्निर्ग्रन्थीभिर्हील्य-
मानाया यावत् अभीक्ष्णम् २ एतमर्थं निवारयन्त्या अयमेतद्रूप आध्यात्मिको यावत् समुत्पद्यत—
यदा खलु अहम् अगारवासं वसामि तदा खलु अहम् आत्मवशा, यतः प्रभृति च खलु अहं मुण्डा भूत्वा
अगारात् अनगारतां प्रव्रजिता ततः प्रभृति च खलु अहं परवशा, पूर्वं च श्रमण्यो निर्ग्रन्थ्य आद्रियन्ते,
परिजामन्ति, इदानीं नो आद्रियन्ते नो परिजामन्ति, तत् श्रेयः खलु मे कल्ये यावत् ज्वलति सुव्रता-

नामार्याणामन्तिकात् प्रतिनिष्क्राम्य प्रत्येकम् उपाश्रयम् उपसंपद्य खलु विहर्तुम्, एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य कृत्ये यावत् उज्ज्वलति सुधनानामार्याणामन्तिकात् प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्राम्य प्रत्येकमुपाश्रयमुपसंपद्य खलु विहरति । ततः खलु सा सुभद्रा आर्या आर्याभिः अनपघट्टिका अनिवारिता स्वच्छन्दमतिः बहुजनस्य चेदरूपेषु मूर्च्छिता यावत् अभ्यञ्जनं च यावत् नत्त्रीपिपासां च प्रत्यनुभवन्ती विहरति । १४।

पदार्थान्वयः—तएण—तत्पश्चात्, ताओ समणीओ निग्गंथीओ—उन श्रमणियों ि ग्रन्थनियां, सुभद्दं अज्जं—सुभद्रा आर्या की, हीलेंति—अवहेलना करती हैं, निदति—निंदा करती हैं, खिसंति—उससे खीजती हैं, गरहंति—घृणा करती हैं और, अभिक्खणं अभिक्खणं—बार-बार, एयमट्ठं—इस बात को करने से, निवारेंति—निवारण करती हैं, तएण—तत्पश्चात्, तीसे सुभद्दाए अज्जाए—वह सुभद्रा आर्या को, समणीहि निग्गंथीहि—श्रमणियों निर्ग्रन्थनियों से इस प्रकार होलिज्जमाणीए जाव अभिक्खणं-अभिक्खणं एयमट्ठं निवारिज्जमाणीए—अवहेलना पाती हुई यावत् बार-बार उन चेष्टाओं से रोके जाने पर, अयमेयारूवे—इस प्रकार के, अज्झतिथिए—उसके मन में विचार आये, जाव समुपज्जित्था—ऐसा संकल्प उत्पन्न हुआ, जयाणं—जब, अहं—मैं, अगारवासं वसामि—घर में थी, तयाणं अहं—तब मैं, अप्पवसा—स्वतन्त्र थी, जप्पभिद्दं च णं—जब से, अहं—मैं, मुंडा भवित्ता—मुण्डित हुई हूं, अगाराओ अणगारियं पव्वइत्ता—घर छोड़ कर अणगार बनी हूं, तप्पभिद्दं च णं—तब से लेकर, अहं—मैं, परवसा—पराधीन हो गई हूं, पुव्वि च—और पहले ये, समणीओ निग्गंथीओ आढेंति परिजाणेंति—श्रमणियां निर्ग्रन्थनियां मेरा आदर-सत्कार करती थीं, इणाणि—अब, नो आढाइति नो परिजाणंति—आदर सत्कार नहीं करती हैं, तं सेयं खलु—इसलिए निश्चय ही उचित है, मे—मुझे, कल्ल जाव जलंते—कल सूर्योदय होते ही, सुव्वयाणं अज्जाणं अंतियाओ—सुभद्रा आर्या के समीप से, पडिनिक्खमित्ता—अकेले ही निकलकर, पाडियक्कं—पृथक से, उवस्सयं—किसी अन्य उपाश्रय को, उवसंपज्जित्ता—स्वीकार करके, विहरित्तए—विचरण करना, अर्थात् अलग उपाश्रय में रहना, एवं संपेहेइ—इस प्रकार विचार करती है और, संपेहित्ता—विचार करके, कल्लं जाव जलंते—प्रातः सूर्योदय होते ही, सुव्वयाणं अज्जाणं अंतियाओ—सुभद्रा आर्या के समीप से, पडिनिक्खमेइ, पडिनिक्खमित्ता—निकलती है और निकल कर, पाडियक्कं उवस्सयं—पृथक उपाश्रय में, उवसंपज्जित्ता णं—स्थान स्वीकार करके, विहरइ—विचरण करती है, तएण—तत्पश्चात्, सा सुभद्दा अज्जा—वह सुभद्रा आर्या, अज्जाहि—अन्य आर्याओं द्वारा, अणोहट्ठिया—निषेध करने पर भी न मानती हुई, अनिवारिया—निवारण न करती हुई, सच्छंदमई—स्वेच्छा से, बहुजणस्स चेडरूवेसु - बहुत लोगों के बच्चों में, मुच्छित्ता—मूर्च्छित हुई, जाव—यावत्, अब्भंगणं—उनका अभ्यंगन आदि करती है, जाव—यावत्, नत्तिपिपासं च—पौत्र पौत्रादि की पिपासा का, पच्चणुब्भवमाणी—प्रत्यक्ष अनुभव करती हुई, विहरइ—विचरणे लगी ॥१४॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह सुभद्रा आर्या (गुरुणी के रोकने पर भी) उस आर्या की

अवहेलना करने लगीं । वह निंदा एवं खीज करती हुई और उससे घृणा करने लगीं । बार बार सुभद्रा को रोकने पर भी वह इन सांसारिक कार्यों से न रुकी तब उस सुभद्रा आर्या के मन में इस प्रकार का सकल्प आया । जब मैं घर में थी तब स्वतन्त्र थी । जब से मैंने गृह-त्याग कर अनगार वृत्ति ग्रहण की है तब से मैं परतन्त्र हो गई हूं । पहले यह श्रमणियां निर्ग्रन्थनियां मेरा आदर-सत्कार करती थीं अब नहीं करतीं ऐसी स्थिति में मुझे यही श्रेयस्कर है कि मैं सुव्रता आर्या के सान्निध्य को छोड़कर, पृथक् किसी उपाश्रय में जा रहूं, इस प्रकार विचार कर वह सूर्योदय होते ही पृथक् उपाश्रय में जाकर रहने लगी ।

तत्पश्चात् सुभद्रा आर्या अन्य आर्यकाओं के निषेध को न मानती हुई, उन क्रियाओं को न छोड़ती हुई स्वेच्छाचारिणी हो गई । वह बहुत से लोगों के बच्चों में मूर्छित यावत् अभ्यंग आदि क्रिया करती हुई, पुत्र-पौत्रादि की पिपासा को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करती हुई विचरने लगी ॥१४॥

टोका—प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि जब सुव्रता आर्या ने सुभद्रा आर्या को अपना कर्तव्य पहचानते हुए साध्वी धर्म में स्थिर रहने का उपदेश दिया तो वह सुभद्रा नहीं मानी । वह साध्वियों की शिक्षा को बुरा समझने लगी । सुभद्रा के मन में से साध्वी-धर्म जैसे उड़ गया । वह साध्वी-जीवन को परतन्त्रता का कारण मानने लगी । गृहस्थ जीवन उस को स्वतन्त्र जीवन लगने लगा । वह सोचने लगी कि मैं तो घर में ही अच्छी थी, स्वाधीन थी, ये साध्वियां भी पहले मेरा सन्मान-सत्कार करती थीं, पर अब जब मैं साध्वी बन गई हूं पराधीन हो गई हूं, मुझे सुव्रता आर्या का उपाश्रय छोड़ कर कल ही नये उपाश्रय में चले जाना चाहिये । ऐसा विचार कर सुभद्रा आर्या नये उपाश्रय में आ गई वहां लोगों के बच्चों के साथ पूर्व वर्णित क्रियाएं करने लगी । यहां यह भी बताया गया है कि जैन धर्म में जोर जबरदस्ती का कोई स्थान नहीं है । प्रेरणा का स्थान है । वृत्तिकार ने कुछ महत्व पूर्ण शब्दों की व्याख्या इस प्रकार की है ।

‘पाडियक्कं उवस्सयं उवसंपजित्ता णं विहरति’ सा पृथक् विभिन्नमुपाश्रयं प्रतिपद्य विचरति आदि पद से सिद्ध होता है कि एकाकी विहार शिथिल व्यक्ति व उग्रविहारी ही कर सकता है, किन्तु वह सुभद्रा आर्या शिक्षा रहित होकर स्वच्छन्दमति होकर ये क्रियाएं कर रही थी । जिस समय शिक्षा अनुकूल नहीं लगती, तो अविनीत शिष्य, सुभद्रा आर्या की भाँति सोचने लगता है और दूसरों में दोष निकलता है जैसे सुभद्रा आर्या कहती है ।

पुर्व्वं च समणीओ निगंघनीओ आढेइ परिजाणैति इयाणि नो आढाइति नो परिजाणति—
अर्थात् पहले तो ये श्रमणियां—निगंघनियों मेरा मान-सम्मान सत्कार करती थीं अब मुझे कोई
मान-सत्कार नहीं देती ॥१४॥

मूल—तएणं सा सुभद्दा अज्जा पासत्था पासत्थविहारी एव
ओसण्णा० ओसणणविहारी कुसीला कुसीलविहारी संसत्ता संसत्त-
विहारी अहाच्छंदा अहाच्छंदविहारी बहूइं वासाइं सामन्नपरियागं
पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता तीसं
भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयप्पडिक्कंत, कालमासे
कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे बहुपुत्तियाविमाणे उववायसभाए देवसय-
णिज्जंसि देवदूसंतरियाए अंगुलस्स असंखेज्जमागमेत्ताए ओगाहणाए
बहुपुत्तिय-देवित्ताए उववण्णा ॥१५॥

छाया—ततः खलु सा सुभद्रा आर्या पार्श्वस्था पार्श्वस्थविहारिणी एवमवसन्ना अवसन्न-
विहारिणी कुशीला कुशीलविहारिणी संसक्ता संसक्तविहारिणी यथाच्छन्दा यथाच्छन्दविहारिणी
बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयति, पालयित्वा अर्द्धमासिकया संलेखनया आत्मनं जोषयित्वा त्रिशद्
भक्तानि अनशनेन छित्त्वा तस्य स्थानस्य अनालोचिताऽप्रतिक्रान्ता कालमासे कालं कृत्वा सौधमं
कल्पे बहुपुत्रिकाविमाने उपपातसभायां देवशयनीये देवदूष्यान्तरिता अंगुलस्य असंख्येयभागमात्रया
अवगाहनया बहुपुत्रिकादेवीतया उपपन्ना ॥१५॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तदनन्तर, सा सुभद्दा अज्जा—वह आर्या सुभद्रा, पासत्था
पासत्थविहारी—साधु के गुणों से दूर होकर विचरती है, एवं ओसण्णा०—साधु-समाचारी के
पालन में खिन्न (अर्थात् साधु समाचारी से उदासीन हो कर), ओसण विहारी—अवसन्न विहारिणी
हो गई, कुसीला कुसीलविहारी—उत्तर गुणों का पालन न करने के कारण संज्वलन कषायों का
उदय हो जाने से दूषित आचरण वाली, समाचारी पालन में शिथिल होकर विचरने लगी, संसत्ता
संसत्तविहारी—गृहस्थों के बाल-प्रेम सम्बन्धों में आसक्त होकर शिथिलाचारिणी होकर विचरने
लगी ; अहाच्छंदा—अपने अभिप्राय से कल्पित धर्म-मार्ग पर, अहाच्छंदविहारी—स्वच्छंद होकर
चलने लगी, एवं बहुवासाइं—इस प्रकार अनेक वर्षों तक, सामन्नपरियागं—श्रमणचर्या का,
पाउणइ—पालन करती है, पाउणित्ता—और उस चर्या का पालन करके, अद्धमासियाए—अर्ध

मासिकी, सलेहणाए—सलेखना द्वारा, अत्ताणं—अपने आपको, झसित्ता—सेवित करके, तीसं भत्ताइं—तीस भक्तों (आहारों) के, अणसणाए—अनशन द्वारा, छेदित्ता—छेदन करके (आहारों का त्याग करके, तत्स ठाणस्स अणालोयप्पडिक्कंत—उस अनाचार की आलोचना न करके, काल मासे कालं किच्चा—मृत्यु-काल आने पर मर कर, सोहम्मे कप्पे—सौधर्म कल्प नामक देव-लोक के, बहुपुत्तिया विमाणे—बहुपुत्रिका नामक विमान की, उववायसभाए—उपपात सभा में, देवसयणिज्जंसि—देव-शय्या पर, देवदूसंतरियाए—देवदूष्य वस्त्रों से आच्छादित, अंगुलस्स—असंख्यजमागमेताए—अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र की, ओगाहणाए—अवगाहना से (शरीर-प्रमाण से), बहुपुत्तियदेवित्ताए—बहुपुत्रिका देवी के रूप में, उववण्णा—उत्पन्न हुई ॥१५॥

मूलार्थ—तदनन्तर वह आर्या सुभद्रा साधु के द्वारा आचरणीय गुणों से दूर होकर साधु-समाचारी के पालन में खेदयुक्त हुई अवसन्न विहारिणी हो गई, उत्तर गुणों का पालन न करने के कारण संज्वलन कषायों का उदय हो जाने से दूषित आचरण वाली बन कर—समाचारी के पालन में शिथिल होकर विचरने लगी। वह गृहस्थों के बाल-प्रेम के सम्बन्धों में आसक्त होकर शिथिलाचारिणी बन कर अपने अभिप्राय से कल्पित धर्म-मार्ग पर स्वच्छन्दता पूर्वक विचरने लगी। इस प्रकार अनेक वर्षों तक तथाकथित श्रमणीचर्या का पालन करती हुई अर्धमासिकी सलेखना द्वारा अपनी आत्मा को सेवित करके तीस भक्तों (पन्द्रह दिन तक आहार का) त्याग करके उन अनाचारणीय कार्यों के आचरण की आलोचना किये बिना ही, मृत्यु का अवसर आने पर मर कर सौधर्म कल्प नामक देवलोक के बहुपुत्रिका नामक विमान की उप-पात सभा में देवदूष्य वस्त्रों से आच्छादित अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना से (शरीर-प्रमाण से) वह बहुपुत्रिका देवी के रूप में उत्पन्न हुई ॥१५॥

टीका—इस सूत्र में बताया गया है कि आर्या सुभद्रा सुव्रता आर्या से अलग होकर वह अपनी इच्छा के अनुसार विचरण करने लगी। उसकी स्वच्छन्दता की अभिव्यक्ति के लिये सूत्रकार ने पांच वाक्यों का प्रयोग किया है—पासत्था पासत्थविहारी, ओसण्णा ओसण्णविहारी, कुसीला कुसीलविहारी, संसत्ता संसत्तविहारी, अहाच्छन्दा अहाच्छन्दविहारी—अर्थात् शिथिलाचार में प्रवृत्त, संयम-पालन की उपेक्षा करती हुई, ज्ञानादि साधनों की विराधिका होकर केवल अपने अनुकूल अर्थात् जैसा वह चाहती थी वैसा ही आचरण करने लगी। पासत्था शब्द का अर्थ है—ज्ञानादिनां पार्श्व-तिष्ठति इति पार्श्वस्था। इसी प्रकार अन्य पांच पद भी उसकी स्वच्छन्दता की अभिव्यक्ति कर

रहे हैं, क्योंकि ज्ञानादि के पास रहते हुए भी वह उनके अनुकूल आचरण करने की उसकी सामर्थ्य को सन्तान-मोह ने नष्ट कर दिया था । वह इस अनाचरण की आलोचना किए बिना ही मृत्यु को प्राप्त हुई और सौधर्म देवलोक के बहुपुत्रिका विमान में उत्पन्न हुई ।

साधु-जीवन स्वीकार करने का फल तो उसे मिलना ही था और वह देव-भव की प्राप्ति के रूप में उसे प्राप्त हुआ ॥१५॥

मूल—तएणं सा बहुपुत्तिया देवी अहुणोववन्नमित्ता समाणी पंच-
विहाए पज्जत्तीए जाव भासामणपज्जत्तीए० । एवं खलु गोयमा ! बहु-
पुत्तियाए देवीए सा दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमण्णागया । से केणट्ठेणं
भन्ते ! एवं वुच्चइ बहुपुत्तिया देवी देवी ? गोयमा बहुपुत्तिया णं देवी
जाहे जाहे सक्कस्स देविदस्स देवरण्णो उवत्थाणियणं करेइ, ताहे ताहे
बहवे दारए य दारियाए य डिमए य डिभियाओ य विउव्वइ, विउव्वित्ता
जेणेव सक्के देविदे देवराया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सक्कस्स
देविदस्स देवरण्णो दिव्वं देविड्ढि दिव्वं देवज्जुइ दिव्वं देवाणुभागं
उवदंसेइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ बहुपुत्तिया देवी ॥१६॥

छाया—ततः खलु सा बहुपुत्रिका देवी अधूनोपपन्नमात्रा सती पञ्चविधया पर्याप्त्या यावद्
भाषामनःपर्याप्त्या० । एवं खलु गौतम ! बहुपुत्रिकाया देव्या दिव्या देवद्विः यावत् अभिसमन्वागता ।
अथ सा केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते बहुपुत्रिका देवी देवी ? गौतम ! बहुपुत्रिका खलु देवी यदा यदा
शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य उपस्थानं (प्रत्यासत्तिगमनं) करोति । तदा तदा बहून् दारकांश्च दारिकाश्च
डिम्भांश्च डिम्भिकांश्च विकुरुते, विकृत्य यत्रैव शक्रो देवेन्द्रो देवराजस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य
शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य दिव्यां देवद्विं दिव्यं देवज्योतिः दिव्यं देवानुभागमुपदर्शयति । तत्तेनार्थेन
गौतम ! एवमुच्यते बहुपुत्रिका देवी ॥१६॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तदनन्तर, सा बहुपुत्रिका देवी—वह बहुपुत्रिका देवी, अहुणोव-
वन्नमित्ता समाणी—वर्तमान में उत्पन्न होते ही, (उसने), पंचविहाए पज्जत्तीए—पांच प्रकार
की पर्याप्तियों, भासामणपज्जत्तीए—भाषा और मनः पर्याप्तियों आदि को प्राप्त कर लिया ।
एवं खलु गोयमा !—गौतम इस प्रकार से, बहुपुत्तियाए देवीए—बहुपुत्रिका देवी ने, . सा दिव्वा
देविड्ढी—वह दिव्य समृद्धि, जाव० अभिसमण्णागया—आदि उसे प्राप्त हुई थी । से केणट्ठेणं

भस्ते—भगवन् ! किस कारण से, बहुपुत्तिया देवी—उसे बहुपुत्रिका देवी, एवं बृच्चइ—इस नाम से पुकारा जाता है ? गोयमा ! बहुपुत्तिया णं देवी—गौतम ! वह बहुपुत्रिका देवी, जाहे-जाहे—जब-जब, सक्कस्स देविदस्स देवरणो—देवराज शक्र देवेन्द्र के, उवत्थाणियणं—पास जाती है, ताहे-ताहे—तब-तब वह, बहुवे दारए दारियाए य—बहुत से लड़के लड़कियों, डिभए य डिभियाओ य—छोटे-छोटे बच्चे बच्चियों की, विउव्वइ—विकुर्वणा करती है, विउव्वित्ता—विकुर्वणा करके, जेणेव सक्के देविदे देवराया—जहां देवताओं के राजा देवेन्द्र देव-सभा में बैठे होते हैं, तेणेव उवागच्छइ—वहीं पर आती है, उवागच्छित्ता—और वहां आकर, सक्कस्स देविदस्स देव-रणो—देवताओं के राजा देवेन्द्र शक्र के सपक्ष, दिव्वं देविद्वि—अपनी दिव्य समृद्धि, दिव्वं देवज्जुइ—दिव्य देव ज्योति को, दिव्व देवाणुभागं—दिव्य तेज को, उवदंसेइ—प्रदर्शित करती है, से तेणद्वेणं—वह इसी कारण से, गोयमा !—हे गौतम, एवं बहुपुत्तिया देवी—इस प्रकार वह बहुपुत्रिका देवी कहलाती है ॥१६॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह बहुपुत्रिका देवी अभी-अभी उत्पन्न होते ही पांचों पर्याप्तियां—भाषा पर्याप्ति, मन पर्याप्ति आदि प्राप्त कर लेती है । हे गौतम इस प्रकार बहुपुत्रिका देवी ने दिव्य देव-ऋद्धियां प्राप्त कर लीं ।

भगवन् ! किस कारण से वह देवी बहुपुत्रिका कहलाती है, गौतम ! वह बहुपुत्रिका देवी जब-जब देवताओं के राजा देवेन्द्र शक्र के पास जाती है, तब-तब वह बहुत से लड़के-लड़कियों तथा बच्चे बच्चियों की विकुर्वणा करती है—अपनी देव-शक्ति से बच्चे-बच्चियां बना लेती है, विकुर्वणा करने के अनन्तर जहां देवताओं के राजा शक्रेन्द्र विराजमान होते हैं वहां आती है और देवराज शक्रेन्द्र के समक्ष अपनी दिव्य समृद्धि दिव्य देव-ज्योति और अपना दिव्य तेज प्रदर्शित करती है । हे गौतम इसीलिये वह बहुपुत्रिका देवी कहलाती है ॥१६॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में आर्या भद्रा का नाम बहुपुत्रिका क्यों पड़ा ? इस विषय पर युक्ति-युक्त प्रकाश डाला गया है कि वह जब भी शक्रेन्द्र के सान्निध्य में जाती थी तो अनेक बच्चों की विकुर्वणा करके उनको साथ लेकर जाती थी । अतः वह बहुपुत्रिका नाम से प्रसिद्ध हो गई ।

देवलाक में उसने चार पल्लोपम की आयु प्राप्त की थी ॥१६॥

मूल—बहुपुत्तियाए णं भस्ते ! देवीए केवइयं कालं ठिइं पण्णत्ता ?
गोयमा ! चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । बहुपुत्तिया णं भस्ते ! देवी

ताओ देवलोगाओ आउवखएणं ठिइवखएणं भववखएणं अणंतरं चयं चइत्ता
 कहिं गच्छहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ? गोयमा ! इहेव जंबूदोवे दीवे
 भारहे वासे विज्झगिरिपायमूले विभेलसंनिवेसे माहणकुलंसि दारियत्ताए
 पच्चायाहिइ । तएणं तोसे दारियाए अम्मापियरो एक्कारसमे दिवसे
 वित्तिक्कंते जाव बारसेहिं दिवसेहिं वित्तिक्कंतेहिं अयमेयारूवं नामधिज्जं
 करेति, होउ णं अम्हं इमीसे दारियाए नामधिज्जं सोमा । तएणं सोमा
 उम्मुक्कबालभवा विणयपरिणयमेत्ता जोव्वणगमणुप्पत्ता रूवेण य जोव्व-
 णेण य लावण्येण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाव भविस्सइ । तएणं
 तं सोमं दारियं अम्मापियरो उम्मुक्कबालभावं विणयपरिणयमित्तं जोव्व-
 णगमणुप्पत्तं पडिकूविएणं सुक्कणं पडिरूवएणं नियगस्स भायणिज्जस्स
 रट्ठकूडयस्स भारियत्ताए दलइस्सइ । सा णं तस्स भारिया भविस्सइ
 इट्ठा कंता जाव भंडकरंडगसमाणा तेल्लकेला इव सुसंगोविआ चेलपेला
 (डा) इव सुसंपरिगगहिया रणकरंडगओ विवसुसारक्खिया सुसंगोविया
 मा णं सीयं जाव मा णं विविहा रोगातंका फुसंतु ॥१७॥

छाया—बहुपुत्रिकाया भदन्त ! देव्याः कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! चतुःपत्न्योपमा
 स्थितिः प्रज्ञप्ता । बहुपुत्रिका खलु भदन्त ! देवी तस्माद्देवलोकादायु क्षयेण स्थितिक्षयेण भवक्षयेण
 अनन्तरं चयं ज्युष्या क्व गच्छियति क्व उत्पत्स्यते ? गौतम ! अस्मिन्नेव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्धे
 विन्ध्यगिरिपादमूले विभेलसन्निवेशे ब्राह्मणकुले दारिकातया प्रत्यायास्यति । ततः खलु तस्या दारिकाया
 अम्बापितरो एकादशे दिवसे व्यतिक्रान्ते यावद् द्वावशभिर्दिवसैर्व्यतिक्रान्तं रिदमेतद्रूपं नामधेयं कुरुतः,
 भवतु अस्माकमस्या दारिकाया नामधेयं सोमा । ततः खलु सोमा उन्मुक्तबालभावा विज्ञकपरिणत-
 मात्रा यौवनमनुप्राप्ता रूपेण च यौवनेन च लावण्येन च उत्कृष्टा उत्कृष्टशरीरा यावत् भविष्यति ।
 ततः खलु तां सोमां दारिकाम् अम्बापितरो उन्मुक्तबालभावां विज्ञकपरिणतमात्रां यौवनमनुप्राप्तां
 प्रतिकूजितेन शूलकेन प्रतिरूपेण निजकाय भागिनेयाय राष्ट्रकूटकाय अर्पयित्वा दास्यति । सा खलु
 तस्य भार्या भविष्यति इष्टा कान्ता यावत् भाण्डकरण्डकसमाना तेल्लकेला इव सुसंगोपिता चेलपेता
 इव सुसंपरिगृहीता रत्नकरण्डक इव सुसंरक्षिता सुसंगोपिता सा खलु शीतं यावत् सा विविधाः
 रोगातङ्काः स्पृशन्तु ॥१७॥

पदार्थान्वयः—(गौतम ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया) —बहुपुत्तिया ए णं भन्ते !—भगवन् उस बहुपुत्रिका देवी की, केवइयं कालं—कितने समय तक वहाँ (सोधम देवलोक में), ठिइ पणत्ता—स्थिति कड़ी गई है ?

गोयमा—(भगवान् महावीर ने कहा) गौतम ! चत्तारि पलिओवमाइं—चार पल्योपम की, ठिइ पणत्ता—स्थिति कड़ी गई है :

(गौतम पुनः प्रश्न करते हैं) बहुपुत्तिया णं भन्ते—भगवन् ! वह बहुपुत्रिका देवी, ताओ देवलोगाओ उस देवलोक से, आउवखएणं—आयु पूर्ण होने पर, ठिइवखएणं—स्थिति पूर्ण होने पर, भववखएणं—देव-भव का क्षय होने पर, अणत्तरं—तदनन्तर वह, चयं चइत्ता—वहाँ से ज्यवन करके, कंहिं गच्छिहिइ—कहाँ जायेगी, कंहिउववज्जिहिइ—कहाँ उत्पन्न होगी ?

(भगवान् महावीर ने उत्तर में कहा) —गोयमा ! इहेव जम्बूदीवे दीवे—इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारहेवासे—भारत वर्ष में ही, विज्जगिरि पायमूले—विन्ध्य पर्वत की तलहटी में, विभ्जेनसनिवेसे—विभेल नामक ग्राम में, माहण कुलसि—ब्राह्मण-कुल में, दारियत्ताए—लड़की के रूप में, पच्चायाहिइ—लौट आयेगी अर्थात् जन्म लेगी, तएणं—तत्पश्चात्, तीसे दारियाए—उस लड़की के, अम्मा-पियरो—माता-पिता, एक्कारसमे दिवसे वित्तिकन्ते—भारह दिन बीत जाने पर, बारसेहिं दिवसेहिं वित्तिकन्तेहिं—बारहवां दिन जब बीत रहा था अयमेयारूवं नामघिज्जं करेंति—तब उसका नामकरण करेंगे, होउ णं अम्हं इमीसे दारियाए नामघिज्जं सोमा—हमारी इस लड़की का नाम होगा सोमा, ततः खलु सोमा—तदनन्तर वह सोमा, उम्मुक्कबालभवा—बालक-पन को छोड़कर, विणयपरिणयमेत्ता—वैषयिक सुखों के परिज्ञान के साथ युवा अवस्था को प्राप्त हो गई, जोवणगमणुपत्ता—युवती हो जाने पर, रूवेण य, जोवणेण य, लावणेण य—रूप यौवन और सुन्दरता से, उक्किट्ठा—उत्कृष्ट, उक्किट्ठसरीरा—अत्यन्त सुन्दर शरीर वाली, जाव भविस्सइ—वह होगी । तएणं तं सोमं दारियं—तत्पश्चात् उस सोमा नामक लड़की को, अम्मा-पियरो—माता-पिता ने, उम्मुक्कबालभाव—वह बचपन को पार कर गई, विणय-परिणयमित्तं—विषय-सुख, से अभिज्ज—जानकार, जोवणगमणुपत्तं—युवती हो जाने पर, पडिक्खिएणं—स्वीकृति सूचक शब्दों द्वारा, सुक्कणं—सुत्क रूप देय द्रव्य देते हुए, पडिरूवएणं—प्रतिरूप अर्थात् मनोनुकूल वचनों द्वारा, नियकस्स—अपने, भायविज्जस्स रट्ठकूडयस्स—भानजे राष्ट्रकूट को, भारियत्ताए—पत्नी के रूप में, दलइस्सइ—प्रदान कर देगा, अर्थात् राष्ट्रकूट के साथ उसका विवाह कर देगा, सा णं तस्स भारिया—राष्ट्रकूट को अपनी पत्नी सोमा, इट्ठा कंता भविस्सइ—प्रिय एवं अत्यन्त सुन्दर लगेगी, (अतः वह), जाव—यावत्, भंडकरंडगंसमाणा—आभूषण रखने के डिब्बे के समान, तेल्लकेला इव—तेल रखने के पात्र के समान, सुसंगोविआ—अच्छी प्रकार सुरक्षित, चेलपेला (डा) इव—वस्त्र रखने की पेट्टी के समान, सुसंपरिगहया—अच्छी प्रकार से उसकी रक्षा करेगा, रण-करंडगओ—हीरे मोती आदि रत्न रखने की तिजोरी के समान, विवसुसारविख्या—अच्छी

प्रकार से संभाल करके उसको सुरक्षित रखेगा, मा णं सोय जाव—उसे शीत-वाधा न सताये, मा णं विवहा रोगातंका फुसन्तु—अनेक प्रकार के रोग इसका स्पर्श भी न कर सकें (इस बात का भी वह ध्यान रखेगा) ॥१७॥

मूलार्थ—(गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया) कि—भगवन् ! उस बहुपुत्रिका देवी की उस सौधर्म देवलोक में कितने समय की स्थिति कही गई है ?

(भगवान् महावीर ने उत्तर दिया) वहां उसकी स्थिति चार पत्योपम की होगी ।

(गौतम पुनः प्रश्न करते हैं)—वह बहुपुत्रिका देवी उस सौधर्म देवलोक से अपनी देवलोक की आयु पूर्ण होने पर, उसका स्थिति काल समाप्त होने पर, देवभव का समय पूर्ण हो जाने पर वह उस देवलोक से च्यव कर कहाँ जायेगी—कहाँ उत्पन्न होगी ? ।

(भगवान् महावीर ने गौतम के प्रश्न का पुनः समाधान करते हुए कहा— गौतम वह इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के एक भाग भारत वर्ष में ही विन्ध्याचल पर्वत की तलहटी में बसे विभेल नामक ग्राम में एक ब्राह्मण-परिवार में लड़की के रूप में आकर जन्म लेगी । तत्पश्चात् उस लड़की के माता-पिता ग्यारह दिन बीत जाने पर जब बारहवां दिन व्यतीत हो रहा होगा तो वह उस लड़की का नामकरण “सोमा” करेंगे । तदनन्तर धीरे-धीरे वह सोमा अपने बचपन को पार करके जब युवती हो जायेगी, तब वह रूप यौवन और सुन्दरता से अत्यन्त उत्कृष्ट होगी, तत्पश्चात् उसके माता-पिता यह जानकर कि वह यौवन-सुखों की महत्ता को जान गई है और युवती हो गई है, तब उन्होंने अपने भानजे राष्ट्रकूट को स्वीकृति-सूचक शब्दों द्वारा और शुल्क (दहेज) के रूप में देय द्रव्य देते हुए सोमा को उसे पत्नी के रूप में दे देगा, अर्थात् उसके साथ उसका विवाह कर देगा । राष्ट्रकूट को अपनी पत्नी सोमा प्रिय एवं अत्यन्त सुन्दर लगेगी अतः वह आभूषण रखने के डिब्बे के समान, तेल रखने के पात्र के समान और वस्त्र रखने की पेट्टी के समान और हीरे मोती आदि रखने की तिजौरी के समान उसको अच्छी तरह सुरक्षित रखेगा; वह यह भी ध्यान रखेगा कि इसे शीत-वाधा न सताये और कोई भी रोग इसका स्पर्श न कर सके ॥१७॥

टीका—इस सूत्र में बहुपुत्रिका देवी के भविष्य—भावी जीवन का वर्णन किया गया है कि वह भारतवर्ष में ही विन्ध्याचल पर्वत की तलहटी में बसे विभेल नामक ग्राम में एक ब्राह्मण-परिवार में जन्म लेगी । उसके माता-पिता उसके जवान हो जाने पर उसका विवाह अपने भानजे राष्ट्रकूट के साथ कर देंगे ।

राष्ट्रकूट से पहले प्रिय वचनों द्वारा स्वीकृति लेंगे और फिर शुल्क अर्थात् दहेज भी देंगे । इस घटना के वर्णन से ज्ञात होता है कि उन दिनों निकट की रिश्तेदारियों में भी कन्या दी जाती थी, उस समय भी दहेज देने की प्रथा थी । तब बाल-विवाह भी नहीं होते थे ॥१७॥

मूल—तए ण सोमा माहिणी रट्ठकूडेणं सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी संवच्छरे संवच्छरे जुयलगं पयायमाणी सोलसेहि संवच्छरेहि बत्तीसं दारणरूवे पयाइ । तए णं सा सोमा माहणी तेहि बहूहि वारगेहि य दारियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य डिभएहि य डिभियाहि य अप्पेगइएहि उत्ताणसेज्जएहि य अप्पेगइएहि थणियाएहि य अप्पेगइएहि पीहगपाएहि अप्पेगइएहि परंगणएहि अप्पेगइएहि परक्कममाणेहि, अप्पेगइएहि पक्खोलणएहि अप्पेगइएहि थणं मग्गमाणेहि अप्पेगइएहि खीरं मग्गमाणेहि अप्पेगइएहि खिल्लणयं मग्गमाणेहि अप्पेगइएहि खज्जगं मग्गमाणेहि अप्पेगइएहि कूरं मग्गमाणेहि पाणियं मग्गमाणेहि हसमाणेहि रुसमाणेहि अक्कुसमाणेहि अक्कोस्समाणेहि हणमाणेहि विप्पलायमाणेहि अणुगम्ममाणेहि रोवमाणेहि कंदमाणेहि विलवमाणेहि कूवमाणेहि उक्कूवमाणेहि निद्धायमाणेहि पलंबमाणेहि दहमाणेहि दंसमाणेहि वममाणेहि छेरमाणेहि मुत्तमाणेहि मुत्तपुरीसवमियसुलित्तोवलित्ता मइलवसणपुच्छडा जाव असुइबीभच्छा परमदुग्गंधा नो संचाएइ रट्ठकूडेणं सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरित्तए ॥१८॥

छाया—ततः खलु सा सोमा ब्राह्मणी राष्ट्रकूटेन सद्धिं विपुलान् भोगभोगान् भुञ्जाना संवत्सरे संवत्सरे युगलं प्रजनयन्ती षोडशभिः संवत्सरैः द्वात्रिंशद् वारकरूपाणि प्रजनयति । ततः खलु सा सोमा

व ह्यणी तैर्बहुभिर्दारकैश्च दारिकाभिश्च कुमारैश्च कुमारिकाभिश्च डिम्भैश्च डिम्भिकाभिश्च
अप्येककं उत्तानशयकैश्च, अप्येककं स्तनितैश्च अप्येककं स्पृहकपादैः, अप्येककं पराङ्गणकैः, अप्येककं
पराक्रममाणैः, अप्येककं, प्रस्रलनकं, अप्येककं स्तनं मृग्यमाणैः, अप्येककं क्षीरं मृग्यमाणैः,
अप्येककं, खेलनकं मृग्यमाणैः, अप्येककं खाद्यकं मृग्यमाणैः, अप्येककं कूरं (भक्तं) मृग्यमाणैः, पानीयं
मृग्यमाणैः हसद्भिः, रुष्यद्भिः, आक्रोशद्भिः, आकुश्यद्भिः, हन्यमानैः, विप्रलपाद्भिः, अनुगम्य-
मानैः, रुदद्भिः, क्रन्दद्भिः, विलपद्भिः, कूजद्भिः, उक्कूजद्भिः, निर्धाविद्भिः, प्रलम्बमानैः, दहद्भिः,
दशद्भिः, वमद्भिः, छेरद्भिः, मन्त्रयद्भिः, मूत्रपुरीषवान्तमुलिप्तोपलिप्ता मलिनवमनपुच्छडा यावद्
अशुचिबीभरसा परमदुर्गन्धा नो शक्नोति राष्कूटेन सार्धं विप्लान् भोगभोगान् भुञ्जाना विहर्तुम् । १८।

पदार्थावयवः—तएणं सा सोमा माहिणी—तदनन्तर (विवाहोपरान्त) वह सोमा ब्राह्मणी,
रटुकूडेणं सद्धि—राष्ट्रकूट के साथ, विउलाइ—अनेक विध, भोगभोगाइं भुञ्जमाणी—भोगों को
भोगती हुई, संवच्छरे-संवच्छरे—प्रतिवर्ष, जुयलगं पयायमाणी—सन्तान-युगल (जोड़ी) को जन्म
देती हुई, सोलसाहि संवच्छरेहि—सोलह वर्षों में, बत्तीसं दाणरूवे पयाई—बत्तीस बच्चों को
जन्म देगी। तएणं सा सोमा माहिणी—तब वह सोमा ब्राह्मणी, तेहि बहूहि दारगेहि य दारियाहि य—
उन बहुत से लड़के-लड़कियों, कुमारएहि य कुमारियाहि य—कुमारों एवं कुमारियों, डिम्भएहि
य डिम्भियाहि य—अल्प वयस्क बालक-बालिकाओं में से, अप्पेगइएहि उत्तानसेज्जएहि—कोई एक
उत्तान (ऊपर की ओर मुख करके) सोते रहेंगे, य अप्पेगइएहि थणियाएहि य—और कोई एक
बच्चा चीख रहा होगा, अप्पेगइएहि पीहगपाएहि—कोई एक चलना चहेगा, अप्पेगइएहि
परंगणएहि—कोई बच्चा दूसरों के आंगन में चला जाएगा, अप्पेगइएहि परषकममाणेहि—कोई
बच्चा चलने की चेष्टा करेगा, अप्पेगइएहि पवखोलणएहि—कोई बच्चा गिर पड़ेगा, अप्पेगइएहि
थणं मगमाणेहि—कोई बच्चा (दुग्ध-पान के लिये उसके) स्तनों को ढूँढ़ेगा, अप्पेगइएहि खीरं
मगमाणेहि—कोई बच्चा दूध की तलाश कर रहा होगा, अप्पेगइएहि खिल्लणयं मगमाणेहि—
कोई बच्चा खिलौने ढूँढ़ रहा होगा, अप्पेगइएहि खज्जणं मगमाणेहि—कोई बच्चा खाद्य पदार्थों
को ढूँढ़ रहा होगा, अप्पेगइएहि कूरं मगमाणेहि—कोई बच्चा भोजन (भात) की तलाश कर
रहा होगा, अप्पेगइएहि पाणीयं मगमाणेहि—कोई बच्चा पीने के लिये पानी या अन्य पेय ढूँढ़ रहा
होगा, हसमाणेहि—कोई हँस रहा होगा, रुसमाणेहि—कोई रूठ रहा होगा, अक्कोस्समाणेहि—कोई
गुस्से में भर रहा होगा, अक्कुस्समाणेहि—कोई बच्चा अपनी वस्तु पाने के लिये दूसरों से लड़ रहा
होगा, हणमाणेहि—कोई दूसरे बच्चों का मार रहा होगा, विप्लापमाणेहि—कोई प्रलाप कर
रहा होगा, अणुगममाणेहि—कोई किसी के पीछे भाग रहा होगा, रोवमाणेहि—रुदन कर रहा
होगा, क्रन्दमाणेहि—कोई क्रन्दन (चीख-पुकार) कर रहा होगा, विलवमाणेहि—विलाप कर रहा होगा
कूवमाणेहि—सुबक रहा होगा (फड़ फड़ाते हुए होंठों से अन्दर ही अन्दर रो रहा होगा), उक्कूव-
माणेहि—जोर-जोर से चिल्लाते हुए रो रहा होगा, निद्रायमाणेहि—कोई सो रहा होगा, पल्लव-
माणेहि—कोई माँ का आँचल पकड़ कर लटक रहा होगा, बहमाणेहि—कोई घ्राण से या किसी

गरम वस्तु को छूकर जल जाएगा, दंसमाणेहि—कोई बच्चा किसी को दांतों से काट खाएगा, दममाणेहि—कोई उल्टी (वमन) कर रहा होगा, छेरमाणेहि—कोई शौच (टट्टी) कर रहा होगा, मुत्तामाणेहि—कोई पेशाब कर देगा, (और वह सोमा स्वयं), मुत्त-पुरीस वनिय-मुलित्तोवलित्ता—टट्टी-पेशाब और बच्चों की उल्टी से भर जायेगी, मइज-वसण-पुचवडा—मैले कपड़ों के कारण कान्तिविहीन अथवा गन्दी प्रतीत होने वाली, अमुइजीभच्छा—गन्दगी से भरी होने के कारण बीभत्स लग रही, परमदुग्गंधा—अत्यन्त दुर्गन्धित नो संचाएइ—अब वह इस योग्य नहीं रही थी कि वह, रट्टकूडेणं सद्धि—राष्ट्रकूट नामक अपने पति के साथ बिउलाइं भोग-भोगाइं—अनेक-विध भोगों का, भुंजमाणो बिहरिस्सए—उपभोग करती हुई विहरण कर सके ॥१८॥

मूलार्थ—तदनन्तर वह सोमा ब्राह्मणी राष्ट्रकूट के साथ भोगों का आनन्द लेती हुई प्रतिवर्ष सन्तान-युगल को जन्म देती हुई सोलह ही वर्षों में बत्तीस बच्चों को जन्म देगी। तदनन्तर वह सोमा ब्राह्मणी उन बहुत से (बत्तीस) लड़के लड़कियों—कुमार-कुमारियों एवं अल्पवयस्क बालक-बालिकाओं में से कोई तो ऊपर (आकाश की ओर) मुख करके सोते रहेंगे, कोई बच्चा चीख-पुकार मचाता रहेगा, कोई बच्चा चलना चाहेगा, कोई बच्चा पड़ोसियों के आंगन में पहुँच जाएगा; कोई बच्चा चलने को चेष्टा करेगा, कोई बालक धरती पर गिर पड़ेगा, कोई बच्चा उसका दूध पीने के लिये उसके स्तन ढूँढ़ेगा, कोई बालक दूध की तलाश कर रहा होगा, कोई बच्चा खिलौने ढूँढ़ रहा होगा; कोई बच्चा खाद्य पदार्थों की तलाश कर रहा होगा, कोई बालक भोजन भात) खोज रहा होगा, कोई बालक पानी अथवा अन्य पेय पदार्थ पाने को भटक रहा होगा, कोई हंस रहा होगा, कोई रुठ रहा होगा, कोई गुस्से में भर रहा होगा, कोई बच्चा अपनी वस्तु पाने के लिये दूसरों से लड़ रहा होगा, कोई बच्चा दूसरे बच्चे को मार रहा होगा; कोई मार खाकर प्रलाप कर रहा होगा, कोई किसी के पीछे उसे पकड़ने के लिये भाग रहा होगा, कोई रो रहा होगा, कोई क्रन्दन कर रहा होगा, कोई सुबक रहा होगा (होठों को फड़फड़ाते हुए अन्दर ही अन्दर रो रहा होगा), कोई जोर-जोर से चिल्लाते हुए रो रहा होगा, कोई सो रहा होगा, कोई बच्चा अग्नि या किसी गरम पदार्थ को छूकर जल रहा होगा, कोई बालक दूसरे बालक को दांतों से काट रहा होगा कोई उल्टी (वमन) कर देगा कोई शौच (टट्टी) कर रहा होगा और कोई पेशाब कर देगा, अतः वह सोमा स्वयं बच्चों की टट्टी

पेशाब और उल्टियों से भर जाएगी मँले कुचैले कपड़ों के कारण कान्तिविहीन प्रतीत होने लगेगी, गन्दी से भरी रहने के कारण बीभत्स सी एव दुर्गन्धि से युक्त होकर वह राष्ट्रकूट के साथ भोग भोगने में सर्वथा असमर्थ हो जाएगी ॥१८॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में सन्तान की अधिकता के कारण गृहस्थ उन प्यारे लगनेवाले बच्चों से कैसे तंग होने लगते हैं, इसका सुन्दर चित्रात्मक एवं सजीव वर्णन कर सोमा की दुर्दशा का वर्णन किया गया है। और साथ ही यह भी बतलाया गया है कि पत्नी को बहुत प्यार करनेवाला पति भी उन बच्चों में उलझ कर गन्दी लगती हुई पत्नी को भी उपेक्षा कर देता है, अतः ऐसी अवस्था में स्त्रियां सन्तान-सुख और पति-प्रेम दोनों से वंचित हो जाती हैं। पन्द्रह वर्ष पहले पहल उत्पन्न हुए बच्चों के लिये “दारग” शब्द का, बीच के वर्षों में होने वाले बच्चों के लिये कुमार कुमारी और पन्द्रहवें सोलहवें वर्षों में उत्पन्न होनेवाले बच्चों के लिये “डिम्भ-डिम्भिका” शब्दों का प्रयोग किया गया है, अतः यहां तीनों शब्द क्रमशः सार्थक हैं ॥१८॥

मूल—तए णं तीसे सोमाए माहणीए अण्णया कयाइं पुव्वरत्ता-
वरत्तकालसमयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे जाव
समुपज्जित्था—एवं खलु अहं इमेहि बहूहि दारगेहि य जाव डिभियाहि य
अप्पेगइएहि उत्ताणसेज्जएहि य जाव अप्पेगइएहि मुत्तमाणेहि दुज्जाएहि
दुज्जम्मएहि हयविप्पहयभग्गेहि एगप्पहारपडिएहि जाणं मुत्तपुरीसवमिय-
सुलित्तोवलित्ता जाव परमदुब्बिभगंधा नो संचाएमि रट्ठकूडेण सद्धिं जाव
भुंजमाणी विहरित्तए । तं धन्नाओ णं तओ अस्मयाओ जाव जीवियफले
जाओणं बंझाओ अवियाउरीओ जाणुकोप्परमायाओ सुरभिसुगंधगंधि-
याओ विउलाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणीओ विहरंति, अहं
णं अधन्ना अपुण्णा अकयपुण्णा नो संचाएमि रट्ठकूडेण सद्धिं विउलाइं
जाव विहरित्तए ॥१९॥

छाया—ततः खलु तस्याः सोमाया ब्राह्मण्या अन्यथा कदाचित् पूर्वरात्रापररात्रकालसमये
कुटुम्बजागरिकां जाग्रत्या अयमेतद्रूपो यावत् समुपपद्यत—एवं खलु अहमेभिर्बहुभिर्दारकैश्च यावत्

डिम्बिकाभिश्च अप्येकैः उत्तानशयकैश्च यावद् अप्येककर्मत्रयद्विः दुर्जातैः दुर्जन्मभिः हतविप्रहत-
भाग्यैश्च एकप्रहारपतितैः या खलु मूत्रपुरीषधमितसुलितोपलित्ता यावत् परमदुरभिमन्धा नो
शक्नोमि राष्ट्रकूटेन साधं यावद् भुञ्जाना विहर्तुम् । तद् धन्याः खलु ता अम्बिका यावद् जीवितफलं
याः खलु बन्ध्या अविजननशीला जानुकूर्परमातरः सुरभिसुगन्धगन्धिका विपुलान् मानुष्यान् भोग-
भोगान् भुञ्जाना विहरन्ति, अहं खलु अधन्या अपुण्या नो शक्नोमि राष्ट्रकूटेन साद्धं विपुलान् यावद्
विहर्तुम् ॥ १९ ॥

पदार्थान्वयः—तएण तीसे सोमाए माहणीए—तत्पश्चात् उस सोमा नामक ब्राह्मणी के,
अण्णया कयाइं—किसी समय (कुछ समय बीत जाने के बाद), पुव्वरत्तावरत्ताकालसमयसि—अर्ध-
रात्रि के समय, कुडुं बजागरियं जागरमाणीए—पारिवारिक चिन्ताओं में निमग्न होकर जागते हुए,
अयमेयाखे जाव समुपज्जित्था—इस प्रकार के (सांसारिक उदासीनता सम्बन्धी) विचार उत्पन्न
हुए, एवं खलु अहं—मैं निश्चित ही, इमेहि बहूहि वारगेहि—इन बहुत से बालक-बालिकाओं,
य जाव डिभियाहि य—और इन छोटे-छोटे से बच्चों के कारण (जिन में से), अप्पेगइएहि उत्ताण-
सेज्जएहि य जाव—कोई बालक चित (आकाश की तरफ मुंह किए हुए) सोया हुआ है, अप्पेगएहि
मुत्तामाणेहि—कोई मूत्र कर रहा है, दुज्जाएहि—जो जन्म से ही दुःखदायी हैं, दुज्जम्मएहि—
जो थोड़े-थोड़े महीनों के अन्तर से ही उत्पन्न हुए हैं, हय-विप्पहय-भग्गेहि—जो सर्वथा भाग्यहीन हैं,
एगप्पहारपडिएहि—जो थोड़े-थोड़े समय के अनन्तर मेरी कोख से जन्मे हैं, जा णं मुत्ता-पुरीस-वमिय-
सुलितोबलित्ता—इनके मल-मूत्र और वमन आदि से हर वक्त मैं लिपटी सी रहती हूँ, जाव परमदु-
रभिमन्धा—और दुर्गन्धि से भर कर, नो संचाएमि रट्ठकूडेण सद्धि—राष्ट्रकूट के साथ भोगोपभोग
सुख प्राप्त नहीं कर पाती हूँ, जाव भुंजमाणी विहरत्ताए—और न ही भोगों-उपभोगों को आनन्द
लेते हुए जीवन-यापन ही कर पाती हूँ, तं धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ—इसलिये वे मातायें धन्य
हैं, जाव जीवियफले—वे ही मानव-जीवन का फल प्राप्त कर रही हैं, जाओणं बंझाओ—जो कि
बन्ध्या हैं, अवियाउरीओ—सन्तानोत्पत्ति नहीं कर पाती हैं, जाणुकोप्परमायाओ—जो जानुकूर्पर
मातायें हैं (अर्थात् शयन करते हुए टांगें ही जिनके हृदय के साथ लगी होती हैं, बच्चा नहीं),
सुरभि-सुगन्ध-गन्धियाओ—जो सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित होकर, विउलाइं माणुस्सगाइंभोगभोगाइं
—जो अनेक-विध मानवीय भोगों को, भुंजमाणीओ विहरन्ति—भोगती हुई जीवन-यापन करती हैं,
अहं णं अधन्ना—मैं तो अधन्य हूँ, अपुण्णा—पुण्य-हीन हूँ, अकयपुण्णा—मैंने मानो किसी जन्म
में भी कोई पुण्य कार्य नहीं किया है, नो संचाएमि रट्ठकूडेणं सद्धि विउसाइं जाव विहरत्ताए—
मैं राष्ट्रकूट के साथ अनेकविध भोग भोग नहीं पाती हूँ ॥ १९ ॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस सोमा नामक ब्राह्मणी के मन में एक बार अर्धरात्रि के
समय पारिवारिक चिन्ताओं में निमग्न होकर जागते हुए ये विचार उत्पन्न होंगे कि मैं

निश्चित ही अपने बहुत से बालक-बालिकाओं—अल्पवयस्क बच्चे बच्चियों के कारण जिन में से कोई बालक आकाश की ओर मुख करके चित लेटा रहता है, कोई मूत्र कर रहा होता है, ये सब जन्म से ही मेरे लिये दुःखदायी हैं जो सर्वथा भाग्यहीन हैं, और जो थोड़े-थोड़े महीनों के अन्तर से ही मेरी कोख में जन्मे हैं, जिनके मलमूत्र और वमन आदि से मैं हर वक्त लिपी ही रहती हूँ, और दुर्गन्धमयी होकर मैं राष्ट्र-कूट के साथ भोगोपभोगों का सुख प्राप्त नहीं कर पाती हूँ, और न ही भोगोपभोगों के आनन्द का अनुभव करती हुई जीवन व्यतीत कर पाती हूँ। इसलिये वे मातायें धन्य हैं और वे मातायें जीवन का फल प्राप्त कर रही हैं—जो वन्ध्या हैं, सन्तानोत्पत्ति के योग्य नहीं हैं, सोते समय टांगें ही जिनके हृदय के साथ लगी रहती हैं (सन्तान नहीं), और जो सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित होकर अनेक विध मानव-जीवन सम्बन्धी भोग भोगती रहती हैं। मैं तो अधन्य हूँ, पुण्यहीन हूँ; मैंने मानो किसी पूर्व जन्म में कभी कोई पुण्य किया ही नहीं, जिससे मैं राष्ट्रकूट के साथ भोगों को भोग नहीं पाती हूँ ॥१६॥

टीका—जब मनुष्य दुखी हो जाता है तब उसे अपनी सन्तान भी सुहाती नहीं है, इसीलिये सोमा अपनी सन्तान के लिये 'दुज्जर्णहि', दुज्जम्मर्णहि, ह्य विप्पहय-भग्गेहि—दुखदायी दुर्जन्मवाले, हतभाग्य आदि विशेषणों का प्रयोग करती है।

भद्रा बहुपुत्रिका देवी बनी, क्योंकि उसके हृदय में प्रबल सन्तानेच्छा थी। प्रबल सन्तानेच्छा के कारण ही सोमा ब्राह्मणी के रूप में जन्म लेने पर उसके गर्भ से सोलह ही सालों में ३२ सन्तानें हुईं। अत्यधिक वासना का फल ऐसा ही होता है—यहां यह दिखलाया गया है।

उसके हृदय में भोग भोगने की कामना आज भी बनी हुई थी, इसीलिये अब वह वन्ध्या नारियों एवं सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य नारियों को सौभाग्यशीला एवं धन्य मानती हुई अफसोस प्रकट करती है कि अधिक सन्तान के कारण मैं गन्दी एवं बीभत्स होती जा रही हूँ, अतः पति-सुख से वंचित रह रही हूँ ॥१६॥

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं सुवययाओ नाम अज्जाओ इरिया-समियाओ जाव बहुपरिवाराओ पुव्वाणुपुव्वि जेणेव विभेले संनिवेसे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता अहापडिरुवं ओरगहं जाव विहरंति।

तएणं तासि सुव्वयाणं अज्जाणं एगे संघाडए विभेले सन्निवेसे उच्चनीय जाव प्रडमाणे रट्ठकूडस्स गिहं अणुपविट्ठे । तएणं सा सोमा माहणी ताओ अज्जाओ एज्जमाणी ओपासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा० खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भट्ठित्ता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ अणुगच्छित्ता वंदइ नमंसइ, विउलेणं असणं ४ पडिलाभेइ, पडिलाभित्ता एवं वयासी-एवं खलु अहं अज्जाओ रट्ठकूडेणं सिंइ विउलाइ जाव संवच्छरे - संवच्छरे जुगलं पयामि, सोलसहिं संवच्छरेहिं बत्तीसं दारगरूवे पयाया । तएणं अहं तेहिं बहूहिं दारएहिं य जाव डिभियाहिं य अप्पेगइएहिं उत्ताणसिज्ज एहिं जाव मुत्तमाणोइं दुज्जाएहिं जाव नो संचाएमि रट्ठकूडेणं सिद्धिं विउलाइ भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरित्तए तं इच्छामि णं अज्जाओ ! तुम्हं अंतिए धम्मं निसामित्तए । तएणं ताओ अज्जाओ सोमाए माहणीए विचित्तं जाव केवलपण्णत्तं धम्मं परिकहेइ । तएणं सा सोमा माहणी तासि अज्जाणं अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा जाव हियया ताओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता एव वयासी-सद्दहामि णं अज्जाओ ! निगगथं पावयणं जाव अब्भुट्ठेमि णं अज्जाओ जाव से जहेयं तुब्भे वयह, जं नवरं अज्जाओ ! रट्ठकूडं आपुच्छामि । तएणं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडा जाव पव्वयामि । अहासुहं देवाणुप्पिए ! मा पडिबंधं । तएणं सा सोमा माहणी ताओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता पडिविसज्जेइ ॥२०॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये सुव्रता नाम आर्या इयासिमिता यावद् बहुपरिवाराः पूर्वान्-पूर्वं यत्रैव वेभेलेः सन्निवेशस्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य यथाप्रतिरूपम् अवग्रहं यावद् विहरन्ति । ततः खलु तासां सुव्रतानामार्याणाम् एकः संघाटको वेभेले सन्निवेशे उच्चनीचं यावत् अटन् राष्ट्र-कूटस्य गृहमनुप्रविष्टाः । ततः खलु सा सोमा ब्राह्मणी ता आर्या एजमाना । पश्यति दृष्ट्वा हृष्टतुष्टा० श्रिप्रमेव० आसनादभ्युत्तिष्ठति अभ्युत्थाय सप्ताष्टपदानि अनुगच्छति, अनुगत्य वन्दते नमस्यति

विपुलेन अशनं ४ प्रतिलम्भयति, प्रतिलम्भ्य एवमवादीत्—एवं खलु अहमार्याः ? राष्ट्रकूटेन सार्द्धं विपुलान् यावत् संवत्सरैः द्वाविंशद् दारकरूपान् प्रजाता । ततः खलु अहं तैर्बहुभिर्दारकैश्च यावद् डिम्भिकाभिश्च अप्येकैः उत्तानशयकैः यावत् सूत्रयद्भिः दूर्जतैः यावद् नो शक्नोमि राष्ट्रकूटेन सार्द्धं विपुलान् भोगभोगान् भुञ्जाना विहर्तुम्, तदिच्छामि खलु आर्याः ! युष्माकमन्तिके धर्मं निशामि तुम् । ततः खलु ता आर्याः सोमार्थं ब्राह्मण्यं विचित्रं यावत् केवलप्रज्ञप्तं धर्मं परिकथयन्ति । ततः खलु सा सोमा ब्राह्मणी तासामार्याणामन्तिके धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टा यावद् हृदया ता आर्या वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्—श्रद्धांमि खलु आर्याः निर्ग्रन्थं प्रवचनम्, इदमेतद् आर्याः ! यावत् यद् यथेवं ययं ववथ, यद् नवरमार्याः : राष्ट्रकूटमापृच्छामि । ततः खलु अहं देवानुप्रियाणामन्तिके मुण्डा यावत् प्रव्रजामि । यथासुखं देवानुप्रिये ! मा प्रतिबन्धम् । ततः खलु सा सोम । ब्रह्मणी ता आर्या वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा प्रतिविसर्जयति ॥२०॥

पदार्थावयवः—तेणं कालेणं तेणं समएणं—उन्हीं दिनों उस समय, सुव्वयाओ नामं अज्जाओ—सुव्वता विशेषण से प्रसिद्ध साध्वियां, इरियासमियाओ—ईर्या समिति के पालन-पूर्वक, बहुपरिवाराओ—बहुत सी साध्वियों के साथ, पुव्वानुपुव्वि—तीर्थङ्कर निर्दिष्ट परम्परा से विचरती हुई, जेणेव विभेले सन्निवेसे—जहां विभेल नामक ग्राम होगा, तेणेव उवागच्छइ—वहीं पर पहुंचेगी, उवागच्छत्ता—और वहां पहुंचकर, अहापडिरूबं—शास्त्र-प्रतिपादित साध्वी-आवरण के अनुरूप, ओगहं—अवग्रह धारण कर जाव विहरंति—उपाश्रय में ठहरेंगी और भिक्षा के लिये विभेल ग्राम के ऊंच-नीच घरों में जाएंगी । तएणं तासि सुव्वयाणं अज्जाणे—एक बार उन सुव्वता आर्याओं का, एगे संघाडए—एक संघाड़ा (साध्वियों का एक समूह), विभेले सन्निवेसे—विभेल ग्राम में, उच्चनीय जाव अडमाणे—ऊंच-नीच (अमीर-गरीब) घरों में भिक्षा के लिये विचरती हुई, रट्ठकूडस गिहं अणुपविट्ठे—राष्ट्रकूट के घर में भी प्रविष्ट होंगी । तएणं सा सोमा माहणी—तब सोमा ब्राह्मणी, सओ अज्जाओ एज्जमाणीओ—घर में आती हुई उन आर्याओं को, पासइ—देखेगी, पासित्ता हट्ठतुट्ठा—और देखकर प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होगी, खिप्पामेव असणाओ—वह जल्दी ही अपने आसन से, अब्भुट्ठेइ—उठ खड़ी होगी, अब्भुट्ठित्ता—और उठ कर, सत्ताट्ठपयाइं अणुगच्छइ—सात-आठ कदम पीछे हटेगी, अणुगच्छित्ता—और पीछे हट कर, वंदइ नमसइ—वन्दना नमस्कार करेगी, (और), विउलेणं असणं ४ पडिलाभेइ—विपुल अशन (आहार) पान आदि से, पडिलाभेइ—उन्हें आहार-पानों का लाभ देगी, पडिलाभित्ता—और लाभ देकर, एवं वयासी—इस प्रकार निवेदन करेगी, एवं खलु अहं अज्जाओ—हे आर्याओं ! मैं निश्चित ही, रट्ठकूडेणं सद्धिं—अपने पति राष्ट्रकूट के साथ, विउलाइ जाव—अनेक विध भोगों को भोगते हुए, संवच्छरे-संवच्छरे—प्रतिवर्ष, जुगलं पयावि—दो बच्चों को जन्म देती हूं, सोलसाहिं संवच्छरेहिं—इस प्रकार मैंने सोलह वर्षों में, बत्तीसं दारगरूवे पयाय—बत्तीस बच्चों को जन्म दिया है, तएणं अहं—इस प्रकार मैं, तेहिं बह्निहिं दाएहिं—उन बहुत से बच्चों के (जिनमें से) डिभिर्याहिं य—अल्पवयस्क बच्चों में से, अप्पेगइएहिं उत्ताण

सिद्धार्थ—कुछ चित्त होकर सोए रहते हैं, मुत्तमाणेहि—मल-मूत्र त्यागते रहते हैं, जाव—
उनके मलमूत्रादि से लिपटी, दुज्जाएहि—उन जन्म से ही दुख देनेवाले बच्चों के कारण, नो
संचार्मि—मैं नहीं प्राप्त कर सकती, रट्ठकूडेण सद्धि—अपने पति राष्ट्रकूट के साथ, बिउलाइं
भोग - भोगाइं भुजमाणी—अनेक विध (गृहस्थोपयोगी) भोगों-उपभोगों का मुख भोगते हुए,
विहरित्ते—जीवन-यापन का सूत्र । तं इच्छामि अज्जाओ—हे आर्याओं इसलिये मैं चाहती हूँ कि,
सोमाए माहणीए—मुझ सोमा ब्राह्मणी के लिये, विचित्तं जाव केवलपणत्तं—वह सर्वथा अद्भुत
(अद्वितीय) एवं तीर्थङ्कर भगवान द्वारा प्ररूपित, धम्मं परिकहेइ—धर्म मुझे बतलायें । तएणं
सा सोमा माहणी—तदनन्तर वह सोमा ब्राह्मणी, तांस्सि अज्जाणं अत्तिए—उन साध्वियों के
पास से, धम्मं सोच्चा निसम्म—धर्म-तत्त्व को सुनेगी और सुनकर, हट्ठतुट्ठा—हर्षित होकर
सन्तुष्ट होगी, जाव हियया—अपने हृदय से, ताओ अज्जाओ—उन आर्याओं को, वंदइ नमसइ—
वन्दना नमस्कार करेगी, वंदित्ता नमंसित्ता—और वन्दना नमस्कार करके, एवं बयासी—
इस प्रकार निवेदन करेगी, सद्धामि णं अज्जाओ—हे आर्याओं ! मैं केवली प्ररूपित धर्म पर श्रद्धा
करती हूँ, निगगंथं पावयणं जाव अब्भट्ठेमि णं—मैं निग्रन्थ प्रवचन का आदर करती हूँ अज्जाओ
जाव से जहेयं त्वम्मे बयह—हे आर्याओ ! जैसा आप कहेंगी मैं वैसा ही करूंगी, जं नवरं—
क्योंकि वही सत्य है, अज्जाओ—हे आर्याओं, रट्ठकूडं आपुच्छामि—मैं जाकर राष्ट्रकूट से
पूछती हूँ (आज्ञा लेती हूँ), तएणं अहं—तब मैं, देवानुप्पियाणं अम्मित्ते—आप देवानुप्रियाओं
(साध्वियों) के पास आकर, मुण्डा जाव पव्वयामि—मुण्डित बनूंगी और प्रवज्या ग्रहण करूंगी ।
अहामुहं देवानुप्पिए—हे देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हें सुख हो (वैसा करो), मा पडिबंघं—शुभ काम में
प्रमाद नहीं करना चाहिये । तएणं सा सोमा माहणी—तदनन्तर वह सोमा ब्राह्मणी, ताओ
अज्जाओ—उन आर्याओं को, वंदइ नमसइ—वन्दना नमस्कार करेगी, वंदित्ता नमंसित्ता—वन्दना
नमस्कार करके (वह उन्हें), पडिविसज्जेइ—वापिस जाने के लिये विसर्जित करेगी ॥२०॥

मूलार्थ—उन्हीं दिनों उस समय 'सुव्रता' नाम से प्रसिद्ध साध्वियां, ईर्या-समिति
के अनुरूप चलती हुई, बहुत सी साध्वियों के साथ भगवान द्वारा निर्दिष्ट, साध्वी-आचरण
के अनुरूप परम्परा से विचरती हुई जहां विभेल नामक ग्राम था वहीं पर पहुंच जाती हैं ।
और वहां पहुंच कर, शास्त्रप्रतिपादित-साध्वी आचरण के अनुसार अवग्रह धारण कर
उपाश्रय में ठहरती हैं । फिर भिक्षा के लिये विभेल ग्राम में ऊंच-नीच (अमीर-गरीब)
घरों में जाती हैं । एक बार उन सुव्रता आर्याओं का एक संघाडा (समूह) विभेल
ग्राम में अमीर-गरीब घरों में भिक्षार्थ विचरण करते हुए, राष्ट्रकूट के घर में प्रविष्ट
होंगे । तब सोमा ब्राह्मणी घर में आती हुई उन साध्वियों को देखती है और देखते

ही अत्यन्त प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होती है । वह जल्दी ही अपने आसन से उठ खड़ी होती है और उठ कर सात आठ कदम पीछे हटती है, पीछे हटकर उन्हें वन्दना - नमस्कार करती है और उन्हें आहार-पानी आदि का लाभ देती है, लाभ देकर वह आर्याओं से इस प्रकार निवेदन करेगी—“हे आर्याओं ! मैं निश्चित ही अपने पति राष्ट्रकूट के साथ अनेक विध भोगों को भोगते हुए प्रतिवर्ष दो बच्चों को जन्म देती रही हूं, इस प्रकार मैंने सोलह वर्षों में बत्तीस बच्चों को जन्म दिया है । इस प्रकार मैं उन बहुत से बच्चों के (जिन में से) कुछ चित्त होकर सोए रहते हैं; कुछ मलमूत्र त्यागते रहते हैं; उनके मूल-मूत्रादि से लिपटी उन जन्म से ही दुखदायी बच्चों के कारण अपने पति राष्ट्रकूट के साथ भोगोपभोगों का सुख भोगते हुए मैं अपने जीवन का सुख नहीं प्राप्त कर पाती । इसलिये हे आर्याओं ! मैं यह चाहती हूं कि मुझ सोमा ब्राह्मणी के लिये वह सर्वथा अद्वितीय तीर्थकर भगवान द्वारा प्ररूपित धर्म बतलायें ।” तदनन्तर वह सोमा ब्राह्मणी उन साध्वियों के पास से धर्म-तत्त्व की व्याख्या सुनेगी और सुनकर हर्षित एवं सन्तुष्ट हुए अपने हृदय से उन आर्याओं को वन्दना नमस्कार करेगी और वन्दना नमस्कार करके वह इस प्रकार निवेदन करेगी कि हे आर्याओं मैं केवली प्ररूपित धर्म पर श्रद्धा रखती हूं, निर्ग्रन्थ-प्रवचन का आदर करती हूं, आजसे जैसे आप कहेंगे मैं वैसा ही करूंगी, क्योंकि वही सत्य है । हे आर्याओं मैं जाकर राष्ट्रकूट से पूछती हूं (आज्ञा लेती हूं) आज्ञा लेकर तब मैं आपके सान्निध्य में आकर मुण्डित होकर प्रव्रज्या ग्रहण करूंगी ।

(आर्यायें उत्तर देंगी) हे देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हें सुख हो (वैसा करो); शुभ काम में प्रमाद नहीं करना चाहिये । तदनन्तर वह सोमा ब्राह्मणी उन आर्याओं को वन्दना नमस्कार करेगी और वन्दना नमस्कार करके उन्हें वापिस लौटने के लिये विसर्जित करेगी ॥२१॥

टीका—इस सूत्र से यह संकेत प्राप्त होता है कि गृहस्थ के घर में जब भी साधु-साध्वियां आयें उन्हें वन्दना-नमस्कार कर आहार-पानी का लाभ अवश्य देना चाहिये । सोमा उस समय अत्यन्त खिन्न थी तब भी वह श्रद्धा-पूर्वक साध्वियों को आहार-पानी देकर पुण्यार्जन करती । शुद्ध हृदय से श्रद्धा-पूर्वक आहार-पानी देने से गृहस्थ के हृदय में जो भी कामना होती है वह

अवश्य पूर्ण हो जाती है ।

वह पूर्व जन्म में निदान नहीं करेगी कि यदि मेरा तप संयम सफल है तो मुझे भी बहुत सी सन्तति प्राप्त होनी चाहिये । केवल वह दूसरों के बच्चों को देखकर खिन्न होगी, जो उसके हृदय की सन्तानेच्छा को प्रकट करेगी । अतः सोमा को बत्तीस बाल बच्चे प्राप्त हुए जिससे वह अधिक सन्तति होने के दुःख से परिचित होकर “अधिक सन्तान दुःखदायी होती है” इस सत्य को समझ कर आर्याओं से पुनः प्रव्रजित होने के भाव प्रकट करेगी ॥२०॥

मूल—तएणं सा सोमा माहणी जेणेव रट्ठकूडे तेणेव उवागया करतल० एवं वयासी—एवं खलु मए देवानुप्पिया ! अज्जाणं अंतिए धम्मे निसंते, से वि य णं धम्मे इच्छिए जाव अभिरुच्चिए, तएणं अहं देवानुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुन्ना सुव्वयाणं अज्जाणं जाव पव्वइत्तए । तएणं से रट्ठकूडे सोमां माहणीं एवं वयासी—मा णं तुमं देवानुप्पिए ! इदाणिं मुंडा भवित्ता जाव पव्वयाहि । भुंजाहि ताव देवानुप्पिए ! मए सद्धिं विउलाइ भोगभोगाइं, ततो पच्छा भुत्तभोई सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए मुंडा जाव पव्वयाहि ॥२१॥

छाया—ततः खलु सा सोमा ब्राह्मणी यत्रैव राष्ट्रकूटस्त्रैव उपागता करतल० एवमवादीत्— एवं खलु मया देवानुप्रिया ! आर्याणामन्तिके धर्मो निशान्तः (श्रुतः) सोऽपि च खलु धर्मं दृष्टो यावद् अभिरुचितः, ततः खलु अहं देवानुप्रिय ! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सुव्रतानामार्याणां यावत् प्रव्रजितुम् । ततः खलु स राष्ट्रकूटः सोमां ब्राह्मणीमेवमवादीत्—मा खलु देवानुप्रिये ! इदानीं मुण्डा भूत्वा यावत् प्रव्रज, भुङ्क्ष्व तावद् देवानुप्रिये ! मया सार्द्धं विपुलान् भोगभोगान्, ततः पश्चाद् भुक्तभोगा सुव्रतानामार्याणामन्तिके मुण्डा यावत् प्रव्रज ॥२१॥

पदार्थान्वयः—तएणं सा सोमा माहणी—तत्पश्चात् वह सोमा ब्राह्मणी, जेणेव रट्ठकूडे—जहां पर राष्ट्रकूट होगा, तेणेव उवागया—वहीं पर आयेगी, करतल०—हाथ जोड़ कर, एवं वयासी—इस प्रकार बोलेगी, एवं खलु मए देवानुप्पिया—हे देवानुप्रिय ! मैंने निश्चय ही, अज्जाणं अंतिए—आर्याओं के पास जाकर, धम्मे निसंते—धर्म का श्रवण किया है, से वि य णं धम्मे इच्छिए—उसी धर्म को मैं (ग्रहण) करना चाहती हूँ (क्योंकि), जाव अभिरुच्चिए—वही धर्म मेरी रुचि के अनुकूल है, तएणं अहं देवानुप्पिया—इसलिये हे देवानुप्रिय ! मैं, तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया—

आपकी अनुमति (आज्ञा) प्राप्त करके, सुव्ययाणं अज्जाणं—सुव्रता आर्याओं के, जाव पव्वइत्तए—(पास जाकर) दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूं, तएणं से रट्ठकूडे—तब यह सुनकर राष्ट्रकूट, सोमां माहर्णि—सोमा ब्राह्मणी से, एवं वयासी—इस प्रकार बोलेगा, मा णं तुमं देवाणुप्पिए—हे देवानु-प्रिये ! इदाणि—अभी तुम, मुंडा भविस्सा—मुण्डित होकर, जाव पव्वयाहि—प्रव्रज्या मत ग्रहण करो, भुंजाहि ताव देवाणुप्पिए—हे देवानुप्रिये, अभी तुम, मए सद्धि—मेरे साथ, विउलाइं भोग-भोगाइं—अनेकविध भोगोपभोगों का (उपभोग करो), ततो पच्छा तत्पश्चात्, भुत्तभोइ—भुक्त-भोगिनी बन कर, सूव्ययाणं अज्जाणं अंतिए—सुव्रता आर्याओं के पास जाकर, मुंडा जाव पव्वयाहि—मुण्डित होकर प्रव्रज्या ग्रहण कर लेना ॥ २१ ॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् (आर्याओं के चले जाने के बाद) जहां उसका पति राष्ट्रकूट होगा वह वहीं पर आयेगी और हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोलेगी—हे देवानुप्रिय ! मैंने निश्चित ही आर्याओं के पास जाकर धर्म-तत्त्व का श्रवण किया है, उसी धर्म को मैं ग्रहण करना चाहती हूं; क्योंकि वही धर्म मेरी रुचि के अनुकूल है। इसलिये हे देवानुप्रिय ! मैं आपकी अनुमति (आज्ञा) प्राप्त करके, सुव्रता आर्याओं के पास जाकर दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूं।

यह सुनकर राष्ट्रकूट अपनी पत्नी सोमा ब्राह्मणी से इस प्रकार बोलेगा कि हे देवानुप्रिये ! अभी तुम मुण्डित होकर प्रव्रज्या मत ग्रहण करो, हे देवानुप्रिये ! अभी तुम मेरे साथ अनेकविध भोगोपभोगों के साधनों का उपभोग करो, तत्पश्चात् भुक्त-भोगिनी बन कर सुव्रता आर्याओं के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण कर लेना ॥ २१ ॥

टीका—सांसारिक उलझनों और परेशानियों के कारण भी कभी-कभी मानव-मन में सांसारिक उदासीनता आ जाती है, तब मनुष्य सब कुछ छोड़ कर साधु-जीवन अपना लेना चाहता है। सोमा भी अधिक सन्तान रूप उलझन के कारण दीक्षित होना चाहती है, किसी दृष्टि से शान्ति पाने के लिये इसे उचित भी माना जा सकता है। वैसे स्वाभाविक विरक्ति ही साधुत्व अपनाने का कारण हो यही उचित होता है।

राष्ट्रकूट अब भी मोहासक्ति के कारण सोमा को साध्वी न बनने का परामर्श देता है, क्योंकि संसार में व्यक्ति स्व-सुख को ही प्रमुखता दिया करता है ॥ २१ ॥

मूल—तएणं सा सोमा माहणी ण्हाया जाव सरीरा चेडियाचंक्क-

वालपरिकिण्णा साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमिता विभेलं
 सनिवेशं मज्झमज्झेणं जेणेव सुववयाणं अज्जाणं उवस्सए तेणेव उवा-
 गच्छइ, उवागच्छिता सुववयाओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, पज्जुवासइ ।
 तएणं ताओ सुववयाओ अज्जाओ सोमाए माहणीए विचित्तं केवलि-
 पण्णत्तं धम्मं करिकहेइ, जहा जीवा वज्झंति । तएणं सा सोमा माहणी
 सुववयाणं अज्जाणं अंतिए जाव दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जइ, पडि-
 वज्जिता सुववयाओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव
 दिसिं पाउवभूया तामेव दिसं पडिगया । तएणं सा सोमा माहणी समणो-
 वासिया जाया अभिगत० जाव अप्पाणं भावेमाणी विहरइ ॥२२॥

छाया—ततः खलु सा, सोमा ब्राह्मणी राष्ट्रकूटस्थ एनमर्थं प्रतिभृणोति । ततः खलु सा सोमा
 ब्राह्मणी स्नाता यावत् सर्वालङ्कारभूषितशरीरा चेटिकाचक्रवालपरिकीर्णा स्वस्माद् गृहात् प्रतिनिष्का-
 मति, प्रतिनिष्क्रम्य विभेलं सन्निवेशं मध्यमध्येनन् यत्रैव सुव्रतानामार्याणामुपाश्रयस्तत्रैव उपागच्छति
 उपागत्य सुव्रतां आर्यां वन्दते नमस्यति पर्युपासते । तताः खलु साः सुव्रताः आर्याः सोमार्थं ब्राह्मण्यं
 विचित्रं केवलिप्रज्ञत्तं धर्मं परिकथयन्ति, यथा जीवा बध्यन्ते । ततः खलु सा सोमा ब्राह्मणी सुव्रता-
 नामार्याणामन्तिके यावद् द्वादशविधं भावकधर्मं प्रतिपद्यते, प्रतिपद्य सुव्रतां आर्यां वन्दते नमस्यति,
 वन्विस्वा नमस्यन्वा यस्या एव विशः प्रादुर्भूता तामेव दिशं प्रतिगता । ततः खलु सा सोमा ब्राह्मणी
 श्रमणोपासिका जाता अभिगत० यावत् आत्मानं भावयन्ती विहरति ॥२२॥

पदार्थान्वयः—तएणं सा सोमा माहणी—तत्पश्चात् (पति का परामर्श सुनने के अनन्तर) वह
 सोमा ब्राह्मणी, गृहाया—स्नान करेगी और, जाव सरीरा—वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर,
 चेटिया-चक्रवाल-परिकिण्णा—अपनी दासियों के समूह से घिरी हुई, साओ गिहाओ—अपने घर
 से, पडिनिक्खमइ—बाहर आयेगी, (और), पडिनिक्खमिता—बाहर आते ही, विभेलं सनिवेशं
 मज्झमज्झेणं—विभेल ग्राम के मध्य भाग से निकलती हुई, जेणेव सुववयाणं अज्जाणं उवस्सए—जहाँ
 पर सुव्रता आर्याओं का उपाश्रय होगा, तेणेव उवागच्छइ—वहीं पर पहुँचेगी और, उवागच्छिता—
 वहीं पहुँचकर, सुववयाओ अज्जाओ—सुव्रता साध्वियों को, वंदइ नमंसइ—वन्दना नमस्कार करेगी,
 पज्जुवासइ—उनकी पर्युपासना (सेवा-भक्ति) करेगी, तएणं ताओ सुववयाओ अज्जाओ—तदनन्तर
 वे सुव्रता आर्यायें, सोमाए माहणीए—सोमा ब्राह्मणी को, विचित्तं—विचित्र अर्थात् अश्रुत-पूर्व—

अद्वितीय, केवलिपण्णात्तं धम्मं परिकहेद्—केवली-प्ररूपित धर्म कहेंगी, अर्थात् धर्म के ऐसे तत्त्व समझायेंगी, जहाँ जीवा वज्रंति—कि कैसे जीव कर्म-बन्धन में बधते हैं ।

तएण सा सोमा माहणी—तत्पश्चात् वह सोमा ब्राह्मणी, सुव्वयाणं अज्जाणं अन्तिए—सुव्रता आर्याओं के पास से (अर्थात् उनके मुख से), जाव दुवालसविहं सावगधम्मं—बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ बारह प्रकार के श्रावक धर्म को पडिवज्जइ—स्वीकार करेगी और, पडिवज्जित्ता—स्वीकार करके, सुव्वयाओ अज्जाओ—उन सुव्रता साध्वियों को, वंदइ नमंसइ—वन्दना नमस्कार करेगी तथा, वंदित्ता नमंसित्ता—वन्दना नमस्कार करके, जामेव विसि पाउब्भया—जिस दिशा (मार्ग) से आई थी, तामेव विसं पडिगया—उसी दिशा में लौट जायेगी, तएण सा सोमा माहणी—तब से वह सोमा ब्राह्मणी, समणोवासिया जाया—श्रमणोपासिका बन गई, अभिगत०—सभी जीव-अजीव आदि तत्त्वों को जानकर, अप्पाणं भावेमाणी—अपनी आत्मा को धर्म में लगाती हुई, विहरइ—विचरण करेगी—धर्ममय जीवन व्यतीत करेगी ॥२२॥

मूलार्थ—तत्पश्चात् (पति का परामर्श सुनने के अनन्तर) वह सोमा ब्राह्मणी स्नान करेगी और वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर अपनी दासियों के समूह से घिरी हुई अपने घर से बाहर निकलेगी और बाहर आते ही विभेस ग्राम के मध्य भाग से निकतली हुई जहाँ पर सुव्रता साध्वियों का उपाश्रय होगा वहीं पर पहुँचेगी और और वहाँ पहुँचकर उन सुव्रता साध्वियों को वन्दना-नमस्कार करेगी, उनकी पर्युपासना (सेवा-भक्ति) करेगी । तदनन्तर वे सुव्रता आर्यायें सोमा ब्राह्मणी को अद्वितीय अभुत-पूर्व केवली-प्ररूपित धर्म के ऐसे तत्त्व समझायेंगी कि ये जीव कर्म-बन्धनों में कैसे बन्धते हैं ?

तत्पश्चात् वह सोमा ब्राह्मणी सुव्रता आर्याओं के पास से अर्थात् उनके मुख से बड़ी श्रद्धा - भक्ति के साथ बारह प्रकार के श्रावक-धर्म को स्वीकार करेगी और स्वीकार करके उन सुव्रता आर्याओं को वन्दना-नमस्कार करेगी और वन्दना नमस्कार करके जिस दिशा (मार्ग) से आई थी उसी मार्ग से वह अपने घर लौट जाएगी ।

तदनन्तर वह सोमा ब्राह्मणी श्रमणोपासिका (श्राविका) बन गई और सभी जीव-अजीव आदि तत्त्वों को जान कर अपनी आत्मा को धर्म में लगाती हुई विचरण करेगी अर्थात् धर्ममय जीवन व्यतीत करेगी ॥ २२ ॥

टीका—इस सूत्र द्वारा यह ज्ञान प्राप्त हो रहा है कि धर्म-श्रवण के लिये श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक गुरुजनों के पास जाना चाहिये ।

स्त्रियों के लिये यह भी उचित है कि वे अपने पति के परामर्श के अनुसार ऐसे चलें जैसे सोमा अपने पति के परामर्श को मान कर साध्वी न बनकर श्राविका बनती है ।

श्रावक-श्राविकाओं को अपना जीवन धर्माचरण करते हुए व्यतीत करना चाहिये ॥२२॥

सूत्र—तएणं ताओ सुव्वयाओ अज्जाओ अण्णया कयाइं बिभेलाओ संनिवेसाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमिता, बहिया जणवयविहारं विहरंति ॥२३॥

छाया—ततः खलु ताः सुव्रता आर्या अन्यथा कदाचित् बेभेलात् संनिवेशात् प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य बाह्यं जनपद-विहारं विहरन्ति ॥२३॥

पदार्थान्वयः—तएणं ताओ सुव्वयाओ अज्जाओ—सोमा को श्राविका धर्म समझाने के अनन्तर वे सुव्रता आर्यायें, अण्णया कयाइं—साध्वी-मर्यादा के अनुरूप समय आने पर, बिभेलाओ संनिवेसाओ—बिभेल नामक ग्राम से, पडिनिक्खमंति—चल पड़ेंगी और, पडिनिक्खमिता—वहाँ से चल कर, बहिया जणवयविहारं—अनेक जन पदों (प्रान्तों में), विहरंति—विहार करती रहेंगी ॥२३॥

मूलार्थ—सोमा को श्राविका धर्म का उपदेश देने के अनन्तर सुव्रता आर्यायें साध्वी-मर्यादा के अनुरूप समय आने पर बिभेल नामक ग्राम से चल पड़ेंगी और वहाँ से चल कर अनेक जनपदों (प्रान्तों) में विहार करती रहेंगी ॥२३॥

टीका—सूत्र का भाव स्पष्ट है, फिर भी इस सूत्र के द्वारा यह शिक्षा मिलती है कि साध्वियों को साध्वी-मर्यादा के अनुरूप दो मास से अधिक कहीं रहना कल्पता नहीं है, अतः उचित अवसर आते ही उन्हें विहार कर ही देना चाहिये ॥ २३ ॥

सूत्र—तएणं ताओ सुव्वयाओ अज्जाओ अन्नया कयाइं पुव्वाणुपुविं जाव विहरइ । तएणं सा सोमा माहणी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी

हृदुतुठ्ठा ण्हाया तहेव निग्गया जाव वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता धम्म सोच्छा जाव नवरं रट्ठकूडं आपुच्छामि, तएणं पव्वयामि । अहासुहं । तएणं सा सोमा माहणी सुव्वयं अज्जं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सुव्वयाणं अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव रट्ठकूडे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करतल परिग्गहियं० तहेव आपुच्छइ जाव पव्वइत्तए । अहासुह देवानुपिए ! मा पडिबधं ॥२४॥

छाया—ततः खलु ताः सुव्रता आर्या अभ्यदा कदाचित् पूर्वानुपूर्व्या यावद् विहरन्ति । ततः खलु सा सोमा ब्राह्मणी अस्याः कथाया लब्धार्था सती हृष्टतुष्टा० स्नाता तथैव निर्गता यावद् वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा धर्मं श्रुत्वा यावद् नवरं राष्ट्रकूटमापुच्छामि, तदा प्रव्रजामि यथासुखम्० । ततः खलु सा सोमा ब्राह्मणी सुव्रतामार्या वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा सुव्रतानामन्तिकात् प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव स्वकं गृहं यत्रैव राष्ट्रकूटस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य करतलपरिगृहीतं० तथैव आपुच्छति यावत् प्रव्रजितुम् । यथासुखं देवानुप्रिये ! मा प्रतिबन्धम् ॥२४॥

पदार्थान्वयः—तएणं तओ सुव्वयाओ अज्जाओ—तदनन्तर वे सुव्रता आर्यायें, अन्नया कयाइ—फिर किसी समय, पुव्वानुपुषिं—क्रमशः ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए, जाव विहरइ—उसी विभेल ग्राम में आर्येगी और वसति (ठहरने की आज्ञा लेकर उपाश्रय में तप-संयम से आत्मा को भावित करती हुई ठहरेंगी, तएणं सा सोमा माहणी—तदनन्तर वह ब्राह्मणी सोमा, इमीसे कहाए लढढा समाणी—उनके आगमन की सूचना प्राप्त करते ही, हृदुतुठ्ठा ण्हाया—प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होकर स्नान करेगी, तहेव निग्गया—पहले की तरह वस्त्रालंकारों से सजकर और अपनी दासियों के समूह से घिरी हुई घर से निकलेगी, जाव वंदइ नमंसइ—और उपाश्रय में पहुंचकर आर्याओं को वन्दना नमस्कार करेगी, सेवा-भक्ति करेगी, वंदित्ता नमंसित्ता—वन्दना-नमस्कार करके, धम्मं सोच्छा—वन्दना नमस्कार के अनन्तर उनके मुख से धर्म तत्त्व सुनकर, जाव नवरं—पहले की तरह आर्याओं से निवेदन करेगी कि मैं अपने पति, रट्ठकूडं आपुच्छामि—राष्ट्रकूट से जाकर पूछती हूं (आज्ञा लेती हूं), तएणं—तत्पश्चात् लौट कर, पव्वयामि—दीक्षा ग्रहण करूंगी ।

आर्यायें कहेंगी—अहासुहं—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसा करो, तएणं सा सोमा माहणी—तदनन्तर वह सोमा ब्राह्मणी, सुव्वयं अज्जं—(उनमें से ज्येष्ठ) साध्वी को, वंदइ नमंसइ—वन्दना नमस्कार करेगी और, वंदित्ता नमंसित्ता—वन्दना नमस्कार करके, सुव्वयाणं

अग्निवाओ—उन सुव्रता आर्याओं के पास से, पडिनिबुल्लमइ, पडिनिबुल्लमिता—उपाश्रय से बाहर आएगी और बाहर आकर, जेणेव सए गिहे—जहां उसका अपना घर होगा, जेणेव रट्ठकूडे—और जहां पर राष्ट्रकूट होगा, तेणेव उवागच्छइ—वहीं पर पहुंच जाती है और, उवागच्छिता करतल परिगग्हियं—वहां पहुंचकर अपने दोनों हाथ जोड़कर, तहेव—पहले की तरह ही, आपुच्छइ—राष्ट्रकूट से पूछेगी, जाव पव्वइत्तए—कि मैं प्रवज्या ग्रहण करना चाहती हूं (तब राष्ट्रकूट ने भी यही कहा), अहासहं देवानुप्पिए !—देवानुप्रिये जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो वंसा करो, मा पडिबंघ—शुभ कार्य में विलम्ब मत करो ॥२४॥

मूलार्थ—तदनन्तर सुव्रता आर्यायें पुनः किसी समय क्रमशः ग्रामानुग्राम विहार करती हुई उसी विभेलग्राम में आयेंगी और वसति (ठहरने) की आज्ञा लेकर उपाश्रय में तप-संयम द्वारा अपनी आत्मा को भावित करती हुई ठहरेंगी । तदनन्तर ब्राह्मणी सोमा उनके आगमन की सूचना प्राप्त होते ही प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होकर स्नान करेगी, पहले की तरह वस्त्राभूषणों से सज कर एवं अपनी दासियों से घिरी हुई, अपने घर से निकलेगी और उपाश्रय में पहुंच कर आर्याओं को वन्दना नमस्कार करेगी और वन्दना-नमस्कार करके आर्याओं के मुख से धर्म सुनकर पहले की तरह आर्याओं से निवेदन करेगी कि मैं अपने पति राष्ट्रकूट से जाकर पूछती हूं (आज्ञा लेती हूं) तत्पश्चात् लौट कर मैं आपसे दीक्षा ग्रहण करूंगी ।

आर्यायें पुनः सोमा से कहेंगी जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो वंसा करो । तदनन्तर वह सोमा ब्राह्मणी (उनमें से ज्येष्ठ) साध्वी को वन्दना-नमस्कार करती हैं और वन्दना नमस्कार करके, उन सुव्रता आर्याओं के पास से (उठकर) उपाश्रय से बाहर आती है और बाहर आकर जहां उसका अपना घर होगा जहां पर उसका पति राष्ट्रकूट (बैठा) होगा वहीं पहुंच जाएगी, वहां पहुंच कर दोनों हाथ जोड़ कर पहले की तरह ही राष्ट्रकूट से वह पूछेगी कि मैं प्रवज्या ग्रहण करना चाहती हूं । राष्ट्रकूट भी उससे यही कहेगा कि) देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो वंसा ही करो, शुभ कार्य में विलम्ब मत करो ॥२४॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में सोमा आर्या के भविष्य का कथन करते हुए भगवान कहते हैं कि सोमा ब्राह्मणी के हृदय में साध्वियों के प्रति श्रद्धा जामृत होगी । वह साध्वियों का आगमन सुनते

ही श्रद्धा-भक्ति पूर्वक उपाश्रय में साध्वी-सान्निध्य में पहुंचेगी। यह प्रत्येक श्रावक-श्राविका का कर्तव्य है कि वह गुरुजनों का आगमन सुनते ही उनके दर्शनार्थ वहां पहुंच जायें।

स्त्रियों को गृह त्याग कर साध्वी-जीवन अपनाने से पूर्व विवाहित होने पर अपने पति से आज्ञा अवश्य प्राप्त करनी चाहिये।

पहली बार पूछने पर राष्ट्रकूट अपनी पत्नी सोमा को घर में ही रहने का परामर्श देता है किन्तु दूसरी बार पूछने पर उसने उसकी भावना का समर्थन करते हुए उसे प्रेरणा दी कि 'मा पडिबन्ध' शुभ कार्य में देरी मत करो। अपने किसी भी पारिवारिक जन को धर्म-मार्ग में प्रवृत्त होने से रोकना उचित नहीं होता प्रस्तुत सूत्र का यह संकेत मननीय है ॥ २४ ॥

मू०—तएणं से रट्ठकूडे विउलं असणं तहेव जाव पुव्वभवे सुभद्दा जाव अज्जा जाता, इरियासमिया जाव गुत्तबंभयारिणी। तएणं सा सोमा अज्जा सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहि छट्ठट्ठम दसम दुवालस० जाव भावेमाणी बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेबित्ता आलोइयपडिक्कंता समाहि पत्ता कालमासे कालं किच्चा सक्कस्स देविदस्स देवरण्णो सामाणिय-देवत्ताए उववन्ना। तत्थणं अत्थेगइयाणं देवाणं दो सागरोवमाइं ठिई पणत्ता, तत्थ णं सोमस्स वि देवस्स दोसागरोवमाइं ठिई पणत्ता ॥२५॥

छाया—ततः खलु स राष्ट्रकूटो विपुलमशनं तथैव यावत् पूर्वभवे सुभद्रा यावद् आर्या जाता, इर्यासमिता यावद् गुत्तबन्धचारिणी। ततः खलु सा सोमा आर्या सुव्रतानामार्याणामन्तिके सामायिका-दीनि एकादशाङ्गानि अधीते, अधीत्य बहुभिः षष्ठाष्टमदशमद्वादश० यावद् भावयन्ती बहूनि वर्षाणि ध्यामण्यपर्यायं पालयति, पालयित्वा मासिक्या संलेखनया षष्ठि भक्तानि अनशनेन छित्त्वा आलोचित-प्रतिक्रान्ता समाधिप्राप्ता कालमासे कालं कृत्वा शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सामानिकदेवतया उत्पद्यत। तत्र खलु अस्त्येकंकेषां देवानां द्विसागरोपमा स्थितिः प्रजप्ता, तत्र खलु सोमस्यापि देवस्य द्विसागरोपमा स्थितिः प्रजप्ता ॥२५॥

पदार्थान्वयः—तएणं से रट्ठकूडे—तदनन्तर राष्ट्रकूट ने, विउलं असणं जाव—विपुल अशन,

पान, खाद्य स्वाद्य चारों प्रकार की भोजन-सामग्री बनवाकर जातीय बन्धुओं एवं मित्रों आदि को खिलाकर सन्तुष्ट करेगा, पुत्रवभवे सुभद्रा जाव अज्जा जाता—पूर्व जन्म में जैसे सुभद्रा आर्या बनी थी वैसे ही, सा सोमा अज्जा—वह सोमा भी आर्या बनेगी ।

(अब उसने) सुव्रयाणं अज्जाणं अंतिए—सुव्रता आर्याओं के सान्निध्य में बैठ कर, सामाद्वय माद्वयाइ—सामायिक एवं, एक्कारस अंगाई—ग्यारह अंग शास्त्रों का, अहिज्जइ—अध्ययन करेगी, अहिज्जित्ता—अध्ययन करके, बहूहि छट्ठट्ठम वसम-दुवालस० जाव—अनेक विध छठ, अष्टम, दशम, द्वादश आदि तप साधनाओं द्वारा, भावेभाणी—अपनी आत्मा को भावित करती हुई, बहूहि वासाई—बहुत वर्षों तक, सामण्य परियागं—श्रामण्य पर्याय का, पाउणइ—पालन करेगी, पाउणित्ता—ग्रीर पालन करके, मासियाए संलेहणाए—एक मास की संलेखना द्वारा, सट्ठि भत्ताइ अणसणए छेदिता—साठ दिनों के भोजन का अनशन द्वारा छेदन करके, आलोइय-पडिक्कंता समाहिपत्ता—अपने पाप स्थानों की आलोचना और प्रतिक्रमण करके, समाधि को प्राप्त कर, कालमासे कालं किच्चा—कालमास में काल करके, सक्कस्स देविदस्स देवरणो—देवराज देवेन्द्र शक्र की, सामाणिय देवत्ताए—सामानिक देवता के रूप में, उववन्ना—उत्पन्न होगी, तत्थणं—वहां सौधर्म देवलोक में, अत्थेगइयाणं देवाणं—कुछ एक देवों की, बोसागरोवमाइ—दो सागरोपम की स्थिति कही गई है, तत्थणं—वहां पर, सोमस्स वि देवस्स—सोम नामक देव की भी, बोसागरोवमाइ—दो सागरोपम की, ठिई पणत्ता—स्थिति कही गई है ॥२५॥

मूलार्थ—तदनन्तर राष्ट्रकूट विपुल अशन, पान, खाद्य-स्वाद्य -चारों प्रकार की भोजन सामग्री बनवा कर जातीय बन्धुओं एवं मित्रों आदि को खिलाकर सन्तुष्ट करेगा पूर्व जन्म में जैसे सुभद्रा आर्या (साध्वी) बनी थी वैसे ही वह सोमा भी आर्या बन जायेगी ।

अब वह सुव्रता आर्याओं के सान्निध्य में बैठकर सामायिक एवं ग्यारह अंग शास्त्रों का अध्ययन करेगी और अध्ययन करके बहुत से छट्ठ अष्टम दशम एवं द्वादश आदि के रूप में तप-साधनाओं के द्वारा अपनी आत्मा को भावित करती हुई बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन करेगी और पालन करके एक मास की संलेखना द्वारा साठ दिनों के आहार का अनशन द्वारा छेदन करके अपने पाप-स्थानों की आलोचना और प्रतिक्रमण करके समाधि को प्राप्त हो कालमास में काल करके देवराज देवेन्द्र शक्र के सोम नामक सामानिक देव के रूप में उत्पन्न होगी । वहां

सौधर्म देवलोक में कुछ देवों की दो सागरोपम की स्थिति कही गई है । वहां पर सोम नामक देव की भी दो सागरोपम की स्थिति कही गई है ॥ २५ ॥

टीका— राष्ट्रकूट अपनी पत्नी के साध्वी बनने से पूर्व अपने जाति-बन्धुओं एवं मित्रों आदि का अनेक विध भोजन सामग्री द्वारा आदर-सत्कार करेगा । जैन संस्कृति साधु बनने वाले व्यक्ति से द्वारा सभी मोह-सम्बन्ध तोड़कर साक्षी रूप में समस्त जातीय बन्धुओं एवं मित्रों को आमन्त्रित करने का विधान करती ।

साध्वी के लिये प्रतिक्रमण आदि के अतिरिक्त शास्त्र-स्वाध्याय को भी आवश्यक एवं अनिवार्य बताया गया है ।

अन्त में संलेखना साधु-चर्या का अनिवार्य अंग है ॥ २५ ॥

मूल—से णं भन्ते ! सोमे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं जाव चयं चइत्ता कंहि गच्छिहिइ ? कंहि उववज्जिहिइ ? गोयमा ! महाविदेहे वासे जाव अंतं काहिइ । एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते ॥२६॥

छाया—सः खलु भवन्त ! सोमो देवः तस्मात् देवलोकाद् आयुक्ष्येण यावत् चयं च्युत्वा क्व गमिष्यति ? क्व उत्पत्स्यते ? गौतम ! महाविदेहे वर्षे यावद् अन्तं करिष्यति । एवं खलु जम्बू । भ्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन चतुर्थस्याध्ययनस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः ॥२६॥

॥ पृष्पितायां चतुर्थमध्ययनं समाप्तम् ॥ ४ ॥

पदार्थान्वयः—(गौतम स्वामी जी पूछते हैं) से णं भन्ते ! भगवन् ! सोमेदेवे—वह सोम नामक देव, ताओ देव लोकाओ—उस सौधर्म देवलोक से, आउक्खएणं जाव—आयु-क्षय, भव-क्षय और स्थिति क्षय हो जाने पर, चयं चइत्ता—वहां से च्यव कर, कंहि गच्छिहिइ—कहां जायेगा, कंहि उववज्जिहिइ—कहां उत्पन्न होगा ।

(भगवान् महावीर ने गौतम स्वामी जी को बतलाया)—गोयमा—हे गौतम ! महाविदेहे वासे—महाविदेह क्षेत्र में, जाव अंतं काहिइ—सब दुःखों का अन्त करेगा, एवं खलु जम्बू !—इस प्रकार हे जम्बू !, समणेणं जाव संपत्तेणं—भिक्षाघाम में पहुंचने वाले भ्रमण भगवान् महावीर

ने, चउत्थस्स अउत्थयणस्स—इस शास्त्र के चौथे अध्ययन के, अयमट्ठे षण्णस्से—उपर्युक्त भाव निरूपित किए हैं ॥२६॥

मूलार्थ—श्री गौतम स्वामी जी पूछते हैं—भगवन् ! वह सोम नामक देव उस सौधर्म नामक देवलोक से आयु-क्षय, भव-क्षय, स्थिति-क्षय हो जाने पर वहां से च्यव कर कहां जाएगा और कहां उत्पन्न होगा ?

(भगवान् महावीर स्वामी ने कहा)—हे गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्र में जायेगा और सब दुखों का अन्त करेगा ।

हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने इस शास्त्र के इस चतुर्थ अध्ययन के उपर्युक्त भाव निरूपित किए हैं ।

टीका—सभी भाव सर्वथा स्पष्ट हैं ।

॥ पुष्पिता का चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

पञ्चम अध्यायः

मूल—जइणं भंते ! समणेण भगवया उवखेवओ० । एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे गुणसिलए चेइए, सेणिय-राया, सामी समोसरिए, परिसा निग्गया ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं पुण्णभद्दे देवे सोहम्मे कप्पे पुण्णभद्दे विमाणे सभाए सुहम्माए पुण्णभद्दंसि सोहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जहा सूरियाभो जाव वत्तीसविहं नट्टविहिं उवदसित्ता जामेव दिंसि पाउब्भूए तामेव दिंसि पडिगए । कूडागारसाला० पुव्वभवपुच्छा ।

एवं गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जम्बूदीवे दीवे भारहे वासे मणिवइया नामं नयरी होत्था रिद्ध०, चंदो राया ताराइण्णे चेइए । तत्थणं मणिवइयाए नयरीए पुण्णभद्दे नाम गाहावई परिवसइ अड्ढे० । तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरा भगवंतो जातिसंण्णा जाव जीविया-समरणभयविप्पमुक्का बहुपरिवारा पुव्वाणुपुवि जाव समोसठा, परिसा निग्गया ॥१॥

छाया—यदि खलु भवन्त ! भ्रमणेन भगवता उत्क्षेपकः० । एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरं गुणशिलं चैत्यम्, श्रेणिको राजा, स्वामी समवसृतः, परिषद् निर्गता ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये पूर्णभद्रो देवः सोधर्मो कल्पे पूर्णभद्रे विमाने सभायां सुधर्मायां पूर्णभद्रे सिंहासने चतुर्भिः सामानिकसहस्रैः यथा सूर्याभो यावत् द्वात्रिंशद्विंशं नाट्यविधिमपवश्यं यस्या दिशः प्रादुर्भूतस्तामेव दिशं प्रतिगतः, कूटागारशाला, पूर्वभवपुच्छा ।

एवं गौतम ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये अत्रैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे मणिपादिका नाम नगरी अभवत्, ऋद्धस्तिमित समृद्धा०, चन्द्रो राजा, ताराकीर्णं चैत्यम् । तत्र खलु मणिपादिकायां नगर्यां पूर्णभद्रो नाम गाथापतिः परिवसति, आक्यः० । तस्मिन् काले तस्मिन् समये स्थविरा भगवन्तो जातिसम्पन्नाः, यावत् जीविताशामरणभयविप्रमुक्ता बहुश्रुता बहुपरिवाराः पूर्वानुपूर्वी यावत् समवसृताः । परिषद् निर्गता ॥१॥

पदार्थान्वयः—जड़णं भन्ते !—भगवान् यदि, समणेणं भगवया—श्रमण भगवान् महावीर ने, उक्खेवओ—पुष्पिता के चतुर्थ अध्येयन में पूर्वोक्त भावों का वर्णन किया है तो पञ्चम अध्येयन में किस विषय का निरूपण किया है ?

एवं खलु जम्बू ! (सुधर्मा स्वामी बोले)—हे जम्बू !, तेणं कालेणं तेणं समएणं—उस काल और उस समय में, रायगिहे नामं नयरे—राजगृह का नाम का एक नगर था, गुणसिलए चेइए—उस नगर में गुणशील नाम का एक चैत्य (उद्यान) था, सेणिए राया—वहाँ पर श्रेणिक नाम का राजा था, सामी समोसरिए—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी नगर के उस चैत्य में पधारे, परिसा निगया—श्रमण भगवान् के दर्शनों और उपदेश श्रवण के लिये जन-समूह नगर से बाहर निकलकर वहाँ गुणशील चैत्य में पहुँचा ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं—(जम्बू) उस काल और उस समय में, पुण्णभद्दे देवे—पूर्णभद्र नाम के देवता, सुहम्मे कप्पे—सौधर्म कल्प के, पुण्णभद्दे विघाणे—पूर्णभद्र नामक विमान की, सुहम्माए सभाए—सुधर्मा नाम की सभा में, पुण्णभद्दंसि सीहासणंसि—पूर्णभद्र नामक सिंहासन पर, चउहि समाणिय साहस्सिहि—चार हजार सामानिक देवों के साथ बैठे हुए थे । जहा सूरि-याओ—सूर्याभ देव के समान, जाव बत्तीस विहं नट्टविहि—भगवान् के समक्ष यावत् बत्तीस प्रकार की नाट्य-विधियाँ, उवदं सत्ता—प्रदर्शित करके, जामेव दिंसि पाउब्भए—जिस दिशा से आकर वह प्रकट हुआ था, तामेव दिंसि पडिगए—वह उसी दिशा (मार्ग) से लौट गया, कूडा-गारशाला० पूव्वभवपुच्छा—(जम्बू !) अब गौतम स्वामी जी ने पूर्णभद्र देव की ऋद्धि के विषय में प्रश्न किया कि वह नाट्य-विधि में प्रदर्शित वैभव कहां चला गया ? तब भगवान् महावीर ने पहले की तरह ही कूटागारशाला के उदाहरण द्वारा गौतम स्वामी जी को प्रतिबोधित किया ।

(तब गौतम स्वामी जी के हृदय में पूर्णभद्र देव के पूर्व जन्म के सम्बन्ध में जानने की इच्छा उत्पन्न हुई, उनका समाधान करते हुए भगवान् ने कहा), एवं गोयमा !—हे गौतम ! तेणं कालेणं तेणं समएणं—उस काल और उस समय में, इहेव जम्बू द्वीवे—इसी जम्बू द्वीप के, भारहेवासे—भरत क्षेत्र में, मणिवइया नामं नयरी होत्था—मणिपदिका नाम की एक नगरी थी, रिद्ध०—जो बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं वाले भवनों से युक्त शत्रु-भय से रहित एवं धन-धान्यादि से सम्पन्न थी, चंदो राया—वहाँ के राजा का नाम चन्द्र था, ताराइण्णो चेइए—उसी नगरी में ताराकीर्ण नाम का एक चैत्य (उद्यान) था, तत्थ णं मणिवइयाए नयरीए—उस मणिपदिका नाम की नगरी में, पुण्णभद्दे नाम गाहावई—पूर्ण भद्र नाम का एक गाथापति, परिवसइ—रहता था, अट्ठे०—जी अत्यन्त समृद्ध था ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं—उसी काल में उस समय, थेरा भगवन्तो—स्थविरपद-विभूषित एक मुनिराज पधारे जो, जातिसंयण्णा—जाति-सम्पन्न थे, जाव जीवियास-मरण-भयविषमक्का—वे जीवन की इच्छा और मरने का भय दोनों से ही मुक्त थे, बहुस्सया—बहुश्रुत, बहुपरिवारा—

विशाल मुनि समूह के साथ, पुष्पाणुपुष्पि,—भगवान् महावीर की आज्ञा के अनुरूप विचरते हुए, जाव समोसडा—उसी नगरी में पधारे, परिसा निगया—जन-समुदाय रूप नागरिकों की टोलियां घरों से निकल कर वहां उनके दर्शनार्थ एवं उपदेश श्रवण के लिये पहुंचीं ॥१॥

मूलार्थ—(जम्बू स्वामी प्रश्न करते हैं) भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने पुष्पिता के चतुर्थ अध्ययन में पूर्वोक्त भावों का वर्णन किया है तो पञ्चम अध्ययन में किस विषय का निरूपण किया है ?

सुधर्मा स्वामी बोले—हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नाम का एक नगर था, उस नगर में गुणशील नाम का एक चैत्य था । वहां पर श्रेणिक नाम का राजा राज्य करता था । नगर के उसी चैत्य में भगवान् महावीर स्वामी पधारे; भगवान् के दर्शनों और उपदेश-श्रवण के लिये, जन-समूह नगर से बाहर निकल कर उसी गुणशील चैत्य में पहुंचा ।

(जम्बू !) उस काल और उस समय में सौधर्म कल्प-लोक के पूर्णभद्र नामक विमान की सुधर्मा नाम से प्रसिद्ध सभा में पूर्णभद्र नामक सिंहासन पर पूर्णभद्र नाम का देव चार हजार सामानिक (सेवा में उपस्थित रहने वाले) देवों के साथ बैठा हुआ था, वह देव सूर्याभि देव के समान भगवान् के समक्ष यावत् बत्तीस प्रकार की नाट्य-विधियां प्रदर्शित करके जिस दिशा से आकर वहां प्रकट हुआ था; उसी दिशा (मार्ग) में लौट गया ।

तब गौतम स्वामी जी के हृदय में पूर्ण भद्र के पूर्व जन्म के सम्बन्ध में जानने की इच्छा उत्पन्न हुई । उनका समाधान करते हुए भगवान् ने कहा—हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में “मणिपदिका” नाम की एक नगरी थी जो विशाल अट्टालिकाओं वाले भवनों से युक्त थी, शत्रुओं के आतंक से मुक्त और धन-धान्यादि से सस्पन्न थी । वहां के राजा का नाम चन्द्र था और उस नगर में “ताराकीर्ण” नाम का एक उद्यान था । उस मणिपदिका नाम की नगरी में पूर्णभद्र नाम का एकगाथापति रहता था जो अत्यन्त समृद्ध था ।

उसी काल में उस समय स्थविर पद-विभूषित एक ऐसे मुनिराज वहां पधारे

जो जाति-सम्पन्न थे (अच्छे कुल के थे) जो जीवन की इच्छा और मृत्यु का भय दोनों से मुक्त थे, बहुश्रुत थे और विशाल मुनि-समूह के साथ भगवान् महावीर की आज्ञा के अनुरूप विचरण कर रहे थे। वे उसी नगरी में पधारे। जन-समुदाय रूप नागरिकों की टोलियां घरों से निकल कर वहां उनके दर्शनार्थ एवं उपदेश-श्रवण के पहुंचीं ॥१॥

टीका—पूरा वर्णन अत्यन्त स्पष्ट है ॥१॥

मूल—तएणं से पुण्णभद्दे गाहावइ इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ० जाव पण्णत्तोए गंगदत्ते तहेव निग्गच्छइ, जाव निक्खंतो जाव गुत्तबंभयारी ।

तएणं से पुण्णभद्दे अणगारे भगवंताणं अंतिए सामाइय-मादियाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बइहि चउत्थत्ठट्ठम जाव भावित्ता बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासि-याए संलेहणाए सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे पुण्णभद्दे विमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि जाव भाषामणपज्जत्तोए ।

एवं खलु गोयमा ! पुण्णभद्देणं देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमण्णागया । पुण्णभद्दस्स णं भत्ते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! वोसागरोवमा ठिई पण्णत्ता । पुण्णभद्दे णं भत्ते ! देवे ताओ देवलोगाओ जाव कहिं गच्छिह्मिइ ? कहिं उववज्जिह्मिइ ? गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिह्मिइ जाव अंतं काहिइ ? एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं निक्खेवओ० ॥२॥

॥ पंचमं अज्झयणं समत्तं ॥ ५ ॥

छाया—ततः खलु सः पूर्णभद्रो गाथापतिः अस्याः कथाया लब्धार्थः सन् हृष्टतुष्टो० यावत् प्रज्ञप्त्यां गङ्गदत्तस्तथैव निर्गच्छति यावद् निष्क्रान्तो यावद् गुप्तब्रह्मचारी । ततः खलु स पूर्णभद्रोऽनगारो भगवतामन्तिके सामायिकादीनि एकादशाङ्गानि अधीते, अधीत्य चतुर्थं षष्ठाष्टम० यावद् भावयित्वा बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयति, पालयित्वा मासिकया संलेखनया षष्ठि भक्तानि अनशनेन छित्त्वा आलोचित-प्रतिक्रान्तः समाधिं प्राप्तः कालमासे कालं कृत्वा सौधर्मं कल्पे पूर्णभद्रे विमाने उपपातसभायां देवशयनीये यावद् भाषामनःपर्याप्त्या ।

एवं खलु गौतम ! पूर्णभद्रेण देवेन सा दिव्या देवद्विः यावद् अभिसमन्वागता । पूर्णभद्रस्य खलु भवन्त ! देवस्य कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! द्विसागरोपमा स्थितिः प्रज्ञप्ता । पूर्णभद्रः खलु भवन्त ! देवस्तस्माद् देवलोकाद् यावत् क्व गमिष्यति ? क्व उत्पत्स्यते ? गौतम ! महाविदेहे वर्षं सेत्स्यति यावदन्तं करिष्यति । एवं खलु जम्बू ! भ्रमणेन भगवता यावत् सम्प्राप्तेन निक्षेपकः ॥२॥

॥ पञ्चममध्ययनं समाप्तम् ॥ ५ ॥

पदार्थान्वयः—तएण से पुणभद्रे गाहावइ—तभी वह पूर्णभद्र नामक गाथापति, इसीसे कहाए लद्धट्ठे समाने—उनके आगमन सम्बन्धी समाचार के प्राप्त होते ही, हट्ठ जाव पण्णत्तीए—अत्यन्त प्रसन्न हृदय से जैसे प्रज्ञप्ति (भगवती सूत्र) में, गंगदत्ते तहेव निगच्छइ—गंगदत्त घर-बार को त्याग कर मुनिराजों की शरण में पहुँचा था वैसे ही वह भी, निक्खंतो—सब कुछ छोड़ कर उनके पास पहुँचा (और), जाव गुत्तबंभयारी—ईयासिमिति आदि का पालन करते हुए गुप्त ब्रह्मचारी हो गया ।

तएण से पुणभद्रे अणगारे—तदनन्तर (मुनि दीक्षा-ग्रहण कर) वह पूर्णभद्र मुनि, भगवन्ताणं अंतिए—उन स्थविर भगवन्तों के पास (रहते हुए), सामाइयमादियाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ—सामायिक आदि ग्यारह अंग शास्त्रों का अध्ययन करता है, अहिज्जेता—और अध्ययन करके, बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम जाव—बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, आदि (रूप) तप द्वारा, भावित्ता—अपनी आत्मा को भावित करते हुए, बहूहिं वासाइं—अनेक वर्षों तक, सामण्ण-परियागं—श्रामण्य-पर्याय (साधुत्व की साधना का उसने) पाउणइ—पालन किया, पाउणित्ता—और पालन करके, मासियाए संलेहणाए—एक मास की संलेखना द्वारा, सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदिता—साठ भक्तों को (दोपहर और सायं कालीन साठ बार के भोजन) का अनशन द्वारा छेदन करके, अर्थात् एक मास तक निरन्तर उपवास तपस्या करके, आलोइय-पडिक्कंते—आलोचना और प्रतिक्रमण करते हुए, समाहिपत्ते—समाधिपूर्वक, कालमासे कालं किच्चा—मृत्यु का समय आने पर प्राणत्याग करके, सोहम्मे कप्पे—सौधर्मं कल्प नामक देवलोके के, पुणभद्रे विमाने—पूर्णभद्र नामक विमान की, उववायसभाए—उपपात सभा में, देवसयणज्जसि—देव शयनीय शय्या में देवरूप में उत्पन्न होकर, जाव भाषामण-पज्जत्तीए—आहार, शरीर भाषा-मनः पर्याप्ति रूप में पाँचों पर्याप्तियों को प्राप्त कर पूर्ण देव बन गया ।

एवं खलु गोयमा—हे गीतम इस प्रकार, पुण्णभट्टेण देवेण—उस पूर्णभद्र नामक देव को, सा दिव्वा देविड्डी—वह दिव्य देव-समृद्धि, जाव अभिसमण्णागया—प्राप्त हो गई, पुण्णभट्टस्स णं भंते—(गीतम स्वामी जी ने भगवान् महावीर से पुनः प्रश्न किया—) भगवन् ! (सौधर्म कल्प-देवलोक में), देवस्स—पूर्ण भद्रदेव को, केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता—कितने समय की स्थिति कही गई है ?, गोयमा !—(भगवान् महावीर ने कहा—), गोयम !—हे गीतम !, बी सागरो-वमा—दो सागरोपम की, ठिई पण्णत्ता—स्थिति कही गई है ।

(गीतम स्वामी ने पुनः प्रश्न किया—) पुण्णभट्टे णं भंते—भगवन् वह पूर्णभद्र, तओ देव लोगओ—उस देवलोक से, जाव कंहि गच्छिहिइ—च्यवकर कहां जाएगा, कंहि उववज्जिहिइ—कहां उत्पन्न होगा ? (भगवान् महावीर ने उत्तर में कहा—) महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ—वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा, जाव अंतं काहिइ—वह सब दुःखों का अन्त करेगा ।

एवं खलु जम्बू !—जम्बू ! इस प्रकार, समणेणं भगवया—श्रमण भगवान् महावीर ने, जाव संपत्तेणं—जो मोक्षधाम को प्राप्त हो चुके हैं, उन्होंने, निश्खेवओ—पुष्पिता के पंचम अध्ययन का इस प्रकार प्रतिपादन किया है ॥२॥

मूलार्थ—तभी वह पूर्णभद्र नामक गाथापति उनका आगमन सम्बन्धी समाचार प्राप्त होते ही अत्यन्त प्रसन्न हृदय से जैसे प्रज्ञप्ति (भगवती सूत्र) में गंगदत्त घर-बार को त्याग कर मुनि वृन्द की शरण में गया था, वैसे ही वह भी सब कुछ छोड़कर उनके पास पहुंचा और ईर्या-समिति आदि का पालन करते हुए गुप्त ब्रह्मचारी बन गया ।

मुनि दीक्षा-ग्रहण करने के अनन्तर वह पूर्णभद्र मुनि उन स्थविर भगवन्तों के पास (रहते हुए) सामायिक आदि ग्यारह अंग-शास्त्रों का अध्ययन करता है और अध्ययन करके बहुत से चतुर्थ; षष्ठ, अष्टम आदि (रूप) तप द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए अनेक वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय (साधुत्व की साधना) का उसने पालन किया, और पालन करके एक मास की संलेखना द्वारा साठ भक्तों को (दोपहर और सायंकालीन भोजन) के क्रम से साठ समयों के भोजन का अनशन द्वारा छेदन करके अर्थात् एक मास तक निरन्तर उपवास तपस्या करके आलोचना और प्रतिक्रमण करते हुए समाधि-पूर्वक मृत्यु का समय आने पर प्राण-त्याग करके सौधर्म कल्प नामक देवलोक के पूर्णभद्र नामक विमान की उपपात सभा में देवशयनीय धाय्या में

देवरूप में उत्पन्न होकर उसने भाषा-भन आदि पर्याप्तियों को ग्रहण किया और इस प्रकार वह सोमा ब्राह्मणी सोम नामक देव के रूप में वहां निवास करने लगी ।

गौतम ! इस प्रकार उस पूर्णभद्र नाम के उस देव को, वह दिव्य देव-समृद्धि प्राप्त हो गई ।

(गौतम स्वामी ने पुनः प्रश्न किया—) भगवन् ! सौधर्म कला नामक देवलोक में उस पूर्णभद्र देव की कितने समय की स्थिति कही गई है ?

(भगवान् महावीर ने कहा—) गौतम ! वहां पर उसकी स्थिति दो सांगरोपम की कही गई है ।

(गौतम स्वामी जी ने पुनः प्रश्न किया—) भगवन् ! पूर्ण भद्रदेव उस देवलोक से च्यव कर कहां जाएगा ? और कहां उत्पन्न होगा ? (भगवान् महावीर ने उत्तर में कहा—) वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा और अपने जन्म-मरण आदि समस्त दुःखों का अन्त करेगा ।

इस प्रकार जम्बू ! मोक्ष-धाम को प्राप्त भगवान् महावीर ने पुष्पिता के पंचम अध्ययन का वर्णन किया है ॥२॥

टीका—सभी प्रकरण सर्वथा स्पष्ट हैं ।

॥ पञ्चम अध्ययन समाप्त ॥

तृतीय वर्ग : षष्ठ अध्ययन

मूल—जइणं भंते ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं उक्खेवओ०, एवं खलु जंबू ! तेणं कालेण तेणं समएणं रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए, सेणिए राया, सामी समोसरिए ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं माणिभद्दे देवे सभाए सुहम्माए माणि-
भद्दंसि सोहासणंसि चउहिं सामानियसाहस्सीहिं जहा पुण्णभद्दो, तहेव
आगमणं, नट्टविही । पुव्वभवपुच्छा, मणिवया नयरी, माणिभद्दे गाहावई,
थेराणं अंतिए पव्वजा, एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूइं वासाइं परि-
याओ, मासिया संलेहणा, सट्ठि भत्ताइं०, माणिभद्दे विमाने उववाओ,
दोसागरोवमा ठिई, महाविदेहे वासे सिज्झहिइ । एवं खलु जंबू !
निक्खेवओ० ॥१॥

॥ छट्ठं अज्झयणं समत्तं ॥

छाया—यदि खलु भदन्त ! भ्रमणेन भगवता यावत् सम्प्राप्तेन उत्क्षेपकः० । एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरं, गुणशीलं चैत्यं, श्रेणिको राजा, स्वामी समवसूतः । तस्मिन् काले तस्मिन् समये माणिभद्रो देवः सभायां सुधर्माया माणिभद्रे सिंहासने चतुर्भिः सामानिकसहस्रैर्यावत् पूर्णभद्रस्तथैवाऽऽगमनं, नाटयविधिः, पूर्वभवपृच्छा, मणिपदा नगरी, माणिभद्रो गाथापतिः, स्थविरा-
णामन्तिके प्रवज्या, एकादशाङ्गानि अधीते, बहूनि वर्षाणि पर्यायः, मासिकी संलेखना, षट्ठि भक्तानि० माणिभद्रे विमाने उपपातः द्विसागरोपमा स्थितिः, महाविदेहे वर्षे सेतस्यति । एवं खलु जम्बू ! निक्षेपकः० ॥१॥

पदार्थान्वयः—(श्री गौतम स्वामी जी ने प्रश्न किया—) जइ णं भंते ! भगवन् ! यदि, भगवया जाव संपत्तेणं—मोक्षधाम में पहुँचे हुए भगवान् महावीर ने, उत्क्षेपकः—पंचम अध्ययन का पूर्वोक्त भाव बतलाया है तो फिर छठे अध्ययन में किस भाव एवं किस महान् व्यक्तित्व के सम्बन्ध में वर्णन किया है ?

सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि हे जम्बू ! (भगवान् महावीर ने कहा—) तेणं कालेणं तेणं

समएण—उस काल में उस समय में, राय गिहे नयरे—राजगृह नाम का नगर था, गुणसिलए चेइए—जिसमें गुणशील नाम का एक चैत्य (उद्यान) था, सेणिए राया—वहां का राजा श्रेणिक था, सामी समोसरिए—भगवान महावीर वहां पधारे ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं—उस काल एवं उस समय, माणिभद्दे देवे—मणिभद्र नामक एक देव था, सभाए सुहम्माए—सौधर्म कल्प की सुधर्मा सभा में, माणिभद्देसि सीहासणंसि—मणिभद्र नामक सिंहासन पर, चउहिं सामणिय साहस्सीहिं—चार हजार सामानिक देवों के साथ बैठे हुए थे, जहा पुण्णभद्दे—वह मणिभद्र देव पूर्ण भद्रदेव के, तहेव आगमणं—समान भगवान महावीर के पास आए, नट्टविहिं—(और) नाट्यविधि दिखाकर चले गए ।

पुण्व भव पुच्छा—श्री गौतम स्वामी जी ने भगवान् महावीर से, पुण्वभव-पुच्छा—मणिभद्र देव के पूर्व भव के विषय में पूछा, मणिवया नयरी—(भगवान् ने उत्तर दिया—गौतम बहुत समय पूर्व) एक मणिपदिका नाम की नगरी थी, माणिभद्दे गाहावई—(वहां पर) मणिभद्र नाम का एक गाथापति रहता था, थेराणं अंतिए पवज्जा—उसने स्थविर सन्तों के पास पहुंच कर प्रवज्जा ग्रहण कर ली, एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ—उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, बहूहिं वासाइं परियाओ—बहुत वर्षों तक मणिभद्र मुनि ने श्रमण-पर्याय का पालन किया, मासिया संलेहणा—(और अन्त में) एक मास की संलेखना द्वारा, सट्ठि भत्ताइं—साठ भक्तों (साठ समय के भोजन) का उपवास द्वारा छेदन करके और पाप-स्थानों की आलोचना प्रतिक्रमण करके (मृत्यु को प्राप्त कर), माणिभद्दे विमाणे—सौधर्म कल्प के मणिभद्र नामक विमान की उपपात सभा में देव शयनीय शय्या पर, उववाओ—जन्म लिया, दोसागरोवमा ठिई—वहां पर उसकी दो सागरोपम की स्थिति होगी, महाविदेहेवासे तिज्झिहिई—वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध हो सब दुःखों का अन्त करेगा ।

एवं खलु जम्बू !—हे जम्बू इस प्रकार, निक्खेवओ—भगवान महावीर ने पुष्पिता के छठे अध्ययन के भावों का प्रतिपादन किया है ॥१॥

मूलार्थ—(श्री गौतम स्वामी जी ने प्रश्न किया—) भगवन् ! यदि अब मोक्षधाम में पहुंचे हुए भगवान् महावीर ने पुष्पिता के पंचम अध्ययन का पूर्वोक्त भाव बतलाया है तो फिर छठे अध्ययन में किस भाव एवं किस महान् व्यक्तित्व के सम्बन्ध में वर्णन किया है ?

(सुधर्मा स्वामी कहते हैं—हे जम्बू ! तब भगवान महावीर ने कहा था उस काल उस समय में राजगृह नाम का एक नगर था जिसमें गुणशील नामक एक

(चैत्य) उद्यान था । वहां का राजा श्रेणिक था, भगवान् महावीर वहां पधारे । परिषद् आई और धर्म श्रवण कर चली गई ।

उस काल एवं उस समय में एक माणिभद्र नाम का देव था जो सौधर्म कल्प की सुधर्मा नामक देव - सभा में माणिभद्र नामक सिंहासन पर चार हजार सामासिक देवों के साथ बैठा हुआ था । पूर्ण भद्र देव के समान वह माणिभद्र नामक देव भी भगवान् महावीर के पास आया और अपनी नाट्य-विधि प्रदर्शित कर चला गया ।

श्री गौतम स्वामी जी ने भगवान् महावीर से माणिभद्र देव के पूर्व भव के विषय में पूछा तो भगवान् ने उत्तर दिया कि—गौतम ! बहुत समय पूर्व एक मणि-पादिका नाम की नगरी थी जिसमें वह माणिभद्र नाम का गाथापति रहता था । उसने स्थविर मुनिराजों के सान्निध्य में पहुंच कर प्रव्रज्या ग्रहण करली और ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । बहुत वर्षों तक उसने श्रमण-पर्याय (साधुत्व-साधना) का पालन किया और अन्त में एक मास की संलेखना द्वारा साठ समय के भोजन का उपवासों द्वारा छेदन करके एवं पाप-स्थानों की आलोचना तथा प्रतिक्रमण करके (मृत्यु को प्राप्त कर) सौधर्म कल्प के माणिभद्र नामक विमान की उपपात सभा में देव-मयनीय शय्या पर जन्म लिया । उसकी वहां दो सागरोपम की स्थिति होगी, वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध बनेगा और जन्म-मरण सम्बन्धी सभी दुःखों का अन्त करेगा ।

हे जम्बू ! इस प्रकार भगवान् महावीर ने पुष्पिता के छठे अध्ययन के भावों का प्रतिपादन किया है ॥१॥

भूल—एवं दत्ते ७ सिवे न बले ६ अणाडिए १०, सव्वे जहा पुण्णभद्दे देवे सव्वेसि दोसागरोवमाइं ठिई । विमाणा देवसरिसनामा । पुव्वभवे दत्ते चंदणाए, सिवे मिहिलाए बलो हत्थिणपुरनयरे, अणाडिए काकवीए, चेइयाइं जहा संगहणीए ॥२॥

॥ तइओ वग्गो सम्मत्तो ॥

छाया—एवं दत्तः ७ शिवः ८ बलः ९ अनादृतः १०, सर्वे यथा पूर्णभद्रो देवः सर्वेषां द्विसागरोपमा स्थितिः, विमानानि देवसदृशनामानि, पूर्वभवे दत्तः चन्दनायाम्, शिवो मिथिलायां, बलो हस्तिनापुरे नगरे, अनादृतः काकन्दां, चरयानि जहा संग्रहण्याम् ॥ २ ॥

॥ इति पुष्पितायां सप्तमाष्टमनवमदशमान्यध्ययनानि समाप्तानि ॥ ७ । ८ । ९ । १० ॥

॥ तृतीयो वर्गः समाप्तः ॥

पदार्थान्वयः—एवं—इसी प्रकार, दत्त, शिव, बल और अनादृत आदि सभी देवों का वर्णन, जहा पुष्पभद्रे देवे—पूर्णभद्र देव के समान समझ लेना चाहिये, सर्व्वेसि दो सागरोपमाइं ठिई—इन सबकी देवलोक में स्थिति दो सागरोपम की ही जाननी चाहिये, विमाना देव-सरिसनाम—विमानों के नाम इन देवों के नामों के समान समझने चाहिये। (इतना विशेष है कि), पुष्पभवे दत्ते चंदणाए—दत्त अपने पूर्व भव में चन्दना नगरी में, सिवे मिथिलाए—शिव मिथिला में, बलो हस्तिनापुर नगरे—बल हस्तिनापुर नामक नगर में, (और), अणादिए काकंदीए—अनादृत काकन्दी नगरी में उत्पन्न हुए थे। चेइयाइं जहा संग्रहणीए—उद्यान संग्रहणी गाथा के अनुसार जानने चाहिये ॥२॥

मूलार्थ—जम्बू ! इसी प्रकार दत्त, शिव, बल और अनादृत इन सभी देवों का वर्णन पूर्व वर्णित पूर्णभद्र देव के समान समझना चाहिए। इनके सौधर्म कल्प में विमानों के नाम इन देवों के नामों के अनुसार ही जान लेने चाहिये। (इतना विशेष है कि) दत्त पूर्व जन्म में चन्दना नगरी में, शिव मिथिला में, बल हस्तिनापुर में और अनादृत काकन्दी में जन्मे थे। इव से सम्बन्धित उद्यानों के नाम संग्रहणी गाथा के अनुसार समझने चाहिए ॥२॥

टीका—वह संग्रहणी गाथा अब अनुपलब्ध है ॥२॥

॥ तृतीय वर्ग समाप्त ॥



पुष्पचूलिका नामक
चतुर्थ-वर्ग

अथ पुष्पचूलिकाख्यश्चतुर्थो वर्गः

मूल—जइणं भंते ! समणेणं भगवया उक्खेवओ० जाव दस अज्झयणा पणत्ता । तं जहा—

“सिरि-हिरि-धिइ-कितीओ, बुद्धी लच्छी य होइ बोधवा ।
इलादेवी सुरादेवी, रसदेवी गंधदेवी य ॥

जइणं भंते ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं उवंगाणं चउत्थस्स वग्गस्स पुष्पचूलाणं दस अज्झयणा पणत्ता, पढमस्स णं भंते ! उक्खे-
वओ । एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, गुण-
सिलए चेइए, सेणिए राया, सामी समोसढे, परिसा निग्गया ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सिरि देवी सोहम्मे कप्पे सिरिर्वडिसए विमाणे सभाए सुहम्माए सिरिसि सोहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सेहिं चउहिं सपरिवाराहिं जहा बहुपुत्तिया जाव नट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगया । नवरं [दारय] दारियावो नत्थि ॥१॥”

छाया—यदि खलु भवन्त ! भ्रमणेन भगवता उत्क्षेपको० यावद् दश अज्झयनानि प्रकृप्यन्ति ।
तत् यथा—

“श्री—ह्री—घ्री—कीर्तयो बुद्धिलक्ष्मीश्च भवति बोद्धव्या ।
इलादेवी सुरादेवी, रसदेवी गन्धदेवी च ॥ १ ॥”

यदि खलु भवन्त ! भ्रमणेन भगवता यावत् संप्राप्तेन उपाङ्गानां चतुर्थस्य वर्गस्य पुष्पचूलानां दशाऽज्झयनानि प्रकृप्यन्ति, प्रथमस्य खलु भवन्त ! उत्क्षेपकः०, एवं खलु गौतम ! तस्मिन् काले तस्मिन्

समये राजगृहं नाम नगरं, गुणशिलं चैत्यं, श्रेणिको राजा, स्वामी समवसूतः, परिषद् निर्गता ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रीदेवी सौधर्म कल्पे श्यवतंसके विमाने सभायां सुधर्मायां श्रियं
सिंहासने चतुर्भिः सामानिकसहस्रैः चतसृभिर्महत्तरिकाभिः सपरिवाराभिः यथा बहुपुत्रिका यावद्
नाट्यविधि-मुपबश्यं प्रतिगता । नवरं [दारक] दारिका न सन्ति ॥ १ ॥

पदार्थान्वयः—जइ णं भंते !—भगवन् यदि, समणेणं भगवया—भगवान् महावीर ने,
उक्खेवओ जाव०—पुष्पिता नामक वग में दस अध्ययनों का वर्णन किया है—तो तदनन्तर उन्होंने
क्या फरमाया है ?

(सुधर्मा स्वामी जी ने जम्बू स्वामी जी के प्रश्न का समाधान करते हुए कहा) —“वत्स
जम्बू ! तदनन्तर भगवान् महावीर ने पुष्पचूलिका नामक चतुर्थ वर्ग का निरूपण किया है । इस
वर्ग में, दस अध्ययना पणत्ता—दस अध्ययन बतलाये हैं; तं जहा—वे जैसे—

सिरि—हिरि—घिइ—कीत्तीओ, बुद्धी लच्छी य होइ बोधव्वा ।

इलादेवी सुरादेवी रसदेवी गंध देवी य ॥ १ ॥

१ श्री, २ ह्री, ३ धी, ४ कीर्ति, ५ बुद्धि, ६ लक्ष्मी, ७ इलादेवी, ८ सुरादेवी, ९ रस देवी
और १० गन्ध देवी—

(जम्बू ! भगवान् महावीर ने उपर्युक्त दस अध्ययनों का निरूपण किया है ।)

जइणं भन्ते !—भगवन् यदि, समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं—मोक्ष धाम को प्राप्त
होने वाले भगवान् महावीर ने, उक्खणं—पुष्पचूलिका के चतुर्थ वर्ग में दस अध्ययनों का वर्णन
किया है, तो पढमस्स णं भंते उक्खेवओ—तो इस वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या भाव फरमाया है ?

एलं खलु जम्बू—श्री सुधर्मा स्वामी जी ने उत्तर दिया हे जम्बू !, तेणं कालेणं तेणं
समएणं—उस काल एवं उस समय में, रायगिहे नयरे—राजगृह नाम का एक नगर था, गुण-
सिलए चेइए—उस नगर में गुण शिलक नामक एक चैत्य (उद्यान) था, सेणिए राया—उस नगर
पर श्रेणिक नाम का राजा राज्य करता था, सामी समोसढे—भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम
विहार करते हुए वहाँ पधारे, परिसा निग्गया—उनके दर्शनों एवं उपदेश-श्रवण के लिये, श्रद्धालु
नागरिकों की टोलियां वहाँ पहुंचने के लिये अपने-अपने घरों से निकलीं ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं—उसी काल एवं उसी समय में, सिरि देवी—श्री देवी, सोहम्मे-
कप्पे—सौधर्म नामक देवलोक के, सिरि - बड्डिसए विमाणे—श्री - अवतंसक विमान में, सभाए
सुहम्माए—सुधर्मा नाम की सभा में, सिंरिसि सिंहासणंसि—श्री नामक सिंहासन पर, चउहि
सामानिय साहस्सेहि—चार हजार सामानिक देवों के साथ, चउहि महत्तरियाहि सपरिवाराहि—
तथा परिवार सहित चार हजार महत्तरिकाओं के साथ (बैठी हुई थी), जहा बहुपुत्तिया—जैसे वह

श्री देवी (पूर्व वर्णित) बहुपुत्रिका देवी के समान (प्रभु महावीर के पास आई) और, नटुर्विहि उवदंसिता—नाट्य-विधि प्रदर्शित करके, षड्गया—वापिस देवलोक में ही लौट गई, नवरं—इतना विशेष समझना चाहिये कि, (दारय) बारियाओ नहिथ—उसके साथ वैक्रिय शक्ति द्वारा उत्पन्न बालक बालिकायें नहीं थीं ॥१॥

मूलार्थ—भगवन् ! यदि भगवान् महावीर ने पुष्पिता नामक वर्ग में दस अध्ययनों का वर्णन किया है तो तदनन्तर उन्होंने क्या फरमाया है ?

सुधर्मा स्वामी जी ने जम्बू जी के प्रश्न का समाधान करते हुए कहा वत्स जम्बू ! तदनन्तर भगवान् महावीर ने पुष्पचूलिका नामक चतुर्थ वर्ग का निरूपण किया है, इस वर्ग में दस अध्ययन बतलाये हैं, जैसे कि—१. श्री, २. ह्री, ३. धी, ४. कीर्ति, ५. बुद्धि, ६. लक्ष्मी, ७. इलादेवी, ८. सुरादेवी, ९. रसदेवी और १० गन्धदेवी । जम्बू ! भगवान् महावीर ने उपर्युक्त दस अध्ययनों का निरूपण किया है ।

(जम्बू जी ने पुनः जिज्ञासा प्रकट की—) भगवन् ! मोक्ष-धाम को प्राप्त होने वाले भगवान् महावीर ने पुष्पचूलिका के चतुर्थ वर्ग में दस अध्ययनों का वर्णन किया है तो इस वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या भाव फरमाया है ?

श्री सुधर्मा स्वामी जी ने उत्तर दिया हे जम्बू ! उस काल एवं उस समय में राजगृह नाम का एक नगर था, उस नगर में गुण शिलक नामक एक चेत्य (उद्यान) था, उस नगर पर श्रेणिक नाम का राजा राज्य करता था, भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए वहां पधारे । उनके दर्शनों एवं उपदेश-श्रवण के लिये श्रद्धालु नागरिकों की टोलियां वहां पहुंचने के लिये अपने अपने घरों से निकलीं ।

उसी काल उसी समय श्री देवी सौधर्म नामक देवलोक के श्री-अवतंसक विमान में सुधर्मा नाम की सभा में श्री नामक सिंहासन पर चार हजार सामानिक देवों के साथ तथा परिवार सहित चार हजार महत्तरिकाओं के साथ (बैठी हुई थी), वह श्री (पूर्व वर्णित) बहुपुत्रिका देवी के समान (प्रभु महावीर के पास आई) और नाट्य-विधि प्रदर्शित करके; वापिस देवलोक में ही लौट गई । इतना विशेष समझना चाहिये कि उसके साथ वैक्रिय शक्ति द्वारा उत्पन्न बालक बालिकायें नहीं थीं ॥१॥

टीका—समस्त विषय अत्यन्त स्पष्ट है ॥१॥

मूल—पुव्वभवपुच्छा । एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए, जियसत्तू राया । तत्थं णं रायगिहे नयरे सुदंसणे नामं गाहावइ परिवसइ, अड्ढे० । तस्स णं सुदंसणस्स गाहावइस्स धूया पियाए गाहावइणीए अत्तया भूया नामं दारिया होत्था, वुड्ढा वुड्ढकुमारी जुण्णा जुण्णकुमारी पडियपूयत्थणी वरगपरिवज्जिया यावि होत्था । तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए जाव नवरयणिए, वण्णओ सो चेव, समोसरणं, परिसा निग्गया ।

तएणं सा भूया दारिया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठतुट्ठा जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता एवं वयासी—एवं खलु अम्मताओ ! पासे अरहा पुरिसादाणीए पुव्वानुपवि चरमाणे जाव देवगणपरिवुडे विहरइ, तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुभेहिं अम्मणुण्णाया समाणी पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स पायवंदिया गमित्तए । अहासुहं देवानुप्पिया ! मा पडिबंधं ॥२॥

छाया—पूर्वभवपुच्छा । एवं खलु गोतम ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरं, गुणशिलं चेत्यं, जितशत्रू राजा । तत्र खलु राजगृहे नगरे सुदर्शनी नाम गाथापतिः परिवसति, आढ्यः० । तस्य खलु सुदर्शनस्य गाथापतेः प्रियाया गाथापतिकाया आत्मजा भूता नाम्नी दारिका—अभवत् बृद्धा बृद्धकुमारी जीर्णा जीर्णकुमारी पतितपूतस्तनी वरपरिवर्जिता चापि अभवत् । तस्मिन् काले तस्मिन् समये पार्श्वोऽर्हन् पुरुषादानीयो यावद् नवरत्निको वर्णकः स एव, समवसरणं, परिषद् निर्गता ।

ततः खलु सा भूता दारिका अस्याः कथाया लब्धार्थां सती हट्ठतुट्ठा० यत्रैव अम्बापितरौ तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य एवमवादीत्—एवं खलु अम्बतातो ! पार्श्वोऽर्हन् पुरुषादानीयः पूर्वानुपूर्वी चरन् देवगणपरिवृतो विहरति, तद् इच्छामि खलु अम्बतातो ! युवाभ्यामभ्यनुज्ञाता सती पार्श्वस्याऽर्हतः पुरुषादानीयस्य पावचन्दनाय गन्तुम्, यथासुखं देवानुप्रिये ! मा प्रतिबन्धम् ॥२॥

पदार्थान्वयः—एवं खलु गोयमा !—(गोतम ने पुनः पूछा—भगवन् ! यह श्री देवी पूर्व जन्म में कौन थी ? तो गोतम स्वामी के प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान् महावीर ने कहा—) हे गोतम ! तेणं कालेणं तेणं समएणं—उस काल एवं उस समय में, रायगिहे नयरे—राजगृह नामक

एक नगर था, गुण-सिलए चेद्वये—वहाँ गुणशील नाम का एक (उद्यान) था, जियसत्तू राया—वहाँ पर जित शत्रु नाम के राजा का राज्य था, तत्थ णं रायगिहे नयरे—उस राजगृह नगर में, सुदंसणे नाम गाहावई परिवसइ—सुदर्शन नाम का एक गाथापति (व्यापारी वर्ग का प्रमुख) रहता था, अड्डे०—जो कि धन-धान्यादि से अत्यन्त समृद्ध था। तस्स णं सुदंसणस्स गाहावइस्स धूया पियाए—उस सुदर्शन नामक गाथापति की पत्नी का नाम प्रिया था, गाहावइणीए अत्तया भूया नामं दारिया—उन गाथा-पति की पत्नी प्रिया की अपनी ही कोख से उत्पन्न एक भूता नाम की, दारिया होत्था—पूत्री थी, वुड्डा वुड्डा कुमारी—जो कि बड़ी उमर की हो गई थी और वृद्धा स्त्रियों जैसी प्रतीत होती थी, जूण्णा जूण्णकुमारी—जीर्ण शरीर की होने के कारण, जीर्ण महिला सी प्रतीत होती थी, पडियपुयत्थणी—उसके स्तन (जीर्णता के कारण) लटक चुके थे किन्तु पुरुष-अस्पृष्ट होने के कारण पवित्र थे, वरग - परिवज्जिया यावि होत्था—वह अभी तक वर-प्राप्ति से वञ्चित ही थी (अर्थात् कुंवारी ही थी)।

तेणं कालेणं तेणं समएणं—(जम्बू) उसी काल और उसी समय में, पासे अरहा पुरिसादाणीए—पुरुषों में श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु श्री पार्श्वनाथ जी, जाव नयरवणिए—जो नए (चमकदार) वर्ण वाले थे, सो जेव—वहाँ पहले जैसा ही, समोसरणं—उनका समवसरण लगा, परिसा निगया—उनके दर्शन कर प्रवचन सुनने के लिये श्रद्धालु नागरिकों के समूह अपने-अपने घरों से निकल पड़े।

तएणं सा भूया दारिया—तदनन्तर वह भूता नाम की अत्यधिकदय वाली लड़की, इसीसे कहाए लद्धा समाणी—उनके आगमन की सूचना प्राप्त होते ही, हट्ट तुट्ठा—अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर, जेजेव अम्मपियरो—जहाँ पर उसके माता-पिता थे, तेजेव—उवागच्छइ—वहीं पर आ जाती है, (और), उवागच्छित्ता—वहाँ आकर, एवं वयासी—वह माता-पिता से इस प्रकार कहने लगी, एवं खलु अम्मताओ—हे माता जी, पिता जी, पासे अरहा पुरिसादाणीए—मनुष्यों में श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु श्री पार्श्वनाथ जी, पुब्बानुपवित्र चरमाणे—ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए, जाव देवगण परिवुडे—देवताओं से घिरे हुए (जिनके चारों ओर देव सर्वदा रहते हैं), विहरइ—विहार करते हुए हमारे नगर में पधारे हैं, तं इच्छामि णं अम्मयाओ—इसलिये हे मां ! मैं यह चाहती हूँ कि, तुम्होहं अड्डभणुणया समाणी—आप से आज्ञा प्राप्त करके, पासस्स अरहो पुरिसादाणीयस्स—नौ हाथ की अवगाहना के कारण पुरुषों में श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु श्री पार्श्वनाथ जी के, पाय वंदिया ममित्तए—चरण-वन्दन के लिये जाऊँ, अहामुहं देवानुप्पिया—हे देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हारी इच्छा हो वैसे करो, मा पडिबंघं—शुभ काम में देरी उचित नहीं होती ॥२॥

मूलार्थ—(गीतम स्वामी जी ने पूछा) भगवन् ! यह श्रीदेवी पूर्व जन्म में कौन थी ?
तो गीतम स्वामी के प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान महावीर ने कहा—) हे

गौतम ! उस काल एवं उस समय में राजगृह नाम का एक नगर था, वहाँ गुणशील नाम का एक चैत्य (उद्यान) था, वहाँ पर जितशत्रु नाम के राजा का राज्य था उस राजगृह नगर में सुदर्शन नाम का एक गाथा-पति (व्यापारी वर्ग का प्रमुख) रहता था; जोकि धन-धान्य से अत्यन्त समृद्ध था, उस सुदर्शन नामक गाथापति की पत्नी का नाम प्रिया था, उस गाथा-पति की पत्नी प्रिया का अपनी ही कोख से अत्यन्त एक भूता नाम की पुत्री थी, जो कि बड़ी उमर को हो गई थी और वृद्धा स्त्रियों जैसी प्रतीत होती थी, जीर्ण शरीर वाली, जीर्ण महिला सी प्रतीत होती थी, उसके स्तन (जीर्णता के कारण) लटक चुके थे किन्तु पुरुष-अस्पृष्ट होने के कारण पवित्र थे । वह अभी तक वर-प्राप्ति से वञ्चित थी (अर्थात् कुंवारी ही थी) ।

(जम्बू) उसी काल और उसी समय में पुरुषों में श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु श्री पार्श्वनाथ जी; जो नए (चमकदार) वर्णवाले थे वहाँ पहले जैसा ही उनका समवसरण लगा, उनके दर्शन कर प्रवचन सुनने के लिये श्रद्धालु नागरिकों के समूह अपने-अपने घरों से निकल पड़े ।

तदनन्तर वह अत्यधिक वय वाली भूता नामकी लड़की, उनके आगमन की सूचना प्राप्त होते ही अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर जहाँ पर उनके माता-पिता थे वहीं पर आ जाती है (और) वहाँ आकर वह माता-पिता से इस प्रकार कहने लगी, हे माता जी, पिता जी ! मनुष्यों में श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु श्री पार्श्वनाथ जी, ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए देवताओं से घिरे हुए (जिनके चारों ओर देव सर्वदा रहते हैं) विहार करते हुए हमारे नगर में पधारे हैं इसलिये हे मां ! मैं यह चाहती हूँ कि आपसे आज्ञा प्राप्त करके नौ हाथ की अवगाहना के कारण पुरुषों में श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु श्री पार्श्वनाथ जी की चरण-वन्दना के लिये मैं भी जाऊँ । हे देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हारी इच्छा हो वैसे करो शुभ काम में देरी उचित नहीं होती ॥२॥

टीका—वह संग्रहणी गाथा अब अनुपलब्ध है ॥ २ ॥

पू—तए णं सा भूया दारिया ण्हाया० जाव सरीरा चेडीचक्क-
वालपरिकिण्णा साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमिता जेणेव
बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणे । उवागच्छइ, उवागच्छिता धम्मियं
जाणप्पवरं दुरूडा । तएणं सा भूया दारिया नियपरिवारपरिवुडा
रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेण निग्गच्छइ निग्गच्छिता जेणेव गुणसिलए
चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता छत्तादीए तित्थकरातिसए०
पासइ, धा मयाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहिता चेडीचक्क-
वालपरिकिण्णा जेणेव पासे अरहा पुरिसादाणीए तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छिता तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासइ । तएणं पासे अरहा पुरिसा-
दाणीए भूयाए दारियाए तीसे महइ० धम्मकहा, धम्मं सोच्चा णिसम्म
हट्ठं वंदइ, वंदित्ता एवं वयासी सद्वहामि णं भंते । निग्गंथं पावयणं
से जहे तं तुब्भे वदेह, जं नवरं देवानुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि,
तएणं अहं जाव पव्वइत्तए । अहासुहं देवानुप्पिया ॥३॥

छाया—ततः खलु सा भूता दारिका स्नाता यावत् सर्वालङ्कार-विभूषितशरीरा चेटीचक्क-
वालपरिकीर्णा स्वस्माद् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव बाह्योपस्थानशाला तत्रैवोपागच्छति
उपागत्य धार्मिकं यानप्रवरं दूरुडा । ततः खलु सा भूता दारिका निजपरिवारपरिवृता राजगृहं नगरं
मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव गुणशिलं चैत्यं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य छत्तादीन् तीर्थक्षुरा-
तिशयान् पश्यति । धार्मिकात् यानप्रवरात् प्रत्यवरुह्य चेटीचक्कवालपरिकीर्णा यत्रैव पावोहं
पुरुषादानीयस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य त्रिकृत्यो यावत् पयुं पासते । ततः खलु पार्श्वोर्हन् पुरुषादानीयो
भूताय दारिकाय तस्य महातिमहत्यां धर्मकथां । धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतृप्ता० वन्दते, वन्दित्वा
एयमवादीत्—अद्वयमि खलु भदन्त ! निग्रन्थं प्रवचनं यावद् अभ्युत्तिष्ठामि खलु भदन्त ! निग्रन्थं
प्रवचनम्, तद् यथेतद् यूयं वदथ यद् नवरं देवानुप्रिय ! अम्बापितरौ आपृच्छामि । ततः खलु अहम्
यावत् प्रसूजितम् । यथासुखं देवानुप्रिये ॥३॥

पदार्थान्वयः—तएणं सा भूया दारिया—तदनन्तर उस भूता नाम की कन्या ने, ण्हाया—
स्नान किया, जाव सरीरा—उसने अपने शरीर पर अच्छे वस्त्र एवं अलंकार धारण किए,
चेडी चक्कवाल-परिकिण्णा—अपनी दासियों के समूह से घिरी हुई, साओ गिहाओ पडिनिक्खमई—

अपने घर से बाहर निकली, पडिनिक्खमिता—(और) बाहर निकल कर, जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला—जहां पर बाहरी उपस्थानशाला (रथ-घोड़े आदि रखने और बांधने का स्थान) थी, तेणेव उवागच्छइ—वहीं पर आ जाती है, (और) उवागच्छिता—वहां आकर, धम्मियं जाण-पवरं दुरुद्धा—अपने धर्म-कार्यों के लिये निश्चित श्रेष्ठ रथ पर बैठी। तएणं सा भूया दारिया—तदनन्तर वह भूता नाम वाली कन्या, नियपरिवार परिवुद्धा—अपनी दासियों एवं सहेलियों आदि रूप परिवार से घिरी हुई, रायगिहं नयरं—राजगृह नगर के, मज्झं मज्झेण—बीचों-बीच के (मध्य मार्ग से), निगच्छई—निकलती है (और वह), निगच्छिता—निकल कर, जेणेव गुणसिलए चेइए—जहां गुणशील नामक चैत्य (उद्यान) था, तेणेव उवागच्छइ—वहीं पर आ पहुँचती है, उवागच्छिता—(और) वहां आकर, छत्तादीए तिस्थकरातिसए—तीर्थङ्कर भगवान के छत्र आदि अतिशयों के, पासइ—दर्शन करती है, धम्मियाओ जाणप्पवराओ—अपने धर्म-कार्यों के लिये निश्चित श्रेष्ठ रथ से, पच्चोरुहइ—नीचे उतरती है (और), पच्चोरुहिता—नीचे उतर कर, चेडी चक्कवाल-परिकिण्णा—अपनी दासियों के समूह से घिरी हुई, जेणेव पासे अरहा पुरिसा-दाणीए—जहां पर पुरुष श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु पार्श्व विराजमान थे, तेणेव उवागच्छइ—वहीं पर आ जाती है, उवागच्छिता—और वहां आकर, तिवखुत्तो जाव पज्जुवासइ—और तीन बार प्रदक्षिणा-पूर्वक वन्दना नमस्कार करके उनकी उपासना करने लगती है।

तएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए—तदनन्तर पुरुष-श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु श्री पार्श्वनाथ जीने, भूयाए दारियाए—भूता कन्या की, तीसे महइं धम्म कहा—उस महती धर्म-सभा में ही धर्म-कथा सुनाकर उसे प्रतिबोधित किया, धम्मं सोच्चा णिसम्म—भूता दारिका उनके उपदेश को सुनकर एवं उसको हृदय में धारण कर, हट्ठं वंदइ—प्रसन्न होकर उन्हें वन्दना करती है, वंदिता—(और वन्दना करके), एवं वयासी—इस प्रकार निवेदन करने लगी, सद्दहामि णं भंते—भगवन् ! मैं आपके द्वारा प्ररूपित निर्ग्रन्थ वचनों पर श्रद्धा रखती हूँ, जाव अब्भुट्ठेमिणं भन्ते !—भगवन् ! मैं उस धर्माश्रय के लिये प्रस्तुत हूँ, निगयं पावयणं से जहे तुम्हें वदेह—जिस निर्ग्रन्थ-प्रवचन को आपने समाजया है, जं नवरं देवाणुप्पिया !—भगवन् ! मैं उसका यथावत् पालन करूंगी, अम्मा-पियरो आपुच्छामि—मैं पहले घर जाकर माता-पिता से पूछती हूँ (अर्थात् आज्ञा लेती हूँ, तएणं अहं जाव पवइत्तिए—तदनन्तर मैं आपकी शरण में आकर प्रवज्या ग्रहण करूंगी।

(भगवान ने कहा)—अहासुहं देवाणुप्पिया !—देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हें सुख हो, (वैसा करो) ॥३॥

मूलार्थ—तदनन्तर वह भूता नाम की कन्या ने स्नान किया उसने अपने शरीर पर अच्छे वस्त्र एवं अलंकार धारण किए, वह अपनी दासियों के समूह से घिरी हुई अपने घर से बाहर निकली और बाहर निकल कर जहां पर बाहरी उपस्थानशाला (रथ-घोड़े आदि रखने और बांधने का स्थान) थी वहीं पर आ जाती है और वहां आकर

अपने धर्मकार्यों के लिये निश्चित श्रेष्ठ रथ पर बैठी । तदनन्तर वह भूता नाम वाली कन्या अपनी दासियों एवं सहेलियों आदि रूप परिवार से घिरी हुई राजगृह नगर के बीचोंबीच के (मध्य मार्ग से) निकलती है (और वह) निकल कर गुणशील नामक चैत्य (उद्यान) या वहीं पर आ पहुँचती है और वहाँ आकर तीर्थंकर भगवान के छत्र आदि अतिशयों के दर्शन करके अपने धर्मकार्यों के लिये निश्चित श्रेष्ठ रथ से नीचे उतरती है और नीचे उतर कर अपनी दासियों के समूह से घिरी हुई जहाँ पर पुरुष-श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु पार्श्व विराजमान थे वहीं पर आ जाती है और वहाँ आकर तीन बार प्रदक्षिणा पूर्वक वन्दन नमस्कार करके उनकी उपासना करने लगी ।

तदनन्तर पुरुष-श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु श्री पार्श्वनाथ जी ने भूता कन्या को उस महती धर्म-सभा में ही धर्म - कथा सुनाकर प्रतिबोधित किया । भूता दारिका उनके उपदेश को सुनकर एवं उसको हृदय में धारण कर प्रसन्न होकर उन्हें वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन करने लगी—भगवन् ! मैं आपके द्वारा प्ररूपित निर्ग्रन्थ वचनों पर श्रद्धा रखती हूँ, भगवन् ! मैं उस धर्माश्रय के लिये प्रस्तुत हूँ जिस निर्ग्रन्थ-प्रवचन को आपने समझाया है । भगवन् ! मैं उसका यथावत् पालन करूंगी । मैं पहले घर जाकर माता-पिता से पूछती हूँ (अर्थात् आज्ञा लेती हूँ) तदनन्तर मैं आपकी शरण में आकर प्रव्रज्या ग्रहण करूंगी ।

(भगवान ने कहा—) देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो ॥३॥

टीका—सर्व प्रकरण स्पष्ट है ॥३॥

मूल—तएणं सा भूया दारिया तमेव धम्मियं जाणप्पवरं जाव दुरु-
हइ, दुरुहिता जेणेव रायगिहे नयरे तेणेव उवागया, रायगिहं नयरं मज्झं
मज्जेण जेणेव सए गिहे तेणेव उवागया, रहाओ पच्चोरुहिता जेणेव
अम्मापियरो तेणेव उवागया, करतलं जहा जमाली अपुच्छइ । अहासुहं
देवाणुप्पिए ! तएणं से सुदंसणे गाहावई विउलं असणं ४ उवक्खडावेइ,

जाव जिमियभुनुत्तरकाले सुईभूए निक्खमणमाणिता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! भूयादारियाए पुरिससहस्सवाहिणीं सीयं उवट्ठवेह, उवट्ठवित्ता जाव पच्चप्पिणह । तएणं ते जाव पच्चप्पिणंति ॥४॥

छाया—ततः खलु सा भूता दारिका तदेव धार्मिकं यान-प्रवरं यावद् दुरोहति, दुरुह्य यत्नं राजगृहं नगरं तत्रैवोपागता, राजगृहं नगरं मध्यमध्येन यत्नं स्वं गृहं तत्रैवोपागता, रथात् प्रत्यवरुह्य यत्नं अम्बापितरौ तत्रैवोपागता, करतलं यथा जामालिः आपृच्छति । यथासुखं देवानुप्रिये ! ततः स सुदर्शनो गाथापतिः विपुलमशनम् ४ उपस्कारयति, मित्रज्ञातिं आमन्त्रयति, आमन्त्र्य यावत् जिमितभुक्त्युत्तरकाले शुचिभूतो निष्क्रमणमाज्ञाप्य कौटुम्बिक-पुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवम-बाधीत्-क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! भूतादारिकार्यं पुरुषसहस्रवाहिनीं शिविकामुस्थापयत, उपस्थाप्य प्रत्यर्पयत ! ततः खलु ते यावत् पत्यर्पयन्ति ॥४॥

पदार्थान्वयः—तएणं सा भूया दारिया—तदनन्तर वह भूता नामक कन्या, तमेव धम्मियं जाणप्पवरं जाव दुरुहइ—अपने उसी धर्म-यात्राओं के लिये निश्चित श्रेष्ठ रथ पर चढ़ी, दुरुहिता—(और) चढ़ कर, जेणेव रायगिहे नयरे—जहां राजगृह नगर था, तेणेव उवागया—वहीं पर आ गई, रायगिहं नयरं मज्झं मज्झेण—राजगृह नगर के मध्य मार्ग से, जेणेव सए गिहे—जहां पर उसका अपना घर था, तेणेव उवागया—वह अपने उसी घर में आ पहुंची, रहाओ पच्चोरुहिता—रथ से उतर कर, जेणेव अम्पापियरी—जहां पर उसके माता-पिता थे तेणेव उवागया—वह वहीं पर आ गई, करतलं—वह हाथ जोड़कर, जहा जमाली पुच्छइ—जैसे जमाली ने अपने माता-पिता से पूछा था वैसे ही वह अपने माता-पिता से पूछती है (आज्ञा देने को प्रार्थना करती है) ।

अहासुहं देवानुप्पिए—(तब उसके माता-पिता ने कहा—) देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसे करो, तएणं से सुदंसणे गाहावई—तदनन्तर वह सुदर्शन गाथापति, विउलं धसणं ४—बड़ी मात्रा में खाद्य, पेय आदि पदार्थ बनवाता है, मित्तनाईं—मित्रों एवं अपने जातीय बन्धुओं को बुलवाता है और सब को भोजन से सन्तुष्ट करता है। जाव जिमियभुक्त्युत्तरकाले—सबको भोजन कराने के बाद, सुईभूए—पवित्र होकर, निक्खमणमाणिता—पुत्री को साध्वी-जीवन अपनाने की आज्ञा देकर, कोडुंबियपुरसे—वह समस्त आज्ञाकारी अपने पारिवारिक दासों को, सद्दावेइ—बुलवाता है, सद्दावित्ता—और बुलवाकर, एवं वयासी—इस प्रकार कहता है, खिप्पामेव देवानुप्पिया—देवानुप्रियो ! आप लोग शीघ्र ही, भूया दारियाए—मेरी पुत्री भूता के लिये, पुरिस-सहस्स-वाहिणीं—एक हजार पुरुषों के द्वारा उठाई जानेवाली, सीयं उवट्ठवेह—

एक शिविका तैयार करो, उबट्टवित्ता जाव पच्चपिण्ह और तैयार करके मेरे पास ले आओ, तएण ते जाव पच्चपिण्णति—तदनन्तर दासों ने शिविका तैयार करके सुदर्शन गाथा-पति को लाकर अर्पित कर दी ॥ ४ ॥

मूलार्थ—तदनन्तर वह भूता नामक कन्या अपने उसी धर्म-यात्राओं के लिये निश्चित श्रेष्ठ रथ पर चढ़ी और चढ़कर जहां राजगृह नगर था वहीं पर आ गई राजगृह नगर के मध्य मार्ग से जहां पर उसका अपना घर था, वह अपने उसी घर में आ पहुंची, रथ से उतर कर जहां पर उसके माता-पिता थे वह वहां पर आ गई वह हाथ जोड़ कर जैसे जमाली ने अपने माता-पिता से पूछा था वैसे ही वह अपने माता-पिता से पूछती है (आज्ञा देने की प्रार्थना करती है) ।

(तब उसके माता-पिता ने कहा—) देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसे करो । तदनन्तर वह सुदर्शन गाथापति बड़ी मात्रा में खाद्य, पेय आदि पदार्थ बनवाता है । मित्रों एवं अपने जातीय बन्धुओं को बुलवाता है और सबको भोजन से सन्तुष्ट करता है सबको भोजन कराने के बाद पवित्र होकर पुत्री को साध्वी-जीवन अपनाने की आज्ञा देकर वह अपने समस्त आज्ञाकारी पारिवारिक दासों को बुलवाता है और बुलवाकर इस प्रकार कहता है—आप लोग शीघ्र ही मेरी पुत्री भूता के लिये एक हजार पुरुषों द्वारा उठाई जाने वाली एक शिविका तैयार करो और तैयार करके मेरे पास ले आओ, तदनन्तर दासों ने शिविका तैयार करके सुदर्शन गाथापति को लाकर अर्पित कर दी ॥ ४ ॥

टीका—सभी प्रकरण अत्यन्त स्पष्ट है ॥ ४ ॥

मूल—तएण से सुदंसणे गाहावई भूयं दारियं ण्हायं जाव विभू-
सियसरीरं पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरुहइ, दुरुहिता मित्तनाइ० जाव
रवेणं रायगिहं नयर मज्झं मज्जेण जेणेव गुणसिलए चेइए तेणेव उवागए,
छत्ताईए तित्थयराइसए पासइ, पासित्ता सीयं ठावेइ, ठावित्ता भूयं

दारियं सीयाओ पचचोरुहेइ । तएणं तं भूयं दारियं अम्मापियरो पुरओ
काउं जेणेव पासे अरहा पुरिसाशणीए तेणेव उववाया, तिखुत्तो वंदंति
नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवानुप्पिया । भूया
दारिया अम्हं एगा धूया इट्ठा०, एस णं देवानुप्पिया ! संसारभउव्विगा
भीया जाव देवानुप्पियाणं अंतिए मुंडा जाव पव्वयइ । तं एयं णं देवानु-
प्पिया ! सिस्सणिभिव्खं दलयामो, पडिच्छंतु णं देवानुप्पिया ! सिस्सिणी-
भिव्खं । अहासुहं देवानुप्पिए० । तएणं सा भूया दारिया पासेणं अरहया०
एवं वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठा० उत्तरपुरत्थिमं सयमेव आभरणमत्ता-
लंकारं ओमुयइ, जहा देवाणंदा पुप्फचूलाणं अंतिए जाव गुत्तबं मयारिणी ।

॥ ५ ॥

छाया—ततः खलु सः सुदर्शनो गाथापतिः भूतां दारिकां स्नातां यावद् विभूषितशरीरां पुरुष-
सहस्रवाहिनीं शिविकां दूरोहयति, दूरोह्य मित्रजाति० यावद् रवेण राजगृहनगरं मध्यमध्येन तत्रैव
गुणशीलं चैत्यं तत्रैवोपागतः, छात्रादीन् तीर्थंकरातिशयान् पश्यति, दृष्ट्वा शिविकां स्थापयित्वा भूतां
दारिकां शिविकातः प्रस्थवरोहयति । ततः खलु तां भूतां दारिकामम्बापितरौ पुरतः कृत्वा यत्रैव
पाश्वर्षोऽर्हन् पुरुषादानोयस्तत्रैवोपागती, त्रिःकृत्वो वन्दते नमस्यतः वन्दिता नमस्यत्वा एवमवादिष्टाम्
—एवं खलु देवानुप्रियाः । भूता दारिका अस्माकमेका दुहिना इष्टा० एषा खलु देवानुप्रिय संसार-
भयोद्विग्ना भीता यावद् देवानुप्रियाणामन्तिके मुण्डा यावत् प्रव्रजति, तद् एतां खलु देवानुप्रियाः ।
शिष्याभिक्षां दद्याः, प्रतिच्छन्तु खलु देवानुप्रियाः ! शिष्याभिभ्राम् । यथासुखं देवानुप्रियाः ! ततः खलु
सा भूता दारिका पाश्वर्षेणार्हता० एवमुक्ता सती हृष्टा उत्तरपौरस्थयां स्वयमेव आभरणमत्त्यालङ्कार-
मवमुञ्चति, यथा देवानन्दा पुष्पचूलानामन्तिके यावद् गुप्तब्रह्मचारिणी ॥५॥

पदार्थान्वयः—तएणं से सुवंसणो गाहावई—तदनन्तर सुदर्शन गाथापति ने, भूयां दारियं
प्यायं—स्नान करके आई हुई, जाव विभूसिया सरीरं—और वस्त्रालंकारों से विभूषित अपनी
पुत्री भूता को, पुरिस-सहस्र-वाहिणि सोयं दुरुहइ—हजार पुरुषों द्वारा उठाई जानेवाली शिविका
पर बिठलाया, दुरुहत्ता—और बिठला कर, मित्तमाइ० जाव रवेणं—तदनन्तर वह अपने मित्रों
एवं जाति-बन्धुओं के साथ विविध वाद्ययन्त्रों की ध्वनियों से वातावरण को गुंजायमान करता
हुआ, रायगिहं नयरं मज्झं मज्जेण—राजगृह नगर के बीचों-बीच से निकलते हुए राज-मार्ग से,
जेणेव गुणसिए चेइए—जहां पर गुणशील नामक उद्यान था, तेणेव उवागए—वहीं पर आ

पहुँचा, छत्ताइए तित्थयराइसए पासइ—(वहाँ पर सुदर्शन ने) तीर्थङ्कर भगवान के छत्रादि अतिशयों के दर्शन करते ही, सोयं ठावेइ—शिविका ठहरवाई, ठावित्ता—और ठहरवा कर, भूयं बारियं सोयाओ पचचोरुहेइ—उसने अपनी पुत्री भूता को शिविका से नीचे उतारा ।

तएणं—तदनन्तर, तं भूयं बारियं—अपनी उस पुत्री भूता को, अम्मापियरो पुरओ काउं—माता-पिता ने अपने आगे किया और, जेणेव पासे अरहा पुरुसादाणीये—जहाँ पर पुरुष - श्रेष्ठ भगवान पादवेनाथ थे, तेणेव उवागया—वहीं पर आ गए, तिवखुत्तो वंदति नमंसति—(वहाँ पर आकर) उनकी प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार करते हैं, वंदिता नमंसित्ता एवं वयासी—वन्दना नमस्कार करके सुदर्शन गाथापति ने इस प्रकार निवेदन किया, एवं खलु देवाणुप्पिया !—हे देवानुप्रिय भगवन् !, भूता बारिया अम्हं एगा धूता—यह भूता नाम की हमारी एक ही पुत्री है, इट्ठा०—जो हमें अत्यन्त प्रिय है, एस णं देवाणुप्पिया !—हे देवानुप्रिय प्रभो ! यह निश्चय ही, संसार-भउव्विग्गा—सांसारिक भय से उद्धिन्न होकर, भीया—अत्यन्त भयभीत हो गई है, जाव देवाणुप्पिया णं अत्तिए—इसलिये यह आपके समीप, मुंडा जाव पठइए—मुण्डित होकर प्रवज्या ग्रहण करना चाहती है, तं एयं णं देवाणुप्पिया—इसलिये हे देवानुप्रिय प्रभो ! हम आपको यह, सिस्सिणि-भिक्षुं दलयामो—शिष्या रूप भिक्षा देते हैं, पडिच्छन्तु णं देवाणुप्पिया—इसलिये आप इसे भिक्षा रूप में स्वीकार करें ।

(तब पार्श्व प्रभु बोले—) अहामुहं देवाणुप्पिए०—हे देवानुप्रियों ! जैसे आप लोगों को आत्मा को सुख हो वैसा करें ।

तएणं सा भूया बारिया—तदनन्तर वह भूता नाम की कन्या, पासेणं अरहया० एवं वुत्ता तमाणी—अरिहन्त श्री पार्श्व प्रभु के ऐसा कहने पर, हट्ठत्तुट्ठा०—अत्यन्त प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होकर, उत्तरपुरत्थिमं—उत्तर-पूर्व दिशाओं के बीच ईशान कोण में जाकर, सयमेव आभरण-मल्लालंकारं—स्वयं ही (अपने हाथों से) वस्त्र-आभूषण आदि, ओमुयइ—उतार देती है, जहा देवानंदा पुण्णसूसाणं अत्तिए—तदनन्तर देवानन्दा के समान आर्या पुष्पचूला के पास, जाव गुत्तबभ-धारिणी—प्रवज्या ग्रहण कर गुप्त ब्रह्मचारिणी बन जाती है ॥ ५ ॥

मूलार्थ—तदनन्तर सुदर्शन गाथापति ने स्नान करके आई हुई और वस्त्रालंकारों से विभूषित अपनी पुत्री भूता को हजार पुरुषों द्वारा उठाई जाने वाली शिविका पर बिठलाया और बिठाना कर वह अपने मित्रों एवं जाति बन्धुओं के साथ विविध वाद्ययन्त्रों की ध्वनियों से वातावरण को गुंजायमान करता हुआ राजगृह नगर के बीचोंबीच से निकलते हुए राजमार्ग से जहाँ पर गुणशील नामक उद्यान था

वहीं पर आ पहुंचा, (वहां पर सुदर्शन ने) तीर्थङ्कर भगवान के छत्रादि अतिशयों के दर्शन करते ही शिविका ठहरवाई और ठहरवा कर उसने अपनी पुत्री भूता को शिविका से नीचे उतारा ।

तदनन्तर अपनी उस पुत्री भूता को माता-पिता ने अपने आगे करके जहां पर पुरुष-श्रेष्ठ भगवान श्री पार्श्वनाथ जी थे वहां पर आ गए (वहां पर आकर) उनकी प्रदक्षिणा करके वन्दना नमस्कार करते हैं, वन्दना-नमस्कार करके सुदर्शन गाथापति ने इस प्रकार निवेदन किया—हे देवानुप्रिय भगवन् ! यह भूता नाम की हमारी एक ही पुत्री है, जो हमें अत्यन्त प्रिय है। हे देवानुप्रिय प्रभो ! यह निश्चय ही सांसारिक भय से उद्विग्न होकर अत्यन्त भयभीत हो गई है, इसलिये यह आपके समीप मुण्डित होकर प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहती है, इसलिये हे देवानुप्रिय प्रभो ! हम आपको यह शिष्या रूप भिक्षा देते हैं; आप इसे भिक्षा रूप में स्वीकार करें। (तब पार्श्व प्रभु बोले) हे देवानु प्रियो ! जैसे आप लोगों की आत्मा को सुख हो वैसे करें।

तदनन्तर वह भूता नाम की कन्या अरिहन्त श्री पार्श्व प्रभु के ऐसा कहने पर अत्यन्त प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होकर उत्तर-पूर्व दिशाओं के बीच ईशान कोण में जाकर स्वयं ही (अपने हाथों में) वस्त्र-आभूषण आदि उतार देती है। तदनन्तर देवानन्दा के समान आर्या पुष्पचूला के पास प्रव्रज्या ग्रहण कर गुप्त ब्रह्मचारिणी बन जाती है ॥५॥

टीका—समस्त वर्णन अत्यन्त स्पष्ट है। यहां “गुप्त ब्रह्मचारिणी” का अर्थ है आन्तरिक विकारों को त्याग कर मनो-गुप्त, वचन-गुप्त और काय-गुप्त का पालन करते हुए—वासनाओं का सर्वथा त्याग करने वाला साधक। शेष विषय स्पष्ट है ॥ ५ ॥

मूल—तएणं सा भूया अज्जा अण्णया कयाइं सरीरवाओसिया जाया यावि होत्था, हत्थे धोवइ, पाये धोवइ एवं सीसं धोवइ, मुहं धोवइ, थणगंतराइं धोवइ, कक्खंतराइं धोवइ, गुज्झंतराइं धोवइ,, जत्थ जत्थ वि य णं ठाणं वा सिज्जं वा निसीहियं वा चेएइ, तत्थ तत्थ वि य णं पुव्वामेव

पाणएणं अब्भुक्खेइ । तओ पच्छा ठाणं वा सिज्जं वा निसीहियं वा चेएइ । तएणं ताओ पुप्फचूलाओ अज्जाओ भूयं अज्जं एव वयासी-

अम्हे णं देवाणुप्पिए ! समणीओ निगंथीओ इरियासमियाओ जाव गुत्तबंभयारिणीओ, नो खलु कप्पइ अम्हं शरीरवाओसियाणं होत्तए, तमं च णं देवाणुप्पिए ! शरीरवाओसिया अभिक्खणं-अभिक्खणं हत्थे धोवसि जाव निसीहियं चेएसि, तं णं तुमं देवाणुप्पिए ! एयस्स ठाणस्स आलोएहि त्ति, सेसं जहा सुभद्दाए जाव पाडियक्कं उवस्सयं उवसंपज्जिस्ता णं विहरइ । तएणं सा भूया अज्जा अणोहट्टिया अणिवारिया सच्छंदमई अभिक्खणं-अभिक्खणं हत्थे धोवइ जाव चेएइ ॥६॥

छाया—ततः खलु सा भूता आर्या अन्यथा कदाचित् शरीरवाकुशिका जाता चापि अभवत् । अभोक्षणमभोक्षणं हस्तौ धोवति, पादौ धोवति, एवं शीर्षं धोवति, मूत्रं धोवति स्तनान्तराणि कक्षान्तराणि गुह्यान्तराणि धोवति, यत्र यत्रापि च खलु स्थानं वा शय्यां वा नैषेधिकीं (स्वाध्यायभूमिं) चेतयते (करोति) तत्र तत्रापि च खलु पूर्वमेव पानीयेन अभ्यक्षति । ततः पश्चात् स्थानं वा शय्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयते । ततः खलु ता पुष्पचूला आर्या भूतामार्या-मेवमवादिषुः—

वयं खलु देवानुप्रिये ! भ्रमण्यो निर्ग्रन्थ्यः, ईर्ष्यासमिता यावद् गन्तव्यं चारिष्यः, नो खलु कल्पते अस्माकं शरीरवाकुशिका खलु भवितुम्, त्वं च खलु देवानुप्रिये ! शरीरवाकुशिका अभोक्षणमभोक्षणं हस्तौ धोवति यावद् नैषेधिकीं चेतयसि, तत् खलु त्वं देवानुप्रिये ! एतस्य स्थानस्य आलोचयेति, शेषं यथा सुभद्रायाः यावत् प्रत्येकमुपाश्रयमुपसंपद्य खलु विहरति । ततः खलु सा भूता आर्या अनपघट्टिका अनिवारिता स्वच्छन्दमतिः अभोक्षणमभोक्षणं हस्तौ धोवति यावत् चेतयते । ततः खलु सा भूता आर्या बहूभिः चतुर्थ-षष्ठ्याष्टमं बहूनि वर्षाणि भ्रमण्यपर्यायं पालयित्वा तस्य स्थानस्य अनालोचितप्रतिक्रान्ता कालमासे कालं कृत्वा सोधर्मे कल्पे श्री-अवतंसके विमाने उपपातस-भार्यां देवशयनीये यावत् तदवगाहनया श्रीदेवी तत्रोपपन्ना पञ्चविधया पर्याप्त्या भाषामनःपर्याप्त्या पर्याप्ता ।

॥ ६ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं सा भूया अज्जा—तदनन्तर वह आर्या भूता, अणया कयाई—कुछ वर्षों के अनन्तर, शरीरवाओसिया जाया—शरीर - बकुशा—शारीरिक साज-सज्जा की प्रवृत्ति वाली, यावि होत्था—हो गई, हत्थे धोवइ—वह बार-बार हाथ धोने लगी, पाए धोवइ—पैर धोने

लगी, एवं सीसं धोवइ—इसी प्रकार अपना सिर धोने लगी, मुहं धोवई—मुख को धोने लगी, थणगंतराइं धोवई—अपने स्तनों के मध्य-भाग को धोने लगी, कवखंतराइं धोवई—अपनी कांखें धोने लगी, गुज्जंतराइं धोवई—गुप्तांगों के आस-पास के भागों को (बार-बार) धोने लगी—अर्थात् साधुवृत्ति के विपरीत शारीरिक विभूषा में प्रवृत्त हो गई। जत्थ जत्थ वि ठाणं वा सिज्जं वा निसीहियं वा चेइए—वह जहाँ कहीं भी बैठने के लिये, सोने के लिये, स्वाध्याय के लिये कोई स्थान निश्चित करती, तत्थ तत्थ वि य णं पुव्वामेव पाणएणं अब्भुवखेइ—उस उस स्थान पर वह पहले ही पानी छिड़क लेती, तओ पच्छा—तत्पश्चात्, ठाण वा सिज्जं व निसीहियं व चेइए—उस बैठने के स्थान का, शयन करने के स्थान का, स्वाध्याय-स्थान का प्रयोग करती थी।

तएणं—तत्पश्चात् (अर्थात् उसके ऐसे आचरण को देखते हुए), पुष्पचूलाओ अज्जाओ—(उसकी गुरुणी) पुष्पचूला आर्या ने, भूयं अज्जं एवं वयासी—भूता आर्या को (प्रति-बोधित करते हुए) इस प्रकार कहा, अम्हे णं देवानुप्पिए—हे देवानुप्रिये ! हम निश्चित ही, समणीओ—श्रमणी (साध्वी हैं), निगन्थीओ—निग्रन्थी हैं, इरियासमियाओ—ईर्या समिति आदि पाँचों समितियों का पालन करनेवाली हैं, जाव गुत्तबंभयारिणीओ—हम आन्तरिक विकारों को नियन्त्रित कर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करनेवाली हैं, नो खलु कप्पइ अम्हं—इसलिये यह हमारे लिये सर्वथा त्याज्य है (कि हम), सरोरवाओसियाणं होत्तए—शारीरिक विभूषा-प्रिय बनें, तुमं च णं देवानुप्पिए—हे देवानुप्रिये ! तुम तो, सरोरवाओसिया—शरीर-बकुशा (शारीरिक-विभूषा—प्रिय), (बनती जा रही हो), अभिक्खणं-अभिक्खणं—क्योंकि तुम बार-बार, हत्थे धोवसि जाव निसीहियं चेयसि—अपने हाथों पैरों और सिर आदि अंगों को धोती रहती हो, सोने बैठने एवं स्वाध्याय करने के स्थान पर पानी छिड़कती हो, तं णं तुमं देवानुप्पिए—इस प्रकार हे देवानुप्रिये, एयस्स ठाणस्स आलोएहि त्ति—आलोचना करो, किन्तु उसने अपनी गुरुणी पुष्पचूला की बात अनसुनी कर उसकी उपेक्षा कर दी, सेसं जहा सुभद्दाए जाव पाडियक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ता णं बिहरइ—(अपितु वह सुभद्रा आर्या के समान पृथक् उपाश्रय में अकेली ही चली गई और स्वतन्त्रता-पूर्वक साध्वाचार के विरुद्ध आचरण करती हुई विचरने लगी।

तएणं सा भूया अज्जा—तदनन्तर वह आर्या भूता, अणोहट्ठिया अणिवारिया—उसी पापाचरण पर स्थिर रह कर बेरोक टोक, स्वच्छन्दमयी—सर्वथा स्वच्छन्द होकर, अभिक्खणं-अभिक्खणं—बारम्बार, हत्थे धोवइ जाव चेइए—हाथ पैर आदि अंगों को धोती रही और बैठने आदि के स्थान पर जल छिड़कती रही ॥६॥

मूलार्थ—तदनन्तर वह आर्या भूता कुछ वर्षों के अनन्तर शरीर-बकुशा—शारीरिक साज-सज्जा की प्रवृत्ति वाली हो गई, वह बार-बार हाथ धोने लगी, पैर धोने लगी, इसी प्रकार अपना सिर धोने लगी, मुख को धोने लगी, अपने स्तनों के मध्य भाग

को धोने लगी, अपनी कांखें धोने लगी, गुप्तांगों के आसपास के भागों को (बार-बार) धोने लगी—अर्थात् साधु-वृत्ति के विपरीत शारीरिक विभूषा में प्रवृत्त हो गई। वह जहां कहीं भी बैठने के लिये, सोने के लिये, स्वाध्याय के लिये कोई स्थान निश्चित करती उस स्थान पर वह पहले ही पानी छिड़क लेती, तब उस बैठने के स्थान का, शयन करने के स्थान का, स्वाध्याय-स्थान का प्रयोग करती थी।

तत्पश्चात् (अर्थात् उसके ऐसे आचरण को देखते हुए) (उसकी गुरुणी) पुष्प-चूला आर्या ने भूता आर्या को (प्रतिबोधित करते हुए) इस प्रकार कहा - हे देवानुप्रिये ! हम निश्चित ही श्रमणी हैं (साध्वी हैं) निर्ग्रन्थी हैं; इर्या-समिति आदि पांचों समितियों का पालन करने वाली हैं, हम आन्तरिक विकारों को नियन्त्रित कर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाली हैं, इसलिये यह हमारे लिये सर्वथा त्याज्य है (कि हम) शारीरिक विभूषा-प्रिय बनें। हे देवानुप्रिये ! तुम शरीर-बकुशा (शारीरिक-विभूषा-प्रिय) (बनती जा रही हो), क्योंकि तुम बार-बार अपने हाथों, पैरों और सिर आदि अंगों को धोती रहती हो, सोने बैठने एवं स्वाध्याय करने के स्थान पर पानी छिड़कती हो, इस प्रकार हे देवानुप्रिये, तुम इस पाप-स्थान की (इस पापयुक्त आचरण की) आलोचना करो, किन्तु उसने अपनी गुरुणी पुष्पचूला की बात अनसुनी कर उसकी उपेक्षा कर दी], [अपितु वह पुनः आर्या के समान पृथक् उपाश्रय में अकेली ही चली गई और स्वतन्त्रता-पूर्वक साधवाचार के विरुद्ध आचरण करती हुई विचरने लगी।

तदनन्तर वह आर्या भूता उसी पापाचरण पर स्थिर रह कर बेरोक टोक सर्वथा स्वच्छन्द होकर बारम्बार हाथ पैर आदि अंगों को धोती रही और बैठने आदि के स्थान पर जल छिड़कती रही ॥६॥

टीका—प्रस्तुत प्रकरण में भूता आर्या के माध्यम से साधवाचार विरोधी क्रियाओं पर अच्छा प्रकाश डाला गया है ॥६॥

मूल—तएणं सा भूया अज्जा बहूहि चउत्थछट्ठ० बहूइ वासाइं
सामण्णपरियागं पाउणिता तस्स ठासस्स अणालोइयपडिक्कंता कालमासे
कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे सिरिर्वडिंसए विमाणे उववायसभाए देव-
सयणिज्जंसि जावतोगाहणाए सिरिदेवित्ताए उववण्णा पंचविहाए पज्ज-
त्तोए भासामणपज्जत्तोए पज्जत्ता ।

एवं खलु गोयमा । सिरि ए देवी ए एसा दिव्वा देविड्ढी लद्धा पत्ता ।
ठिई एगं पलिओवमं । सिरि णं भंते ! देवी जाव कहिं गच्छिहिइ ?
महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ । एवं खलु जंबू ! निक्खेवओ । एवं सेसाणं
वि नवण्हं भाणियव्वं, सरिसनामा विमाणा, सोहम्मे कप्पे, पुव्वभवे नयर
चेइयपियमाईणं अप्पणो य नामादी जहा संगहणी १, सव्वा पासस्स अंति ए
निक्खंता । ताओ पुप्फचूलाणं सिस्सिणियाओ सरीरवाओसियाओ
सव्वाओ अणंतरं चइं चइत्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ॥७॥

॥ पुप्फचूलिया णामं चउत्थवग्गो सम्मत्तो ॥ ४ ॥

छाया—एवं खलु गौतम ! श्रिया देव्या एषा दिव्या देवऋद्धिर्लब्धा प्राप्ता, स्थितिरेकं पत्यो-
पमम् । श्रीः खलु भदन्त ! देवी यावत् क्व गमिष्यति ? महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति । एवं खलु जम्बू !
निक्षेपकः । एवं शेषाणामपि नवानां भणितव्यं सदृशानामानि विमानानि, सौधर्मं कल्पे, पूर्वभवे नगर-
चैत्यपित्रादीनाम् आत्मनश्च नामादिकयथा संगहण्याम्, सर्वाः पार्श्वस्यान्तिके निष्क्रान्ताः । ताः पुष्प-
चूलानां शिष्याः शरीरवाकृशिकाः सर्वा अमन्तरं चयं च्युत्वा महाविदेहे वर्षे सेत्स्यन्ति ॥७॥

पदार्थान्वय—तएणं सा भूया अज्जा—तदनन्तर वह भूता आर्या, बहूहि चउत्थ छट्ठ०—
अनेकविध चतुर्थ, षष्ठ अष्टम द्वादश आदि व्रतोपवासों का आचरण करती हुई, बहूहि वासाइं—
अनेक वर्षों तक, सामण्ण परियागं पाउणिता—भ्रामण्य पर्याय का पालन करती रही (किन्तु), तस्स-
ठाणस्स अणालोइय पडिक्कंता—उन पाप-स्थानों की आलोचना एवं प्रतिक्रमण किये बिना ही, काल-
मासे कालं किच्चा—मृत्यु समय आने पर प्राण त्याग कर, सोहम्मे कप्पे—सौधर्म कल्प नामक देवलोक
में, सिरिर्वडिंसए विमाणे—श्री अवतंसक विमान में, उववाय सभाए देव समयणिज्जंसि—उपपात

सभा में देव शयनीय शय्या पर देव—अवगाहना के अनुरूप, श्री देवी के रूप में, उत्पन्न हुई, (और) पंचविहाए पञ्जत्तीए भासामण - पञ्जत्तीए पञ्जत्ता—वह भाषा-मन आदि पाँचों पर्याप्तियों से युक्त हो गई ।

एवं छलु गोधमा !—इस प्रकार हे गौतम !, सिरिऐ देवीए—श्री देवी ने, एसा दिव्वा देविद्धो लद्धा पत्ता—वह दिव्य देव-समृद्धि प्राप्त की, ठिई एगं पलिओवमं—देवलोक में उसकी स्थिति एक पत्योपम की है ।

सिरि णं भन्ते ! देवी जाव कीह गच्छहिइ—(गौतम स्वामी पूछते हैं—) भगवन् ! वह श्री देवी देवायु पूर्ण करके कहाँ जाकर उत्पन्न होगी ?, महाविदेहेवासे सिज्जहिइ—वह महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सभी जन्म-मरणादि के दुःखों का अन्त करेगी ।

एवं छलु जम्बू !—सुधर्मा स्वामी कहते हैं, निक्खेवओ—श्रमण भगवान् महावीर ने पुष्प-चूलिका के प्रथम अध्ययन के पूर्वोक्त भाव प्रकट किये थे, एवं सेसाणं वि नवब्भं भाणियब्भं—इसी प्रकार ही देवी आदि नवों आर्याश्रों के जीवनवृत्तादि को जान लेना चाहिये । इन नवों देवियों के सौधर्म कल्प में देव-विमानों के नाम इनके नाम के समान समझ लेने चाहिए, पुव्वभवे नयरं चेइय पिय माईणं अप्पणो य नामादि जहा संगहणीए—इन सबके पूर्व भव में नगर, उद्यान, माता-पिता आदि के नाम संग्रहणी माथा के समान जान लेने चाहिये, सव्वा पासस्स अंतिए निक्खंता—ये सभी गृहत्याग कर पार्श्व प्रभु के सान्निध्य में आर्या पुष्पचूला की शिष्याएँ बनीं, सरीरवाओसियाओ—सभी शरीर-विभूषा प्रिय बनीं, सव्वाओ अणंतरं चयं चइत्ता—और सभी देवलोक से व्यव कर, महाविदेहेवासे—महाविदेह क्षेत्र में, सिज्जहिइ—सब दुःखों का अन्त कर सिद्ध होंगी ॥७॥

॥ पुष्पचलिका नाम का चतुर्थ वर्ग समाप्त ॥

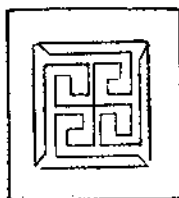
मूलार्थ—तदनन्तर वह भूता आर्या अनेक विध चतुर्थ, षष्ठ अष्टम द्वादश आदि व्रतोपवासों का आचरण करती हुई अनेक वर्षों तक श्रामण्य - पर्याय का पालन करती रही (किन्तु) उन पाप-स्थानों की आलोचना एवं प्रतिक्रमण किये बिना ही मृत्यु समय आने पर मर कर सौधर्म कल्प नामक देवलोक के श्री अवतंसक विमान की उपपात सभा में देव शयनीय शय्या पर देव-अवगाहना के अनुरूप, श्री देवी के रूप में, उत्पन्न हुई (और) वह भाषा-मन आदि पाँचों पर्याप्तियों से युक्त हो गई ।

इस प्रकार हे गौतम !, श्री देवी ने वह दिव्य देव-समृद्धि प्राप्त की । देवलोक में उसकी स्थिति एक पत्योपम की है ।

(गौतम स्वामी पूछते हैं—) भगवन् ! वह श्री देवी देवायु पूर्ण करके कहां जाकर उत्पन्न होगी ?, (श्री पार्श्व प्रभु ने बतलाया कि) वह महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सभी जन्म-मरणादि के दुःखों का अन्त करेगी ।

सुधर्मा स्वामी कहते हैं, श्रमण भगवान महावीर ने पुष्पचूलिका के प्रथम अध्ययन के पूर्वोक्त भाव प्रकट किये थे । इसी प्रकार ह्री देवी आदि नवों आर्याओं के जीवन वृत्तादि को जान लेना चाहिये । इन नवों देवियों के सौधर्म कल्प में देव विमानों के नाम इनके नामों के समान समक्ष लेने चाहिए । इन सब के पूर्व भव में नगर उद्यान, माता-पिता आदि के नाम संग्रहणी गाथा को समान जान लेने चाहिये । ये सभी गृहत्याग कर पार्श्व प्रभु के सान्निध्य में आर्या पुष्पचूला की शिष्यायें बनीं, सभी शरीर-विभूषा-प्रिय बनीं और सभी देवलोक से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में सब दुःखों का अन्त कर सिद्ध होंगी ॥७॥

॥ पुष्पचूलिका नामक चतुर्थ वर्ग समाप्त ॥





वृष्णिदशा : पंचम वर्ग

वृष्णिदशा : पंचम वर्ग

मूल—जड़णं भंते ! उक्खेवओ० उवंगाणं चउत्थस्स पुप्फचूलाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, पंचमस्स णं भंते ! वग्गस्स उवंगाणं वल्लिदसाणं भगवया जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू । समणेणं भगवया महावीरेणं जाव दुवालस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

“निसढे, मायनि, वह, वहे, पगता, जुत्ती, दसरहे, दढरहे । य, महाघणू, सत्तघणू, दसघणू, नामे सयघणू, य ॥१॥

छाया—यदि खलु भवन्त ! उत्क्षेपकः, उपाङ्गानां चतुर्थस्य पुष्पचूलानामयमर्थः प्रज्ञप्तः, पञ्चमस्य खलु भवन्त ! वर्गस्य उपाङ्गानां वृष्णिदशानां श्रमणेन भगवता यावत्संप्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन भगवता महावीरेण यावद् द्वादशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद् यथा—

१. निषघः, २. मायनी, ३. वह, ४. वहे, ५. पगता, ६. ज्योतिः, ७. वशरथः, ८. दूढरथश्च, ९. महाघन्वा, १०. सत्तघन्वा, ११. दसघन्वा नाम १२. शतघन्वा च ॥ १ ॥

पदार्थान्वयः—(श्री जम्बू स्वामी जी पूछते हैं)—जड़ णं भन्ते !—भगवन् ! यदि, उक्खेवओ०—भगवान् महावीर ने, उवंगाणं चउत्थस्स पुप्फचूलाणं—चतुर्थ उपांग पुष्पचूला का, अयमट्ठे पण्णत्ते—यह अर्थ प्रतिपादित किया है, पंचमस्स णं भन्ते वग्गस्स—तो भगवन् ! इस पांचवें वर्ग, उवंगाणं वल्लिदसाणं—वल्लिदशा नामक उपांग का, भगवया जाव संपत्तेणं—मोक्ष को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने, के अट्ठे पण्णत्ते—क्या अर्थ प्रतिपादित किया है ?

एवं खलु जम्बू !—वत्स जम्बू !, समणेणं भगवया महावीरेणं—श्रमण भगवान् महावीर ने, जाव दुवालस अज्झयणा पण्णत्ता—इस पांचवें वृष्णिदशा नामक उपांग के बारह अध्ययन कहे हैं, तं जहा—जैसे कि—

निसढे, मायनी, वह, वहे, पमता, जुती, दसरहे, दढरहे य ।

महाधणू, सत्तधणू, दसधणू, नामे सधधणू, य ।

१. निषध, २. मायनी, ३. वह, ४. वहा, ५. पमता, ६. ज्योति, ७. दशरथ, ८. दूढरथ, ९. महाधन्वा, १०. सप्तधन्वा, ११. दशधन्वा और १२. शतधन्वा ये बारह नाम हैं ॥ १ ॥

मूलार्थ—भगवन् ! यदि भगवान् महावीर ने चतुर्थ उपांग पुष्पचूला का यह अर्थ प्रतिपादित किया है, तो भगवन् ! इस पांचवें वर्ग वह्निदशा नामक उपांग का मोक्ष को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ अतिपादित किया है ?

वत्स जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने इस पांचवें वृष्णिदशा नामक उपांग के बारह अध्ययन कहे हैं—जैसे कि—

१. निषध, २. मायनी, ३. वह, ४. वहा, ५. पमता, ६. ज्योति, ७. दशरथ, ८. दूढरथ, ९. महाधन्वा; १०. सप्त धन्वा, ११. दशधन्वा और १२. शत धन्वा ये बारह नाम हैं ॥ १ ॥

टीका—इस पांचवें वर्ग में बारह साधकों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है । उक्त सूत्र के भाव सर्वथा स्पष्ट हैं ।

मूल—जइणं भंते ! समणेणं जाव दुवालस्स अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! उवक्खेवओ । एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं सम-
एणं बारवई नाम नयरी होत्था, दुवालसजोयणायामा जाव पच्चक्खं देव-
लोयभूया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा । तीसे णं बारवईए
नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थ णं रेवए नामं पव्वए
होत्था, तुंगे गगणतलमणुविहंतसिहरे नाणाविहरुक्खगुच्छगुल्मलतावल्ली-
परिगताभिरामे हंस-मिय-मयूर-कौच-सारस-चक्रवाग-मयणसाला-
कोइल-कुलोववेए अणेग-तडकडगवियरओज्जरपवायपुब्भारसिहरपउरे
अच्छरगणदेवसंगचारणविज्जाहरमिहुणसंनिविन्ने निच्चच्छणए दसा-

रवरवीरपुरिसतेलोककबलयगाणं सोमे सुभए पियदंसणे सुरूवे पासाईए जाव पडिरूवे । तत्थ णं रेवयगस्स पव्वयस्स अदूरसामंते एत्थ णं नंदणवणे नामं उज्जाणे होत्था, सव्वोउयपुप्फ जाव दरिसणिज्जे । तत्थणं नंदणवणे उज्जाणे सुरप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था चिराइए जाव बहुजणो आगम्म अच्चेइ सुरप्पियं जक्खाययणं । से णं सुरप्पिए जक्खाययणे एगेणं महया वणसंडेणं सुव्वओ समन्ता संपरिविखत्ते जहा पुण्णभट्टे जाव सिलावट्टए ॥ २ ॥

छाया—यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन यावद् द्वादशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य खलु भदन्त ! श्रमणेन यावद् द्वादशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य खलु भदन्त ! उत्क्षेपकः । एवं खलु जम्बू । तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारावती नाम्नी नगरी अभवत् द्वादशयोजनायामा । यावत् प्रत्यक्षं देवलोकभूता प्रासादीया दर्शनीया अभिरूपा प्रतिरूपा । तस्याः खलु द्वारावत्याः नगर्याः बहिस्तत्पर्योरस्थे दिग्भागे अत्र खलु रेवती नाम पर्वतोऽभवत्, तुङ्गो गगनतलमनुलिहच्छिखरः नानाविधवृक्षगुच्छगुल्मलतावल्लीपरिगताभिरामः हंसमृगमयूरक्रीडसारसचक्रवाकमदनशालाकोकिलकुलोपपेतः, अनेकतटकटविवरावभरप्रपातप्राग्भारशिखरप्रचुरः अप्सरोगणदेवसंघ-चारण-विद्याधरमिथुनसप्रिकीर्णः, नित्यक्षणकः, दशार्हवरवीरपुरुषत्रैलोक्यबलवतां सोमः सुभगः प्रियदर्शनः सुरूपः प्रासादीयो यावत् प्रतिरूपः । तस्य खलु रेवतकस्य पर्वतस्य अदूरसामन्ते, अत्र खलु नन्दनवनं नाम उद्यानम् आसीत् सर्वश्रेष्ठं पुष्पं यावद् दर्शनीयम् । ततः खलु नन्दनवने उद्याने सुरप्रियस्य यक्षस्य यक्षायतनमासीत्, चिरातीतं, यावद् बहुजन आगम्य अर्चयन्ति सुरप्रियं यक्षायतनम् । ततः खलु सुरप्रियं यक्षायतनम् एकेन महता वनखण्डेन सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्तम् यथा पूर्णभद्रो यावत् शिलापट्टकः ॥२॥

पदार्थान्वयः—जइ णं भन्ते ! समणेणं जाव दुवालस मज्झयणा पणत्ता—भगवन ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने वृषिदशा नाम के पांचवें उपांग के बारह अध्ययन बतलाये हैं तो, पदमस्स णं भन्ते ! उक्खेवओ—बारह अध्ययनों में से प्रथम अध्ययन में किस विषय का प्रतिपादन किया है ?

(उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामी जी कहते हैं)—एवं खलु जम्बू !—हे जम्बू !, तेषं कालेणं तेषं समएणं—उस काल एवं उस समय में, बारबई नामं नयरी होत्था—द्वारका नाम की एक नगरी थी, दुवालस जोयणायामा—जो बारह योजन लम्बी थी, (और जो), जाव पच्चवखं देवलोय भूया—जो प्रत्यक्ष ही देवलोक के समान, पासादीया—मन को प्रसन्न करनेवाली, दरिसणिज्जा—देखने योग्य, अभिरूपा—सुन्दर छटा वाली, पडिरूवा—अद्वितीय शिल्पकला से सुशोभित

थी, तीसे णं बारवईए नयरी बहिया—उस द्वारिका नगरी के बाहर, उत्तरपुरस्थिमे विसी भाए—उत्तर पूर्व के कोण—ईशान कोण में, तत्थ णं रेवए नाम पठवए होत्था—एक रेवतक नाम का पर्वत था, तु णे गगण-तल मणुबिहंत सिहरे—जो कि बहुत ऊंचा था और उसके शिखर गगन-चुम्बी थे, नानाविह-रुक्ख-गुच्छ-गुल्मलता-वल्ली-परिगताभिरामे—और नानाविध वृक्षों गुच्छों गुल्मों और लताओं एवं बेलों से घिर कर वह नगर बहुत ही सुन्दर प्रतीत हो रहा था, हंस-मिय-मयूर-क्रौंच-सारस-चक्रवाग-मयणसाला-कोइल-कुलोववेए—तथा हंस मृग मयूर, क्रौञ्च (कुरर), सारस, चक्रवाक (चकवा), मदनशाला (मैना) और कोयल आदि, पक्षियों के समूह से सुशोभित था, अणेग-तट-कडस-वियर-ओज्जर-पवाय-पूभार सिहरपउरे—और उस पर्वत पर अनेक नदी नालों के सुन्दर तट कटक (वृक्षाच्छादित गोल भाग), झरने और जल - प्रपात गुफायें और कुछ झुके हुए पर्वत-शिखर आदि बहुत बड़ी संख्या में थे, अच्छरगण-देव-संग-चारण-विज्जाहर-मिहुण-संनिविन्ने—उसी पर्वत पर अप्सरायें देवसमूह चारण जंघाचारण आदि विशिष्ट साधु और विद्याधरों के युगल आकर क्रीडायें कर रहे थे, निचचच्छणए—और वहां नित्य नानाविध महोत्सव होते रहते थे, बसार वरवीर पुरिस-तेलोकक बलवगाणं—दशार्हुकुल के श्रेष्ठ वीरों एवं वलवानों का वह पर्वत, श्री भगवान नेमिनाथ जी की तपस्थली होने के कारण सब के लिए शुभकारी एवं शान्त स्थल था, पियवंसणे सुखवे—वह नेत्रों के लिये आलहादकारी, सुन्दर आकार-प्रकार वाला, पासईए जाव पडिखवे—प्रसन्नता पूर्ण और दर्शकों के मन को आकृष्ट करनेवाला था ।

तत्थ णं रेवयणस्स पव्वयस्स—उस रेवतक पर्वत के, अदूरसामंते—बहुत निकट ही, तत्थ णं नन्दनवणे नामं—एक नन्दन वन नामक, उज्जाणे होत्था—उद्यान था, (जिसमें), सव्वो-उण्णक—सभी ऋतुओं के पुष्प होने से, जाव दरसणिज्जे—वह अत्यन्त दर्शनीय था, तत्थ णं नंदनवणे उज्जाणे—उस नन्दनवन नामक उद्यान में, सुरप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था—एक सुरप्रिय नामक यक्ष का यक्षायतन था, छिराइए जाव—जो कि बहुत प्राचीन था, बहुजणो आगम्म अच्चेइ—वहां आकर अनेक लोग उसकी पूजा अर्चना किया करते थे, से णं सुरप्पिए जक्खाययणे—वह सुरप्रिय यक्षायतन, एगे महया—एक बहुत बड़े, वनसंडेण—वनखण्ड द्वारा समंता संपरिब्रिक्खत्ते—चारों ओर घिरा हुआ था, जहा पुण्णभइ जाव सिलावट्टए—जैसे शिला-पट्ट से युक्त पूर्णभद्र उद्यान घिरा हुआ था ॥२॥

मूलार्थ—भगवन् ! यदि श्रमण भगवान महावीर ने वृष्णिदशा नाम के पांचवें उपांग के बारह अध्ययन बतलाये हैं, तो उन बारह अध्ययनों में से प्रथम अध्ययन में किस विषय का वर्णन किया है ?

उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामी जी कहते हैं—हे जम्बू ! उस काल एवं उस समय में द्वारका नाम की एक नगरी थी, जो बारह योजन लम्बी थी, (और जो) प्रत्यक्ष

ही देवलोके के समान मन को प्रसन्न करने वाली देखने के योग्य सुन्दर छटा वाली अद्वितीय शिल्प-कला से सुशोभित थी । उस द्वारिका नगरी के बाहर उत्तर पूर्व के कोण—ईशान-कोण में एक रैवतक नाम का पर्वत था जो कि बहुत ऊँचा था और जिसके शिखर गगन-चुम्बी थे, वह नानाविध वृक्षों गुच्छों गुल्मों और लताओं एवं बेलों से घिर कर बहुत ही सुन्दर प्रतीत हो रहा था । तथा वह मृग, मयूर, क्रीञ्च (कुरर), सारस, चक्रवाक (चकवा), मदनशाला (मैना) और कोयल आदि पक्षियों के समूहों से सुशोभित था और उस पर्वत पर अनेक नदी - नालों के सुन्दर तट कटक (वृक्षाच्छादित गोल भाग) झरने, जल-प्रपात, गुफायें और कुछ झुके हुए पर्वत-शिखर आदि बहुत बड़ी संख्या में थे । उसी पर्वत पर अप्सरायें देव-समूह चारण जंघा-चरण आदि विशिष्ट साधु और विद्याधरों के युगल आकर क्रीड़ायें किया करते थे और वहाँ नित्य नानाविध महोत्सव होते रहते थे । दशार्ह कुल के श्रेष्ठ वीरों एवं बलवानों का वह पर्वत भगवान् नेमिनाथ जी की तप-स्थली होने के कारण सबके लिये शुभकारी एवं शान्त स्थान था । वह नेत्रों के लिये आल्हादकारी, सुन्दर आकार-प्रकार वाला, प्रसन्नता पूर्ण और दर्शकों के मन को आकृष्ट करने वाला था ।

उस रैवतक पर्वत के बहुत निकट ही एक नन्दन वन नामक उद्यान था, (जिसमें) सभी ऋतुओं के पुष्प होने से वह अत्यन्त दर्शनीय प्रतीत होता था, उस नन्दन वन नामक उद्यान में एक सुरप्रिय नामक यक्ष का यक्षायतन था, जो कि बहुत प्राचीन था, वहाँ आकर अनेक लोग उसकी पूजा-अर्चना किया करते थे । सुरप्रिय यक्षायतन एक बहुत बड़े वन-खण्ड द्वार चारों ओर से घिरा हुआ था, जैसे शिला-पट्ट से युक्त पूर्णभद्र उद्यान घिरा हुआ था ॥२॥

टीका—कुछ विशिष्ट नामों के प्रसिद्ध नाम कोष्ठकों में दे दिये गए हैं ॥२॥

मूल—तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया होत्था जाव पसासेमाणे विहरइ । से णं तत्थ समुद्विजयपामोक्खाणं दसण्हं वसाराणं, बलदेवपामोक्खाणं पंचण्हं महावीराणं, उग्गसेणपामोक्खाणं

सोलसण्हं रायसहस्साणं पञ्जुणपामोक्खाणं अद्धुट्ठाणं कुमारकोडीणं
सांबपामोक्खाणं सट्ठीए दुहंदसाहस्सीणं वीरसेणपामोक्खाणं एकवीसीए
वीरसाहस्सीणं, महासेणपामोक्खाणं छप्पन्नाए बलवगसाहस्सीणं रुप्पि-
णपामोक्खाणं सोलसण्हं देवीसाहस्सीणं अणंगसेणापामोक्खाणं गणिया-
साहस्सीणं, अणोसि च बहूणं राईसर जाव सत्थवाहप्पभिईणं वेयड्ड-
गिरिसागरमेरागस्स दाहिणड्डभरहस्स आहेवच्चं जाव विहरइ ॥३॥

छाया—तत्र खलु द्वारावत्यां नगर्यां कृष्णो नाम वासुदेवो राजाऽभवत्, यावत् प्रशासनं
विहरति । स. खलु तत्र समुद्रविजयप्रमुखानां दशानां दशार्हणां, बलदेवप्रमुखानां पञ्चानां महावीरा-
णाम्, उग्रसेनप्रमुखानां षोडशानां राजसहस्राणां, प्रद्युम्नप्रमुखानाम् अष्ट्युष्टानां (साद्धंतूतोयानां)
कुमारकोटीनरं, शाम्बप्रमुखानां पण्णां दुर्वातसहस्रानां, वीरसेनप्रमुखानामेकविंशत्याः वीरसहस्राणां,
महासेनप्रमुखानां षट्पञ्चाशतो बलवत्सहस्राणां, रुक्मिणीप्रमुखानां षोडशानां देवीसाहस्रीणाम्,
अनङ्गसेनाप्रमुखानामनेका गणिका सहस्रीणाम्, अन्येषां च बहूनां राजेश्वर० यावत् सार्धवाह-
प्रभूतानां वेताड्यगिरिसागरमर्यादस्स दक्षिणाद्धं भरतस्याधिपत्यं यावत् विहरति ॥३॥

पदार्थान्वयः—तत्थ णं वारवईए नयरीए—उस द्वारका नगरी में, कण्हे नाम वासुदेवे राया
होत्था—वासुदेव श्री कृष्ण राजा थे, जाव पसासेमाणे विहरइ—जो कि शासन करते हुए वहाँ
विचरते रहते थे, से णं तत्थ—वे वासुदेव श्री कृष्ण वहाँ पर, समुद्-विजय-पामोक्खाणं दसण्हं
दसाराणं—समुद्र विजय प्रमुख दस दशार्हों के, बलदेव-पामोक्खाणं पंचण्हं महावीराणं—बलदेव आदि
पांच महान् वीरों के, उग्रसेणपामोक्खाणं सोलसण्हं रायसहस्साणं—उग्रसेन प्रमुख सोलह हजार
राजाओं के, पञ्जुणपामोक्खाणं अद्धुट्ठाणं कुमारकोडीणं—प्रद्युम्न प्रमुख साढ़े तीन करोड़ कुमारों
के, सांबपामोक्खाणं सट्ठीए दुहंदसाहस्सीणं—शाम्ब प्रमुख साठ हजार दुर्दान्त शूरवीरों के,
वीरसेणपामोक्खाणं, एकवीसीए वीरसाहस्सीणं—वीरसेन प्रमुख इक्कीस हजार वीरों के, महासेण-
पामोक्खाणं छप्पन्नाए बलवगसाहस्सीणं—महासेन प्रमुख छप्पन हजार बलशालियों के, रुक्मिणी-
पामोक्खाणं सोलसण्हं देवीसाहस्सीणं—रुक्मिणी-प्रमुख सोलह हजार देवियों के (तथा), अणंगसेना-
पामोक्खाणं अणेगणं गणियासाहस्सीणं—अनंगसेना प्रमुख अनेक हजार गणिकाओं के, अणोसि च
बहूणं राईसर जाव सत्थवाहप्पभिईणं—(और) अनेक राजेश्वरों तलवरों माडम्बिकों सेनापतियों
एवं सार्धवाहों आदि के (तथा), वेयड्डगिरि सागर मेरागस्स दाहिणड्डभरहस्स आहेवच्चं—वेताड्य-
पर्वत एवं सागर से मर्यादित दक्षिणी अर्ध भरत के ऊपर आधिपत्य करते हुए, जाव विहरइ—वे
विचर रहे थे ॥३॥

मूलार्थ— उस द्वारका नगरी के राजा थे, वासुदेव श्री कृष्ण जो कि शासन करते हुए वहां विचरते रहते थे । वे वासुदेव श्री कृष्ण वहां पर समुद्र विजय प्रमुख दस दशार्हों के, बलदेव प्रमुख पांच महान् वीरों के, उग्रसेन प्रमुख सोलह हजार राजाओं के, प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ कुमारों के, साम्ब प्रमुख साठ हजार दुर्दान्त शूर-वीरों के, वीरसेन प्रमुख इक्कीस हजार वीरों के, महासेन प्रमुख छप्पन हजार बल-शालियों के, रुक्मणी प्रमुख सोलह हजार देवियों के (तथा) अन्ग सेना प्रमुख अनेक हजार गणिकाओं के, (और) अनेक राजेश्वरों तलवरों माडम्बकों सेनापतियों एवं सार्थवाहों आदि के (तथा), वैताड्य पर्वत एवं सागर से मर्यादित दक्षिणी अर्ध भरत के ऊपर आधिपत्य करते हुए वे विचर रहे थे ॥३॥

टीका—द्वारकाधीश श्री कृष्ण के वैभव का इस सूत्र में विस्तृत वर्णन किया गया है ॥३॥

मूल—तत्थणं बारवईए नयरीए बलदेवे नामं राया होत्था, महया जाव रज्जं पसासेमाणे विहरइ । तस्स णं बलदेवस्स रण्णो रेवई नामं देवी होत्था, सोमाला० जाव विहरइ । तएणं सा रेवई देवी अण्णया कयाइ तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि जाव सोहं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा०, एवं सुमिण-दंसणपरिकहणं, निसढे नामं कुमारे जाए जाव कलाओ जहा महाबले, पंनासओ दाओ, पण्णासरायकण्णगाणं एग-दिवसेणं पाणि गिण्हावेइ, नवरं निसढे नामं जाव उप्पिपासाए विहरइ ॥४॥

छाया—तत्र खलु द्वारावत्यां नगर्या बलदेवो नाम राजाऽभवत्, महता यावद् राज्यं प्रशासद् विहरति । तस्य खलु बलदेवस्य राज्ञो रेवती नाम्नी देव्यभवत्, मुकुमारपाणिपादा यावद् विहरति । ततः खलु सा रेवती देवी अभ्यदा कदाचित् तादृशे शयनीये यावत् सिंह स्वप्ने दृष्ट्वा खलु प्रतिबुद्धा एवं स्वप्नदर्शनपरिकथनं, निषघो नाम कुमारो जातः, यावत् कला यथा महाबलस्य, पञ्चाशद् दायः, पञ्चाशद्वाजकस्य कानामेकदिवसेन पाणि ग्राह्यति, नवरं निषघो नाम यावद् उपरिप्रासादे विहरति ॥४॥

पदार्थान्वय—तत्थ णं बारवईए नयरीए—उस द्वारका नगरी में, बलदेवे नामं राया होत्था—बलदेव नाम का राजा था, महया जाव रज्जं पसासेमाणे बिहरइ—बलदेव महाबली थे, और राज्य पर शासन करते हुए विचर रहे थे, तत्थ णं बलदेवस्स रण्णो—उस राजा बलदेव की, रेवई नामं देवी होत्था—महारानी का नाम रेवती देवी था, सोमाला जाव बिहरइ—वह अत्यन्त सुकुमार एवं सुन्दर थी, अतः अपने राज्य में सुख-पूर्वक रह रही थी, तएणं सा रेवई देवी अण्णया कयाइ—तदनन्तर वह रेवती देवी एक बार, तसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि—रानियों के शयन करने के योग्य शय्या पर सोते हुए, जाव सीहं सुमिणे पासित्ता णं—स्वप्न में सिंह को देखकर, पडिबुद्धा—वह जाग गई, एवं सुमिणं वंसण-परिकहणं—उसने उस स्वप्न का हाल बलदेव जी से कहा, निसिडे नामं कुमारे—(समय आने पर) उसने एक बालक को जन्म दिया जिसका नाम निषध कुमार रक्खा, जाव कलाओ जहा महाबले—वह कुमार महाबल के समान बहत्तर कलाओं में प्रवीण हो गया था, पंचासओ दाओ—उसको पचास दहेज मिले, (क्योंकि), पण्णासराय-कण्णमाणं एक दिवसेणं पाणि मिण्हावेइ—उसने पचास राज्य कन्याओं का एक ही दिन में पाणिग्रहण किया था अर्थात् विवाह किया था, नवरं निसिडे नामं जाव उप्पिवासाए बिहरइ—वह निषध कुमार और उसकी रानियां ऊपर के राज-महल में सुखपूर्वक जीवन-यापन कर रहे थे ॥४॥

मूलार्थ—उस द्वारका नगरी में बलदेव नाम का राजा था, बलदेव महाबली थे, और राज्य पर शासन करते हुए विचर रहे थे । उस राजा बलदेव की महारानी का नाम रेवती देवी था । वह अत्यन्त सुकुमार एवं सुन्दर थी, अतः अपने राज्य में सुख-पूर्वक रह रही थी; तदनन्तर वह रेवती देवी एक बार राज-रानियों के शयन करने के योग्य शय्या पर सोते हुए स्वप्न में सिंह को देख कर जाग गई । उसने उस स्वप्न का हाल बलदेव जी से कहा—(समय आने पर) उसने एक बालक को जन्म दिया, जिसका नाम निषध कुमार रक्खा । वह बालक महाबल के समान बहत्तर कलाओं में प्रवीण हो गया था, उसको पचास दहेज मिले (क्योंकि) उसने पचास राज कन्याओं का एक ही दिन में पाणि-ग्रहण किया था, अर्थात् विवाह किया था; वह निषध कुमार और उसकी रानियां ऊपर के राज-महल में सुख-पूर्वक जीवन-यापन कर रहे थे ॥४॥

टीका—सभी भाव अपने आप में स्पष्ट हैं । बहु-विवाह प्रथा तत्कालीन राजाओं में प्रचलित थी ॥४॥

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिहत्तेमी आदिक्क रे दस-
घणूइं वण्णओ जाव समोसरिए, परिसा निग्गया । तएणं से कण्हे वासु-
देवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठत्तुट्ठे० कोडुंबियपरिसे सद्दावेइ,
सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव देवानुप्पिया ! सभाए सुहम्माए सामु-
दाणियं भेरिं तालेह । तएणं से कोडुंबियपरिसे जाव पडिसुणित्ता जेणेव
सभाए सुहम्माए जेणेव सामुदाणिया भेरी तणेव उवागच्छति, उवा-
गच्छित्ता तं सामुदाणियं भेरिं महया महया सद्देणं तालेइ ॥५॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये अहंन् अरिहत्तेमिः आदिकरो दसघनूको वर्णकः यावत्
समवसृतः, परिषत् निर्गता । ततः खलु सः कृष्णो वासुदेवोऽस्याः कथाया लब्धार्थः सन् हट्ठत्तुष्ट ०
कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—क्षिप्रमेव देवानुप्रियाः ! सभायां सुधर्मायां
तामुदानिकीं भेरीं ताडयत । ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषा यावत् प्रतिश्रुत्य यत्रैव सभायां सुधर्मायां
सामुदानिकी भेरी तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागम्य तां सामुदानिकीं भेरीं महता - महता शब्देन
ताडयन्ति ॥५॥

पदार्थान्वयः—तेणं कालेणं तेणं समएणं—उस काल उस समय में, अरहा अरिहत्तेमी—
अरिहस्त प्रभु श्री अरिहत्तेमी जी जो कि, आदिक्क रे दसघणूइं वण्णओ जाव समोसरिए—दस घणुष
प्रमाण शरीरवाले थे और धर्म के आदि-कर थे अर्थात् जो इक्कीसवें तीर्थङ्कर श्री नमिनाथ के
अनन्तर हजारों वर्षों के बाद धर्म का प्रवर्तन करने वाले थे, वे द्वारिका नगरी में पधारे । परिसा
निग्गया—उनके दर्शनों एवं प्रवचनों के श्रवणार्थ नागरिकों के समूह अपने अपने घरों से निकले ।

तएणं से कण्हे वासुदेवे—तदनन्तर वासुदेव श्री कृष्ण, इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे—भग-
वान् अरिहत्तेमि जी के आगमन की सूचना प्राप्त होते ही, हट्ठत्तुट्ठे—अत्यन्त प्रसन्न होकर,
कोडुंबियपरिसे—अपने पारिवारिक सेवकों की, सद्दावेइ—बुलवाते हैं, सद्दावित्ता—और बुलवा कर,
एवं वयासी—उन्हें इस प्रकार आदेश दिया, खिप्पामेव देवानुप्पिया !—हे देवानुप्रियों ! आप
लोग शीघ्र ही, सभाए सुहम्माए—सुधर्मा सभा में पहुंचकर, सामुदाणियंभेरिं—सामुदानिक भेरी
(वह भेरी जिसके बजने पर सभी अपेक्षित जन एकत्रित हो जायें), तालेहि—बजाओ, तएणं से
कोडुम्बिय परिसे—तदनन्तर वह सेवक वर्ग, वासुदेव श्री कृष्ण की आज्ञा सुनकर, जेणेव सभाए
सुहम्माए—जहां पर सुधर्मा सभा थी और जहां, सामुदाणिया भेरी—सामुदानिक भेरी थी, तेजेव
उवागच्छति—वहीं पर आते हैं, उवागच्छित्ता—और वहां पहुंच कर, सामुदाणियं भेरिं—सामु-

दानिक भेरी को, महया-महया सद्देणं—बहुत ऊँचे-ऊँचे स्वर से, तालेइ—बजाते हैं ॥५॥

मूलार्थ—उस समय उस काल में अरिहन्त प्रभु श्री अरिष्ट नेमी जी जो कि दस धनुष प्रमाण शरीर वाले थे और धर्म के आदि कर थे अर्थात् जो इक्कासवें तीर्थंकर श्री नमिनाथ जो के अनन्तर हजारों वर्षों के बाद धर्म का प्रवर्तन करने वाले थे वे द्वारिका नगरी में पधारे । उनके दर्शनों एवं प्रवचनों के श्रवणार्थ नागरिकों के समूह अपने-अपने घरों से निकले ।

तदनन्तर वासुदेव श्रीकृष्ण, भगवान् अरिष्ट नेमी जी के आगमन की सूचना प्राप्त होते ही अत्यन्त प्रसन्न होकर, अपने पारिवारिक सेवकों को बुलवाते हैं और बुलवा कर उन्हें इस प्रकार आदेश देते हैं कि—‘हे देवानुग्रिथो ! आप लोग शीघ्र ही, सुधर्मा सभा में पहुँच कर सामुदानिक भेरी (बह भेरी जिसके बजने पर सभी अपेक्षित जन एकत्रित हो जायें) बजाओ । तदनन्तर वह सेवक वर्ग वासुदेव श्री कृष्ण की आज्ञा सुनकर जहाँ सुधर्मा सभा थी और जहाँ सामुदानिक भेरी थी वहीं पर आते हैं और वहाँ पहुँच कर सामुदानिक भेरी को बहुत ऊँचे-ऊँचे स्वर से बजाते हैं ॥५॥

टीका—समस्त प्रकरण सरल है ॥५॥

मूल—तएणं तीसे सामुदानियाए भेरीए महया-महया सद्देण तालि-
याए समाणीए समुद्विजयपामोक्खा दस वसारा देवीओ उण भाणि-
यववाओ जाव अणंगसेणापामोक्खा अणेगा गणियासहस्सा, अन्ने य बहवे
राईसर जाव सत्थवाहप्पभिईओ ण्हाया जाव पायच्छित्ता सव्वालंकार-
विभूसिया जहा विभवइडिढसक्कारसमुदएणं, अप्पेगइया हयगया जाव
पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता० जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छन्ति उवा-
गच्छित्ता करतल० कण्हं वासुदेवं जएणं विजएणं वद्धावेति । तएणं से
कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया !
आभिसेक्कं हत्थिरयणं कप्पेह, हयगयरहप्परज्जाव पच्चप्पिणंति ।

तएणं से कण्हे वासुदेवे मज्जणघरे जाव दुरुढे, अट्ठट्ठमंगलगा, जहा कूणिए, सेयवरचामरेहि उद्धयमाणेहि उद्धयमाणेहि समुद्रविजय-पामोक्खेहि दसारेहि जाव सत्यवाहणपभिर्इहि सिद्धि संपरिवुडे सत्तिवड्ढीए जाव रवेणं बारवईनयरी मज्झं-मज्झेणं, सेसं जहा कूणिओ जाव पज्जुवासइ ॥६॥

छाया—ततः खलु तस्यां समुदानिवयां भेर्यां महता महता शब्देन ताडितायां सत्यां समुद्र-विजयप्रमुखा दश दंशार्हाः, देव्यः पुनर्भणितव्याः, यावद् अनङ्गसेनाप्रमुखानि अनेकानि गणिकासहस्राणि, अन्ये च बहवो राजेश्वरः यावत् सार्थवाहप्रभृतयः स्नाताः यावत् कृतप्रायश्चित्ताः सर्वालंकारविभूषिताः यथाविभवः कृत्स्न-कारसमुदयेन अप्येकके ह्यगता यावत् पुरुषवागुरापरिक्षिप्ता यत्रैव कृष्णो वासुदेवस्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य करतलं कृष्णं वासुदेवं जयेन विजयेन वर्द्धयन्ति । ततः खलु कृष्णो वासुदेवः कौटुम्बिकपुरुषानेवमवादीत्—क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! आभिषेक्यं हस्तिरत्नं कल्पयन्त्वम्, ह्य-गज-रथं प्रवरान् यावत् प्रत्यर्पयन्ति ।

ततः खलु स कृष्णो वासुदेवो मज्जनगृहे यावद् दुरुढः अट्ठाट्ठमङ्गलकानि, यथा कूणिकः, श्वेतवरचामरैरुद्धयमाणः उद्धयमाणः समुद्रविजयप्रमुखः दशभिर्दंशार्हैर्वित् सार्थवाहप्रभृतिभिः सार्धं संपरिवृतः सर्वश्रेष्ठया यावत् रवेण यावत् द्वारावतीनगरीमध्यमध्येन शेषं यथा कूणिको यावत् पर्युपासते ॥६॥

पदार्थान्वयः—तएणं तीसे सामुदाणियाए भेरीए—इस सामुदानिक भेरी के, महया-महया सहृणं—जोर-जोर की ध्वनियों में, तलियाए-समाणीए—बजाए जाने पर, समुद्रविजय पामोक्खा दस दसारा—समुद्र विजय प्रमुख दस दशार्ह क्षत्रिय, देवोओ भाणियव्वाओ—जो स्वमणी आदि देवियां भी बतलाई गई हैं (और), जाव अजंगसेणापामोक्खा अनेगा गणिया सहस्सा—और अनेग सेना प्रमुख अनेक सहस्र गणिकार्ये, अन्ने य बहवे राईसर जाव सत्यवाहणपभिर्इयो—राजेश्वर एवं सार्थवाह आदि, गहाया जाव पायच्छित्ता—स्तानादि करके तथा प्रायश्चित्त अर्थात् सांगलिक कार्य करके, सव्वालंकारविभूसिया—सभी प्रकार के अलंकारों से विभूषित होकर, जहा विभव-इड्डो-सक्कात्-समुदणं—अपनी-अपनी समृद्धि सत्कार एवं अभ्युदय सूचक वैभव के साथ, अप्येगइया ह्यगया गय-गया—अनेक घोड़ों पर और अनेक हाथियों पर सवार होकर, जाव पुरिस वगुरापरिक्षित्ता—अपने-अपने दासों को साथ लेकर, जेणव कण्हे वासुदेवे—जहां पर वासुदेव श्री कृष्ण थे, तेणेव उवागच्छन्ति—वहीं पर पहुंच जाते हैं, उवागच्छित्ता—और वहां पहुंचकर, करतलं—दोनों

हाथ जोड़कर, कण्हं वासुदेवं—वासुदेव श्री कृष्ण को, जएणं विजएणं बद्धावेति—जय - विजय शब्दों से उनको वर्धापन देते हैं—उनका अभिनन्दन करते हैं।

तएणं से कण्हं वासुदेवं—तदनन्तर वासुदेव श्री कृष्ण ने, कोडुं बियपुरिसे एवं बयासी—अपने पारिवारिक एवं निजी दासों को यह आज्ञा दी, छिप्पामेव भो देवानुप्पिया !—हे देवानुप्रियों ! तुम शीघ्र ही, आभितेवकं हस्तिरयणं कप्पेहं—आभिषेक्य हस्तीरत्न को सजाकर तैयार करो, हयगयरहपवरजाव - तथा हाथी घोड़ों और पदातियों से युक्त यावत् चतुरंगिणी सेना को तैयार करके, पच्चप्पिणंति—मुझे आकर सूचित करो।

तएणं से कण्हं वासुदेवं—तदनन्तर वासुदेव श्री कृष्ण ने, मज्जणघरे जाव बुद्धे—स्नान-घर में प्रवेश कर (और वहाँ स्नान करके तदनन्तर वस्त्रालंकारों आदि से सुसज्जित होकर) वे हाथी पर सवार हो गए, अट्ठट्ठ मंगलगा—आठ मांगलिक द्रव्य उनके आगे - आगे चले, जहा कूणिए—राजा कूणिक के समान, सेयवर चामरेहि—श्रेष्ठतम चवर उन पर, उट्ठयमाणेहि—उट्ठयमाणेहि—डुलाए जाने लगे, समुद्धिअयपाभोवर्खेहि वसहि दसारेहि—समुद्र विजय आदि दस दशार्ह क्षत्रिय, जाव सत्थवाहप्पभिद्धिहि सद्धि—सार्थवाहों आदि के साथ, संपरिवुडे सव्विड्डीए जाव रवेणं—सर्वविध राजसी समृद्धियों और विविध वाद्यों के मधुर एवं उच्च स्वरों के साथ बारबई नय्यरि मज्झं मज्जेणं—द्वारका नगरी के बीचों-बीच मध्यमार्ग से निकले और रैवतक पर्वत पर पहुँच कर भगवान् श्री परिष्टनेमि जी की, सेसं जहा कूणिओ जाव पज्जुवासइ—शेष सब वर्णन कूणिक के समान समझते हुए श्री कृष्ण द्वारा भगवान् की पर्युपासना आदि कार्य समझ लेने चाहिये ॥६॥

मूलार्थ—जोर-जोर की छवनियों वाली उस सामुदायिक भेरी के बजाए जाने पर, समुद्र विजय प्रमुख दशार्ह क्षत्रिय जो रुक्मणी आदि देवियां पोछे बतलाई गई हैं और अनेक सहस्र मणिकार्यों राजेश्वर एवं सार्थवाह आदि स्नानादि करके तथा प्रायश्चित्त अर्थात् मांगलिक कार्य करके सभी प्रकार के अलंकारों से विभूषित होकर अपनी-अपनी समृद्धि सत्कार एवं अभ्युदय सूचक वैभव के साथ अनेक घोड़ों पर और अनेक हाथियों पर सवार होकर अपने-अपने दासों को साथ लेकर जहाँ पर वासुदेव श्री कृष्ण थे वहीं पर पहुँच जाते हैं और वहाँ पहुँच कर दोनों हाथ जोड़कर वासुदेव श्री कृष्ण को, जय विजय शब्दों से वर्धापन देते हैं - उनका अभिनन्दन करते हैं।

तदनन्तर वासुदेव श्री कृष्ण ने अपने पारिवारिक एवं निजी दासों को यह आज्ञा दी। हे देवानुप्रियों ! तुम शीघ्र ही आभिषेक्य हस्तिरत्न को सजा कर तैयार

करो, तथा हाथी घोड़ों और पदातियों से युक्त यावत् चतुरंगिणी सेना को तैयार कर के मुझे आकर सूचित करो ।

तदनन्तर वासुदेव श्रीकृष्ण ने स्नान घर में प्रवेश कर (और वहां स्नान करके तदनन्तर वस्त्रालंकारों आदि से सुसज्जित होकर) वे वहां आकर हाथी पर सवार हो गए । आठ मांगलिक द्रव्य उनके आगे-आगे चले और राजा कृष्णिक के समान श्रेष्ठतम चक्र उन पर डुलाए जाने लगे । समुद्र विजय आदि दस दशार्ह क्षत्रिय सार्थवाहों आदि के साथ सवेविध राजसी समृद्धियों और विविध वाद्यों के मधुर एवं उच्च स्वरों के साथ वे द्वारिका नगरी के बीचों-बीच मध्य मार्ग से निकले और रैवतक पर्वत पर पहुंच कर भगवान् श्री अरिष्टनेमि जी को वन्दना नमस्कार किया, शेष सब वर्णन कृष्णिक के समान समझते हुए श्री कृष्ण द्वारा भगवान् की पर्युपासना आदि कार्य समझ लेने चाहिये । ६॥

मूल—तएणं तस्स निसिद्धस्स कुमारस्स उप्पि पासायवरगयस्स तं महया जणसहं च जहा जमाली जाव धम्मं सोच्चा निसम्म वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी सहहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं जहा चित्तो जाव सावगधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता पडिगए ॥७॥

छाया—ततः खलु तस्य निषद्यस्य कुमारस्योपरिप्रासादवरगतस्य तं महाजनशब्दं च यथा जमालियावद् धर्मं श्रुत्वा निशम्य वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्—अहमि खलु भवन्त ! निग्रन्थं प्रवचनं यथा चित्तो० यावत् श्रावकधर्मं प्रतिपद्यते प्रतिपद्य प्रतिगतः ॥७॥

पदार्थान्वयः—तएणं तस्स निसिद्धस्य कुमारस्स—तब उस निषद्य कुमार ने, उप्पि पासाय वरगयस्स—अपने सुन्दर महल के उपर बैठे हुए, तं महया जणसहं—जनता द्वारा किये जा रहे उस महान् शोर को सुना, जहा जमाली जाव धम्मं सोच्चा निसम्म—तो वह भी जमाली के समान राज्य-वैभव के साथ (भगवान् श्री अरिष्टनेमि जी के पावन-सान्निध्य में पहुंचा और भगवान् से धर्मतत्त्व को सुनकर उसने उसे हृदयंगम कर लिया तब उसने भगवान् श्री अरिष्टनेमि जी को, वंदइ नमंसइ—वन्दना नमस्कार किया, (और), वंदित्ता नमंसित्ता—वन्दना नमस्कार करके, एवं वयासी—

इस प्रकार निवेदन किया, सद्दुहामि णं भन्ते ! निगन्थ पावयणं—भगवन् ! मैं निगन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, जहा चित्तो सावगधम्मं पडिवज्जइ—चित्त नामक सारथी के समान उसने श्रावक धर्म स्वीकार किया, पडिवज्जिता पडिगए—और स्वीकार करके वह अपने राज-महल में लौट गया ॥७॥

मूलार्थ—तब उस निषध कुमार ने अपने महल के ऊपर बैठे हुए जनता द्वारा किये जा रहे उस महान् शोर को सुना तो वह भी जमाली के समान राज्य-वैभव के साथ (भगवान् श्री अरिष्टनेमि जी के पावन सान्निध्य में पहुंचा और भगवान् से धर्म-तत्त्व को सुनकर उसने उसे हृदयंगम कर लिया, तब उसने भगवान् श्री अरिष्टनेमि जी को वन्दना-नमस्कार किया और वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया भगवन् ! मैं निगन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, चित्त नामक सारथी के समान उसने श्रावक धर्म स्वीकार किया, और स्वीकार करके वह अपने राज-महल में लौट गया ॥७॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में श्रमण भगवान् गहावीर ने निषध कुमार के वैभव पूर्ण जीवन का वर्णन बड़े सुन्दर ढंग से किया है । निषध कुमार कैसे भगवान् श्री अरिष्टनेमि जी के दर्शन करने जाता है उसका वर्णन भगवती सूत्र में वर्णित जमाली के प्रकरण की तरह जान लेना चाहिए । निषध कुमार ने भगवान् अरिष्टनेमि के उपदेश से प्रभावित हो कर श्रावक-व्रत चित्त श्रावक की तरह धारण किये ॥७॥

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंते-
वासी वरदत्ते नामं अणगारे उराले जाव विहरइ । तएणं से वरदत्ते
अणगारे निसढं कुमारं पासइ, पासित्ता जायसड्ढे जाव पज्जुवासमाणे
एवं वयासी—अहो णं भन्ते ! निसढे कुमारं इट्ठे इट्ठरूवे कंते कंतरूवे एवं
पिए० मणुन्नए० मणामे मणामरूवे सोमे सोमरूवे पियदंसणे सुरूवे ।
निसढेणं भन्ते ! कुमारं अयमेयारूवे माणुसइड्ढी किण्णा लद्धा किण्णा
पत्ता ? पुच्छा जहा सूरियाभस्स, एवं खलु वरदत्ता । तेणं कालेणं तेणं
समएणं इहेव जंबूदीपे दीपे भारहे वासे रोहीडए नामं नयरे होत्था,

रिद्धित्यिमियसमिद्धे०, मेहवन्ने उज्जाणे मणिदत्तस्स जक्खस्स जक्खाय-
यणे । तत्थ णं रोहीडए नयरे महब्बले नामं राया, पउमावई नामं देवी,
अन्नया कयाइं तंसि तारिसगंसि सयणिज्जसि सीहं सुमिणे, एवं जम्मणं
भाणियव्वं, जहा महब्बलस्स, नवरं वीरंगओ नामं, बत्तीसओ दाओ,
बत्तीसाए रायवरकन्तगाणं पाणि जाव उवगिज्जमाणे उवगिज्जमाणे
पाउसवरिसारत्तसरयहेमंतवसन्तगिम्हपज्जंते छप्पि उऊ जहाविभवेणं
भुंजमाणे भुंजमाणे कालं गालेमाणे इट्ठ सद्दे जाव विहरइ ॥८॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समयेऽर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तेवासी वरदत्तो नाम अनगारः उदारो
यावद् विहरति । ततः स वरदत्तोऽनगारो निषधं कुमारं पश्यति, दृष्ट्वा जातश्रद्धो यावत् पर्युपासीनः
एवमवादीत्—अहो ! खलु भवन्त ! निषधः कुमारः दृष्टः दृष्टरूपः, कान्तः कान्तरूपः, एवं प्रियो०
मनोज्ञो० मनोऽमो मनोऽमरूप सोमः सोमरूपः प्रियदर्शनः सुरूपः । निषधेन भवन्त ! कुमारेण अयमेत-
द्वा मानुषश्रद्धाः कथं लब्धा ? कथं प्राप्ता ? पृच्छा यथा सूर्याभ्यस्य ।

एवं खलु वरदत्त ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे रोहितकं
नाम नगरमासीत्, श्रद्धास्तिमितसमृद्धम्० मेघवर्णमुद्यानं, मणिदत्तस्य यक्षस्य यक्षाघतनम् । तत्र
खलु रोहितके नगरे महाबलो नाम राजा, पद्मावती नाम देवी, अयथा कथाचिद् तस्मिन् तावुरो
शयनीये सिंहं स्थप्ने०, एवं जन्म भणितव्यं, यथा महाबलस्य, नवरं वीरंगतो नाम, द्वात्रिंशद् बायाः,
द्वात्रिंशतो राजकन्यकानां पाणि यावद् उपगीयमानः उपगीयमानः प्रावृद्धवर्षारात्रशरद्वेगन्तप्रौढम-
वसन्तान् षडपि श्रुत्वा यथाविभवेन भुञ्जानः दृष्टान् शब्दान् यावद् विरहति ॥८॥

पदार्थान्वयः—तेणं कालेणं तेणं समएणं—उस काल और उस समय में, अरहओ अरिष्टुनेमिस्स
अंतेवासी वरदत्ते नाम अनगारे—अरिहन्त भगवान् श्री अरिष्टनेमीजी के प्रधान शिष्य वरदत्त नामक
मुनीश्वर, उराले जाव विहरइ—जो अत्यन्त उदार प्रकृति के थे वे विचरण कर रहे थे, तएणं
से वरदत्ते नामं अनगारे निसडं कुमारं पासइ—उस वरदत्त नामक मुनीश्वर ने निषध कुमार को
देखा, बासित्ता जायसडु जाव पज्जवासमाणे—और उन्हें देख कर उनके हृदय में श्रद्धा जागृत हुई,
यावत् उन्हींने भगवान् की पर्युपासना करते हुए, एवं बयासी—इस प्रकार निवेदन किया, अहो
णं भन्ते !—हे भगवन् !, निसडे कुमारे इट्ठे इट्ठरुवे—यह निषध कुमार दृष्ट है (इसे सभी
चाहते हैं) क्योंकि इसे मनचाहा रूप प्राप्त हुआ है, कन्ते कन्तरुवे—सुन्दर है और इसे सुन्दर रूप
प्राप्त हुआ है, एवं पिये पियरुवे—यह सबको प्रिय है, क्योंकि इसे सर्वजन प्रिय रूप प्राप्त

हुआ है, मणूने मणामे मणामरूवे—यह सबको अच्छा लगाने वाला है, इसका रूप अत्यन्त मनोज्ञ है, सोमे सोमरूवे—यह सौम्य है इसे सौम्य रूप प्राप्त हुआ है, पियदंसणे सुरुवे—यह प्रिय-दर्शन एवं सुरूप है। निसद्वेणं भन्ते ! कुमारेणं—भगवन् इस निषध कुमार ने, अयमेयारूवे णाणुवड्डो—इसे इस प्रकार की मानवीय समृद्धि, किण्णा लद्धा, किण्णा पत्ता—कैसे उपलब्ध हुई है ? और कैसे प्राप्त हुई है ?, पुच्छा जहा सूरियाभस्स—सूर्याभदेव के विषय में श्री गौतम स्वामी जा की तरह (वरदत्त मुनिराज ने) श्री अरिष्टनेमी जी से प्रश्न किया।

एवं खलु वरदत्ता !—(भगवान श्री अरिष्टनेमि जी ने वरदत्त मुनि के प्रश्न का समाधान करते हुए कहा) वत्स वरदत्त !, तेण कालेण तेणं समएणं—उस काल और उस समय में, इहेव जम्बूद्वीवे दीवे—यहीं पर जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, मारहे वासे—भरत क्षेत्र में, रोहीडा नाम नयरे होत्था—रोहितक नाम का एक नगर था, रिद्धिरिथमियसमिद्धे—जो कि धन-व-प्राद से अत्यन्त समृद्ध था, मेह्वस्से उज्जाणे—वहाँ पर मेघवण नाम का एक उद्यान था, मणदत्तस्स जखस्स जखाययणे—उस उद्यान में मणदत्त नामक एक यक्ष का यक्षायतन (यक्ष-मन्दिर) था, तन्थ णं रोहीडे नयरे महब्बले नाम राया—उस रोहितक नगर में महाबल नाम का एक राजा राज्य करता था, पउमावई नाम देवी—उसकी पद्मावती नाम की पटरानी थी, अग्गया कयाइं तस्स तारिसगंसि सयणिज्जंसि सोहं सुमिणे—एक रात उसने राजरानी के योग्य शय्या पर शयन करते हुए स्वप्न में एक सिंह देखा, एवं जम्भणं भाणियव्वं जहा महब्बलस्स—उसके जन्म आदि का वर्णन महाबल के समान ही समझना चाहिये। नवरं वीरंगओ नाम—इतना विशेष है कि उस बालक का नाम वीरंगत (वीरंगद) रखा गया, बत्तीसओ वाओ बत्तीसाए रायवरकन्नगणं पाणि जाव उवगिज्जमाणे—उवगिज्जमाणे—महाबल कुमार का (विवाह योग्य होने पर) बत्तीस कन्याओं के साथ विवाह हुआ और उसे बत्तीस-बत्तीस प्रकार के दहेज प्राप्त हुए। उसके राज-महलों के ऊपर गायक उसके गुणों का गुण-गान करते रहते थे, पाउस वरिसारत्तसरयहेमंतवसन्तगिम्हपज्जन्ते छप्पि उऊ जहाविभवेणं भुजमाणे—वह ग्रीष्म वर्षा आदि छहों ऋतुओं सम्बन्धी मनचाहे मानवीय भोगों का, गालेमाणे इट्ठ सहे जाव बिहरइ—और उपभोग करते हुए अपना सुखमय जीवन व्यतीत कर रहा था ॥८॥

मूलार्थ— उस काल और उस समय में अरिहन्त भगवान श्री अरिष्टनेमी जी के प्रधान शिष्य वरदत्त नामक मुनीश्वर जो अत्यन्त उदार प्रकृति के थे, वे विचरण कर रहे थे। उस वरदत्त नामक मुनीश्वर ने जब निषध कुमार को देखा और उन्हें देख कर उनके हृदय में श्रद्धा जागृत हुई, यावत् उन्होंने भगवान की पर्युपासना करते हुए इस प्रकार निवेदन किया—“भगवन् ! यह निषध कुमार इष्ट है (इसे सभी चाहते हैं),

क्योंकि इसे मनचाहा रूप प्राप्त हुआ है, सुन्दर है और इसे सुन्दर रूप प्राप्त हुआ है, यह सबको प्रिय है, क्योंकि इसे सर्वजन प्रिय रूप प्राप्त हुआ है, यह सबको अच्छा लगने वाला है, इसका रूप अत्यन्त मनोरम है, यह सौम्य है इसे सौम्य रूप प्राप्त हुआ है, यह प्रिय-दर्शन एवं सुरूप है । भगवन् ! इस निषध कुमार को इस प्रकार की मानवीय समृद्धि कैसे प्राप्त हुई है ? सूर्याभदेव के विषय में श्री गौतम स्वामी जी की तरह (वरदत्त मुनिराज ने) श्री भगवान् श्री अरिष्टनेमी जी से प्रश्न किया ।

(भगवान् श्री अरिष्टनेमि जी ने वरदत्त मुनि के प्रश्न का समाधान करते हुए कहा -) वत्स वरदत्त ! उस काल और उस समय में यहीं पर जम्बू द्वीप नामक द्वीप में भरत क्षेत्र में रोहितक नाम का एक नगर था, जो कि धन-धान्यादि से अत्यन्त समृद्ध था । वहाँ पर मेघवर्ण नाम का एक उद्यान था । उस उद्यान में मणिदत्त नामक एक यक्ष का यक्षायतन (यक्ष-मन्दिर) था, उस रोहितक नगर में महाबल नाम का एक राजा राज्य करता था, उसकी पद्मावती नाम की पटरानी थी, एक रात उस रानी ने अपनी राजरानी के योग्य शय्या पर शयन करते हुए स्वप्न में सिंह देखा, उसके जन्म आदि का वर्णन महाबल के समान ही समझना चाहिये, इतना विशेष है कि उस बालक का नाम वीरंगत रखा गया । वीरंगत कुमार का (विवाह योग्य होने पर) बत्तीस कन्याओं के साथ विवाह हुआ और उसे बत्तीस-बत्तीस प्रकार के दहेज प्राप्त हुए, उसके राज-महलों के ऊपर गायक उसके गुणों का गुण-गान करते रहते थे, वह ग्रीष्म वर्षा आदि छहों ऋतुओं सम्बन्धी मनचाहे मानवीय भोगों का उपभोग करते हुए अपना सुखमय जीवन व्यतीत कर रहा था ॥८॥

टोका—निषध कुमार के रूप लावण्य को देख कर भगवान् अरिष्टनेमि के गणधर वरदत्त मुनि ने निषध कुमार के पूर्व भव का परिचय पूछा—भगवान् ने कहा कि पूर्व भव में रोहितक नगर में महाबल नामक राजा था, उसकी रानी पद्मावती थी । उस रानी ने सिंह का स्वप्न देखा । उनके यहां वीरंगत (वीरंगद) नाम का कुमार उत्पन्न हुआ । उसका जीवन अवस्था में ३२ राजकन्याओं के साथ तत्कालीन बहु-पत्नी प्रथा के अनुसार विवाह हुआ ॥८॥

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं सिद्धत्था नाम आयरिया जाइ-
संपन्ना जहा केसी नवरं बहुस्सुया बहुपरिवारा जेणेव रोहीडिए नयरे
जेणेव मेहन्ने उज्जाणे जेणेव मणिदत्तस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव
उवागया, अहापडिरुवं जाव विहरति, परिस्ता निग्गया ॥६॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये सिद्धार्थो नाम आचार्यः जातिसम्पन्नाः यथा केशी, नवरं
बहुश्रुता बहुपरिवारा यत्रैव रोहितकं नगरं यत्रैव मेघवर्णमुद्यानं यत्रैव मणिदत्तस्य यक्षस्य यक्षायतनं
तत्रैवोपागतः, यथाप्रतिरूपं यावद् विहरति परिषद् निर्गता ॥६॥

पदार्थान्वयः—तेणं कालेणं तेणं समएणं—उस काल एवं उसी समय में, सिद्धत्था नाम
आयरिया जाइ संपन्ना—उच्च जातीय सिद्धार्थ नाम के आचार्य जहा केसी—जो कि मुनिराज
केशी के समान ही थे, नवरं बहुस्सुया बहुपरिवारा—इतना विशेष है कि वे बहुश्रुत एवं विशाल शिष्य-
परिवार वाले थे, जेणेव रोहीडिए नयरे—उसी रोहितक नाम के नगर में, मेहन्ने उज्जाणे—मेघ वर्ण
नामक उद्यान में, जेणेव मणिदत्तस्स जक्खस्स जक्खाययणे—जहां पर मणिदत्त नामक यक्ष का
यक्षायतन था, तेणेव उवागया—वहीं पर आ गए, अहापडिरुवं जाव विहरति—और उद्यान-
पालक से आज्ञा लेकर वे वहीं पर विचरने लगे। परिस्ता निग्गया—दर्शनार्थ एवं प्रवचन-श्रवणार्थ
श्रद्धालु नागरिकों की टोलियां उनका पावन सान्निध्य प्राप्त करने के लिये घरों से निकल पड़ीं ॥६॥

मूलार्थ—(वरदत्त !) उस काल एवं उसी समय में उच्च जातीय सिद्धार्थ नाम
के आचार्य जो कि मुनिराज केशी के समान थे, इतना विशेष है कि वे बहुश्रुत एवं
विशाल शिष्य-परिवार वाले थे, उसी रोहितक नाम के नगर में मेघवर्ण नामक उद्यान
में जहां पर मणिदत्त नामक के यक्ष का यक्षायतन था वहीं पर आ गए और उद्यान-
पालक से आज्ञा लेकर वे वहीं पर विचरने लगे। दर्शनार्थ एवं प्रवचन-श्रवणार्थ श्रद्धालु
नागरिकों की टोलियां उनका पावन सान्निध्य प्राप्त करने के लिये घरों से निकल
पड़ीं ॥६॥

टोका—प्रस्तुत सूत्र में रोहितक नगरी में आचार्य सिद्धार्थ के पधारने का वर्णन किया गया

है । वे आचार्य, भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य केजी की तरह बहुश्रुत एवं विशाल शिष्य परिवार वाले थे । उनका आगमन नगर के मेघवर्ण उद्यान में हुआ । जैन साधु को बिना आज्ञा लिए किसी स्थान पर ठहरना निषिद्ध है । इसीलिए आचार्य श्री सिद्धार्थ उद्यान पालक की आज्ञा लेकर ही वहां ठहरते हैं ॥६॥

मूल—तएणं तस्स वीरंगतस्स कुमारस्स उप्पि पासायवरगतस्स महया जणसहं च जहा जमाली निग्गओ धम्मं सोच्चा जं नवरं देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि, जहा जमाली तहेव निक्खंतो जाव अणगारे जाए जाव गुत्तबंभयारी । तए णं से वीरंगए अणगारे सिद्धत्थाणं आयरियाणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारसअंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जिता बहूइं जाव चउत्थ जाव अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णाइं पणयालीसवासाइं सामन्नपरियायं पाउणित्ता, दोमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सवीसं भत्तसयं अणसणाए छेदित्ता, आलोइयपडिक्कते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा बंभलोए कप्पे मणोरमे विमाणे देवत्ताए उववन्ने । तत्थणं अत्थेगइयाणं देवाणं दस सागरोवमा ठिई पणत्ता । तत्थणं वीरंगयस्स देवस्स वि दस सागरोवमा ठिई पणत्ता । से णं वीरंगए देव ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं जाव अणंतरं चयं चइत्ता इहेव बारवईए नयरीए बलदेवस्स रन्नो रेवईए देवीए कुच्छिसि पुत्तत्ताए उववन्ने । तएणं सा रेवई देवी तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सुमिणदंसणं जाव उप्पि पासायवरगए विहरइ । तं एवं खलु वरदत्त ! निसढेणं कुमारें अयमेयारूवा ओराला मणुयइड्ढी लद्धा—३ ।

पभू णं भंते । निसढे कुमारें देवाणुप्पियाणं अंतिए जाव पव्वइत्तए ? हुंता पभू । से एवं भंते ! इय वरदत्तो अणगारे जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥१०॥

छाया—ततः खलु तस्य वीरंगतस्य कुमारस्य उपरिप्रासादवरगतस्य तं महाजनशब्दं च, यथा जमालिनिर्गतो धर्मं श्रुत्वा यद् नवरं देवानुप्रियाः ? अम्बापितरौ आपृच्छामि यथा जमालिस्तथैव निष्क्रान्तो, यावद् अनगारो जातो यावद् गुप्तब्रह्मचारी । ततः खलु सः वीरंगतोऽनगारः सिद्धार्थनामा-
चार्याणामन्तिके सामायिकादीनि एकादशाङ्गानि अधीत्य बहूनि यावत् चतुर्थं० यावत् आत्मानं भावयन् बहुप्रतिपुर्णानि पञ्चचत्वारिंशद् वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालायित्वा द्वैमासिकया संलेखनया आत्मानं जोषित्वा सविशति भक्तशतमनशनेन छित्त्वा आलोचितप्रतिक्रान्तः समाधिप्राप्तः कालमासे कालं कृत्वा ब्रह्मलोके कल्पे मनोरमे विमाने देवतया उपपन्नः । तत्र खलु अस्त्येकेषां देवानां दशसागरो-
पमा स्थितिः प्रज्जप्ता । तत्र खलु वीरंगतस्य देवस्यापि दशसागरोपमा स्थितिः प्रज्जप्ता । स खलु वीरंगतो देवस्तस्माद् देवलोकात् आयु-क्षयेण यावद् अनन्तरं चयं च्युत्वा इहैव द्वाराव-यां नगर्या बलदेवस्य राज्ञो रेवत्या देव्याः कुम्भो पुत्रतपोपपन्नः । ततः खलु सा रेवती देवी तस्मिन् तादृशे शयनीये स्वप्न-
दर्शनं यावद् उपरि प्रासादवरगतो विहरति ।

तदेवं खलु वरदत्त ! निषधेन कुमारेण इयमेतद्रूपा उदारा मनुष्य ऋद्धिलब्धा ३ । प्रभो खलु भवन्त ! निषधः कुमारो देवानुप्रियाणामन्तिके यावत् प्रव्रजितुम् ? हन्त प्रभुः, स एवं भवन्त ! २ इति वरदत्तोऽनगारो यावदात्मानं भावयन् विहरति ॥१०॥

पदार्थावयवः—तएणं तस्स वीरंगतस्स कुमारस्स—तदनन्तर उस वीरंगत कुमार ने, उपरि प्रासाद-वरगतस्स—अपने राजमहल के ऊपर ही बैठे हुए, महया जणसद्दं च—जनता के महान् जय-घोषों आदि के शब्दों को सुना, जहा जमाली निगगओ, धम्मं सोच्छाणं नवरं—जमाली के समान वह वीरंगत कुमार भी आचार्य श्री सिद्धार्थ जी के दर्शनार्थ गया और उनसे धर्मोपदेश सुन कर, उन्हें वन्दना-नमस्कार कर निवेदन करने लगा, देवानुप्पिया ! अम्बापियरो आपृच्छामि—भगवन् ! मैं माता-पिता से पूछ कर आता हूँ, जहा जमाली तहेव—जैसे जमाली प्रव्रजित हुआ था वैसे ही, निक्खन्तो जाव अणगारे जाए—वह भी घर बार छोड़ कर और माता-पिता की आज्ञा लेकर उनके साथ आचार्य देव के पास आया और प्रव्रजित होकर अणगार (साधु), जाव गुत्ताबभयारी—और गुप्त ब्रह्मचारी बन गया, सिद्धत्थाणं आयरियाणं अंतिए—और सिद्धार्थ आचार्य श्री के पावन सान्निध्य में रह कर, समाइयमाइयाइं इक्कारस्स अंगाइं अहिज्जइ—वह सामायिक आदि ग्यारह ग्रंथ शास्त्रों का अध्ययन करता है, अहिज्जित्ता—(और) अध्ययन करके बहूहि जाव चउत्थ जाव अप्पाणं भावेमाणे—और अनेक वर्षों तक, चोला अठाई दस बारह आदि व्रतों के द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए, बहुपड्डिपुण्णाइं—परिपूर्ण, पणयालीस वासाइं—पैंतालीस वर्षों तक, सामण्य परियाणं पाउणिस्सा—श्रामण्य (साधुत्व) पर्याय का पालन करके, दोमासिए संलेहणाए—दो महीनों की संलेखना द्वारा, अत्ताणं भूसिस्सा—अपनी आत्मा को शुद्ध करके, सबीसं भत्तासब्बं—एक सौ बीस भोजनों का, अणसणाए छेइस्सा—अनशन (उपवास) तपस्या द्वारा छेदन करके, आलोइयपड्डिकन्ते—आलोचना एवं प्रतिक्रमण पूर्वक, समाहिपत्ते—समाधि पूर्वक, कालमासे कालं किच्चा—मृत्यु समय आने पर प्राणों का त्याग कर, बम्भलोए कल्पे—ब्रह्मलोके

नामक लोक के, मनोरमे विमाणे—मनोरम नाम के विमान में, देवास्ताए उगवन्ने—देवता के रूप में उत्पन्न हुआ, तत्थ णं अत्थंगइयाणं देवाणं—अनेक देवों की, दस सागरोवामाहं ठिई पणत्ता—दस सागरोपम की स्थिति कही गई है, तत्थ णं वीरंगतस्स देवस्स वि—वहां पर वीरंगत नाम के देव की, भी दस सागरोवामाहं ठिई पणत्ता—दस सागरोपम की स्थिति हुई ।

से णं वीरंगए देवे—जम्बू ! वह वीरंगत देव, ताओ देव लोगओ—उस ब्रह्मलोक नामक देवलोक से, आउवखए णं—देव-आयु के पूर्ण होने पर, जाव अनन्तरं चय चइत्ता—वहां से च्यवन करके, बारवाईए नयरीए—द्वारका नाम की नगरी में, बलदेवस्य रत्तो—राजा बलदेव को, रेवाईए देवीए—महारानी रेवती की, कुञ्चिसि—कोख से, पुत्ताए उगवन्ने—पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ है, तएणं सा रेवती देवी—(उसकी उत्पत्ति से पूर्व) वह रेवती देवी, तंसि तारिसंगं से सयणिज्जंसि—राजरानी के योग्य सुखद शय्या पर (सोती हुई), सुमिणदंसणं—स्वप्न में सिंह को देखती है, जाव उप्पि पासायवर गए (बिहरइ—यथा समय बालक का जन्म हुआ, क्रमशः उसने यौवन अवस्था प्राप्त की और बत्तीस राज-कन्याओं से उसका विवाह हुआ, तदनन्तर वह एक उत्तम राज-महल के ऊपर रहने लगा और सुखद जीवन व्यतीत करता रहा । एवं खलु वरदत्ता ! निसद्वेणं कुमारेणं—हे वरदत्त ! इस प्रकार उस निषध कुमार ने, अयमेयाकूवा ओराला मणुय-इड्ढी लद्धा—इस प्रकार की अत्युत्तम मानवीय जीवन के योग्य समृद्धियां प्राप्त की थीं ।

पमू णं भत्ते—(वरदत्त मुनि ने पुनः प्रश्न किया —) भगवन ! निसद्वे कुमारे देवाणुप्पियाणं अंतिए जावो पव्वाइत्तए—वह निषध कुमार क्या आप देवानुप्रिय के पास यावत् प्रव्रजित होने के लिये समर्थ है योग्य ? हं पमू—भगवान ने कहा—हां वरदत्त वह समर्थ है प्रव्रजित होगा ही से एवं भत्ते ! इय वरवत्ते अणगारे जाव अप्पाणं भावेमाणे बिहरइ—भगवन् ! (आप जो कहते हैं वह सत्य ही है) ऐसा कह कर वरदत्त अनगार अपनी आत्मा को तप-संयम से भावित करते हुए विचरने लगे ॥१०॥

मूलार्थ—तदनन्तर उस वीरंगत कुमार (वीरंगद) ने अपने राजमहल के ऊपर ही बैठे हुए जनता के महान् जयघोषों आदि के शब्दों को सुना, जमाली के समान वह वीरंगत कुमार भी आचार्य श्री के दर्शनार्थ गया और उनसे धर्मोपदेश सुनकर उन्हें वन्दना नमस्कार कर निवेदन करने लगा, भगवन् ! मैं माता-पिता से पूछ कर आता हूं, जैसे जमाली प्रव्रजित हुआ था वैसे ही वह भी घर-बार छोड़कर और माता-पिता की आज्ञा लेकर उनके साथ आचार्य देव के पास आया और प्रव्रजित होकर अणगार (साधु) और गुप्त ब्रह्मचारी बन गया तथा सिद्धार्थ आचार्य श्री के पावन सान्निध्य में रहकर वह सामायिक आदि ग्यारह अंग शास्त्रों का अध्ययन करता है (और) अध्ययन करके अनेक

वर्षों तक चौला उठाई, दस बारह आदि व्रतों के द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए पैंतालीस वर्षों तक श्रामण्य (साधुत्व) पर्याय का पालन करके दो महीनों की संलेखना द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध करके एक सौ बीस भोजनों का अनशन (उपवास) तपस्या द्वारा छेदन करके आलोचना एवं प्रतिक्रमण एवं समाधि-पूर्वक मृत्यु समय आने पर प्राण-त्याग कर ब्रह्मलोक नामक देवलोक में मनोरम नाम के विमान में देवता के रूप में उत्पन्न हुआ । वहां अनेक देवों की दस सागरोपम की स्थिति कही गई है, अतः वहां पर वीरंगत नाम के देव की स्थिति दस भी सागरोपम की हुई ।

जम्बू ! वह वीरंगत देव उस ब्रह्मलोक नामक देवलोक से, देव-आयु के पूर्ण होने पर वहां से च्यवन करके द्वारका नाम की नगरी में राजा बलदेव की महारानी रेवती देवी की कोख से पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ है (उसकी उत्पत्ति से पूर्व) वह रेवती देवी राजरानी के योग्य सुखद शय्या पर (सोती हुई) स्वप्न में सिंह को देखती है और यथासमय बालक का जन्म हुआ, कमशः उसने यौवन अवस्था प्राप्त की और बत्तीस राज-कन्याओं के साथ से उसका विवाह हुआ । तदनन्तर वह (एक उत्तम राज-महल के ऊपर रहने लगा) और सुखद जीवन व्यतीत करता रहा । हे वरदत्त ! इस प्रकार उस निषध कुमार ने इस प्रकार की अत्युत्तम मानवीय जीवन के योग्य समृद्धियां प्राप्त की थीं ।

(वरदत्तमुनि ने पुनः प्रश्न किया) भगवन् ! वह निषध कुमार क्या आप देवानुपिय के पास यावत् प्रव्रजित होने के लिये समर्थ है ? योग्य है ? भगवान् ने कहा - हां वरदत्त । वह समर्थ है (प्रव्रजित होगा ही), भगवन् ! (आप कहते हैं वह सत्य ही है) ऐसा कह कर वरदत्त अनन्तर अपनी आत्मा को तप-संयम से भावित करते हुए विचरने लगे ॥१०॥

टीका—प्रस्तुत प्रकरण में वीरंगत कुमार द्वारा धर्म उपदेश के श्रवणार्थ जा रही भीड़ के शोर वर्णन है, जिससे उस नगरी के लोगों की धर्म-प्रवृत्ति का पता चलता है । वीरंगत कुमार भी आचार्य श्री के उपदेश से साधु बन जाता है । साधु बनकर शास्त्रों का स्वाध्याय करता है । पैंतालीस वर्षों तक संयम पालन कर अन्तिम समय में दो मास की संलेखना द्वारा काल-धर्म को प्राप्त करता है । फिर देव रूप में जन्म लेता है । देव आयुष्य को पूरा कर राजा बलदेव की रानी रेवती के यहां पुत्र के रूप में उत्पन्न होता है ॥१०॥

मूल—तएणं अरहा अरिट्ठनेमी अण्णया कयाइं वारवईओ नयरीओ जाव बहिया जणवयविहारं विहरइ । निसढे कुमारे समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ । तएणं से निसढे कुमारे अण्णया कयाइं जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता जाव दब्ध-संथारोवगए विहरइ । तएणं निसढस्स कुमारस्स पुव्वरत्तावरत्तं धम्म-जागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए० धन्ना ण ते गामागर जाव संनिवेसा जत्थणं अरहा अरिट्ठनेमी विहरइ । धन्ना णं ते राई-सर जाव सत्थवाहप्पभईओ जे णं अरिट्ठनेमि वंदंति नमंसंति जाव पज्जुवासंति, जइ णं अरहा अरिट्ठनेमी पुव्वाणुपुव्वि० नंदणवणे विह रेज्जा तएणं अहं अरहं अरिट्ठनेमि वंदिज्जा जाव पज्जुवासिज्जा ।

तएणं अरहा अरिट्ठनेमी निसढस्स कुमारस्स अयमेयारूवं अज्झ-त्थियं जाव वियाणित्ता अट्ठारसहिं समणसहस्सेहिं जाव नंदणवणे उज्जाणे समोसढे । परिसा निग्गया ।

तएणं निसढे कुमारे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ चाउग्घटेणं आसरहेणं निग्गए, जहा जमाली, जाव अम्मापियरो आपुच्छित्ता पव्वइए, अणगारे जाए जाव० गुत्तबंभयारी । तएणं से निसढे अणगारे अरहतो अरिट्ठनेमिस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमायाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ अहिज्जित्ता बहूइं चउत्थछट्ठ जाव विचित्तेहिं तवो-कम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णाइं नव वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, बायालोसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, आलोइयपडिक्कंते सामा-हिपत्ते अणुपुव्वीए कालगए ॥११॥

छाया—तत्ता खनु अहं अरिट्ठनेमिरन्यदा कदाचित् द्वारावत्यां नगर्यां यावत् बहिर्जनपद-विहारं विहरति । निषयः कुमारः समणोपासको जातः, अभिगतजीवाजीवो यावद् विहरति । ततः

खलु स निषधः कुमारः अन्यथा कदाचित् यत्नं पोषधशाला तत्त्वोपागच्छति, उपागत्य यावद् धर्म-
संस्तारोपागतो विहरति । ततः खलु तस्य निषधस्य कुमारस्य पूर्वरात्रापररात्रकाले धर्मजागरिकां
जाग्रतोऽप्यमेतद्रूपः आध्यात्मिकः०—घन्याः खलु ते गामाकर यावत् सन्निवेशाः, यत्र खलु अहंन् अरिष्ट-
नेमिर्विहरति, घन्याः खलु ते राजेश्वर यावत् सार्थवाहप्रभृतिकाः, ये खलु अरिष्टनेमिं वन्दन्ते नमस्यन्ति
यावत्० पर्युपासते, यदि खलु अहंन् अरिष्टनेमिः पूर्वानुपूर्वी० नन्दनवने विहरेत् ततः खलु अहमहंन्त-
रिष्टनेमिं वन्देय नमस्येयं यावत् पर्युपासय । ततः खलु अहंन् अरिष्टनेमिः निषधस्य कुमारस्य इममेत-
द्रूपमाध्यात्मिकं यावद् विज्ञाय अष्टादशभिः श्रमणसहस्रयावद् नन्दनवने उद्याने समवसूत, परिषद्
निर्गता । ततः खलु निषधः कुमारः अस्या कथाया लब्धायः सन् हृष्टः चातुर्घण्टेन अश्वरथेन यावद्
निर्गतः यथा जमालिः यावद् अम्बापितरो अपृच्छय प्रव्रजितः, अनगारो जातो यावद् गुप्तब्रह्मचारी ।

ततः खलु स निषधोऽनगारः अहंतोरिष्टनेमेस्तथारूपाणां स्थविराणामन्तिके सामायिकादीनि
एकादशाङ्गानि अधीते, अधीत्य बहूनि चतुर्थं षष्ठं यावद् तपःकर्मभिरात्मानं भावयन् बहुप्रतिपूर्णाणि
नव वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयति, चत्वारिंशद् भक्तानि अनशनंन छिनत्ति, आलोचितप्रतिक्रान्तः
समाधिप्राप्तः आनुपूर्व्या कालगतः ॥११॥

पदार्थान्वयः—तएण अरहा अरिष्टनेमी—तदनन्तर किसी समय अरिहन्त प्रभु श्री अरिष्टनेमी
जी, अण्णया कयाइं—एक बार, वारवईओ नयरीओ जाव बहिया—द्वारका नगरी से बाहर,
जणवयविहारं विहरइ—अनेक प्रदेशों में विचरण करने लगे । निसढे कुमारे समणावासए जाए—
निषध कुमार श्रमणोपासक बन कर, अभिगयजीवावीवे—जीव-अजीव आदि तत्त्वों को जान कर,
जाव विहरई—विचरते रहते थे, तएणं से निसढे कुमारे—तदनन्तर श्रमणोपासक निषध कुमार,
अण्णया कयाइं—एक समय, जेणेव पोसहसाला—जहां पर पोषधशाला थी, तेणेव उवागच्छइ—वहीं
पर आता है, उवागच्छिता—और वहां आकर, ज व दब्भसंथारोवगए विहरइ—कुशा के आसन
पर बैठकर (धर्मध्यान करते हुए) समय व्यतीत करने लगे, तएणं निसढस्स कुमारस्स—तदनन्तर
निषध कुमार, पुव्वरत्तावरत्तं० धम्म-जागरियं जागरमाणस्स—रात्रि के अन्तिम प्रहर में धर्म-
जागरण करके जागते हुए, इमेयारुवे अज्झस्थिए०—इस प्रकार का धार्मिक संकल्प (उसके मन में)
उत्पन्न हुआ कि, घन्ना णं ते गामागर जाव सन्निवेशा—वे ग्रामों, आकरों एवं सन्निवेशों के निवासी
घन्य हैं, जत्थणं अरहा अरिष्टनेमी विहरइ—जहां पर अरिहन्त प्रभु अरिष्टनेमी विचरण कर रहे
हैं, घन्ना णं ते राईसर जाव सत्थवाहूपभईओ जे णं अरिष्टनेमिं वंदंति नमंसंति—घन्य हैं वे राजा
ईश्वर एवं सार्थवाह आदि जो भगवान् श्री अरिष्टनेमी जी को वन्दना नमस्कार करते हैं, जाव
पज्जुवासंति—और उनकी सेवा-भक्ति करते हैं, जइ णं अरहा अरिष्टनेमी पुव्वानुपूर्वि० नंदनवने
विहरेज्जा—यदि अरिहन्त प्रभु अरिष्टनेमी जी ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए द्वारका नगरी के
नन्दन वन में आकर विहरण करें, तएणं अहं अरहं अरिष्टनेमिं वविज्जा जाव पज्जुवासिज्जा—तब

मैं भी भगवान श्री अरिष्टनेमी जी को नमस्कार कर उनकी सेवा करूँ, तएणं अरहा अरिष्ट-
नेमी—तदनन्तर अरिहन्त प्रभु श्री अरिष्टनेमी जी, निसदहस कुमारस अयमेयारुवं अउमस्थियं
जाव विगणित्ता—उस निषध कुमार के अन्तःकरण में उठे आध्यात्मिक भाव को जा कर,
अट्ठारसहिं समणसहस्सेहिं—अठारह हजार श्रमणों के साथ, जाव नंदनवणे उज्जाने समोसहे—
उम नन्दन वन उद्यान में पधारे, परिसा निगगथा—श्रद्धालु श्रावक उनके दर्शनों एवं प्रवचनों को
सुनने के लिये अपने-अपने घरों से निकल पड़े ।

तएणं निसदहे कुमारे इमीसे कहाए लुद्धट्ठे समाणे—निषध कुमार भगवान के आगमन की
सूचना प्राप्त करते ही, हट्ठ०—अत्यन्त प्रसन्न हो गए, चाउग्घण्टेण आसरहेणं निगगए—(और
वे भी) चार घण्टों वाले अश्व-रथ पर चढ़कर भगवान के सान्निध्य में पहुँचने के लिये महल से
निकल पड़े, जहा जमाली—टीक वैसे ही जैसे जमाली घर से निकले थे, जाव अम्मापियरो
आपुच्छित्ता—और वे भी माता-पिता से पूछ कर (उनकी आज्ञा लेकर), पम्बइए—प्रव्रजित हो
गए, अणगारे जाए जाव गुत्तबभयारी—और वे गुप्त ब्रह्मचारी बन गए ।

तएणं—तदनन्तर, से निसदहे अणगारे—वे अणगार निषध कुमार, अरहतो अरिष्टनेमिस्थ
तहारुवाणं थेराणं अंतिए—अर्हत श्री अरिष्टनेमी जी के तथा रूप स्थविरों के पास, सामाइय-
माइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिउजइ—(रहते हुए उनसे) सामायिक आदि ग्यारह अंग शास्त्रों
का अध्ययन करते हैं, (और), अहिउजित्ता—अध्ययन करके, बहूइ चउत्पछट्ठ जाव विचित्तेहिं
तवोक्कम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे—बहुत प्रकार के चतुर्थ भक्त षष्ठ भक्त आदि विचित्र (अद्वितीय)
तप रूप कर्मों द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए, बहूपडिपुण्णाइं नव वासाइं—परिपूर्ण
नौ वर्षों तक, सामणपरिगामं पाउणइ—श्रामण (साधुत्व) पययि का पालन करते हैं, (और अब
वे), बायालीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ—बयालीस भक्तों (भोजनों) का उपवास तपस्या द्वारा
छेदन कर देते हैं, आलोइयपडिक्कते—पापस्थानों की आलोचना एवं प्रतिक्रमण करते हैं,
(और) समाहिपत्ते—समाधि पूर्वक, आणुपुव्वीए कालगए—क्रमशः मृत्यु को प्राप्त हुए ॥११॥

मूलार्थ तदनन्तर किसी समय अरिहन्त प्रभु श्री अरिष्टनेमी जी एक बार द्वारका
नगरी से बाहर अनेक प्रदेशों में विचरण करने लगे उस समय निषध कुमार श्रमणो-
पासक बन कर जीव-अजीव आदि तत्त्वों को जान कर विचरते रहते थे । तदनन्तर
श्रमणोपासक निषध कुमार एक समय जहाँ पर पौषधशाला थी, वहीं पर आते हैं और
वहाँ आकर कुशा के आसन पर बैठकर (धर्म-ध्यान करते हुए) समय व्यतीत करने लगे ।
तदनन्तर निषध कुमार के मन में रात्रि के अन्तिम प्रहर में धर्म-जागरण करके जागते
हुए इस प्रकार का धार्मिक संकल्प उत्पन्न हुआ, कि वे ग्रामों, आकरों एवं संनिवेशों

के निवासी धन्य हैं—जहां पर अरिहन्त प्रभु श्री अरिष्टनेमी विचरण करते हैं धन्य है वे राजा ईश्वर एवं सार्थवाह आदि, जो भगवान श्री अरिष्टनेमी जी को वन्दना-नमस्कार करते हैं और उनकी सेवा-भक्ति करते हैं । यदि अरिहन्त प्रभु अरिष्टनेमी जी ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए द्वारका नगरी के नन्दन वन में आकर विहरण करें, तब मैं भी भगवान श्री अरिष्टनेमी जी को नमस्कार कर उनकी सेवा करूँ । तदनन्तर अरिहन्त प्रभु श्री अरिष्टनेमी जी उस निषध कुमार के अन्तःकरण में उठे आध्यात्मिक भाव को जान कर अठारह हजार श्रमणों के साथ उस नन्दन वन उद्यान में पधारे, श्रद्धालु श्रावक उनके दर्शनों एवं प्रवचनों को सुनने के लिये अपने-अपने घरों से निकल पड़े ।

निषध कुमार भगवान के आगमन की सूचना प्राप्त करते ही प्रसन्न हो गए, (और वे भी) चार घण्टों वाले अश्व-रथ पर चढ़ कर भगवान के सान्निध्य में पहुंचने के लिये महल से निकल पड़े, ठीक वैसे ही जैसे जमाली घर से निकले थे, और वे भी माता-पिता से पूछ कर (उनकी आज्ञा लेकर) प्रव्रजित हो गए और वे गुप्त ब्रह्मचारो बन गए ।

तदनन्तर वे अणगार निषध कुमार अहन्त श्री अरिष्टनेमी जी के तथारूप स्थविरों के पास (रहते हुए उनसे) सामायिक आदि ग्यारह अंग शास्त्रों का अध्ययन करते हैं (और) अध्ययन करके बहुत प्रकार के चतुर्थ भक्त, षष्ठ भक्त आदि विचित्र (अद्वितीय) तप-रूप कर्मों द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए परिपूर्ण नौ वर्षों तक श्रामण्य-[साधुत्व] पर्याय का पालन करते हैं [और अब वे] बयालीस भक्तों [भोजनों] का उपवास तपस्या द्वारा छेदन कर देते हैं, पाप स्थानों की आलोचना एवं प्रतिक्रमण करते हैं, और वे समाधि-पूर्वक क्रमशः मृत्यु को प्राप्त हुए ॥११॥

मूल—-तएणं से वरदत्ते अणगारे निसढं अणगारं कालगतं जाणित्ता जेणेव अरहा अरिष्टनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी निसढे नामं अणगारे पंगइ-

भट्टए जाव विणीए, से णं भंते ! निसढे अणगारे कालमासे कालं किच्चा कंहि गए ? कंहि उववन्ने ? वरवत्ताइ ! अरहा अरिट्ठनेमी वरदत्तं अणगारं एवं वयासी—एवं खलु वरदत्ता । ममं अंत्येवासी निसढे नामं अणगारे पगइ भट्टे जाव विणीए ममं तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइय-माइयाइं एक्कारम अंगाइं अहिज्जिता बहुपडिपुण्णाइं नववासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता बायालीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते सामाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चदिमसूरियगह-नक्खत्ततारारूवाणं सोहम्मोसाणं जाव अच्चते तिण्णि य अट्ठारसुत्तरे गेविज्जविमाणावाससए वोहवयित्ता सव्वट्ठसिद्धविमाणे देवत्ताए उव-वण्ण । तत्थ णं देवाणं तेत्तीसं सागरोवमा ठिई पण्णत्ता । तत्थ णं निसढस्स वि देवस्स तेत्तीस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता ॥१२॥

छाया—ततः खलु स वरदत्तोऽनगारो निषधमनगारं कालगतं ज्ञात्वा यत्रैव अर्हन् अरिष्ट-नेमिस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य यावद् एवमवादीत्—एवं खलु देवानुप्रियाणामन्तेवासी निषधो नाम अनगारः प्रकृतिभद्रो यावद् विनीतः । स खलु भवन्त ! निषधोऽनगारः कालमासे कालं कृत्वा क्व गतः ? क्व उपपन्नः ? वरदत्त ! इति अर्हन् अरिष्टनेमि वरदत्तमनगारमेववादीत्—एवं खलु वरदत्त ! ममान्तेवासी निषधो नाम अनगारः प्रकृतिभद्रो यावद् विनीतो मम तथारूपाणां स्थविराणामन्तिके सामायिकादीनि एकादशाङ्गानि अधीत्य बहुप्रतिपूर्णाणि नव वर्षाणि भ्रामण्यपर्यायं पालयित्वा द्वित्रत्वारिंशद् भक्तानि अनशनेन छित्वा आलोचितप्रतिक्रान्तः समधिप्राप्तः कालमासे कालं कृत्वा ऊर्ध्वं चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र-तारारूपाणां सौधमैशान० यावद् अच्युतं त्रीणि च अष्टादशोत्तराणि गेवेयक-विमानावासशतानि व्यतिवर्त्य सर्वार्थसिद्धविमाने देवत्वेभ्योपपन्नः । तत्र खलु देवानां त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमा स्थितिः प्रज्ञप्ता । तत्र खलु निषधस्यापि देवस्य त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता ॥१२॥

पदार्थान्वयः—तएणं से वरवत्ते अनगारे—तदनन्तर अनगार वरदत्त, निसढं अणगारं कालगतं जाणित्ता—निषध अनगार को कालगत हुआ जानकर, जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी—जहाँ पर अर्हत् भगवान् अरिष्टनेमी विराजमान थे, तेणेव उवागच्छइ—वहीं पर आते हैं, उवागच्छित्ता—वहाँ

आकर, जाव एवं बयासी—हाथ जोड़कर इस प्रकार निवेदन किया, एवं खलु देवानुपियाणं अतेवासी निसढे नाम अणगारे—भगवन् ! आपके प्रिय शिष्य निषध अनगार, पगइभद्दे—जो कि प्रकृति से अत्यन्त भद्र थे, जाव विणीए—और जो अत्यन्त विनीत थे, से णं भन्ते ! निसधे अणगारे—भगवन वे निषध अनगार, कालमासे कालं किच्चा कहि गए—वे कालमास में काल करके कहां गए ?, कहि उवबन्ने—कहां उत्पन्न हुए हैं ?, वरदत्तइ ! अरहा अरिष्टनेमी वरदत्तं अणगारं एवं बयासी एवं खलु वरदत्त—भगवान् अरिष्टनेमी जी ने “वरदत्त” यह सम्बोधन कर उससे कहा—आयुष्मन् वरदत्त, मम अतेवासी निसढे नाम अणगारे पगइभद्दे—प्रकृति से भद्र मेरे प्रिय शिष्य निषध कुमार, जाव विणीए—जो कि अत्यन्त विनीत थे, मम तहा रुवाणं थेराणं अन्तिए—मेरे तथारूप स्थविर सन्तों के, सामाइय माइयाइ एक्कारस अंगाहं अहिज्जिता—सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करके, बहुपडिपुणाइ—प्रतिपूर्ण, नववासाइ—नौ वर्षों तक, सामण्य-परियाणं पाउणित्ता बायालीस पाउणित्ता—श्रामण्य पर्याय (साधुत्व) पालन करके, बायालीस भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता—बयालीस भक्तों (प्रातः-सायं के भोजनों) का उपवास व्रत द्वारा छेदन करके, आलोइय पडिक्कंते—पाप स्थानों की आलोचना एवं प्रतिक्रमण करते हुए, समाहिपत्ते—समाधि पूर्वक, कालमासे कालं किच्चा—मृत्यु का समय आने पर प्राणों को त्याग कर, उड्ढं च्चिम-सूरिय-गह-नक्खत्त-ताराख्खाणं—ऊर्ध्व लोक में चन्द्र-सूर्य ग्रह नक्षत्र एवं तारा रूप ज्योतिष्क देव विमानों, सोहम्मीसाणं जाव अच्युते—सोघर्म ईशान आदि अच्युत देवलोकों का, तिण्णि य अट्ठारसुत्तरे गेविज्जविमाणावासए बोह्वयित्ता—तथा तीन सौ अठारह ग्रैव्यक विमानों का अतिक्रमण करके, सज्जट्ठ-सिद्ध-विमाणे—सर्वार्थ-सिद्ध विमान में, देवत्ताए उववण्णे—देवता के रूप में उत्पन्न हुआ है, तत्थ णं देवाणं तेत्तीस सागरोदमा ठिई पण्णत्ता—वहां पर उत्पन्न देवों की तैंतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है, (अतः निषध देव की भी वहां पर तैंतीस सागरोपम की स्थिति है) ॥१२॥

मूलार्थ—तदनन्तर वरदत्त अनगार, निषध अनगार को कालगत हुआ जान कर जहाँ पर अर्हत् भगवान् अरिष्टनेमी विराजमान थे, वहीं पर आते हैं वहां आकर (उन्होंने) हाथ जोड़ कर इस प्रकार निवेदन किया—भगवन् ! आपके प्रिय शिष्य निषध अनगार जो कि प्रकृति से अत्यन्त भद्र थे और जो अत्यन्त विनीत थे । भगवन वे निषध अनगार काल मास में काल करके कहां गए हैं ? कहां उत्पन्न हुए हैं ? भगवान् अरिष्टनेमी जी ने “वरदत्त” यह सम्बोधन कर उससे कहा—प्रकृति से भद्र मेरे प्रिय शिष्य निषध कुमार जो कि अत्यन्त विनीत थे, मेरे तथारूप स्थविर सन्तों से सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करके नौ वर्षों तक श्रामण्य - पर्याय (साधुत्व) का पालन करके

बयालीस भक्तों (प्रातः-सायं के भोजनों) का उवास व्रत द्वारा छेदन करके पाप-स्थानों को आलोचना एवं प्रतिक्रमण करते हुए, समाधि-पूर्वक मृत्यु का समय आने पर प्राणों को त्याग कर ऊर्ध्व लोक में चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र एवं तारा रूप ज्योतिष्क देव विमानों सौधर्म ईशान आदि अच्युत देवलोको तथा तीन सौ अठारह ग्रैवेयक विमानों का अतिक्रमण करके सर्वार्थ सिद्ध विमान में देवता के रूप में उत्पन्न हुआ है । वहां पर उत्पन्न देवों की तैंतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है (अतः निषध देव की भा वहां पर तैंतीस सागरोपम की स्थिति है) । १२॥

टीका—निषध कुमार अनेक वर्षों तक श्रावक-धर्म का पालन करता है फिर माता-पिता की आज्ञा से भगवान् अरिष्टनेमि से प्रव्रज्या ग्रहण करता है । अन्तिम समय में समाधि-मरण धारण करता है । भगवान् अरिष्टनेमि उसके सर्वार्थ-सिद्ध नमक देव-लोक में पैदा होने को भविष्य-वाणी करते हैं, जहां उनकी आयु ३३ सागरोपम है ॥१२॥

मूल—से णं भंते ! निसढे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भव-
क्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उव-
वज्जिहि ? वरदत्ता ! इहेव जंबूद्वीवे दीवे महाविदेहे वासे उन्नाए नयरे
विसुद्धपिइवंसे रायकुले पुत्तात्ताए पच्चायाहिइ, तएण से उम्मुक्कबाल-
भावे विण्णयपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते तहारूवाणं थेराणं अंतिए
केवलबोहिं बुज्झिहिइ, बुज्झित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वज्जिहिइ ।
से णं तत्थ अणगारे भविस्सइ इरियासमिए जाव गुत्ताबंभयारी । से णं
तत्थ बहुइं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम दुवालसंहिं मासद्धमासखमणेहिं विचि-
त्तोहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहुइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउ-
णिस्सइ, पाउणिता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसिहिइ, झूसित्ता
सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदिहिइ । जस्सट्ठाए कोरइ णग्गभावे मुंड-
भावे अण्हाणए जाव अबंतवणए अच्छत्ताए अणीवाहणए फलहसेज्जा कट्ठ-

सेज्जा केसलोए बंभचेरवासे परघरपवेसे पिंडवाओ लद्धावलद्धे उच्चा-
वया य गामकंटया अहियासिज्जइ, तमट्ठं आराहिइ, आराहिता, चरि-
मेहि उस्सासनिस्सासेहिं सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ जाव सव्वदुक्खाणं अंतं
काहिइ ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सपत्तेणं जाव
निक्खेवओ ॥१३॥

पढमं अज्झयणं समत्तं ॥१॥

छाया—स खलु भवन्त ! निषधो देवस्तस्माद् देवलोकाद् आयु-क्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण
अनन्तरं चर्यं च्युत्वा क्व गमिष्यति ? क्व उपपत्स्यते ? वरदत्त ! इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहे वर्षे
उन्नाते नगरे विशुद्धपितृवशे राजकुले पुत्रतया प्रत्यायास्यति । ततः खलु स उन्मुक्तबालभावः विज्ञात-
परिणतमात्रः यौवनक्रममनुप्राप्तः तथारूपाणं स्थविराणामन्तिके केवलबोधिं बद्ध्वा अगाराद् अन-
गारतं प्रव्रजिष्यति । स खलु तत्राऽनगारो भविष्यति, ईर्यामिमितो यावद् गुप्तब्रह्मचारी । स खलु तत्र
बहूनि चतुर्थषष्ठ्याष्टम-दशमद्वादशैर्मासाद्विमासक्षणैः विचित्रैः तपःकर्म्मभिरात्मानं भावयन् बहूनि वर्षाणि
श्रमणप्रपर्यायं पालयिष्यति, पालयित्वा मासिक्या सलेखनया आत्मानं जोषयिष्यति, जोषयि चा षष्ठि
भक्तानि अनशनेन ह्येत्स्यति । यस्यार्थः क्रियते नभ्रभावो, मुण्डभावो, अस्नानको, यावद् अदभ्यवर्णकः,
अच्छन्नकः, अनुपानत्कः, कलकशय्या, काष्ठशय्या, केशलोचो ब्रह्मचर्यवासाः, परगृहप्रवेशः, पिण्डपातः,
लब्धापलब्धः, उच्चवाक्चाश्च ग्रामकण्टका अध्यास्यन्ते, तमर्थमाराधयिष्यति, आराध्य चरमेच्छवासे-
—निःश्वासेः सेत्स्यति भोसेत्स्यति, यावत् सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति । एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन
भगवता महावीरेण यावत्संप्राप्तेन् यावत् निक्षेपकः ॥१३॥

॥ प्रथममध्ययनं समाप्तम् ॥ १ ॥

पदार्थान्वयः—से णं भन्ते निसिद्धे देवे—तदनन्तरं अनगार वरदत्त ने पुनः प्रश्न किया कि
भगवन् !, निसिद्धे देवे ताओ देवलोकाओ—वह निषध देव उस देवलोक में, आउवखएणं भवखएणं
ठिइवखएणं—निषध देव आयु-क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय होने के पश्चात्, अणंतरं चर्यं चइत्ता
कहिं गच्छिहिइ ?—वहां से च्यवन करके कहां जाएगा ?, कहिं उववज्जिहिइ—कहां उत्पन्न होगा ।

वरदत्ता ।—(भगवान् अरिष्टनेमि जी ने कहा—) वरदत्त !, इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे महा-
विदेहेवासे उन्नाए नयरे—वह इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के विदेहक्षेत्र के उन्नति (उन्नाक) नामक
नगर में, विशुद्धपितृवंसे—विशुद्ध-पितृ-वंश में, रायकुले पुत्ताए पच्चायाहिइ—एक राज कुल में
पुत्र के रूप में लोटेगा (उत्पन्न होगा), तएणं से उन्मुक्कबालभावे—तब वह बाल्यवस्था बीत जाने

पर, विष्णु-पणिप्रमिते—समझदार होकर, जोध्वनयमण्युपत्ते—युवावस्था को प्राप्त होकर, तहारुवाण थेराणं अन्ति—तथा रूप स्थविरो द्वारा, केवल-बोधि बुजिहि—केवल-बोधि अर्थात् सम्यक् ज्ञान का ज्ञाता बनेगा, बुद्धिस्ता—ज्ञान प्राप्त करके, अगाराओ अणगाणियं पव्वजिहि—गृहस्थ जीवन को छोड़कर अनगार जीवन स्वीकार करेगा, से ण तत्थ अणगारे भविस्सइ—जब वह अनगार बन जाएगा तो, इरियासमिं जाव गुत्तबभयारी—ईर्यासमिति आदि का पालन करते हुए पूर्ण ब्रह्मचारी बन जाएगा, से ण तत्थ बहूइ चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसमवदुलसेहि—तब वह वहाँ पर चतुर्थ, षष्ठम, दशम द्वादश आदि उपवासों द्वारा, मासद्धमासखमणेहि—मासार्थ एवं मासखमण रूप, विचित्तेहि तवो कम्मोहि—विचित्र (अद्वितीय) तपस्याओं द्वारा, अप्पाणं भावेमाणे—अपनी आत्मा को भावित करते हुए, बहूइ वासाइं—बहुत वर्षों तक, सामण्य-परियास पाउ-णिस्सइ—श्रमण-पर्याय का पालन करेगा, पाउणिस्ता मासिद्याए संलेहणाए अत्ताणं—श्रमण-पर्याय का पालन करके वह एक मास की संलेखना द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध करेगा, भूसिहिइ भूसिस्ता सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदिहिइ—अपनी आत्म-शुद्धि करके (साठ समयों के) भोजनों का उपवास तपस्या द्वारा छेदन करेगा, जस्सट्ठाए कीरइ—वह जिस मोक्ष रूप प्रयोजन की सिद्धि के लिये अनगार साधु, णगभावे—नग्न भाव (नग्नता), मुंडभावे—द्रव्य भाव से मुण्डित होगा, अण्हाणए—स्नान न करना, जाव अदंतवणाए—अंगुली अथवा दातुन आदि से दांतों को साफ करना, अच्छत्ताए—छत्र धारण न करना, अणोवाहणए—जूते चप्पल आदि का त्याग करना, फलहसेज्जा—पाट पर सोना, कट्ठसेज्जा—काष्ठ-तृण आदि पर शयन करना, केसलोए—केशलोच, बभचेरवासे—ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्ण रूप से पालन करना, परघरपवेसे—दूसरों के घरों में भिक्षार्थ प्रवेश करना, पिडवाओ—यथा प्राप्त भिक्षा से निर्वाह करना, लद्धावलद्धे—लाभ-अलाभ में समता रखना, उच्चवायया य गामकंटया अहिया सिज्जइ—ऊँच नीच अर्थात् अच्छे या बुरे शब्दों द्वारा होनेवाले ग्राम कंटकों अर्थात् अनजान ग्रामीणों के द्वारा दिये जानेवाले कष्टों को सहन करना, तमट्ठं आराहिइ—इत्यादि नियमों की आराधना करेगा, आराहिस्ता—आराधना करके, चरिमेहि उस्सास-निस्सासेहि—अन्तिम इवास-प्रश्वासों में अर्थात् जीवन के अन्तिम क्षणों में वह, सिज्जिहिइ-बुज्जिहिइ—सिद्ध-बुद्ध हो जाएगा, जाव सब्बदुख्खाणं अंतं काहिइ—जीवन-मरण सम्बन्धी सभी दुःखों का वह अन्त कर देगा।

एवं खलु जम्बू—(सुधर्मा स्वामी कहते हैं) वत्स जम्बू !, समणेणं भगवया महावीरेण—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जी ने, जाव संपत्तेणं—जो मुक्त हो चुके हैं उन्होंने, जाव निक्खेवओ—वृष्णिदशा नामक इस प्रथम अध्ययन का उपर्युक्त भाव फरमाया है ॥१३॥

मूलार्थ—तदनन्तर अनगार वरदत्त ने पुनः प्रश्न किया कि—भगवन् ! वह निषध देव उस देवलोक से आयुक्षय, भवक्षय और स्थिति-क्षय होने के पश्चात्

वहां से च्यवन करके कहां जाएगा ? कहां उत्पन्न होगा ?

(भगवान् अरिष्टनेमि जी ने कहा—) वह इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महा-विदेह क्षेत्र के उन्नात (उन्नाक) नामक नगर में विशुद्ध पितृ-वंश में एक राज-कुल में पुत्र के रूप में लौटेगा (उत्पन्न होगा), तब वह बाल्यावस्था बीत जाने पर समझदार होकर युवावस्था को प्राप्त होकर तथा रूप स्थविरो द्वारा केवल-बोधि अर्थात् सम्यक् ज्ञान का ज्ञाता बनेगा । ज्ञान प्राप्त करके गृहस्थ जीवन को छोड़ कर यह अनगार जीवन स्वीकार करेगा, जब वह अनगार बन जायेगा तो ईर्या-समिति आदि का पालन करते हुए पूर्ण ब्रह्मचारी बन जाएगा । तब वह वहां पर चतुर्थ षष्ठम, दशम, द्वादश आदि उपवासों द्वारा मासार्ध एवं मासखमण रूप विचित्र (अद्वितीय) तपस्याओं द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन करेगा, श्रमण-पर्याय का पालन करके वह एक मास की संलेखना द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध करेगा, अपनी आत्म-शुद्धि करके (साठ समयों के) भोजनों का उपवास तपस्या द्वारा छेदन करेगा, जिस मोक्ष रूप प्रयोजन की सिद्धि के लिये अनगार साधु नग्न - भाव (नग्नता) द्रव्य भाव से मुण्डित होना, स्नान न करना, अंगुली अथवा दातुन आदि से दान्तों को साफ करना, छत्र धारण न करना, जूते चप्पल आदि का त्याग करना, पाट पर सोना, काष्ठ-तृण आदि पर शयन करना, केशलोच, ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्ण रूप से पालन करना; दूसरों के घरों में भिक्षार्थ प्रवेश करना, तथा प्राप्त भिक्षा मात्र से निर्वाह करना, लाभ-अलाभ में समता रखना, ऊँच नीच अर्थात् अच्छे या बुरे शब्दों द्वारा होने वाले ग्राम-कंटकों अर्थात् अनजान ग्रामीणों के द्वारा दिये जानेवाले कष्टों को सहन करना इत्यादि नियमों की आराधना करेगा, आराधना करके अन्तिम श्वास-प्रश्वासें में अर्थात् जीवन के अन्तिम क्षणों में वह सिद्ध-बुद्ध हो जाएगा, और जीवन-मरण सम्बन्धी सभी दुःखों का अन्त कर देगा ।

(सुधर्मा स्वामी कहते हैं—) वत्स जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जी ने जो मुक्त हो चुके हैं, उन्होंने वृष्णिदशा नामक इस प्रथम अध्ययन का उपर्युक्त भाव फरमाया है ॥१३॥

मूल—एवं सेसा वि एक्कारस अज्झयणा नेयव्वा संगहणीअणुसारेण,
अहीणमइरित्त एक्कारससु वि । त्तिबेमि ॥१४॥

॥ बारस अज्झयणा समत्ता ॥

॥ वह्निदसा नामं पंचमो वर्गो समत्तो ॥ ५ ॥

॥ निरयावलिका सुयक्खंधो समत्तो ॥

॥ समत्ताणि उवंगाणि ॥ १४ ॥

छाया—एवं शेषाप्यपि एकादशाध्ययनानि ज्ञेयानि संग्रह्यनुसारेण, अहीनाऽतिरिक्तम्
एकादशस्वपि । इति ब्रवीमि ॥ ३ ॥

॥ द्वादशाध्ययनानि समाप्तानि ॥ १४ ॥

॥ वृष्णिदशानामा पञ्चमोवर्गः समाप्तः ॥ ५ ॥

॥ निरयावलिकाश्रुतस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ समाप्तानि उपाङ्गानि ॥

पदार्थान्वयः—एवं सेसा वि एक्कारस अज्झयणा नेयव्वा—इसी प्रकार शेष ग्यारह अध्ययनों का भी, संगहणी अणुसारेण—संग्रहणी गाथा के अनुसार, अहीणमइरित्त—न्यूनाधिक भाव से रहित, एक्कारससु वि । त्तिबेमि—शेष ग्यारह अध्ययनों का वर्णन भी जानना चाहिए, जम्बू । जैसा मैंने भगवान से सुना है वही कहा है ।

॥ वह्निदशा नामक पंचम वर्ग समाप्त ॥

मूलार्थ—इसी प्रकार शेष ग्यारह अध्ययनों का भी संग्रहणी गाथा के अनुसार न्यूनाधिक भाव से रहित शेष ग्यारह अध्ययनों का वर्णन भी जानना चाहिए । जम्बू । जैसा मैंने भगवान से सुना वैसा ही मैंने कहा है ॥१४॥

मूल—निरयावलिया-उवंगे णं एणो सुयक्खंधो, पंच वर्गा, पंचसु

दिवसेषु उद्दिशन्ति, तत्थ चउसु वग्गेसु दस दस उद्देशगा, पंचमवग्गे
बारस उद्देशगा ॥१५॥

॥ निरयावलियांसुत्तं समत्तं ॥

छाया—निरयावलिकोपाङ्गे खलु एकः श्रुतस्कन्धः, पञ्च वर्गाः, पञ्चसु दिवसेषु उद्दिश्यन्ते,
तत्र चतुर्षु वर्गेषु दश दश उद्देशकाः, पञ्चमवर्गे द्वाविंशोद्देशकाः ॥१५॥

॥ इति निरयावलिकासूत्रं समाप्तम् ॥

पदार्थान्वयः—निरयावलिद्या उच्यते णं—निरयावलिका नामक उपाङ्ग में, एगो सुयस्कन्धो—
एक ही श्रुतस्कन्ध है, पंच वर्गो—पांच वर्ग हैं, पंचसु दिवसेषु उद्दिशन्ति—इसका पांच दिनों में
निरूपण किया जाता है, तत्थ चउसु वग्गेसु—यहाँ पहले चार वर्गों में, दस दस उद्देशगा—दस-
दस उद्देशक हैं, पंचमवग्गे बारस उद्देशगा—पांचवें वर्ग में बारह उद्देशक हैं ॥१५॥

मूलार्थ—निरयावलिका नामक उपाङ्ग में एक ही श्रुतस्कन्ध है, पांच वर्ग हैं,
इसका पांच दिनों में निरूपण किया जाता है यहाँ पहले चार वर्गों में दस-दस उद्देशक
हैं, पांचवें वर्ग में बारह उद्देशक हैं ॥१५॥

टीका—प्रस्तुत सूत्र में भगवान् अरिष्टनेमि जी द्वारा महाविदेह क्षेत्र से निषध कुमार द्वारा
दीक्षा ग्रहण कर मोक्ष जाने का वर्णन है। शेष अध्ययनों का अर्थ निषध कुमार की तरह समझना
चाहिए। संग्रहणी गाथा उपलब्ध नहीं है।

॥ निरयावलिका सूत्र समाप्त ॥



श्रीचन्द्रसूरिविरचिता श्री निरयावलिका-सूत्रवृत्तिः

पार्श्वनाथं नमस्कृत्य प्रायोऽन्यग्रन्थवीक्षिता ।

निरयावलिश्रुतस्कंध-व्याख्या काचित्प्रकाशयते ॥

तत्र निरयावलिकाख्योपाङ्गग्रन्थस्यार्थतो महावीरनिर्गतवचनमभिधत्सुदराचार्यः सुधर्म-
स्वामी सूत्रकारः 'ते णं काले णं' इत्यादिग्रन्थं तावदाह-अत्र 'णं' वाक्यालङ्कारार्थः । तस्मिन् काले-
ऽवसर्पिण्याश्चतुर्थभागलक्षणे तस्मिन् समये-तद्विशेषरूपे यस्मिन् तन्नगरं राजगृहाख्यं राजा च
श्रेणिकाख्यः सुधर्म (श्रीवर्धमान) स्वामी च 'हेत्य' ति अभवत्—आसीदित्यर्थः । अवसर्पिणीत्वास्का-
लस्य वर्णकग्रन्थवर्णितविभूतियुक्तमिदानीं नास्ति । 'रिद्धत्थिमियसमिद्धं' भवनादिभिवृद्धिमुपगतं,
भयवर्जितत्वेन स्थिरं, समृद्धं-धनधान्यादियुक्तं, ततः पदत्रयस्य कर्मधारयः । "पमुद्दयज्जणजाणवयं"
प्रमुदिताः प्रमोदकारणवस्तूनां सद्भावात् जना नगरवास्तव्यलोकाः जानपद्वाश्च-जनपदमवास्तवा-
याताः सन्तो यस्मिन् तत्तु प्रमुदितजनजानपदम् । "उत्ताननयणपेच्छणिज्जं" सोभायतिशयात्
उत्तानैः अनिमिषैः नयनैः लोचनैः प्रेक्षणीयं यत्तत्तथा । "पासाइयं" चित्तप्रसन्निकारि । "दरि-
सणिज्जं" यत् पश्यच्चक्षुः श्रमं न गच्छति । 'अभिरूपं' मनोज्ञरूपम् 'पडिरुवं' द्रष्टारं द्रष्टारं प्रतिरूपं
यस्य तत्तथेति ।

तस्मिन् "उत्तरपुरिच्छिमे दिसीभाए गुणसिलए नांमं चेइए होत्था" चैत्यं व्यन्तरायतनम् ।
'वण्णओ' ति चैत्यवर्णको वाच्यः—“चिराईए पुब्बपुरिसपन्नत्ते” चिरः-चिरकालः आदिः-निवेशो
यस्य तत् चिरादिकम्, अत एव पूर्वपुरुषैः—अतीतनरैः प्रज्ञप्तम्—उपादेयतया प्रकाशितं पूर्व-
पुरुषप्रज्ञप्तम् । 'सच्छत्ते सज्जए सघंटे सपडागे कयवैयट्ठोए' कृतवित्तदिकं-रचितवेदिकं 'लाउल्लो-
इयमहिण्' लाइयंयद्भूमेश्छगणादिना उपलेपनम्, उल्लोइय-कुडयमालानां सेटिकादिभिः समृष्टीकरणं,
ततस्ताभ्यां महितमिव महितं पूजितं यत्तत्तथेति ।

तत्र च गुणशिलकचैत्ये अशोकवरपादपः—समस्ति । "तस्य णं हेट्ठा खंधासन्ने, एत्थ
ण महं एगे पुढविसिलापट्टए पन्नत्ते, विक्खंभायाममुप्पमाणे आईणगरुयबूरनवणीयतूफासे"

आजिनक-चर्ममयं वस्त्रं, —रुतं—प्रतीतं, बूरो—वनस्पतिविशेषः, नवनीतं—भक्षणं, तूलम्—अकृतूलं, तद्वत् स्पर्शो यस्य स तथा कोऽर्थः ? कोमलसाशयुक्त । पासा. ए जाव पडिरुवे'ति । 'ते णं काले णं' इत्यादि, 'जाइसंपन्ने' उत्तममातृकपक्षयुक्त इति बोद्धव्यम्, अन्यथा मातृकपक्षसंपन्नत्वं पुरुषमात्रस्यापि स्यात् इति नास्योत्कर्षः कश्चिदुक्तो भवेत्, उत्कर्षाभिधानार्थं चास्य विशेषणललासोपादानं चिको-षितमिति ।

एवं "कुलसंपन्ने," नवरं कुलं पैतृकः पक्षः । 'बलसंपन्ने' बलं—संहननविशेषसमुत्थः प्राणः । जहा केसि' ति केसि (शि) वर्णको वाच्यः, स य "विणयसंपन्ने" लाघवं द्रव्यतोऽल्पोपधित्वं भावतो गोरवत्रयत्यागः एभिः संपन्नो यः स तथा । "ओयंसो" आजो-मानसोऽवष्टम्भः तद्वान् ओजस्वी, तेजः-शरीरप्रभा तद्वान् तेजस्वी, वयो—वचनं सौभाग्याद्युपेतं यस्यास्तीति वचस्वो, "जयंसो" यशस्वी-ख्यातिमान्, इह विशेषण चतुष्टयेऽपि अनुस्वारः प्राकृततत्वात् । "जियकोहमाणमायालोभे" नवरं क्रोधादिजयः उदय-प्राप्तक्रोधादिविकलीकरणतोऽवसेयः । 'जीवियासामरणभयविप्पमुक्के' जीवितस्य-प्राणधारणस्य आशा—वाञ्छा मरणान्न च यद्भयं ताभ्यां विप्रमुक्तो जीविताशामरणभयविप्रमुक्तः तदुभयोपेक्षक इत्यर्थः ।

'तवप्पहाणे' तपसा प्रधानः-उत्तमः शेषमुनिजनापेक्षया तपो वा प्रधानं यस्य तः प्रधानः । एवं गुणप्रधानोऽपि, नवरं गुणाः-संयमगुणाः । 'करणचरणप्पहाणं' चारित्रप्रधानः । निग्गहप्पहाणे' निग्रहो-ग्रन्थाचार-प्रवृत्तेर्निषेधनम् । 'घोरबभचेरवासी' घोरं च तत् ब्रह्मचर्यं च अल्पसत्त्वैर्दुःखेन यदनुचर्यते तस्मिन् घोरब्रह्मचर्यवासी । 'उच्छूढसरीरे' 'उच्छूढं' ति उज्जितमिव उज्जितं शरीरं तत्सत्कारं प्रति निःस्पृहत्वात् (येन) स तथा । 'चोद्दसपुब्बी चउनाणोपमए' चतुर्ज्ञानोपयोगतः केवलवर्जज्ञानयुक्तः । केसि (शि) गणघरो मतिश्रुतावधिज्ञानत्रयोपेत इति दृश्यम् ।

आचार्यः सुधर्मा पञ्चभिरनगारशतैः सार्व—सह संपरिवृतः समन्तात्परिकलितः पूर्वानुव्याप्तं पश्चानुपूर्व्यां चेत्यर्थः क्रमेणेति हृदयं चरन्-संचरन् एतदेवाह—'गामाणुगामं दुइज्जमाणे' ति ग्रामान् ग्रामश्च विवक्षितग्रामादनन्तरग्रामो ग्रामानुग्रामं तत् द्रवन्—गच्छन्—एकस्माद् ग्रामादनन्तरग्रामं मनुल्लङ्घयन्नित्यर्थः, अनेनाप्रतिबद्धं विहारमाह । तत्राप्यीत्सुख्याभावमाह—'सुहंसुहेणं विहरमाणे' सुखंसुखेन-शरीरखेदाभावेन संयमाऽऽवाधभावेन च विहरन् ग्रामादिषु वा तिष्ठन् । 'जेणेव' ति यस्मिन्नेव देशे राजगृहं नगरं यस्मिन्नेव प्रदेशे गुणशिलकं चेत्यं तस्मिन्नेव प्रदेशे उपागत्य यथाप्रति-रूपं—यथोचितं मुनिजनस्य अवग्रहम् आवासम् अवगृह्य—अनुज्ञापनापूर्वकं गृहीत्वा संयमेन तपसा चात्मानं भावयन्विहरति-आस्ते स्म ।

'परिसा निग्गय' ति परिषत्—श्रेणिकराजादिको लोकः निर्गता-निसृता सुधर्मस्वामि-वन्दनार्थम् । धर्मश्रवणानन्तरं "जामेव दिसि पाब्भूआ तामेव दिसि पडिगय" ति यस्याः दिशः सकाशात् प्रादुर्भूता-आगत्येत्यर्थः तामेव दिशं प्रतिगता इति । तस्मिन् काले तस्मिन् समये आर्धमुधर्मणोऽन्तेवासी आर्यजम्बूनामाऽनगारः काश्यपगोत्रेण 'सत्तुस्सेहे' सप्तहस्तोच्छ्रयः, 'समचउ-

रंसंस्थानसंठिए' यावत्करणादिकं दृश्यं 'वज्जररिसहनारायणसंघयणे कणगपुलगनिघसपम्हगोरे' कनकस्य-सुवर्णस्य 'पुलग' ति यः पुलको—लवः तस्य यो निकषः-कषपट्टरेखाक्षणः तथा 'पम्हेति' पक्षगर्भः तद्वत् यो गौरः सा तथा, वृद्धव्याख्या तु-कनकस्य न लोहादेर्यः पुलकः-मारो वर्णतिशयः तत्प्रधानो यो निकषो-रेखा तस्य यत् पक्षम-बहुलत्वं तद्वद्यो गौरः स कनकपुलकनिकषपक्षगौरः । तथा 'उगगतवे' उगम् अप्रभृष्य तपोऽस्येति कृत्वा । 'तत्तवे' तप्तं-तापितं तपो येन स तप्ततपाः एवं तेन तपस्तप्तं येन कर्मणि सताप्य तेन तपसा स्वात्माऽपि तपोरूपः संतापित इति । तथा दीप्तं तपो यस्य स दीप्ततपाः, दीप्तं तु हुताशन इव ज्वलन्ते जाः कर्मवनदाहकत्वात् । 'उराले' उदारः—प्रधानः 'घोरे' घोर-निघूर्ण परीषहेन्द्रियकषायाख्यानां रिपूणां विनाशे कर्तव्ये । तथा 'घोरव्वए' घोराणि-अन्येदुं रनुचराणि व्रतानि यस्य स तथा घोरैस्तपोभिस्तपस्वी घोरतपस्वी । "संखित्तविउलतेयलेस्से" संक्षिप्त-शरीरान्तर्निनीना विपुला-अनेकयोजनप्रमाणक्षेत्राश्रितवस्तुदहनसमर्था तेजोलेश्या विशिष्टतपोजन्यलब्धिविशेषप्रभावा तेजोलेश्या (यस्य सः) एवं गुणविशिष्टो जम्बूस्वामी भगवान् आर्यमुषमर्णा स्थविरस्य "अदूरसामंते ति दूरं-विप्रकर्षः सामन्तं समीपम्, उभयोरभावोऽदूरसामन्तं (तस्मिन्) नातिदूरे नातिसमीपे उचिते देशे स्थित इत्यर्थः । कथं ? उड्डंजाणू शुद्धपृथिव्यासनवर्ज-नात् शीघ्रगृहिकनिषद्याभावाच्च उत्कटकासनः सन्नपदिश्यते ऊर्ध्वं जानुनी यस्य स ऊर्ध्वजानुः, अधःशिरो अधोमुखः नोर्ध्वं तिर्यग्वा निक्षिप्त-दृष्टिः, किंतु नियतम् भागनियमितदृष्टिरिति भावना ।

यावत्करणात् "ज्ञानकोटोवगए" ध्यानमेव कोष्ठो ध्यानकोष्ठस्तमुपगतो ध्यानकोष्ठोपगतः, यथा हि कोष्ठके धान्यं प्रक्षिप्तमविप्रकीर्णं भवति एवं स भगवान् धर्मध्यानकोष्ठमनुप्रविश्य इन्द्रियमनस्यधिकृत्य संवृतात्मा भवतीति भावः । संवरेण तपसा ध्यानेन आत्मानं भावयन्-वासयन् विहरति—तिष्ठति । 'तए णं से' इत्यादि, तत इत्यानन्तर्यं तस्माद् ध्यानादनन्तरं, णं इति वाक्या-लङ्कारे, स आर्यजम्बूनामा उत्तिष्ठतीति संबन्धः, किम्भूतः सन्नित्याह—'जायसड्डे' इत्यादि जाता प्रवृत्ता श्रद्धा—इच्छा यस्य प्रष्टुः स जातश्रद्धः, यदा जाता श्रद्धा इच्छा वक्ष्यमाणवस्तुतत्त्वपरिज्ञानं प्रति यस्य स जातश्रद्धः, तथा जातः संशयोऽस्येति जातसंशयः, तथा जात कूतूहलः—जातीतुष्य इत्यर्थः विश्वस्यापि वस्तुव्यतिकरस्याङ्गु कोऽन्योऽर्थो भगवतऽभिहितो भविष्यति कथं च तमहमवभोत्स्ये ? इति 'उट्टाए उट्टेइ' उत्थानमुत्था-ऊर्ध्वं वर्तनं तथा उत्तिष्ठति, उत्थाय च 'अज्जसुहम्मं थेरं तिवखुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ' ति त्रिःकृत्वा-त्रीन् वारान् आदक्षिणप्रदक्षिणा-दक्षिणपार्श्वदारभ्य पार-भ्रमणता (पुनः) दक्षिणपार्श्वप्राप्तिः आदक्षिणप्रदक्षिणा तां करोति-विदधाति, कृत्वा च वन्दते-वाचा स्तोति, नमस्यति-कायेन प्रणमति, 'नच्चासन्ने नाइदूरे' उचिते देशे इत्यर्थः । 'सुसूसमाणे' श्रोतु-मिच्छन् । 'नमंसमाणे' नमस्यन्-प्रणमन् । अभिमुखं 'पंजलिउडे' कृतप्राञ्जलिः । विनयेन उक्त-लक्षणेन 'पज्जुवासमाणे' पर्युपासनां विदधान एवं इति वक्ष्यमाणप्रकारं 'वदासि' ति भवादीत् ।

भगवता उपाङ्गानां पञ्च वर्गाः प्रज्ञप्ताः, वर्गो ऽध्ययनसमुदायः, तद्यथेत्यादिना पञ्च वर्गान् दर्शयति "निरयावलियाओ कप्पवडिसवाओ पुप्फियाओ पुप्फचूलियाओ वण्हिदसाओ" ति

प्रथमवर्गो दशाध्ययनात्मकः प्रज्ञप्तः, अध्ययनदशकमेवाह—‘काले सुकाले’ इत्यादिना, मातृनाम-
भिस्तदपत्यानां पुत्राणां नामानि, यथा काल्या अयमिति कालः कुमारः, एवं सुकाल्याः महाकाल्याः
कृष्णयाः सुकृष्णयाः महाकृष्णयाः वीरकृष्णयाः रामकृष्णयाः पितृसेनकृष्णयाः महासेनकृष्णयाः
अपत्यमित्येवं पुत्रनाम वाच्यम् । इह काल्या अपत्यमित्याद्यर्थे प्रत्ययो नोत्पाद्यः, काल्यादिशब्देऽप्य-
त्येऽर्थे एषण् प्राप्या कालसुकालादिनामिद्वेः । १. एवं चाद्यः कालः, २. तदनु सुकालः, ३. महाकालः
४. कृष्णः, ५. सुकृष्णः, ६. महाकृष्णः, ७. वीरकृष्णः, ८. रामकृष्णः, ९. पितृसेनकृष्णः, १०. महा-
सेनकृष्णः दशमः । इत्येवं दशाध्ययनानि निरयावलिकानामके प्रथमे वर्गे इति ।

‘एवं खलु जंबू ते णं काले ण’ मित्यादि, ‘इहेव’ ति इहैव देशतः प्रत्यक्षासन्नेन पुनरसङ्ख्ये-
यात्वाज्जम्बूद्वीपानाम यत्रेति भावः । भारते वर्षे क्षेत्रे चम्पा एषा नगरी अभूत् । रिद्धेत्यनेन ‘रिद्ध-
त्थिमियसमिद्धे’ इत्यादि दृश्यं, व्याख्या तु प्रावत् । तत्रोत्तरपूर्वदिग्भागे पूर्णमद्रनामकं चैत्यं व्यन्तरा-
यतनम् । कुणिए नाम राये’ ति कूणिकनामा श्रेणिकराजपुत्रो राजा ‘होत्थ’ ति अभवत् । तद्वर्णको
मह्याहिमवंतमहंतमलयमंदरमहिंदसारेत्यादि पसंतडिबडमरं रज्जं पसाहेमाणे विहरइ’ इत्येतदन्तः,
तत्र महाहिमवानिव महान् शेषराजापेक्षया, तथा मलयः—पर्वतविशेषो, मन्दरो-मेरुः, महेन्द्रः
शक्रादिदेवराजः, तद्वत्सारः—प्रधानो यः स तथा । प्रशान्तानि डिम्बानि विघ्नः डमराणि च—राज-
कुमारादिकृता विड्वरा यस्मिस्तत्तथा (राज्यं) प्रसाधयन्-पालयन् विहरति—आस्ते स्म । कूणिक-
देव्याः पद्मावतीनाम्न्या वर्णको यथा ‘सोमाला जाव विहरइ’ यावत्करणदेवं दृश्यम् “सुकुमालपाणि-
पाया अहीणपंचिदियसरीरा” अहीनानि-अन्यूनानि लक्षणतः स्वरूपतो वा पञ्चापीन्द्रियाणि
यस्मिस्तत् तथाविधं शरीरं यस्या सा तथा । “लवङ्गणवंजणगुणोववेया” लक्षणानि-स्वस्तिकचक्रादीनि
व्यञ्जनानि-मणितिलकादीनि तेषां णो गुणः—प्रशस्तता तेन उपपेता-युक्ता या सा तथा, उप अप
इता इतिशब्दत्रयस्य स्थाने शकन्द्वादिदर्शनात् उपपेतेति स्यात् । “माणम्माणप्पमाणपडिपुञ्ञसुजाय-
सव्वंगसुंदरंगी” तत्र मानंजलद्रोणप्रमाणता, कथं ? जलस्यातिभूते कुण्डे पुरुषे निवेशिते यज्जलं
निसरति तत्तद्दिद्रोणमानं भवति, तदा स पुरुषो मानप्राप्त उच्यते, तथा उन्मानम्-अर्धभारप्रमाणता,
कथं ? तुलारोपितः पुरुषो यद्यर्धभारं तुलयति सदा स तन्मानप्राप्त उच्यते, प्रमाणं तु स्वाङ्गुले-
नाष्टोत्तरशतोच्छ्रायिता, ततश्च मानोन्मानप्रमाणैः प्रतिपूर्णानि-अन्यूनानि सुजातानि सर्वाणि
अङ्गानि शिरःप्रभृतानि यस्मिस्तत् तथाविधं सुन्दरम् अङ्गं-शरीरं यस्याः सा तथा । “ससिसोमाकार-
कतपियदंसणा” शशिवत्सोम्याकारं कान्तं च-कमनीयम् अतएव प्रियं द्रष्टृणां दर्शनं-रूपं यस्याः सा
तथा । अतएव सुरूपा स्वरूपतः सा पद्मावती देवी ‘कुणिएण सद्धि उरालाई भोगभोगाई भुंजेमाणी
विहरइ’ भोगभोगान् अतिशयवद्भोगान् ।

‘तत्थ णं’ इत्यादि । ‘सोमालपाणिपाया’ इत्यादि पूर्ववद्वाच्यम् । अन्यच्च “कोमुदिरयणि-
वरविमलपडिपुञ्ञसोमवयणा” कोमुदीरजनीकरवत्-कार्तिकीचन्द्र इव विमलं प्रतिपूर्णं सीम्यं च
वदनं यस्याः सा तथा । ‘कुंडलुल्लिलहियगंडसेहा’ कुण्डलाभ्यामुल्लिखिता-मृष्टा गण्डलेखा-कपोल-

विरचितमृगमदादिरेखा यस्याः सा तथा । 'मिगारागारचारुवेसा' शृङ्गारस्य-रसविशेषस्य अगारमिव अगारं तथा चारुः वेषो-नेपथ्यं यस्याः सा तथा ततः कर्मधारयः । "काली नामं देवी" श्रेणिकस्य-भार्या कूणिकस्य राजश्चुल्लजननी-लघुमाताऽभवत् । सा च काली "सेणियस्स रत्नो इट्ठा" वल्लभा कान्ता काम्यत्वात् 'पिया' सदा प्रेमविषयत्वात् 'मणन्ना' सुन्दरत्वात् 'नामधिज्जा' प्रशस्तनामधेय-वनीत्यर्थः नाम वा धार्यं-हृदि धरणीयं यस्याः सा तथा, 'वेसासिया' विश्वसनीयत्वात्, 'सम्मया' तत्कृतकार्यस्य समतत्वात्, 'बहुमता' बहुशो बहुभ्यो वाऽन्येभ्यः सकाशात् बहुमता बहुमानपात्रं वा, 'अणुमया' प्रियकरणस्यापि पश्चान्मताऽनुमता । 'भंडकरंडकसमाणा' आभरणकरण्डकसमाना उपा-देयत्वात् सुरक्षितत्वाच्च । 'तेलकेला' इव सुसंगोविया' तेलकेला सोराष्ट्रप्रसिद्धो मृण्मयस्तैलस्य भाजनविशेषः, स च भङ्गभयात् लोचनभयाच्च सुष्ठु संगोप्यते, एवं साऽपि तथोच्यते । 'चेलापेडा' इव सुसंपरिगृहिया' वस्त्रमञ्जूषेवेत्यर्थः ।

'सा काली देवी सेणिएण रत्ना सद्धि विउत्ताई भोगभोगाई भुंजमाणा विहरइ' । कालनामा च तत्पुत्रः 'सामालपाणिपाए' इत्यादि प्रागुक्तवर्णकोपेनो वाच्यः, यावत् 'पासाइए दरिसणिज्जे अभिरुवे पडिरुवे' इति पर्यन्तः । सेणियस्स रज्जे दुवे रयणा अट्ठारसबंको हारो १, सेयणगे हत्थीए २ । तत्थ किर सेणियस्स रत्नो जावइयं रज्जस्स मुल्लं तावइयं देवदिन्नहारस्स सेयणगस्स य गंध-हत्थिस्स । तत्थ हारस्स उप्पत्तीपत्थावे कहिज्जिस्सइ । कूणियस्स य एत्थेव उप्पत्ती वित्थरेण भणि-स्सइ, तत्कार्येण कालीदीनां मरणसंभवात् आरम्भमङ्ग्रामतो नरकयोग्यकर्मापेक्षयविधानात् । नवरं कूणिकस्तदा कालादिदशकुमारान्वितश्चम्पायां राज्यं चकार । सर्वेऽपि च ते दोगुत्तुगदेवा इव काम-भोगपरायणास्त्रयस्त्रिशाखा देवाः फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं बरतरुणिसप्पिणिहिं बत्तीसइपत्तनि-बद्धेहिं नाडएहिं उवगिज्जमाणा भोगभोगाई भुंजमाणा विहरति । हल्लविहल्लनामाणो कुणियस्स चिल्लणादेवीश्रंगजाया वो भायरा अन्नेऽवि अत्थि । अहुणा हास्स उप्पत्ती भण्णइ—इत्थ सक्को सेणियस्स भगवंतं पइ निच्चलभत्तिस्स पसंसं करेइ । तओ सेइयस्स जीवदेवो तवभत्तिरंजिओ सेणि-यस्स तुट्ठो संतो अट्ठारसबंको हारं देइ, दोन्नि य पट्टगोलके देइ । सेणिएणं सो हारो चेल्लणाए दिस्सो पिय त्ति काउं, वट्टदुगं सुनंदाए अभयमंतिजणणीए । ताए रुट्टाए किं अहं चेइरुवं त्ति काऊण अच्छो-डिग्गा भग्गा तत्थ एगम्मि कुंडलजुयलं एगम्मि वत्थजूयलं वट्टाए गहियाणि । अन्नया अभओ सामि पुच्छइ—'को अपच्छिमो रायरिसि' त्ति । सामिणा उद्दयिणो वागरिओ, अओ परं बद्धमउडा न पव्वयंति । ताहे अभएण रज्जं दिज्जमाणं न इच्छियं त्ति पच्छा सेणिओ चित्तेइ 'कोणियस्स दिज्जिहिं' त्ति हल्लस्स हत्थी दिन्नो सेयणगे विहल्लस्स देवदिन्नो हारो अभएण वि पव्वयंतेण सुनंदाए खोमजुयलं कुंडलजुयलं च हल्लविहल्लणं दिन्नाणि । महया विहवेण अभओ नियजणणी-समेओ पव्वइओ । सेणियस्स चेल्लणादेवी श्रंगसमुब्भूया तिमि पुत्ता कूणिओ हल्लविहल्ला य । कूणियस्स उप्पत्ती एत्थेव भणिस्सइ । कालीमहाकालीपमुहदेवीणं अन्नासिं तणया सेणिकस्य बहुवे पुत्ता कालपमुहा संति । अभयम्मि गहियव्वए अन्नया कोणिओ कालाईहिं दसहिं कुमारैहिं सयं मंतेइ—'सेणियं सेच्छाविग्घकारइयं बंधिता एक्कारसमाए रज्जं करेमो' त्ति । तैहिं पडिस्सुवं । सेणिओ

बद्धो । पुष्पं हे अवरं हे यः कससयं दवावेइ सेणियस्स कूणिओ पुष्पं भवे वेरियत्तणेण । चेल्लणाए कयाई भोय न देइ भत्तं वारिय पाणियं न देइ । ताहे चेल्लणा कह वि कुम्मासे बालेहि बधित्ता सयवारं सुरं पवेसेइ । सा किर धोव्वइ सयवारे सुरा पाणियं सव्वं होइ । तोए पहावेण सो वेयणं न वेएइ । अन्नया तस्स पउमावईदेवीए पुत्तो एवं पिओ अत्थि । मायाए सो भणिओ—“दुरात्मन् ! तव अंगुली किमिए वमंती पिया मुहे काऊण अत्थियाओ, इयरहा तुमं रोयंती चेव चिट्ठेसु” । ताहे चित्तं मणागुवसंतं जायं । मए पिया एवं वसण पाविओ । तस्म अधिई जाया । भुजंतओ चेव उट्ठाय परसुहत्थगओ, अन्ने भणंति लोहदंडं गहाय, ‘नियलाणि भंजामि’ त्ति पहाविओ । रक्खवालगो नेहेण भणइ—एसो सो पावो लोहदंडं परसुं वा गहाय एइ’ त्ति । सेणिएणं चितियं—‘न नज्जइ केण कुमारेण मारेहि ?’ । तओ तलपुडग विसं खइयं । जाव एइ ताव मओ । सुट्ठयरं अधिई जाया । ताहे मयकिच्चं काऊण घरमागओ रज्जधुरामुक्कनत्तीओ त चेव चित्तं अचच्छइ । एवं कालेण विसोगो जाओ । पुणरवि सयणआसणाईए पिइसतिए दट्ठूण अधिई होई । तओ रायगिहाओ निगंतु चंपं रायहाणि करेइ । एवं चंपाए कूणिओ राया रज्जं करेई नियगभायपमुहसयणसंजोगओ । इह निरयावलियासुयक्खं कूणिकवत्तव्यता आदावुत्तिक्षप्ता । तत्साहाय्यकरणप्रवृत्तानां कालादीनां कुमाराणां दशानामपि सङ्ग्रामे रथमुशलाख्ये प्रभूतजनक्षयकरणेन नरकयोग्यकर्मोपाजनसंपादना-भ्ररकगामितया ‘निरयाउ’ त्ति प्रथमाध्ययनस्य कालादिकुमारवत्तव्यताप्रतिबद्धस्य एतन्नाम ।

अथ रथमुशलाख्यसङ्ग्रामस्योत्पत्तौ किं निबन्धनम् । अत्रोच्यते—एवं किलायं सङ्ग्रामः संजातः—चम्पायां कूणिको राजा राज्यं चकार । तस्य चानुजो हलविहृत्लाभिधानो भ्रातरो पितृदत्तसेचनकाभिधाने गन्धहस्तिनि समारूढो दिव्यकुण्डलदिव्यवसनदिव्यहारविभूषितो विलसन्तो दृष्ट्वा पद्यावत्यभिधाना कूणिकराजस्य भार्या कदाचिद्दन्तिनोऽपहाराय तं कूणिकराजं प्रेरितवती—“कर्णविषलग्नकृतोऽतोऽयमेव कुमारो राजा तत्त्वतः, न त्वं, यस्येदृशा विलासाः” । प्रज्ञाप्यमानाऽपि सा न कथञ्चिदस्यार्थस्योपरमति । तत्प्रेरितकूणिकराजेन तौ याचितौ । तौ च तद्भूयाद्वेशल्यां नगयां स्वकीयमातामहस्य चेटकाभिधानस्य राज्ञोऽन्तिके सहस्तिको सान्तःपुरपरिवारितौ गतवन्तौ ।

कूणिकेन च दूतप्रेषणेन तौ याचितौ । न च तेन प्रेषितौ, कूणिकस्य तयोश्च तुल्यमातृकत्वात् । ततः कूणिकेन भणितं—‘यदि न प्रेषयसि तदा युद्धसज्जो भव’ । तेनापि भणितम्—‘एष सज्जोऽस्मि’ । ततः कूणिकेन सह कालादयो दश स्त्रीया भिन्नमातृका भ्रातरो राजानश्चेतकेन सह सङ्ग्रामाय युग्माः । तत्रैककस्य त्रीणि-त्रीणि हस्तिनां सहस्राणि, एवं रथानामश्वानां च, मनुष्याणां च प्रत्येकं तिस्रस्तिस्रः कीट्यः । कूणिकस्याप्येवमेव । तत्र एकादशभागोऽकृतराज्यस्य कूणिकस्य कालादिभिः सह निजेन एकादशांशेन सङ्ग्रामे काल उपगतः । एतमर्थं वक्तुमाह—‘तए णं से काले’ इत्यादिना । पुनः च व्यक्तिकरं ज्ञात्वा चेटकेनाप्यष्टादश गणराजानो मेलिताः, तेषां चेटकस्य च प्रत्येकमेवमेव हस्त्यादिवत्परिमाणं, ततो युद्धं संप्रलम्बम् । चेटकराजस्य तु प्रतिपक्षव्रतत्वेन दिनमध्ये एकमेव शरं मुञ्चति अमोघबाणश्च सः । तत्र च कूणिकसैन्ये गरुडव्यूहः चेटकसैन्ये (च) सागरव्यूहो विरचितः ।

१. ततश्च कूणिकस्य कालो दण्डनायको निजबलान्वितो युध्यमानस्तावदन्तो यावच्चेटकः, ततस्तेन एकशरनिघटिनासौ निपातितः । २. भग्नं च कूणिकबलं । गते च द्वे अपि बले निजानिजमा-
वासस्थानम् । द्वितीयेऽह्नि सुकालो नाम दण्डनायको निजबलान्वितो युध्यमानस्तावद् गतो याव-
च्चेटकः एवं सोऽप्येकशरेण निपातितः । ३. एवं तृतीयेऽह्नि महाकालः, सोऽप्येवम् । ४. चतुर्थेऽह्नि
कृष्णकुमारस्तथैव, ५. पञ्चमे सुकृष्णः, ६. षष्ठ महाकृष्णः, ७. सप्तमे वीरकृष्णः, ८. अष्टमे
रामकृष्णः, ९. नवमे पितृसेनकृष्णः, १०. दशमे पितृमहासेनकृष्णः चेदकेनैकशरेण निपातितः ।
एवं दशसु दिवसेषु चेदकेन विनाशिता दशापि कालादयः । एकादशे तु दिवसे चेदकजयार्थं देवता-
राधनाय कुणिकोऽष्टमभक्तं प्रजग्राह । ततः शक्रचमरावागतौ ।

ततः शक्रो बभाषे—“चेटकः श्रावक इत्यहं न तं प्रति प्रहरामि, नवरं, भवन्त संरक्षामि” ।
ततोऽसौ तद्रक्षार्थं वज्रपतिरूपकमभेद्यकवचं कृतवान् । चमरस्तु द्वौ सङ्ग्रामौ विकुर्वितवान् महा-
शिलाकण्टकं रथमुशलं चेति । तत्र महाशिलेव कण्टको जीवितमेदकत्वान्महाशिलाकण्टकः । ततश्च
यत्र तृणशूकादिनाऽप्यभिहतस्याश्वहस्त्यादेर्महाशिलाकण्टकेनेवास्याहतस्य वेदना जायते स सङ्-
ग्रामो महाशिलाकण्टक एवोच्यते । ‘रहमुसले’ ति यत्र रथो मुशलेन युक्तः परिधावन् महाजनक्षयं
कृतवान् अतो रथमुशलः ।

‘ओयाए’ ति उपयातः—संप्राप्तः । ‘किं जइस्सइ’ ति जयश्लाघां प्राप्स्यति । पराजेष्यते—
अभिभविष्यति परसैन्यं परानभिभविष्यति उत नेति कालनामानं पुत्रं जीवन्तं द्रक्ष्याम्यहं न वेत्येवम्
उपहतो मनःसंकल्पो युक्तायुक्तविवेचनं यस्याः सा उपहतमनःसंकल्पा । यावत्करणात् “करयलपल्ह-
त्थियमुही अट्टज्झाणोवगया ओमंथियवयणनयणक मला” ओमंथियं—अधोमुखीकृतं वदनं च नयन-
कमले च यथा सा तथा । ‘दीणविवल्लवयणा’ दीनस्येव विवर्णं वदनं यस्याः सा तथा । ‘झियाइ’
ति आतंघ्यानं घ्यायति, ‘मणोमाणसिएणं दुक्खेणं अभिभूया’ मनसि जातं मानसिकं मनस्येव यद्वर्तते
मानसिकं दुःखं वचनेनाप्रकाशितत्वात् तन्मनो—मानसिकं तेन अवहिर्वतिनाऽभिभूता । ‘ते णं काले
णं’ इत्यादि । ‘अयमेयारूवे’ ति घ्न्यमेतद्रूपो वक्ष्यमाणरूपः ‘अज्झत्थिए’ ति आध्यात्मिकः—आत्म-
विषयः चिन्तितः—स्मरणरूपः प्रार्थितः लब्धुमाशंसितः, मनोगतः—मनस्येव वर्तते यो न बहिः
प्रकाशितः संकल्पो—विकल्पः समुत्पन्नः—प्रादुर्भूतः । तमेवाह—‘एवमि’ त्यादि । यावत्करणात् ।

“पुब्बाणूपुब्बि चरमाणे गामाणुगामं दुइज्जमाणे इहमागए इह संपत्ते इह समोसडे, इहेव
चंपाए नयरीए पुत्तभदे चेइए अहापडिरूवं उगगहं उग्गिहित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणं
विहरइ” ।

‘तं महाफलं खलु’ भो देवाणुप्पिथा ? ‘तहारूवाणं’ अरहंताणं, भगवंताणं, नामगोयस्स
वि सवणयाए, किमंग पुणं अभिगमणधंदणनमंसणपडिपुच्छणपज्जुबासणाए ? एगस्स वि आरियस्स
धम्मियस्स वयणस्स सवणयाए, किमंग पुणं ‘विउलस्स अट्टस्स गहणयाए’ ‘गच्छामि णं’ अहं ‘समणं’
भगवं महावीरं वंदामि तमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं ‘पज्जुबासामि,

एवं नो पेच्चभवे हिया एमुहा ए खमा ए निस्सेयसा ए आणुगामियत्ता ए भविस्सइ 'इमं च णं एयाख्वं वागरणं पुच्छिस्सामि' ति कट्ठु एवं संपेहेइ' संप्रेक्षते—पर्यालोचयति । सुगमम् । नवरं 'इहमागए' ति चम्पायां, 'इह संपत्ते' ति पूर्णभद्रे चेत्ये, 'इह समोमहे' ति साधूचितावग्रहे. एतदेवाह—उहेव चंपाए इत्यादि । 'अहापडिख्वं' ति यथाप्रतिरूपम् उचितमित्यर्थः । 'ते' इति तस्मात्, 'महाफलं' ति महत्फलमायत्यां भवतीति गम्यं । 'तहाख्वाणं' ति तत्प्रकारस्वभावानां—महाफलजननस्वभावानामित्यर्थः । 'नामगोयस्स' ति नाम्ना—यादृच्छिच्छ्रुस्याभिधानस्य, गोत्रस्य-गुणनिष्पन्नस्य 'सवण-याए' ति श्रवणेन, 'किमंग पुण' ति रूपुनरिति पूर्वोक्तार्थस्य विशेषद्योतनार्थम् अङ्गेत्यामन्त्रणे यद्वा परिपूर्ण एवायं शब्दो विशेषणार्थं अभिगमनं, वन्दनं-स्तुतिः, नमनं—प्रणमनं, प्रति पृच्छनं—शरीराविवाताप्रशनं, पर्युपासनं—सेवा, तद्भावस्तत्ता तथा, एकस्यापि आर्यस्य आर्यप्रणेतृकत्वात्, धार्मिकस्य धर्मप्रतिबद्धत्वात्, वन्दामि—वन्दामि—वन्दे, स्तोमि, नमस्यामि—प्रणमामि, सत्कार-यामि—आवरं करोमि वस्त्राद्यर्चनं वा, सम्मानयामि उचितप्रतिपत्त्येति—कल्याणं कल्याणहेतुं, मङ्गलं बुरितोपशमनहेतुं, देवं चैत्यमिव चैत्यं, पर्युपासयामि—सेवे, एतत् नोऽस्माकं, प्रेत्यभवे-जन्मान्तरे, हिताय पथ्यान्नवत्, शर्मणे, क्षमाय—सङ्गतत्वाय, निःश्रेयसाय मोक्षाय, आनुगामिकत्वाय—भव-परम्परामु सानुबन्धसुखाय, भविष्यति, इति कृत्वा—इतिहेतोः, संप्रेक्षते पर्यालोचयति संप्रेक्ष्य चैवमवादीत्—

शीघ्रमेव 'भो देवाणुप्पिया' । धर्माय नियुक्तं धार्मिकं, यानप्रवरं, चाउग्वंटां आसरहं' ति चतस्रो घण्टाः पृष्ठतोऽग्रतः पार्श्वतश्च लम्बमाना यस्य स चतुर्घण्टः, अश्वयुक्तो रथोऽश्वरथस्तम-श्वरथं, युक्तमेवाश्वादिभिः, उपस्थापयत्—प्रगुणीकृत, प्रगुणीकृतं सम समर्थयत् ।

'पद्दाय' ति कृतमज्जना, स्नानान्तरं 'कयबलिकम्म' ति स्वगृहे देवतानां कृतबलिकर्मा, 'कयकोउम्भंगलप्रायच्छित्त' ति कृतानि कौतुकमङ्गलान्येव प्रायश्चित्तं नीव दुःस्वप्नादिव्यपोहाया-वक्ष्यकृतव्यत्वाद् प्रायश्चित्तानि ग्रस्य सा तथा । तत्र कौतुकानि—मणीपण्डादीनि मंगलादीनि सिद्धार्थ-दक्ष्यक्षतद्वयङ्कुरादीनि, 'सुद्धप्पावेस्साइं वत्थाइं परिहिया' 'अप्पमहग्घाभरणात्तं कियसरीरा' (इति) सुगमम् ।

बहुहिं खुज्जाहिं जावे' त्यादि, तत्र कुब्जिकाभिः—वक्रजङ्घाभिः, चिलातीभिः—अनाय-द्वेष्टोत्पन्नाभिः, वामनाभिः—ह्रस्वशरीराभिः, बटभाभिः—मडहकोष्ठाभिः, बर्वरीभिः—बर्वरीभिः—बर्वर-देशसंभवाभिः, बकुशिकाभिः यौनकाभिः पण्डकाभिः इतिनिकाभिः वासिनिकाभिः लासिकाभिः लकुसिकाभिः द्रविडीभिः सिंहलीभिः ग्रारबीभिः पक्वणीभिः बहुलीभिः मुसण्डीभिः शबरीभिः कन्नलीभिः नागबेलाभिः—बहुविधानायां द्वेष्टोत्पन्नाभिरित्यर्थः ।

विदेसस्तवीयदेसात्तथा ब्रह्मनमसे म्रियेसः तद्वत् परिस्मृतिरिति, 'इगियच्चित्तियप्रति-यक्किवाणिकमहिं' तत्र इगियत्तेन-ममनसिचेष्टाद्विषयेष्वेव चित्तितं च प्ररेण दृढि स्थापितं प्राथितं च विज्ञानस्य ब्रह्मस्तत्तत्तथा तस्मिन् इत्येवमेव कर्त्तव्यं इति स्थापितं तद्वत्पुद्गेतो देशा यकाभिस्ता-

स्तथा ताभिः । निपुणनामधेयकुशला यास्तास्तथा ताभिः अत एव विनीताभिः युक्तेति गम्यते, तथा चेष्टिकाचक्रवालेन अर्थात् स्वदेशसंभवेन वृन्देन परिशिक्षिता या सा तथा । 'उवट्टाणसाला' उपवेशा-मण्डपः । 'दुरुहइ' आरोहति । यत्रैव श्रमणो भगवान् तत्रैवोपागता-संप्राप्ता, तदनु महावीरं त्रिकृत्वो वन्दते—स्तुत्या, नमस्यति प्रणमति, स्थिता चैव ऊर्ध्वस्थानेन, कृताञ्जलिपुटा अभि-संमुखा सती पर्युपासते । धर्मकथाश्रवणानन्तरं 'त्रिःकृत्वो' वन्दयित्वा (वन्दित्वा) एवमवादीत्—'एवं खलु भन्ते' इत्यादि सुगमम् ।

अत्र कालीदेव्याः पुत्रः कालनामा कुमारो हस्तितुरगरथपदातिरूपनिजसैन्यपरिवृतः कूणिक-राजनियुक्तश्चेटकराजेन सह रथमृशलं सङ्ग्रामयन् सुभट्टश्चेटकसत्कर्णदस्य कृतं तदाह—'हयमहि-यपवरवीरघाइयनिवडियचिधञ्जयपडागे' (हतः) सैन्यस्य हतत्वात्, मथितो मानस्य मन्थनात्, प्रवरवीराः—सुभटा घातिताः—विनाशिता यस्य, तथा निपातिताश्चिह्नध्वजाः—गहडादिचिह्न-युक्ताः केतवः पताकाश्च यस्य स तथा, ततः पदचतुष्टयस्य कर्मधारयः । अत एव 'निरालोयाओ दिसाओ करेमाणे' ति निर्गतालोका दिशः कुर्वन् चेटकराजः (स्य) 'संपक्खं सपडिदिमि' ति सपक्षं—समानपार्श्वं समानवामेतरपार्श्वतया, सप्रतिदिक्-समानप्रतिदिक्त्याऽत्यर्थमभिमुख इत्यर्थः अभि-मुखागमने हि परस्परस्य समाविव दक्षिणवामपार्श्वौ भवतः, एवं विदिशावपीति । इत्येवं स कालः चेटकराजस्य रथेन प्रतिरथं 'हव्वं' शीघ्रम् आसनं—संमुखोनम् आगच्छन्तं दृष्ट्वा चेटकराजः तं प्रति आसुरत्ते'रुट्टे कुविए चण्डिकिए 'मिसिमिसेमाणे' ति, तत्र आशु—शीघ्रं रुष्टः—क्रोधेन विमोहितो यः स आशुरुष्टः, आसुरं वा आसुरसत्कं कोपेन दारुणत्वात् उक्तं-भणितं यस्य स आसु-रोक्तः रुष्टो—रोषवान् 'कुविए' ति मनसा कोपवान्, चण्डिकिये—दारुणीभूतः 'मिसिमिसेमाणे' ति क्रोधज्वालाया ज्वलन् तिवलियं भिउहि निडाले साहट्टु ति त्रिवलिकां भूकुटिं—लोचनविकार-विशेषं ललाटे संहृत्य—विधाय घनुः परामृशति, वाण परामृशति, विशाखस्थानेन तिष्ठति, 'आययक्कणायते' ति आकर्णान्तं बाणमाकुण्ठ्य 'एगाहच्चं' ति एकयैवाहत्या आहननं प्रहारो यत्र जीवितव्यपरोपणे तदेकाहृत्य यथा भवति एवं, कथमित्याह—'कुडाहच्चं' कूटस्यैव—पाषाणमय-महामारणयन्त्रस्यैव आहृत्या आहननं यत्र तत्कुटाहृत्य । 'भगवतोक्तेयं व्याख्या' ।

'अप्फुण्णा समाणी' व्याप्ता सती । शेषं सुगमं यावत् 'सोल्लेहि य' ति पक्वैः 'तल्लिएहि' ति स्नेहेन पक्वैः, 'भज्जिएहि' भट्टैः 'पसन्नं च' द्राक्षादिद्रव्यजन्यो मनःप्रसत्तिहेतुः 'आसाएमाणोओ' ति ईषत्स्वादयन्त्यो बहु च त्यजन्त्य इक्षुखण्डादेरिव, 'परिभाएमाणोओ' सर्वमुपभुञ्जानाः (परस्परं ददन्त्यः) 'सुक्क' ति शुष्केव शुष्काभा रुधिरक्षयात्, 'भुक्ख' ति भोजनाकरणतो बुभुक्षितेव, 'निम्मंसा' मांशोपचयाभावतः, 'ओलुग' ति अवहण्णा—भग्नमनोवृत्तिः, 'ओलुगसरीरा' भग्नदेहा, निस्तेजा—गतकान्तिः दीना विमनोवदना, पाण्डु'कियमुखी—पाण्डुरीभूतवदना, 'ओमंभिय' ति अधोमुखीकृतं, उपहतमनःसङ्कुल्पा—गतयुक्तायुक्तविवेचना 'करयल० कट्टु' ति 'करयलपरिगमहिंयं दसनहं सिरसा-वत्तं मत्थए अंजलि कट्टु सेणियं रायं एवं वयासी, स्पष्टम् । एनमर्थं' ताद्रियते—अत्रार्थे आदरं न कुरुते, न परिजानीते—नाभ्युपयच्छति, कृतमोना तिष्ठति ।

‘घन्नाओ णं कयलक्खणाओ णं मुलद्धे णं तासि जम्मजीवियफले’ ‘अविणिज्जमाणसि’ ति अपूर्यमाणे ‘जत्तिहामि’ ति यत्तिष्ठे, ‘इट्ठाहि’ इट्ठाहीत्यादीनां व्याख्या प्रागिहैवोक्ता ।

‘उवट्ठाणसाला’ आस्थानमण्डपः । ‘ठिइं वां स्थानां’ अविदमाणे’ अलभमानः । अंतगमनं-पारगमनं तत्संपादने ।

‘सूणाओ’ घातस्थानात् । ‘बत्थिपुडग’ उदरान्तर्वर्ती प्रदेशः । ‘अत्पकप्पियं’ आत्मसमीपस्थम् सपक्षं—समानपार्श्वं समवायेन रसाश्वंतया । सप्रतिदिक्—समानप्रतिदिक्त्वा अत्यर्थमभिमुख इत्यर्थः, अभिमुखावस्थानेन हि परस्परस्य समावेव दक्षिणवामपार्श्वे भवतः एव विदिशावपि ।

‘अयमेयारूवे अब्भत्थिए चित्थिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था’ । सातनं पातनं गालनं विध्वंसनमिति कर्तुं संप्रधारयति, उदरान्तर्वर्तिनीः औषधैः सातनम्—उदराद्वहिःकरणं, पातनं-गालनं हथिरादितया कृत्वा, विध्वंसनं सर्वगर्भपरिशाटनेन, न च शाटनाद्यवस्था अस्य भवन्ति । ‘संता तंता परितंता’ इत्येकार्याः छेदवाचका एते ध्वनयः । ‘अट्टवसट्टदुहट्टा’ (आर्तवश—आर्तध्यानवशतामृता—गता दुःखार्ता च या सा) ।

उच्चाभिराक्रोशनाभिः आक्रोशो निर्भर्त्सना उद्धर्षणा (एते समानार्थाः) । ‘लज्जिया विलिया विड्डा’ (एतेऽपि समानार्थाः) ।

स्थितिपतितां—कुलक्रमायातं नुत्रजन्मानुष्ठानम् ।

‘अंतराणि य’ अवसरान्, छिद्राणि-अल्पपरिवारादीनि, विरहो-विजमत्त्वम् । तुष्टिः उत्सवः हर्षः आनन्दः प्रमोदार्थाः एते शब्दाः ।

‘मम घातेउकामेणं’ घातयितुकामः णं वाक्यालङ्कारे मां श्रेणिको राजा घातनं मारणं बन्धनं निच्छुभणं’ एते पराभयसूचका ध्वनयः ।

निष्प्राणः—निर्गतप्राणः निश्चेष्टः जीवितविप्रजडः प्राणापहारसूचकाः एते । अवतीर्णो—भूमी पतितः । ‘अप्फुण्णे’ व्याप्तः सन् । ‘रोयेमाणे’ ति रुदन् ‘कंदमाणे’ वैक्लवं कुर्वन् ‘सोयमाणे’ शोकं कुर्वन् ‘विलवमाणे’ विलापान् कुर्वन् ‘नीहरणं’ ति परोक्षस्य यस्मिं मादिकायम् । ‘मणोमाण-सिएणं’ ति मनसि जातं मानसिकं मनस्येव यद्धतंते वचनेनाप्रकाशितत्वात् तत् मनोमानसिकं तेन अबहिर्वर्तिना अभिभूतः । ‘अतेउरपरियालसंपरिबुडे’ । ‘चंपं नगरि मज्झंमज्झेणं’ इत्यादि वाच्यम् । ‘अक्खिउकामेणं’ ति स्वीकर्तुकामेन, एतदेव स्पष्टयति—‘मिण्हिउकामेणं’ इत्यादिना । ‘तं जाव ताव न उट्ठालेइ ताव ममं कूणिए राया’ इत्यादि सुगमम् । ‘अज्जगं’ ति मातामहम् । ‘सपेहेति’ पर्यालोचयति । ‘अतराणि’ छिद्राणि प्रतिजामत्—परिभाष्यन् विचरतिआस्ते । ‘अंतरं’ प्रविरल-मनुष्यादिकम् । ‘असंविदितेणं’ ति असंप्रति (असं विदितेन) । हृवं ति शीघ्रम् ।

‘जहाचित्तो’ ति राजप्रश्नीये द्वितीयोमाङ्गो यथा श्वेतम्बीनगर्वादित्रो नाम दूतः प्रदेक्षि

राजः प्रेषितः श्रावस्त्यां नगर्यां जितशत्रुसमीपे स्वगृहान्निर्गत्य गतः तथाऽयमपि । कोणकनामामा राजा यथा एवं विह्वलकुमारोऽपि । 'चाउर्घटं' ति चतस्रो घण्टाश्चतसृष्वपि दिक्षु अवलम्बिता यस्य स चतुर्घण्टो रथः ।

'सुमेहि वसहीहि पायरासेहि' ति प्रातराशः आदित्योदयादावाद्यप्रहरद्वयसमयवर्ती भोजन-कालः निवासश्च-निवसनभूभागः तौ द्वावपि सुखहेतुकौ न पीडाकारिणौ ताम्र्यां संप्राप्ती नगर्यां दृष्टश्चेककोणिकराजः 'अयविजएणं वद्धावित्ता एव' दूतो यदवादीत्तद्दर्शयति—'एवं खलु सामी' त्यादिना । 'अलोवेमाण' ति एवं परंपरागतं प्रीतिमलोपयन्तः । जहा पढम' ति रज्जस्स य जण-वयस्स य अद्धं कोणियराया जइ वेहल्लस्स देइ तोऽहं सेयणं अट्टारसवंकं च हारं कूणियस्स पच्चप्पिणामि च कुमारं पेसेमि, न अन्नहा ।

तदनु द्वितीयदूतस्य समीपे एनमर्थं श्रुत्वा कोणिकराज 'आसुहत्ते' इत्येतावद्रप (ताकोप) वशसंपन्नः ।

यदसौ तृतीयदूतप्रेषणे न कारयति मानयति च तदाह—'एवं वयासी' त्यादिना हस्तिहार-समर्पणकुमारप्रेषणस्वरूपम् यदि न करोषि तदा युद्धसज्जो भवेति दूतग्राह इमेण कारणेण ति तुल्यताऽत्र कसंबन्धेन । दूतद्वयं कोणिकराजप्रेषितं निषेधितं, तृतीयदूतस्तु असत्कारितोऽपद्वारेण निष्काशितः । ततो यात्रां सङ्ग्रामयात्रां गृहीतुमुद्यता वयमिति, 'तए णं से कूणिए राया' काला-दीन् प्रति भणितवान् ।

तेऽपि च दशापि तद्वयोविनयेन प्रतिशृण्वन्ति । 'एवं वयासि' ति एवमवादीतान्प्रति—गच्छत यूयं स्वराज्येषु निजनिजसामग्रया संनह्य समागन्तव्यं मम समीपे ।

तदनु कूणिकोऽभिषेकार्हे हस्तिरत्नं निजमनुष्यरूपस्थापयति-प्रगुणीकारयति, प्रतिकल्पयते ति पाठे सन्नाहवन्तं कुस्तेत्याज्ञां प्रयच्छति । 'तओ दूय' ति त्रयो दूताः कोणिकेन प्रेषिताः ।

'मंगतिएहि' ति हस्तपाशितः फलकादिभिः, 'तोणेहि' ति इषुधिभिः, 'सजीवेहि' ति सप्रत्यञ्चः धनुभिः नृत्यद्भिः कबन्धैः वारैश्च हस्तच्युतैः भीमं रोद्रम् । शेषं सर्वं सुगमम् ॥

॥ इति निरयावलिकाख्योपाङ्गव्याख्या ॥

कल्पवडिसिया ॥ २ ॥

श्रेणिकनृप्तृणां कालमहाकालाद्यङ्गजानां क्रमेण व्रतपर्यायाभिधायिका । दोषहं च पञ्च इत्यादिगाथा, अस्या अर्थः—दससु मध्ये द्वयोराद्ययोः कालमुकालमत्कयोः पुत्रयोर्व्रतपर्यायः पञ्च वर्षाणि, त्रयाणां चत्वारि, त्रयाणां त्रीणि द्वयोर्द्वे द्वे वर्षे व्रतपथायः ।

तत्राद्यस्य यः पुत्रः पद्मनामा स कामान् परित्यज्य भगवतो महावीरस्य समीपे गृहीतव्रत एकादशाङ्गधारी भूत्वाऽऽयुषं बहुचतुर्थषष्ठाष्टमादिकं तपःकर्म कृत्वाऽतीव शरीरेण कृशीभूतश्चिन्तां कृतवान्—यावदस्ति मे बलवीर्यादिशक्तिस्तावद्भगवन्तमनुज्ञया मम पादपोषगमनं कर्तुं श्रेय इति तत्रैवासौ समनुतिष्ठति, ततोऽसौ पञ्चवर्षव्रतपालनपरो मासिक्या संलेखनया कालगतः सौधंम देवत्वेनोत्पन्नो द्विसागरोपमस्थितिकस्ततश्च्युत्वा महाविदेह उत्पद्य सेत्स्यते (ति) इति कल्पावतंस-कोत्पन्नस्य प्रथममध्ययनम् ।

एवं सुकालसत्कमहापद्मदेव्याः पुत्रस्य महापद्मस्यापीयमेव वक्तव्यता स भगवत्समीपे गृहीत-व्रतः पञ्चवर्षव्रतपर्यायपालनपर एकादशाङ्गधारी चतुर्थषष्ठाष्टमादिबहुतपःकर्म कृत्वा ईशानकल्पे देवः समुत्पन्नो द्विसागरोपमस्थितिकः सोऽपि ततश्च्युतो महाविदेहे सेत्स्यतीति द्वितीयमध्ययनम् ।

तृतीये महाकालसत्कयुत्रवक्तव्यता, चतुर्थे कृष्णकुमारसत्कपुत्रस्य, पञ्चमे सुकृष्णसत्कपुत्रस्य वक्तव्यता इत्येवं त्रयोऽप्येते वर्षचतुष्टयव्रतपर्यायपरिपालनपरा अभवन् । एवं तृतीयो महाकालाङ्ग-जश्चतुर्वर्षव्रतपर्यायः सनत्कुमारे उत्कृष्टस्थितिको देवोभूत्वा सप्तसागरोपमाण्यायुरनुपाल्य ततश्च्युतो महाविदेहे सेत्स्यतीति तृतीयमध्ययनम् ।

चतुर्थे कृष्णकुमारात्मजश्चतुर्वर्षव्रतपर्यायः माहेन्द्रकल्पे देवो भूत्वा सप्तसागरोपमाण्यायुरनु-पाल्य ततश्च्युतो महाविदेहे सेत्स्यतीति चतुर्थमध्ययनम् ।

पञ्चमः सुकृष्णसत्कपुत्रो वर्षचतुष्टय व्रतपर्यायं परिपाल्य ब्रह्मलोके पञ्चमकल्पे दश सागरा-नुत्कृष्टमायुरनुपाल्य ततश्च्युतो महाविदेहे सेत्स्यतीति पञ्चममध्ययनम् ।

षष्ठाध्ययने महाकृष्णसत्कपुत्रस्य वक्तव्यता, सप्तमे त्रीः कृष्णसत्कपुत्रस्य अष्टमे रामकृष्ण-सत्कपुत्रस्य वक्तव्यता । तत्र त्रयोऽप्येते वर्षत्रयव्रतपर्यायपरिपालनपरा अभवन् । एव च महाकृष्णा-ङ्गजो वर्षत्रयपर्यायाल्लान्तककल्पे षष्ठं उत्तमं चतुर्दशसागरोपमाण्यानुत्कृष्टस्थितिं कामायुरनुपाल्य ततश्च्युतो महाविदेहे सेत्स्यतीति षष्ठमध्ययनम् ।

वीरकृष्णाङ्गजः सप्तमः वर्षत्रयव्रतपर्यायं परिपाल्य महाशुक्रे सप्तमे कल्पे समुत्पद्य सप्तदश-सागराण्यायुरनुपाल्य ततश्च्युतो विदेहे सेत्स्यतीति सप्तममध्ययनम् ।

रामकृष्णाङ्गजोऽष्टमो वर्षत्रयं व्रतपर्यायं परिपाल्य सहस्रारेऽष्टमे कल्पेऽष्टादशसागराण्या-युरनुपाल्य ततश्च्युतो विदेहे सेत्स्यतीति अष्टममध्ययनम् ।

पितृसेनकृष्णाङ्गजो नवमो वर्षद्वयव्रतपर्यायपरिपालनम् कृत्वा प्राणतदेवलोके दशमे उत्पद्य
एकोनविंशतिसागरोपमाण्यानुपाल्य ततऽप्युतो विदेहे सेत्स्यतीति नवमध्ययनम् ।

महासेनकृष्णाङ्गजश्च दशमो वर्षद्वयव्रतपर्यायपालनपरोऽनशनादिविधिनाऽच्युते द्वादशे
देवलोके समुत्पद्य द्वाविंशतिनागरोपमाण्यायुरनुपाल्य ततऽच्युतो महाविदेहे सेत्स्यतीति दशमम-
ध्ययनम् ।

इत्येवं कल्पावतंसकदेवप्रतिबद्धग्रन्थपद्धतिः कल्पावतंसकदेवप्रतिबद्धग्रन्थपद्धतिः कल्पावतंसिके-
त्युच्यते । ता एताः परिसमाप्ताः द्वितीयवर्गश्च ।

पुष्पिका ॥ ३ ॥

अथ तृतीयवर्गोऽपि दशाध्ययनात्मकः 'निकलेवभो' ति निगमनवाक्यं यथा 'एवं खलु जंबू
समणेण' भगवया महावीरेण आईगरेण' इत्यादि जाव सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपाविउकामेणं तइय-
चगे वग (पढमअज्झ) यणस्स पुष्पिकाभिहाणस्स अयमट्ठे पञ्चत्ते' एवमुत्तरेष्वध्ययनेषु सूरशुक्र-
बहुपुत्रिकादिषु निगमनं वाच्यं तत्तदभिलाषेन ।

'केवलकप्प' ति केवलः—परिपूर्णः स चासौ कल्पश्च केवलकल्पः—स्वकार्यकरणसमर्थः
केवलकल्पः तं स्वगुणेन सम्पूर्णमित्यर्थः । 'कूडागारसालादिट्ठंतो' ति कस्मिंश्चिदुत्सवे कस्मिंश्चि-
त्सगरे बहिर्भागप्रदेशे महती देशिकलोकवसनयोग्या शाला-गृहविवेकः समस्ति । तत्रोत्सवे रममाणस्य
लोकस्य मेघवृष्टिर्भवितुमारब्धा, ततस्तदुभयेन त्रस्तबहुजनस्तस्यां शालायां प्रविष्टः, एवमयमपि
देवविरचितो लोकः प्रचुरः स्वकार्यं नाट्यकरणं तत्संहृत्यानन्तरं स्वकीयं देवशरीरमेवानुप्रविष्टः
इत्ययं शालादृष्टान्तार्थः । 'अड्ढे जाव' ति अड्ढे दित्ते वित्ते विच्छिन्नविउलभवणसयणासणजोण-
वाहणाइन्ने बहुघणबहुजायरूवे आओगपओगसंपउत्ते विच्छिड्डियपउरभत्तपाणे बहुदासीदासगोमहि-
सगवेलगप्पभूए इति यावच्छब्दसंगृहीतम् । 'जहा आणंदो' ति उपासकदशाङ्गोक्तः श्रावक आनन्द-
नामा, स च बहूणं ईसरत्तलवरमाडंबियकोडुंबियनगरनिगमसेट्ठिसत्थवाह ण बहुमु कज्जेसु य का ण
य मतेसु य कुडुंबेसु य निच्छिएसु य ववहारेसु य आपुच्छणिज्जे पटिपुच्छणिज्जे सव्वकज्जवट्टाए
सयस्स विय ण कुडुंबस्स मेढीभूए होत्था । 'पुरीसादानीय' ति पुरीषरदीयो पुरीषादानीयः ।
नवहस्सोच्छुर—नवहस्सोच्चः अट्टीसाए अज्जियासहस्सेहि संपग्गिबुडे इति यावत्करणात् दृश्यम् ।
हट्ठुट्ठचित्तमाणंदि ए इत्यादि वाच्यम् । देवाणुप्पियाणं अंतिए पव्वयामि । यथा गङ्गादत्तो भगव-
त्यङ्गोक्तः, स हि किपाकफलोवमं मुणिय विसयसोक्खं जलबुब्बुयसमाणं कुसग्गविदुच्चञ्चलं जीवियं
च नाऊणमधुवं चइत्ता हिरण्णे विपुलघणकणगरयण-णिमोत्तियसंखसिलप्पवलरत्तरयणमा— इयं
विच्छिड्इत्ता दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता आगाराओ अणगारिय पव्वइओ जहा तहा अंगई वि

गिहनायगो परिच्यय सव्वं पव्वइओ याओ य पंचसमियो तिगुत्तो अममो अक्किचणो गुत्तिदिओ गुत्तबंभयारी इत्येवं यावच्छब्दात् दृश्यम् ।

चउत्थल्लुट्टमदसमदुवालसमारद्धमासखवणेहि अप्पाणं भावेमाणे बहुइं वासाइं सामन्न-परित्यागं पाउणइ । 'विराहियसामन्ने'त्ति श्रामण्यं-व्रतं, तद्विराधना चात्र न मूलगुणविषया, किं नत्तरगुणविषया, उत्तरगुणं च पिण्डविशुद्ध्यादयः तत्र कदाचित् द्विचत्वारिंशदोषविशिद्धाहारस्य ग्रहणं न कृतं कारणं विनाऽपि बललानादिकारणेऽशुद्धमपि गृह्यन् दोषवानिति, पिण्डस्याशुद्धतादौ विराधितश्रमणता ईर्यादिसामत्यादिशोधनेऽनादरः कृतः अभिग्रहाश्च गृहीताः, कदाचिद् भगना भवन्तीति शृणुद्यादिसन्निधिपरिभोगमङ्गक्षालनपादक्षालनादि च कृतवानित्यादिप्रकारेण सम्यग्-पालने व्रतविराधनेति, सा च नालोचिता गुरुसमीपे इत्यनालोचितातिचारो मृत्वा कृतानशनोऽपि ज्योतिष्केन्द्रे चन्द्ररूपतयोत्पन्नः ।

'निवखेवओ' ति निगमनं, तच्च प्रागुपदेशितमेव । तच्चे अज्झयणे शुक्लवक्तव्यताऽभीधियते—'उवखेवओ' ति उत्क्षेपः—प्रारम्भवाक्यं, यथा—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स अज्झयणस्स पुप्फियाणं अयमट्ठे पन्नत्तं, तच्चस्स णं अज्झयणस्स भंते । पुप्फियाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ? एवं खलु जंबू ? तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे इत्यादि । 'तहेवा-गओ' ति रायगिहे सामिसमीवे ।

'रिउव्वेय जाव' इति ऋग्वेदयजुर्वेदसामवेदाथर्वणवेदानाम् इतिहासपञ्चमानाम् इतिहासः—पुराणं निर्घण्टुषष्ठानाम् निर्घण्टको नाम कोशः साङ्गोपाङ्गानाम् अङ्गानि—शिक्षादीनि उपाङ्गानि—तदुक्तप्रपञ्चनपराः प्रबन्धाः, सरहस्यानाम्—एदम्पर्ययुक्तानां धारकः—प्रवर्तकः वारकः अशुद्धपाठनिषेधकः पारगः—पारगामि षडङ्गवित्, षष्ठितन्त्रविशारदः षष्ठितन्त्रं—कापिलीय-शास्त्रं षडङ्गवेदकत्वमेव व्यनक्ति, संख्याने—गणितस्कन्धे शिक्षाकल्पे—शिक्षायामक्षरस्वरूपनिरूपके शास्त्रे कल्पे—तथाविधसमाचारप्रतिपादके व्याकरणे—शब्दलक्षणे छन्दसि—गद्यपद्यवचनलननिरुक्त-प्रतिपादके ज्योतिषामयने—ज्योतिःशास्त्रे अन्येषु च ब्राह्मणकेषु शास्त्रेषु सुपरिनिष्ठितः सोमिलनामा ब्राह्मणः स च पार्श्वजिनागमं श्रुत्वा कुतूहलवशाज्जिनसमीपं गतः सन् 'इमाइं च णं' इति इमान् एतद्रूपान् 'अट्ठाइं' ति अर्थान् अर्थ्यमानत्वादधिगम्यानत्यर्थः । 'हेऊइं' ति हेतून् अन्तर्वर्तिन्या-स्तदीयज्ञानसंपदो गमकान्, 'पसिणाइं' ति यात्रायापनीयादीन् प्रश्नान् पृच्छहमानत्वात्, 'कारणाइं' ति कारणानि—विवक्षितार्थनिश्चयजनकानि व्याकरणानि—प्रत्युत्तरतया व्याक्रियमाणत्वाद्देशामिति, 'पुच्छिस्सामि' ति प्रश्नयिष्ये इति कृत्वा निर्गतः । 'खंडियविहुणो' ति छात्राहितः, गत्वा च भग-वत्समीप एवमवादीत्—'जत्ता ते भंते ? जवणिज्जं च ते ?' इति प्रश्नः तथा सरिसवया मासा कुलत्था एते भोजएण एगे भवं दुवे भवं इति च एतेषां च यात्रादिपदानामागमिकगम्भीरार्थत्वे । भगवति तदर्थपरिज्ञानमसंभावयताऽपञ्चाजनार्थम् प्रश्नः कृत इति 'सरिसवय' ति एकत्र सदृशवयम् । अन्यत्र सर्वपाः—सिद्धार्थकाः, 'मास' ति एकत्र मासो—दशार्धगुञ्जामानः सुवर्णादिविषयः अन्यत्र

माषाः धान्यविशेषः उडद इति लोके रूढः, 'कुलस्थ' इति एकत्र कुले निष्ठन्ति इति कुलस्थाः, अन्यत्र कुलस्थाः—धान्यविशेषः । सरिसवयादिपदप्रश्नश्च छलग्रहणेनोपहामार्थं कृतः इति, 'एगे भवं' इति एको भवान् इत्येकत्वाभ्युपगमे आत्मनः कृते भगवता श्रोत्रादिविज्ञानानमवयवानां चात्मनोऽनेकश उपनवध्या एकत्वं दूषयिष्यामिति बुद्ध्या पर्यनुयोगो द्विजेन कृतः यावच्छब्दात् दुवे भवं' इति गृह्यते द्वौ भवान् इति च द्वित्वाभ्युपगमेऽहमेकत्वविशिष्टस्यार्थस्य द्वित्वविरोधेन द्वित्वं दूषयिष्यामीति बुद्ध्या पर्यनुयोगो विहितः अत्र भवान् स्याद्वादपक्षं निखिलदोषगोचरातिक्रान्तमवलम्ब्योत्तरमदायि (मदात्)—एकोऽप्यहं, कथं? द्रव्यार्थतया जीवद्रव्यस्यैकत्वात् न तु प्रदेशार्थतया (प्रदेशार्थतया) ह्यनेकत्वात्, ममेत्यवादीनामेकत्वोपलम्भो न बाधकः, ज्ञातदर्शनार्थतया कदाचित् द्वित्वमपि न विरुद्ध-वित्यत उक्तं द्वावप्यहं, किं चेकस्यापि स्वभावभेदेनानेकधर्मात्वं दृश्यते, तथा हि—एको हि देवदत्तादि-पुरुष एकदैव तत्तदपेक्षया पितृत्वपुत्रत्वभ्रातृत्वमातुलत्वभागिनेयत्वादीननेकान् स्वभावान् लभते ।

तथा अवक्षेपे अवक्षेपे निचे अवक्षेपे अत्र' इति यथा जीवद्रव्यस्यैकत्वादेकस्तथा प्रदेशार्थतया-ऽसंख्येयप्रदेशतामाश्रित्याक्षयः, सर्वथा प्रदेशानां क्षयाभावात्, तथाऽव्ययः कियतामपि व्ययत्वाभावात्, असंख्येयप्रदेशता हि न कदाचनाप्यपति । अतो व्यवस्थित्वाभित्यताऽभ्युपगमेऽपि न कश्चिदोषः, इत्येवं भगवताऽभिहिते तेनापृष्टेऽप्यात्मस्वरूपे तद्बोधार्थं, व्यवच्छिन्नसंशयः संजातसम्यक्त्वः "दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवविज्जा सट्ठाणमुवगओ सोमिलमाहणो ।"

"असाहुदंसणेणं" इति असाधवः-कुदर्शनिनो भागवततापसादयः, तद्दर्शनेन साधूनां च-मुश्रमणा-नामदर्शनेन तत्र तेषां देशान्तरविहरणेनादर्शनतः अत एवोपर्युपासनतस्तदभावात्, अतो मिथ्यात्वपुद्गलास्तस्य प्रवर्तमानतां गताः, सम्यक्त्वपुद्गलाश्चापचोयमानास्त एवैभिः कारणै-मिथ्यात्वं गतः । तदुक्तम्—"मइमेया पुव्वोग्गाहसंसग्गीए य अभिनिवेसेणं । चउहा खलु मिच्छत्तं साहूणंऽदंसणेणंऽहवा ।

अतो अत्र असाहुदंसणेणं इत्युक्तम् । "अज्झत्थिए जाव" इति आध्यात्मिकः-आत्मविषयः चिन्तितः स्मरणरूपः प्राथितः-लघुमाशंसितः मनोगतो-मनस्येव वर्तते यो न बहिः प्रकाशितः सङ्कल्पो—विकल्पः समुत्पन्नः-प्रादुर्भूतः, तमेवाह-एवमित्यादि 'वयाइं चिण्णाइं' व्रतानि नियमास्ते च शीच-संतोषतपःस्वाध्यायादीनां प्रणिधानानि वेदाध्ययनादि कृत च, ततो ममेदानीं लौकिकधर्मस्थानच-रणयारामारोपणं कर्तुं श्रेयः तेन वृक्षारोपणमिति, अत एवाह—'अंबारामे य इत्यादि ।

कलं पाउप्पभायाए रयणीए जलंते सूरिए इत्यादि वाच्यम् । "मित्तनाइनियगसंम्बन्धि परिवणं पि य आमंतिता विउलेणं अमणापाणखाइमसाइमेणं भोयावित्ता समाणिता-इति अत्र मित्राणि सुहृदः ज्ञातयः समानजातयः निजकाः—पितृव्यादयः संबन्धिनः—द्वसुरपुत्रादयः परिजनो-दासीदासादिः तमामंथ विपुलेन भोजनादिना भोजयित्वा सत्कारयित्वा वस्त्रादिभिः समानयित्वा गुणोत्कीर्तनतः ज्येष्ठपुत्रं कुटुम्बे स्थापयित्वाऽधिपतित्वेन गृहीतलोटकहाहाद्युपकरणाः । 'वाणपत्थ' इति वने भवा वानी प्रस्थानं प्रस्था—अवस्थितिः वानी प्रस्था येषां ते वानप्रस्थाः अथवा 'ब्रह्मचारी

गृहस्थश्च, वानप्रस्थो यतिस्तथा । इति चत्वारो लोकप्रतीता आश्रमा एतेषां च तृतीयाश्रमवर्तिनो वानप्रस्थाः 'होति य' इति अग्निहोत्रिकाः 'पोत्तिय' इति वस्त्रधारिणः, कोत्तिया जन्नई सड्डई घालई हुबउट्ठा दंतुक्खलिया उम्मज्जगा सम्मज्जगा निम्मज्जगा संपक्खालगा दक्खिणकुलगा उत्तरकुलगा सखधम्मा कुलधम्मा मियलुद्धया हत्थितावसा उट्ठगा दिसापोक्खिणो वक्कवासिणो विलवासिणो जलवासिणो ख्वख्खमूलिया अंबुभक्खिणो वायुभक्खिणो सेवानभक्खिणो मूलाहारा कंदाहारा तयाहारा पत्ताहारा पुप्फाहारा फलाहारा बीयाहारा परिसडियकंदमूलतयपत्तुप्फफलाहारा जलाभिसेयकडिणगाय आयावणेहि पंचगीयावेहि इंगालसोल्लियं कंदुसोल्लियं ।

तत्र 'कोत्तिय' इति भूमिशायिनः, 'जन्नई' इति यज्ञयाजिनः, 'सड्डई' इति श्राद्धाः 'घालई' इति गृहीतभाण्डाः 'हुबउट्ठा' इति हूडिकाश्रमणाः, 'दंतुक्खलिय' इति फलभोजिनः 'उम्मज्जगा' इति उम्मज्जनमात्रेण ये स्नान्ति 'सम्मज्जगा' इति उम्मज्जनस्यैवासकृत्करणेन ये स्नान्ति 'निम्मज्जगा' इति स्नानार्थं ये निमग्ना एवं क्षणं तिष्ठन्ति, 'संपक्खालगा' इति मृत्तिकाघर्षणपूर्वकं येऽङ्ग क्षालयन्ति, 'दक्खिणकुलगा' इति यैर्गङ्गादक्षिणकुल एव वस्तुर्ह्य, 'उत्तरकुलगा' इति उक्तविपरीताः, 'सखधम्म' इति शङ्ख ध्मात्वा ये जेमन्ति यद्यन्यः कोऽपि नागच्छति, 'कुलधमगा' इति ये कुले स्थित्वा शब्दं कृत्वा भुञ्जते, 'मियलुद्धया' इति प्रतीता एव, 'हत्थितावसा' इति ये हस्तिनं मारयित्वा तेनैव बहुकालं भोजनतो यापयन्ति, 'उट्ठगा' इति ऊर्ध्वकृतदण्डा ये संचरन्ति, 'दिसापोक्खिणो' इति उदकेन दिशः प्रोक्ष्य ये फलपुष्पादि समुच्चिन्वति, 'वक्कवासिणो' इति वल्कलवाससः, 'विलवासिणो' इति व्यक्तम्, पाठान्तरे 'वेलवासिणो' इति समुद्रवेलावासिनः 'जलवासिणो' इति ये जलनिषण्णा एवासिते, शेषाः प्रतीताः नवरं, 'जलाभिसेयकडिणगाय' इति ये स्नात्वा न भुञ्जते स्नात्वा स्नात्वा पाण्डुरोभूतगात्रा इति वृद्धाः क्वचित् 'जलाभिसेयकडिणगायभूय' इति दृश्यते तत्र जलाभिषेककठिनगात्रभूताः प्राप्ता ये ते तथा, 'इंगालसोल्लियं' इति अङ्गाररिव पक्वम्, 'कंदुसोल्लियं' इति कन्दुपक्वमिवेति । 'दिसावक्कवाल' एणं तवोकम्मेणं' इति एकत्र पारणके पूर्वस्थां दिशि यानि फलादीनि तान्याहृत्य भुङ्क्ते, द्वितीये तु दक्षिणस्यामित्येवं दिक्चक्रवालेन तत्र तपःकर्मणि पारणककरणे तत्तपःकर्म दिक्चक्रवालमुच्यते तेन तपःकर्मणेति ।

'वागलवत्थनियत्थे' इति वल्कलं—वल्कः तस्येदं वल्कलं तद्वस्त्रं निवसितं येन सा वल्कलवस्त्रनिवसतः । 'उट्ठ' इति उट्ठजः—तापसाश्रमगृहम् । 'किडिण' इति वंशमयस्तापसभाजनविशेषः ततश्च तयाः सांकायिकं—भारोद्धृतयस्त्रं किडिणपाकं यिहम् । 'महाराय' इति लोकपालः । 'पत्थाणं पत्थियं' प्रस्थाने परलोकसाधनमार्गे प्रस्थितं-प्रवृत्तं फलाद्यहृत्कार्यं, गमने वा प्रवृत्तम् । सोमिलद्विजश्रुषिम् । 'दब्भे य' इति समूलान् कुमेयं दम्भनिव निमूलान् । पत्तामोड च' इति तरुशाखामोटितपत्राणि । 'समिहाउ' इति, समिधः काष्ठिकाः, 'वेइ वड्ठेइ' इति वेदिकां देवार्थं स्थानं वधनी—बहुकारिका तां प्रयुजते इति—वर्धयति—प्रमार्जयतीत्यर्थः । 'उवलेवणसमज्जणं' (ति) जलेन संमार्जनं वा शोधनम् । 'दम्भकलसहत्थण' इति दम्भश्च कनशकश्च हस्ते गता यस्य स तथा, 'दम्भकलसा' हत्थण' इति क्वचित्पाठः तत्र दम्भेण सहगतो यः कलशकः स हस्तगतो यस्य स तथा । 'जन्न-

मज्जणं' ति जलेन बहिःशुद्धिमात्रम् । 'जलकीड' ति देहशुद्धावपि जलेनाभिरतिम् । 'जलाभिसेयं' ति जलक्षालनम् । 'आयन्ते' ति जलस्पृशति चोक्ते' ति अशुचिद्रव्यापगमात् किमुक्तं भवति ? । 'परमसूडभूए' ति 'देवपिउकयकज्जे' ति देवानां पितॄणां च कृतं कार्यं जलाञ्जलिदानं येन स तथा । 'सरएण अरणिं महेइ' ति शरकेण — निर्मन्थकाष्ठेन अरणिं — निर्मन्थनीयकाष्ठं मथ्नाति-घर्षयति ।

अग्निस्स दाहिणे इत्यादि सार्धंश्लोकः तद्यथा शब्दवर्जं, तत्र च 'सत्तंगाई समादहे' ति सप्तज्ज्ञानि समादधाति—सन्निधापयाति सकथं १ वत्कलं २ स्थानं ३ शय्याभाण्डं ४ कमण्डलुं ५ दण्डदारुं तथात्मानमिति । तत्र सकथं—तत्समयप्रसिद्धउपकरणविशेषः स्थानं ज्योतिःस्थानम् पात्र-स्थानं वा, शय्याभाण्डं—शय्योपकरणं, कमण्डलु-कुण्डिका दण्डदारु—दण्डकः, आत्मा प्रतीतः । 'चरु साहेइ' ति चरुः—भाजनविशेषः तत्र पच्यमानं द्रव्यमपि चरुरेव तं चरु बलिमित्यर्थः साधयति-रन्धयति । 'बलिं वइस्सदेवं करेइ' ति बलिना वैश्वानरं पूजयतीत्यर्थः । 'अतिहिपूयं करेइ' ति अतिथेः—आगन्तुकस्य पूजां करोतीति 'जाव गहा' कडुच्छ्रयतंबियभायणं गहाय दिसापोक्खियता-वसत्तए पव्वइए प्रव्रजितेऽपि षष्ठादितपःकरणेन दिशः प्रेक्षितत्वादिविधिं च कृत्वा पारणादिकमा-चरितवान् । इदानीं च इदं मम श्रेयः कर्तुं, तदेवाह—

'जाव जलंते सूरिए' दृष्टान् आभाषितान् आपृच्छय, बहूनि सत्त्वशतानि समनुमान्य संभाष्य गृहीतनिजभाण्डोपकरणस्योत्तरदिगभिमुखं गन्तुं मम युज्यते इति संप्रेक्ष्यते चेत्तसि, 'कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइत्ता' यथा काष्ठं काष्ठमयः पुत्तलको न भाषते एवं सोऽपि मौनावलम्बी जातः यद्वा मुख-रन्ध्राच्छादकं काष्ठखण्डमुभयपार्श्ववर्च्छिद्रद्वयप्रेषितदवरकान्वितं मुखबन्धनं काष्ठमुद्रा तथा मुखं बध्नाति । जलस्थलादीनि सुगमानि, एतेषु स्थानेषु स्खलितस्य प्रतिपतितस्य वा न तत् उत्थातुं मम कल्पते । महाप्रस्थानं पदं ति मरणकालभावि कर्तुं ततः प्रस्थितः-कर्तुंमारब्धः । 'पुव्वावरण्ह-कालसमयंसि' ति पश्चात्यापराहकालसमयः दिनस्य चतुर्थप्रहरलक्षणः । पुव्वारत्तावरत्तकाल-समयंसि ति पूर्वरात्रौ—रात्रेः पूर्वभागः, अपररात्रौ—रात्रेः पश्चिमभागः तल्लक्षणो यः कालसमयः-कालरूपसमयः स तथा तत्र रात्रिमध्याह्ने (मध्यारात्रे) इत्यर्थः । अन्तिकं—समीपं, प्रादुर्भूतः । इत् ऊर्ध्वं सर्वं निगदसिद्धं जाव निक्खेवओ ति । नवरं विराधितसम्यक्त्वः । अनालोचिताप्रतीकान्तः । शुकग्रहदेवतया उत्पन्नः ।

बहुपुत्तियाध्ययने 'उक्खेवओ' ति उत्क्षेपः प्रारम्भवाक्यं यथा—जइ णं भंते समणेणं सिद्धि-मइनामधेयं ठाणं संपाविउकामेणं तच्चवगस्स पुप्फियाणं तइयज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, चउत्थस्स णं अज्झयणस्स पुप्फियाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एतन्स 'दिक्वा देविड्ढी पुच्छ' ति, किण्हं लद्धा—केन हेतुनोपाजिता ? किण्णा पत्ता—केन हेतुना प्राप्ता उपाजिता सती प्राप्तिमुपगता ? किण्णा 'भिसमण्णागय ति प्राप्तापि सतो केन हेतुनाऽऽभिमुख्येन सांगत्थेन च उपाज्जेनस्य च पश्चाद्भोग्यतामुपगतेति ? । एवं पृष्टे सत्याह 'एवं खलु' इत्यादि । वाणारस्यां भद्रनामा सार्थवाहोऽभूत् । 'अड्ढे' इत्यादि अड्ढे दित्ते वित्ते विच्छिण्ण-विउलभवनसयणासणजाणवाहणाइण्णे बहुषणजाइआययणआओगपओगसंपउत्ते विच्छिड्डियपउर-

भक्तपाणे बहुदासीदासगोमहिसगवेलकप्पभूए बहुजणस्स अपरिभूए सुगमान्येतानि । नवरं आदध-
 ऋद्धया परिपूर्णं, दृप्तः—दपवान्, वित्तो—विख्यातः । भद्रसाथवाहस्य भार्या सुमद्रा मुकुमाला ।
 'वंश' इति अत्रत्यफलापेक्षया निष्फला, 'अविद्याउरि' इति प्रसवानन्तरमपत्यमरणेनापि फलतो वन्ध्या
 भवति अत उच्यते—अविद्याउरि' इति अविजननशीलाऽपत्यानाम्, अत एवाह—जानुकूर्पराणामेव
 माता-जननी जानुकूर्परमाता, एतान्येव शरीरांशभूतानि तस्याः स्तनौ स्पृशन्ति नापत्यमित्यर्थः
 अथवा जानुकूर्पराण्येवमात्रा परप्राणादिसाहाय्यसमर्थः उत्सङ्गनिवेशनीयो वा परिकरो यस्याः न
 पुत्रलक्षणः स जानुकूर्परमात्रः । इमेयारूवे' इति इहैवं दृश्य "अयमेयारूवे अज्जत्थिए चित्ते पत्थिए
 मणोगए संकप्पे समुप्पज्जिअत्था" तत्राय एतद्रूपः आध्यात्मिकः—आत्माश्रितः चिन्तितः—स्मरण-
 रूपः मनोगतो—मनोविकाररूपः संकल्पो—विकल्पः समुत्पन्नः । 'धन्नाओ णं ताओ' इत्यादि धन्या—
 धनमर्हन्ति लप्स्यन्ते वा यास्ता धन्याः इति यासामित्यपेक्षया, अम्बाः—स्त्रियः पुण्याः—पवित्राः
 कृतपुण्याः—कृतमुकृताः कृतार्थाः—कृतप्रयोजनाः कृतलक्षणाः—सफलीकृतलक्षणाः । सुलद्धे ण तासि
 अम्मगाणं मण्यजम्मजीवियफले' सुलब्धं च तासां मनुजजन्मजीवितफलं च । 'जासि' इति यासां मन्ये
 इति वितर्कयो निपातः । निजकुक्षिसंभूतानि डिम्बरूपाणीत्यर्थः स्तनदुग्धे लुब्धानि यानि तानि तथा ।
 मधुराः समुल्लावा येषां तानि तथा । मम्मनम्—अव्यक्तमीषत्ललितं प्रजल्पितं येषां तानि तथा ।
 स्तनमूलात् कक्षादेशभागमभिसरन्ति मुखकानि—अव्यक्तविज्ञानानि भवन्ति । पण्हयन्ति—दुग्धं
 पिबन्ति । पुनरपि कोमलकमलोपमाभ्यां हस्ताभ्यां गृहीत्वा उत्सङ्गे निवेशितानि सन्ति । ददति
 समुल्लापकान्, पुनः पुनः मञ्जुलप्रभणितान् मञ्जुलं—मधुरं प्रभणितं—भणितिर्येषु ते तथा तान्,
 इह सुमधुरानित्यभिधाय यन्मञ्जुलप्रभणितानीत्युक्तं तत्पुनरुक्तमपि न दुष्टं संभ्रमभणितत्वादस्येति ।
 'एत्तो' इति विभक्तिपरिणामादेशाम्—उक्तविशेषणवतां डिम्भानां मध्यदेकतरमपि—अन्यतर-
 विशेषणमपि डिम्भं न प्राप्ता इत्युपहेतुमनःसङ्ख्या भूमिगतदृष्टिका करतलपर्यन्तितमुखी ध्यायति ।
 अथानन्तरं यत्संपन्नं तदाह—तेण कालेण' इत्यादि ।

गृहेषु समुदानं—भिक्षाटनं गृहसमुदानं भेक्षं, तन्निमित्तमटनम् । साध्वीसंघाटको भद्रसाथ-
 वाहगृहमनुप्रविष्टः । तद्भार्या चेतसि चिन्तितवती (एवं वयासा) यथा—विपुलान्—समृद्धान्
 भोगान् भोगभोगान्—अतिशयवतः शब्दादीन् उपभुञ्जाना विहरामि—तिष्ठामि केवलं तथापि
 डिम्भादिकं न प्रजन्ये—न जनितवती अहं, केवलं ता एव स्त्रियो धन्या यासां पुत्रादि संपद्यत इति
 खेदपरायणा 'हवति' (ऽहं वर्ते) । तद्वन्नार्थं यूयं किमपि जानीष्वे न वेति ? यद्विषये परिज्ञानं संभाव-
 यति तदेव विद्यामन्त्रप्रयोगादिकं वक्तुमाह । केवलिप्रज्ञप्तधर्मश्च—'जीवदयसच्चवयणं, परधुण-
 परिवज्जणं सुसीलं च । खंती पंचिदियनिग्गहो य धम्मस्स मूलाइ' इत्यादिकः ।

'एवमेयं' इति एवमेतन्ति साध्वीवचने प्रत्या (त्यया) विस्मरणम् । एतदेव स्फुटयति—
 'तहमेयं भन्ते' । तथैवैतद्यथा भगवत्यः प्रतिपादयन्ति यदेतद्यूयं वदथ तथैवैतत् । 'अवितहमेयं' इति
 सत्यमेतदित्यर्थः 'असंदिग्धमेयं' इति संदेहवर्जितमेतत् । एतान्येकार्थान्येत्यादिरप्रदर्शनायोक्तानि सत्योऽ-
 यमर्थो यद्यूयं वदथ इत्युक्त्वा वदन्ते-वाग्भिः स्तूति, नमस्यति कायेन प्रणमति वंदित्ता नमसिना
 सावगधम्मं पडिवज्जइ देवगुरुधर्मप्रतिपत्तिं कुरुते ।

यथासुखं देवानुप्रिये ! अत्रार्थं मा प्रतिबन्धं—प्रतिघातरूपं प्रमादं मा कृथाः ।

‘आघवणाहि’ ति आख्यापनाभिश्च सामान्यतः प्रतिपादनैः । ‘पणवणाहि य’ ति प्रज्ञापनाभिश्च—विशेषतः कथनैः । सणवणाहि य’ ति संज्ञापनाभिश्च संबोधनाभिः ‘विणवणाहि य’ ति विज्ञापनाभिश्च—विज्ञप्तिकाभिश्च सप्रणयप्रार्थनैः । चकारा समुच्चयार्थाः ।

‘आघवित्तए’ ति आख्यातुं वा प्रज्ञापयितुं वा संज्ञापयितुं वा विज्ञापयितुं वा न शक्नोतीति प्रक्रमः सुभद्रा भार्या व्रतग्रहणान्निषेधयितुं ‘ताहे’ इति तदा ‘अकामए चेव’ अनिच्छन्नेव सार्थवाहो निष्क्रमणं—व्रतग्रहणोत्सवं अनुमनितवान् (अनुमतवान्) इति ! किं बहुना ? मुंडा भविता अगाराओ अणगारियं पव्वइ ति । इत ऊर्ध्वं सुगमम् ।

‘जाव पाडियक्कं उवस्सय’ ति सुव्रतार्थिकोपाश्रयात् पृथक् विभिन्नमुपाश्रयं प्रतिपद्य विचरति-आस्ते । ‘अज्जाहि अणोहट्ठिय’ ति यो बलाद्धस्तादौ गृहीत्वा प्रवर्तमानं निवारयति सोऽपघट्टिकः तदभावादनपघट्टिका, अतिवारिता-निषेधकरहिता, अतएव स्वच्छन्दमतिका । ज्ञानादीनां पार्श्वे तिष्ठतीति पार्श्वस्था इत्यादि सुप्रतीतम् ।

‘उवत्थाणियं करेइ’ ति उपस्थानं—प्रत्यासत्तिगमनं तत्र प्रेक्षणककरणाय यदा विधत्ते ।

‘दिव्वं देक्किड्ढं’ ति देवद्विः—परिवारादिसंपत्, देवद्युतिः—शरीराभरणादीनां दीप्तिर्योगः, देवानुभागः—अद्भुत—वैक्रियशरीरादिशक्तियोगः, तदेतत्सर्वं दर्शयति—। ‘विश्रयपरिणयमेत’ ति विज्ञका परिणतमात्रोपभोगेषु अत एव यौवनोद्गममनुप्राप्ता । ‘रूवेण व’ ति रूपम्—आकृतिः यौवन-तारुण्यं लावण्यं चेह स्पृहणीयता चकारात् गुणग्रहः गुणाश्च मृदुत्वोदार्यादयः, एतैस्तृकृष्टा—उत्कर्ष-वती शेषस्त्रीभ्यः, अत एव उत्कृष्टमनोहरशरीरा चापि भविष्यति । ‘विश्रयपरिणयमित्तं पडिकुविएणं सुक्केण’ ति प्रतिकूजितं—प्रतिभाषितं यत् शुक्लं द्रव्यं तेन कृत्वा प्रभूतमपि वाञ्छितं देयद्रव्यं दत्त्वा प्रभूताभरणादिभूषितं कृत्वाऽनुकूलेन विनयेन प्रियभाषणतया भवद्योग्येयमित्यादिना ‘इट्ठा’ वल्लभा ‘कंता’ कमनीयत्वात् ‘प्रिया’ तदा प्रेमविषयत्वात् ‘मणुणा’ सुंदरत्वात् एवं ‘संयमा अणुमया’ इत्यादि दृश्यम् । आभरणकरण्डकसमानोपादेयत्वादिना । तैलकेला सौराष्ट्रप्रसिद्धी मृन्मयस्तैलस्य भाजनविशेषः, स च भङ्गभयाल्लोठनभयाच्च सुष्ठु संगोप्यते एवं साऽपि तथोच्यते । ‘चेलपेडा इवे’ ति वस्त्रमञ्जुषेदेत्यर्थः । ‘रयणकरंडग’ इति इन्द्रनीलादिरत्नाश्रयः सुसंरक्षितः सुसंगोपितश्च क्रियते ।

‘जुयलगं’ दारकदारिकादिरूपं प्रजनितवती । पुत्रकैः पुत्रिकाभिश्च वर्षदशकाविप्रमाणतः कुमारकुमारिकादिव्यपदेशभाक्त्वं डिम्भडिम्भिकाश्च लघुतरतया प्रोच्यन्ते । अप्येके केचन ‘परंगणेहि’ ति नृत्यद्विः । ‘परक्कममाणेहि’ ति उल्ललयद्विः । ‘पक्खोलणएहि’ ति प्रस्खलद्विः । हसद्विः, रुषद्विः ‘उक्कूवमाणेहि’ ति बृहच्छब्देः पूतकुर्वद्विः । पुव्वड (दुब्बल) ति पुर्वला । ‘पुव्वरत्तावरत्तकालसमयं’ ति पूर्वरात्रश्चासावपररात्रश्चेति पूर्वरात्रापररात्रः स एव कालसमयः कालविशेषस्तस्मिन् रात्रेः पश्चिमे भाग इत्यर्थः ग्रयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः—आत्माश्रितः, चिन्तितः स्मरणरूपः प्रायितः—अभिलाषरूपः मनोविकाररूपः संकल्पो—विकल्पः समुत्पन्नः ।

इह ग्रन्थे प्रथमवर्गा दशाध्ययनात्मकः, विरभाप्रलिकाव्ययनात्मकः । द्वितीयवर्गो दशाध्ययना-त्मकः, तत्र च कल्पावर्तसिका इत्याख्या मध्ययनानाम् तृतीयवर्गोऽपि दशाध्ययनात्मकः, पुष्पिका-

शब्दाभिधेयानि च तान्यध्ययनानि, तत्राद्ये चन्द्रज्योतिष्केन्द्रवक्तव्यता १ । द्वितीयाध्ययने सूर्य-
वक्तव्यता २ । तृतीये शुक्रमहाग्रहवक्तव्यता ३ । चतुर्थाध्ययने बहुपुत्रिकादेवीवक्तव्यता ४ । पञ्चमे-
ऽध्ययने पूर्णभद्रवक्तव्यता ५ । षष्ठे माणिभद्रदेववक्तव्यता ६ । सप्तमे प्रारम्भिकचन्दनान्तमयी दत्तनामक-
देवस्य द्विसागरोपमस्थितिकस्य वक्तव्यता ७ । अष्टमे शिवगृहपति (तेः) मिथिलावास्तव्यस्य देवदे-
नोत्पन्नस्य द्विसागरोपमस्थितिकस्य वक्तव्यता ८ । नवमे हस्तिनापुरवास्तव्यस्य द्विसागरोपमायुष्कत-
योत्पन्नस्य देवस्य बलनामकस्य वक्तव्यता ९ । दशमाध्ययनेऽणादियगृहपतेः काकन्दीनगरीवास्तव्यस्य
द्विसागरोपमायुष्कतयोत्पन्नस्य देवस्य वक्तव्यता १० । इति तृतीयवर्गाध्ययनानि ।

पुष्पचुला ॥ ४ ॥

चतुर्थवर्गोऽपि दशाध्ययनात्मकः श्री-ह्रीषृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्मीइलादेवीसुरादेवीरसदेवीगन्ध-
देवीतिवक्तव्यताप्रतिबद्धाध्ययननामकः । तत्र श्रीदेवी सौधसंकल्पोत्पन्ना भगवतो महावीरस्य नाट्य-
विधि दारकविकुर्वणया प्रदर्श्य स्वस्थानं जगाम । प्रारम्भे राजगृहे सुदर्शनगृहपतेः प्रियाया भार्याया
अङ्गजा भूतानाम्नी अभवत् न केनापि परिणीता । पतितपुत्रस्तनी जाता । वर (ग पक्खेज्जिया)
परिवज्जिया' वरपितृप्रखेदिता भर्त्राऽपरिणीताऽभूत् । सुगमं सर्वं यावच्चतुर्थवर्गसमाप्तिः ।

वट्टिनदसा ॥ ५ ॥

पञ्चमवर्गं बह्विदशामिष्टानि द्वादशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि निसङ्गे इत्यादीनि । प्रायः सर्वोऽपि
सुगमः पञ्चमवर्गः नवरं 'चिराईए'ति चिरः-चिरकाल आदिनिवेशो यस्य तच्चिरादिकम् । मह्या
हिमवन्तमलयमन्दरमहिदसारे' इत्यादि दश्यम्, तत्र महाहिमवदादयः पर्वतास्तद्वत्सारः प्रघानो यः ।

नगरनिगमसिद्धिसेणावसत्यवाहपभित्तिओ जिणं भगवंतं वंदइ । तदनु नन्दनवने उद्याने
भगवान् समवसुतः ।

'बायालीसं भत्ताई' ति दिनानि २१ परिहृत्यानशनया । 'निसङ्गे ताओ देवलोगाओ आउ-
क्खण'ति आयुर्दलिकनिर्जरणेन, 'भवक्खण'ति देवभवनिबन्धनभूतकर्मणां गत्यादीनां निर्जरणेन,
स्थितिक्षयेण—आयुःकर्मणः स्थितेर्वेदनेन, 'अनंतरं चयं चइत्त'ति देवभवसम्बन्धिनं चयं—शरीरं
त्यक्त्वा, यद्वा च्यवनं कृत्वा क्व यास्यति ? गतोऽपि क्वोत्पस्त्यते ?

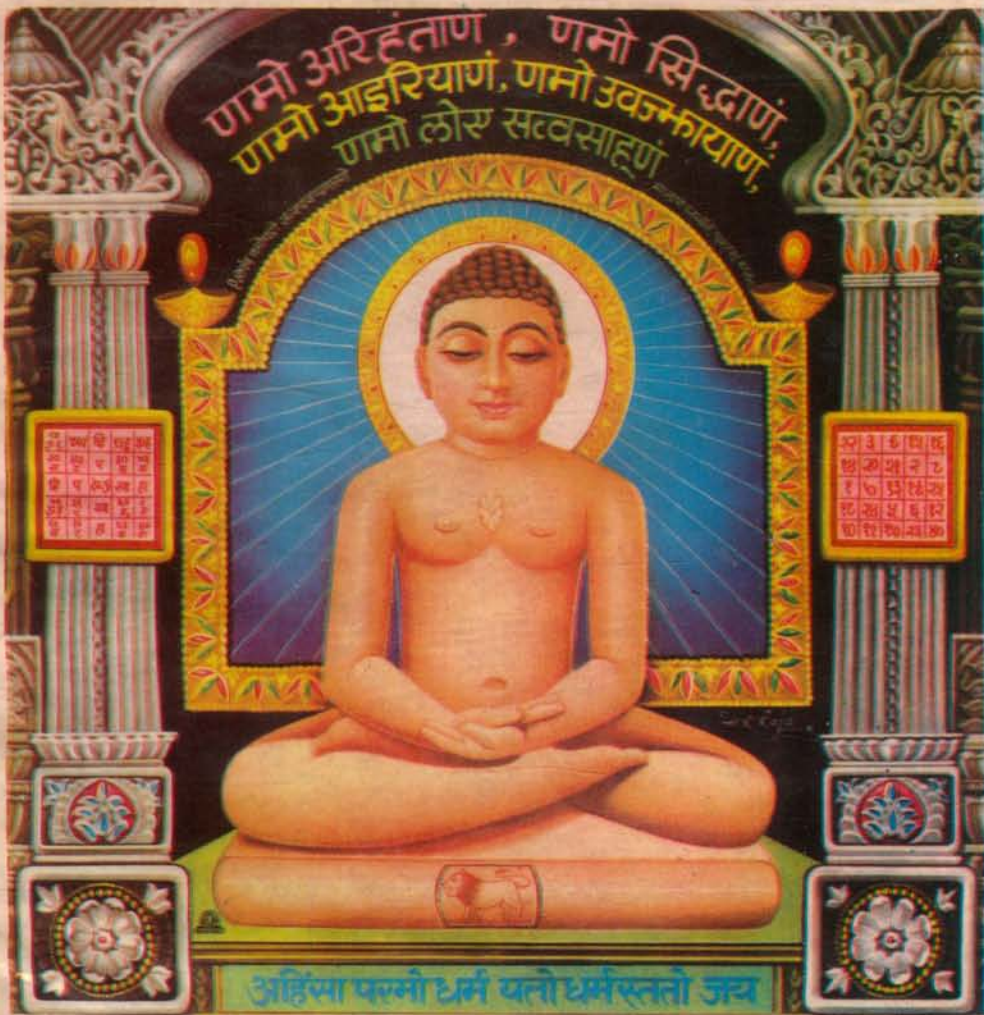
'सिज्जिहिइ' सेत्स्यति निष्ठितार्थतया, भोत्स्यते केवलालोकेन, मोक्ष्यते सकलकर्मशो,
परिनिर्वस्यति स्वस्थो भविष्यति सकलकर्मकृतविकारविरहितया, तात्पर्यार्थमाहसर्वदुःखानामन्तं
करिष्यति ।

इति श्रीचन्द्रसूरिविरचितं निरयावलिकाश्रुतस्कन्धविवरणं समाप्तमिति । श्रीरस्तु ॥

ग्रन्थाग्रम् ६०० ॥

शुद्ध सुध्याय—पृष्ठ-दस "जासीवचन" युष्माचार्य श्री शिव मुनि जी महाराज ने जहाँ लाईन
नं० ५ में द्वितीय के स्थान पर "तृतीय" पढ़ा जाए । द्वितीय उपाङ्ग में राजा
श्रेणिक के पोत्रों का वर्णन है इस प्रकार पढ़ा जाए ।

श्रमण-संस्कृति के उन्नायक



चौबीसवें तीर्थङ्कर भगवान महावीर